द्वारकानाथ टैगोर

एक विस्मृत अग्रदूत : एक जीवनी



यह चित्र, जिस पर न तो कलाकार के हस्ताक्षर हैं और न तारीख, श्री चार्ल्स आइगरश्मित के पास है और उनके और मदाम कृष्णा रिबो के सौजन्य से यहां प्रकाशित किया जा रहा है। विश्वास किया जाता है कि बारों द श्वीनिग द्वारा बनाये द्वारकानाथ के चित्र की यह आरंभिक प्रति है, जिसकी सम्पूरित प्रति बाद में देवेन्द्रनाथ टैगोर को कलकत्ता भेजी गई थी और अब पेरिस में मदाम रिबो के पास है।

द्वारकानाथ टैगोर

एक विस्मृत अग्रदूत : एक जीवनी

कृष्णा कृपलानी

अनुवाद

शिवदान सिंह चौहान

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

1989 (शक 1911)

Dwarkanath Tagore (*Hindi*)
रु. 37.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-10016 द्वारा प्रकाशित।
राज बन्धु इन्डस्ट्रियल कं., सी-61 मायापुरी फेज II, नयी दिल्ली-110064 में मुद्रित।

प्राक्कथन

रॉकफेलर अनुदान ने 1959 में मुझे इंगलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और यूरोप के कुछ देशों की यात्रा करने और विभिन्न भाषाओं के लेखकों से मिलने का अवसर प्रदान किया था। इस यात्रा के दौरान, लंदन के ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस और न्यूयार्क के ग्रोव प्रेस ने मुझसे रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक संपूर्ण जीवनी लिखने का आग्रह किया, जिसे वे दोनों मिल कर प्रकाशित करना चाहते थे। निस्संदेह यह प्रस्ताव रवीन्द्रनाथ टैगोर की जन्म-शती की तारीख़ (मई 1961) की निकटता से प्रेरित था, जब, प्रकाशकों को आशा थी कि, उनके जीवन और कृतित्व में पाश्चात्य जगत की दिलचस्पी शायद फिर ज़िन्दा हो जायगी। मैंने इस प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत किया, लेकिन इस ज़िम्मेदारी का भार उठाने में, जो मुझे कवि के दीर्घ और घटनामय जीवन के विवरणों के अनुसंधान में और उनके विपुल लेखन के एक ऐसी भाषा में पुर्नअध्ययन में, जो मेरी मातृ भाषा नहीं है, आकंठ डुबो लेता, मैंने अपना संकोच व्यक्त किया। लेकिन प्रकाशकों तथा अन्य मित्रों ने बहुत ज़ोर दिया और मैं राज़ी हो गया। टैगोर के प्रति मेरी व्यक्तिगत श्रद्धा और उनकी साहित्यिक-रचनात्मक प्रतिभा के प्रति मेरी अटूट भक्ति-भावना अन्य सभी कठिनाइयों से अधिक भारी सिद्ध हुई।

अगली गरमियों में मैं इस कार्य में व्यस्त हो गया, और मैं इसमें जितनी ही अधिक गहराई में उतरता गया, एक प्रश्न उतनी ही तीव्रता से बार-बार मेरे मन में उठता गया। रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा और अभिरुचि की यह सार्वभौमिकता, उनके मूलत. धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण की यह व्यापकता, संगीत और कलाओं के प्रति उनका ऐसा गहरा प्रेम, रंगमंच को (जो उस समय के ब्रहमो समाज में वर्जित था) पुनरुज्जीवित करने की दिशा में उनकी इतनी सक्रियता और कला-रूपों की परम्परागत, रूढ़ मान्यताओं के कूल-किनारों का अतिक्रमण कर सतत् प्रवाहित

होने वाली उनकी सर्जनात्मक शक्ति का आखिर स्रोत कहां था ? यद्यपि जीनियस (असाधारण प्रतिभा) **घटित** होती है, बनायी नहीं जाती, फिर भी कोई जीनियस आनुवंशिकता और पर्यावरण के प्रभावों से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। क्या टैगोर की आनुवंशिकता में कोई ऐसी चीज़ थी जो यकायक जीनियस के शतदल-कमल के रूप में प्रस्फुटित हो गयी थी ?

मेरा मन यह स्वीकार करने को राज़ी नहीं हुआ कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी बहुरंगी, अनेकमुखी प्रतिभा धार्मिक चिन्तन के हिमशिखर पर गंभीर मुद्रा में एकाकी बैठे, एकनिष्ठ तपस्वी, अपने पिता महर्षि से प्राप्त की थी। रवीन्द्रनाथ, यद्यपि वे अपने आपको अपने पिता का प्रिय अनुयायी समझने में गर्व करते थे, किन्तु थे वे महर्षि से सर्वथा भिन्न। केवल तभी वे उनके अनुरूप लगते थे, जब वे एक पैगम्बर का चौगा धारण करके उपदेश-मंच से या साधारण मंच को उपदेश-मंच बना कर प्रवचन देने का उपक्रम करते थे। वे केवल एक अनेक-मुखी साहित्यिक चमत्कार ही नहीं थे, बल्कि नानारूपों में केलि करते हुए जीवन के सच्चे और उत्साही (यद्यपि ऊपर से देखने में किंचित अ-भावुक) प्रेमी थे। उनके क़दम मज़बूती से पृथ्वी पर टिके हुए थे। और उनकी आँखें, उस समय भी जब वे अपने धार्मिक गीत लिख रहे होते थे, जिनके कारण उन्हें विश्व-ख्याति प्राप्त हुई, धीर, शान्त मुद्रा में, किन्तु अक्सर शॉ की तरह विनोद-भरी चमक के साथ, अपने चतुर्दिक होने वाली घटनाओं का निरीक्षण करती रहती थीं। मैंने अपने अध्ययन के दौरान यह भी पाया कि उम्र के साथ-साथ महर्षि का सम्मोहन शिथिल होता गया, वे आरंभिक अवरोधों से लगातार मुक्त होते गये, अधिक उदार-मना और विरोधी, अपरिचित, यहां तक कि सनकी विचारों और व्यक्तियों के प्रति भी सहिष्णु हो गये और उनका दृष्टिकोण और उनकी सहानुभूतियां जाति, धर्म और राष्ट्र की सीमाओं से ऊपर उठ कर विश्वजनीन हो गईं।

मेरे मन में महर्षि के मोहक आवरण के परे रवीन्द्रनाथ की वंश-परंपरा को देखने-जानने की तीव्र जिज्ञासा पैदा हुई। इस प्रकार मैं द्वारकानाथ से जा टकराया, जिनके बारे में टैगोर परिवार के अंदर या शांतिनिकेतन में, जहां मैंने अनेक वर्ष गुज़ारे थे, कभी कोई चर्चा नहीं होती थी। वहां राजा राममोहन राय की चर्चा होती थी, उनकी प्रशंसा होती थी, उनकी पूजा की जाती थी, लेकिन उनके प्रमुख सहयोगी और साथी द्वारकानाथ की, जो भारत के इस प्रथम महान आधुनिक विद्रोही नेता का अंत तक साथ निभाते रहे, जो अंत तक ही नहीं, बल्कि उनके बाद भी उनका समर्थक बना रहा, जबकि उनके अनेक धर्मानुयायी उनके आदर्शों को त्याग बैठे थे, उस द्वारकानाथ की नितान्त उपेक्षा की जाती थी, मानो उसकी स्मृति कुल की मर्यादा पर एक कलंक थी। इसने उस व्यक्ति के बारे में मेरी जिज्ञासा को और भी उत्तेजित कर दिया, जो अपने जीवन-काल में सर्वत्र इतना प्रशंसित था और मृत्योपरांत सर्वत्र इतना उपेक्षित।

फिर एक दिन अचानक नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने मुझे द्वारकानाथ टैगोर की एक संक्षिप्त जीवनी लिखने के लिए आमंत्रित किया। मुझे उतना ही आश्चर्य हुआ और उतना ही संकोच, जितना उस समय उस प्रस्ताव को स्वीकार करने में हुआ था, जब ओयूपी और ग्रोव प्रेस ने मुझे रवीन्द्रनाथ टैगोर की जीवनी लिखने के लिए आमंत्रित किया था। लेकिन कारण बिल्कुल भिन्न था। पोते के बारे में इतनी अधिक सामग्री उपलब्ध थी कि कठिनाई इस बात में थी कि क्या चुना जाये और कैसे। दादा के बारे में शायद ही कोई सामग्री उपलब्ध थी और समस्या थी कि इतने कच्चे और अनिश्चित आधार पर उनके जीवन-वृत्त का कोई प्रामाणिक विवरण कैसे प्रस्तुत किया जा सकेगा। शांतिनिकेतन में उपलब्ध सामग्री बहुत कम थी, कुछ और कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी में और रवीन्द्र भारती यूनीवर्सिटी म्यूज़ियम में उपलब्ध थी। लेकिन जो भी सामग्री थी, उसमें पिछली सदी में लिखे किशोरी चन्द मित्रा के **मेमॉयर**[1] (संस्मरण) के अलावा बाक़ी सारी की सारी फुटकर तथ्यों और पत्र-पत्रिकाओं में छपी चन्द सूचनाओं तक सीमित थी, जो एक समुचित क्रम-बद्ध विवरण तैयार करने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

मैं इसी उलझन में था कि आगे कैसे बढ़ा जाय कि भाग्य से मुझे एक टैगोर-उत्सव तथा सेमिनार में भाग लेने के लिए, जिसका आयोजन मई 1976 में डेवॉन के डालिंगटन हॉल में किया गया था, निमंत्रित किया गया। इसने मुझे पांच महीनों तक लंदन में रह कर इंडिया ऑफिस और अन्य ब्रिटिश पुस्तकालयों में अनुसंधान-कार्य करना संभव कर दिया। यह स्वीकार करते हुए खेद होता है, लेकिन यह बात सच है कि द्वारकानाथ के समकालीन ज़माने की पुस्तकें, पत्रिकाएं और समाचारपत्र, यहां तक कि वे भी जो उन दिनों कलकत्ते से प्रकाशित होते थे, हमारे अपने देश के मुकाबले में वहां पर बेहतर ढंग से सुरक्षित और सूचीबद्ध किए गये हैं और अधिक आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। जो भी हो, मैंने इस मौक़े का पूरा फ़ायदा उठाया और विस्तारपूर्वक नोट्स लिए (अधिकतर पेंसिल से, जिसकी नोंक मुझे बार-बार तेज़ करनी पड़ती थी, क्योंकि इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी के काम करने वाले कमरे में फ़ांउटैंनपेन या बाल-पेन का इस्तेमाल वर्जित है), जिनके आधार पर यह जीवनी अधिकांशतः लिखी गई है।

मुझे इस बात का पूरा अहसास है कि इस प्रकार मैंने जो सामग्री एकत्र की, वह एक अंतिम किस्म की जीवनी तैयार करने के लिए अनुपयुक्त थी। द्वारकानाथ मूलतः एक कर्म-जीवी व्यक्ति थे, बड़े-बड़े काम सम्पन्न करने वाले व्यक्ति। उन्होंने इंगलैंड में राजपुरुषों से लेकर उग्रवादियों तक व्यापक रूप से विभिन्न वर्गों के लोगों के साथ गहरे और निकट सम्पर्क स्थापित कर लिए थे (एक सीमा तक फ्रांस और इटली में भी)। अच्छा होता अगर इन सभी सम्पर्कों का पता किया जाता और इस बात की तस्दीक़ की जाती कि उनके पारिवारिक अभिलेखागारों में द्वारकानाथ के बारे में कहां और कहां उल्लेख मिलता है। भारत की परिपाटी के विपरीत, ब्रिटेन

के परिवारों के पास, विशेषकर जो प्राचीन या उच्च कुल-परंपरा के हैं, अपने निजी अभिलेखागार होते हैं। द्वारकानाथ के सबसे छोटे बेटे नगेन्द्रनाथ की डायरी में, जो उनके 1845-46 के अंतिम प्रवास के दौरान इंग्लैण्ड में उनके साथ थे, (ड्यूक, डचेज़, अर्ल, बारों आदि लोगों की) एक लम्बी सूची है, जिनके साथ उनके पिता का मित्रता के स्तर पर मिलना-जुलना और उठना-बैठना होता था। उनके वर्तमान वारिसों का पता लगाने, उनसे पत्र-व्यवहार करके उनके निवासों पर जाकर द्वारकानाथ के ज़माने के अभिलेखागारों की छानबीन करने की इजाज़त लेने के लिए काफ़ी समय और साधनों की ज़रूरत पड़ती। मेरे पास न समय था और न साधन ही। मैं स्वयं अपने अत्यंत सीमित साधनों के बल पर एक ऐसे देश में टिक कर काम कर रहा था, जहां रहन-सहन का ख़र्च अपेक्षतः बहुत ज़्यादा है। मेरे पास विदेशी मुद्रा केवल इतनी ही थी कि मैं उससे किसी तरह पेट भर सकूं और लंदन के पुस्तकालयों और उनसे संबद्ध पत्र-पत्रिकाओं के अभिलेखागारों तक आ-जा सकूं।

अनेक बाहरी देशों में, विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस प्रकार की रिसर्च योजनाओं के लिए फाउंडेशंस, विश्वविद्यालय तथा अन्य शैक्षिक संस्थान उदारता-पूर्वक अनुदान देते हैं। प्रो० ब्लेयर बी० क्लिंग ने (जिनका द्वारकानाथ के व्यावसायिक जीवन का इतने अध्यवसाय और लगन से प्रस्तुत किया शानदार अध्ययन – **पार्टनर इन ऐम्पायर** – और जिसका मैं इतना आभारी हूं) स्वीकार किया है कि ऐसे पांच अमरीकी स्रोतों से उन्हें 'उदार अनुदान' प्राप्त हुए थे, जिनके कारण उनका रिसर्च-कार्य संभव हो सका। अमरीका के शैक्षिक जगत को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने ऐसे भारतीय के संबंध में अनुसंधान-योजना का खर्च उठाया, जिसका नाम उनके देश में शायद ही कोई जानता हो, जिस तरह हमारे लिए यह बड़े शर्म की बात है कि हमने एक महान अग्रदूत और आधुनिक भारत के निर्माता की उपेक्षा की है और उसे भुला दिया है।

लेखक को हार्दिक आशा है कि अनुपयुक्त होने के बावजूद, यह जीवनी इस भूले-बिसराये अग्रदूत के कार्यकलापों में दिलचस्पी जगाने का काम करेगी और किसी कर्मठ विद्वान को उनके जीवन और कार्य की पूर्णतर जानकारी प्राप्त करने की खोज में लगने के लिए प्रोत्साहित करेगी और इसमें उसे किसी फाउंडेशन या विश्वविद्यालय से प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त होगी। इस बीच इस खोज का श्रीगणेश करवाने और इस क्षेत्र के प्रस्तुत प्रायोगिक भ्रमण को प्रकाशित करने के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट लेखक के धन्यवाद का पात्र है।

8 जुलाई, 1980 **कृष्णा कृपलानी**

[1] मेमॉयर (संस्मरण), मूलतः एक भाषण के रूप में लिखा जाने के कारण, काफ़ी असम्बद्ध है, यद्यपि जैसा भी है, वह एक आरंभिक उपलब्धि है। कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी में मौजूद इसकी छपी हुई प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थी – उसके पन्ने हाथ में अलग उठ आते थे। उसकी यह दुर्दशा देखकर, मैंने लाइब्रेरियन से अनुरोध किया कि वे जब तक दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार से इस पुस्तक की परतबन्दी करवा के नई जिल्द न बनवा लें, तब तक मुझको या किसी और को इसे छूने की इजाज़त न दें। सौभाग्य से ऐसा ही किया गया।

[2] लन्दन में पंजीकृत अपने कुल-चिन्ह पर द्वारकानाथ ने यह आदर्श-वाक्य खुदवाया था, 'कार्यों की ही जीत होगी'। उनके कार्यों ने ही वास्तव में उन्हें सफलता और दौलत से मालामाल किया था, लेकिन अन्त में वे उन्हें धोखा दे गये। उनके पोते रवीन्द्रनाथ का आदर्श-वाक्य – यदि जिसे कभी खुलकर घोषित नहीं किया गया उसे आदर्श-वाक्य कहा जा सके तो कहा जा सकता है कि – यह था : 'शब्दों की ही जीत होगी' । और उनके शब्दों ने निश्चय ही उन्हें सफलता और कीर्ति ही नहीं दिलायी, बल्कि अमरता भी।

आभारोक्तियाँ

लेखक नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता है, जिसकी पेशकश, सतत आग्रह और पूर्ण सहयोग के बिना यह पुस्तक प्रकाश में नहीं आ सकती थी। लन्दन प्रवास के दौरान 1976 में लेखक के रिसर्च कार्य में दी गई सलाह और सहायता के लिए ब्रिटिश कौंसिल के प्रति; इंडिया ऑफिस की लाइब्रेरी के डायरेक्टर, डिप्टी डायरेक्टर और उनके सहयोगियों के प्रति; एडिनबरा की पब्लिक लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन और वहां की सिटी कौंसिल के अभिलेखागार के लेखपाल के प्रति; कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी के डायरेक्टर के प्रति; कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, कलकत्ते के जोरासेन्को स्थित रवीन्द्र भारती म्यूज़ियम और शान्तिनिकेतन के रवीन्द्र भवन और रवीन्द्र सदन के संग्रहाध्यक्षों और उनके सहयोगियों के प्रति भी लेखक सच्चे हृदय से आभारी है। शान्तिनिकेतन के श्री पुलिन बिहारी सेन, श्री क्षितिर राय, श्री मनोरंजन गुहा और श्री शोभन लाल गांगुली, कलकत्ते के टैगोर रिसर्च इंस्टीट्यूट के श्री और श्रीमती सोमेन्द्रनाथ बोस, कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी के भूतपूर्व डिप्टी लाइब्रेरियन श्री चित्तरंजन बनर्जी, प्रो० अमलेन्दु बोस, जो पहले कलकत्ता विश्व-विद्यालय में थे, पेरिस की मदाम कृष्णा रिबो (सुधीन्द्रनाथ टैगोर की पोती), कलकत्ते के श्री शुभो टैगोर, श्री अमितेन्द्र नाथ टैगोर (अबनीन्द्रनाथ टैगोर के पोते), जो इस समय संयुक्त राष्ट्र अमरीका की ओकलैण्ड यूनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य कर रहे हैं, और श्री सन्दीप टैगोर, जो पथुरियाघाट के राजा प्रफुल्लनाथ टैगोर के पोते हैं और आजकल जापान की ओसाका यूनीवर्सिटी में पढ़ाते हैं – अपने इन सभी व्यक्तिगत मित्रों के प्रति लेखक अपनी स्नेहपूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करता है।

एक

आख्यानों के अनुसार

अन्य ऊँची ज़ात के बंगालियों की तरह, टैगोर खानदान के लोग भी अपनी वंशावली एक दिलचस्प आख्यान के अनुसार रेखांकित करते हैं, जो अधिक विश्वसनीय नहीं है। हर देश में पुराण-कथा ही इतिहास की जननी रही है, लेकिन भारत में अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक। भारत में इतिहास की यह जननी आज भी ज़िन्दा है। इतिहास अभी तक पुराण-कथा को पूरी तरह अपदस्थ करने में सफल नहीं हुआ, और पुराण-कथा आज भी लोक-मानस पर हावी है। दरअसल, नई पुराण-कथाएं आज भी जन्म लेती रहती हैं।

इतिहासकारों[1] के अनुसार वैदिक युग में बंगाल को (जिसके विभिन्न क्षेत्रीय प्रदेश गौड़, वंग आदि नामों से प्रसिद्ध थे) आर्य-संस्कृति के दायरे से बाहर समझा जाता था। एत्रेय ब्राह्मण में इसके निवासियों का उल्लेख दस्यु (बर्बर) के रूप में किया गया है – ऐसे 'लोग जो मर्यादाओं का उल्लंघन करने के दोषी' थे, और कहा गया है कि जो भी व्यक्ति उनके बीच रहा हो, चाहे अल्पतम काल के लिए ही क्यों न, उसे प्रायश्चित की क्रियाओं द्वारा अपने को पवित्र करना चाहिए। कहा जाता है कि पाण्डव अपने प्रवासकालीन भ्रमण के दौरान इस 'अपवित्र देश' को बचा कर निकल गये थे। जैन विद्वानों ने इस देश का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह 'एक मार्गहीन देश है' जिसके निवासी उजड्ड और गंवार हैं और शान्तिप्रिय जैन मुनियों को अकारण तंग करते हैं।

इस क्षेत्र के मूल निवासी आर्य जाति के नहीं थे। विश्वास किया जाता है कि कोल, सबर, डोम, चण्डाल, आदि जातियों के रूप में उनके वंशज आज भी मिलते हैं, जो

सारे के सारे निषाद् या आस्ट्रिक कुल के लोग हैं। बाद में द्रविड़ और तिब्बती-बर्मी कुल के लोग भी काफ़ी संख्या में वहां आकर बसे होंगे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनके बाद भी एक ऐसी जाति के लोग, जिन्हें नृ-शास्त्री आल्प जाति का मानते हैं, लेकिन जो आर्यों से भिन्न थे, इस देश में दाखिल हुए होंगे।

इस विश्वास की कि ईसा-पूर्व चौथी सदी से लेकर चौथी सदी ईसवी के बीच बंगाल का क्रमिक आर्यीकरण हुआ होगा, डा० आर.सी. मजूमदार द्वारा उद्धृत निम्न आख्यान से पुष्टि होती है : 'लकड़ी के कुन्दे पर बैठे एक अंधे ऋषि गंगा में बहते हुए जब कई देशों को पार कर गये तब बालि नाम के एक राजा ने उन्हें गंगा में से निकाला। सन्तानहीन राजा ने ऋषि से प्रार्थना की कि वे उसकी पत्नी से सन्तान पैदा करें। ऋषि ने ऐसा ही किया और समय आने पर रानी ने पांच पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम अंग, वंग, कलिंग, पुंद्र और सुह्न थे। उन्होंने पांच देशों को अपना नाम दिया, जो मोटे तौर पर आज के बंगाल और उड़ीसा, जिसमें बिहार के भागलपुर ज़िले को भी शामिल कर लें, से मेल खाते हैं।

जो भी हो, इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि बंगाल अशोक के साम्राज्य का अंग था और उस काल में तथा कई शताब्दियों तक बाद में भी बौद्ध धर्म का गढ़ बना रहा। चीनी यात्री फाह्यान (5वीं सदी) और ह्वेन त्सांग (7वीं सदी) दोनों ने बंगाल में स्थित बौद्ध-ज्ञान के अनेक विद्या-केन्द्रों का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि फाह्यान ने ताम्रलिप्ति (मिदनापुर ज़िले में तामलुक) में दो वर्ष तक रह कर बौद्ध-ज्ञान का अध्ययन किया था और पाण्डुलिपियों की नक़ल की थी।

वहां ब्राह्मण-धर्म का जो भी प्रभाव रहा हो, वह बौद्ध-धर्म के बढ़ते प्रभाव के आगे विच्छिन्न हो गया होगा। आगे चल कर बौद्ध-धर्म भी अनेक तांत्रिक मतों के रूप में बंट कर पथ-भ्रष्ट हो गया। इसलिए जब 7वीं और 10वीं सदी के बीच बंगाल में धीरे-धीरे हिन्दू-शासन स्थापित हो गया तो वहां हिन्दू-धर्म की ऊँच-नीच के भेद पर आधारित जाति-व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया। इसे पुनर्जीवित करने और मज़बूत बनाने के लिए बंगाल से बाहर हिन्दू-परंपरावाद के जो गढ़ थे, वहां से ऊँची ज़ात के ऐसे ब्राह्मणों का आयात किया गया जो वैदिक साहित्य और कर्मकाण्ड में पारंगत थे। आधुनिक बंगाल के अधिकांश बंगाली ब्राह्मण अपने को बाहर से आयात किए हुए शुद्ध-रक्तधारी उन ब्राह्मणों का वंशज बताते हैं, जिन्होंने कृत्रिम रूप में वहां हिन्दू-धर्म को पुनर्जीवित किया था।

आर.सी. मजूमदार ने आरंभकालीन बंगाल के दो इतिहास ग्रंथों में, जिसका हवाला हम पहले दे चुके हैं, इस घटना के विभिन्न विवरण दिये हैं, लेकिन उनकी विश्वसनीयता के प्रमाण नहीं पेश किए। उदाहरण के लिए, एक विवरण इस प्रकार है : 'कहा जाता है कि 7वीं सदी के आरंभ में गौड़ के राजा शशांक ने एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर लिया था। वह प्रसिद्ध बौद्ध-सम्राट हर्षवर्धन का समकालीन और प्रतिस्पर्धी था, जिसके विख्यात जीवनी लेखक कवि बाण भट्ट और प्रसिद्ध

चीनी यात्री ह्वेनत्सांग दोनों ने अपने वृतान्तों में शशांक का उल्लेख किया है, यद्यपि यह उल्लेख प्रशंसात्मक नहीं है और उसे बौद्ध-धर्म का दुश्मन बताया गया है। कहा जाता है कि उसने गया में स्थित बोधि-वृक्ष को कटवा दिया था और पड़ौस के मंदिर में बुद्ध की प्रतिमा को हटवा दिया था। ह्वेनत्सांग के वृतान्त के अनुसार, यह सुन कर कि उसके आदेश का पालन कर दिया गया, राजा शशांक भय से आक्रान्त हो गया, उसके शरीर में घाव फूट निकले, मांस गलने लगा और कुछ समय के अंदर ही उसकी मृत्यु हो गई।[1]

डा० मजूमदार ने टिप्पणी की है कि इस आख्यान की एक अनुगूंज उन बंगाली ब्राह्मणों के यहां प्राप्त वंशावली संबंधी वृत्तों में भी मिलती है, जो अपने आप को सरयू नदी के तट पर रहने वाले और वेदों के ज्ञाता बारह ब्राह्मणों का वंशज बताते हैं जिन्हें शशांक ने मंत्रपाठ द्वारा उसको रोगमुक्त करने के लिए बुलाया था।

इस वृतान्त के अलावा, जो बौद्ध स्रोतों पर आधारित है, और भी अनेक वृतान्त मिलते हैं, जो ब्राह्मण-धर्मो स्रोतों पर आधारित हैं, जिन्हें आम तौर पर अधिक स्वीकार किया जाता है, यद्यपि उनकी भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता उतनी ही संदिग्ध है। ये स्रोत **कुलजी** के नाम से प्रसिद्ध वे वृतान्त हैं जिनमें ब्राह्मण कुलों और दूसरी प्रमुख जातों के कुलों को वंशावली दी गई है। ये **कुलजी** पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में रची गई थीं और प्रायः पाण्डुलिपियों के रूप में ही उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध इतिहासकारों के अनुसार इनके पाठ में अनेक तरीकों से हेरफेर किया गया है और प्राचीन लेखकों के नाम से प्रचलित अनेक विवरणों की प्रामाणिकता के बारे में संदेह करने के पर्याप्त आधार मौजूद हैं।[2]

ये सभी **कुलजी** बंगाली ब्राह्मणों की दो प्रमुख शाखाओं, पश्चिम बंगाल के राढ़िया और उत्तरी बंगाल के वारेन्द्र, की उत्पत्ति उन पांच ब्राह्मण पूर्वजों से बताते हैं, जिन्हें राजा आदिसुर बंगाल में लाया था। इस राजा के अस्तित्व और शासन-काल के बारे में कोई निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। अलग-अलग लोगों के अनुसार उसका शासन-काल आठवीं और दसवीं सदी के बीच बताया जाता है। ठाकुर परिवार के संस्मरणों में जेम्स फरेल ने लिखा है : 'प्रसिद्ध विद्वान राजेन्द्रलाल मित्र का सुझाव है कि वीर सेन संभवतः सन् 994 में गद्दी पर बैठा था और वह आदिसुर का उत्तराधिकारी नहीं बल्कि स्वयं आदिसुर ही था। कहा जाता है कि आदिसुर ने एक बौद्ध राजा से बंगाल जीता था। गौड़ का दरबार इतने लम्बे काल तक बौद्ध धर्मावलम्बी रहा था कि उस अवधि में आमतौर ब्राह्मण-धर्मो संस्थाओं का ह्रास हो जाना अनिवार्य था।[3]

आदिसुर एक पुत्र का वरदान पाने के लिए विधिवत ढंग से वैदिक यज्ञ करने को उत्सुक था (कुछ विवरणों के अनुसार, दुर्भिक्ष से अपने राज्य को बचाने के लिए)। लेकिन उन दिनों चूंकि उसके राज्य में ऐसे ब्राह्मण नहीं थे जो वैदिक रीतियों के पूर्ण ज्ञाता हों और जिनमें यज्ञ सम्पन्न करने की योग्यता हो, इसलिए आदिसुर ने

रूढ़िवादी हिन्दू धर्म के गढ़ कन्नौज (आजकल उत्तर प्रदेश में) के राजा से प्रार्थना की कि वह यज्ञ करने के लिए पांच ब्राह्मण भेज दें।

पांच ब्राह्मण आये, घोड़ों पर सवार, तीर-कमान से लैस और पांच सेवकों के साथ। उन्हें सैन्य वेश में देख कर आदिसुर को उनके प्रत्यय-पत्रों पर संदेह हुआ और उसने उनका वैसा स्वागत नहीं किया जिसकी उन्हें अपेक्षा थी। ब्राह्मणों को क्रोध आ गया और उन्होंने वे सारे फूल और जड़ी-बूटियां, जिनसे वे राजा और रानी को आशीर्वाद देना चाहते थे, निकाल कर सूखी लकड़ी के एक कुन्दे पर फेंक दीं, जो तुरंत एक सजीव वृक्ष के रुप में हरा-भरा हो गया। यह चमत्कार देखकर आदिसुर ने उन ब्राह्मणों से क्षमा मांगी और उन्हें पर्याप्त दक्षिणा दी। इस प्रकार शान्त होकर उन्होंने यज्ञ सम्पन्न किया और कन्नौज वापस चले गये।

किन्तु जब वे अपने शहर में पंहुचे तो उनके सगे-संबंधियों ने उनसे मुंह फेर लिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में ये पांचों ब्राह्मण दस्युओं के देश बंगाल की यात्रा करने से धर्म-भ्रष्ट हो गये थे। इस प्रकार अस्वीकार किये जाने पर पांचों ब्राह्मण और उनके सेवकों को पुनः बंगाल लौटने और आदिसुर का संरक्षण और आतिथेय प्राप्त करने के लिए विवश होना पड़ा। आदिसुर ने उन्हें पांच ग्राम दान में दिए। इसके बाद से इन ग्रामों के नाम पर उनके नाम पड़ गये, जैसा कि भारत के अनेक भागों में रिवाज है। ये पांच ब्राह्मण ही बंगाल के ब्राह्मणों के और उनके पांच सेवक बंगाल के कायस्थों के पूर्वज हैं।

कहा जाता है कि आदिसुर के एक उत्तराधिकारी बुलाल सेन ने इन ब्राह्मणों के उत्तराधिकारियों को **कुलीन** होने का गौरव प्रदान किया, ताकि वे अनेक पत्नियों से शादियां करके अधिक सन्तान पैदा कर सकें।

इन पांच ब्राह्मणों में (जिनके नाम और गोत्र **कुलजीओं** में दिए गए हैं) एक का नाम क्षितिस था, जो शांडिल्य गोत्र का था। क्षितिस के पांच बेटों में से एक का नाम भट्ट नारायन था, जो संस्कृत नाटक **वेणी-संहार**[4] के लेखक के रूप में प्रसिद्ध है। इस भट्ट नारायन को ही ठाकुर-कुल का पूर्वज माना जाता है।

जेम्स फेरल के अनुसार, जिसके अनुसंधानों में ठाकुर-परिवार के कुछ सदस्यों ने भी सहयोग दिया था, भट्ट नारायन का एक वंशज धरमीधर था, जिसने मनुस्मृति की टीका लिखी थी। उसका पोता धनंजय था, जिसने **निघंट** नाम से वैदिक शब्दावली का अध्ययन प्रस्तुत किया था। वह राजा बलाल सेन के यहां एक न्यायाधीश की पदवी पर काम करता था। उसका वंशज हलयुद्ध राजा लक्ष्मण सेन का प्रधान मंत्री बना था और अनेक संस्कृत ग्रंथों का रचयिता था।'

कहने की जरूरत नहीं कि ये सारे दावे पारिवारिक आख्यानों पर आधारित हैं और ऐतिहासिक प्रामाणिकता का दावा नहीं कर सकते। द्वारकानाथ ठाकुर के प्रथम जीवनीकार किशोरी चन्द मित्र ने लिखा है कि 'वंशावली निर्माताओं के इस धुंधभरे देश में हम देखते हैं कि भट्ट नारायन के वंशजों की सोलहवीं पीढ़ी में

उत्पन्न हलधर (?) के बारे में कहा गया है कि वह एक सुयोग्य वकील और बंगाल की सरकार का प्रधान मंत्री, गौड़ नगर का वास्तुकार और कुलीनवाद का प्रवर्त्तक था, लेकिन इन वक्तव्यों की निश्चित रूप से ज्ञात तथ्यों द्वारा पुष्टि नहीं होती।'[5]

यह अधिक संभव है और विश्वसनीय भी कि प्रथम पूर्वज के कुछ वंशज विद्वान रहे होंगे और उन्होंने ऊंचे पदों पर कार्य भी किया होगा। यह नारायन के सोलह बेटों में से (यहां प्रश्न उठता है कि या तो भट्ट नारायन की कोई बेटी या बेटियां थी ही नहीं, या फिर बेटियों को इस योग्य नहीं समझा जाता था कि उनके नाम भी दर्ज किए जाते, जैसा कि अनेक हिन्दू-वंशावलियों से पता चलता है, चौदहवें बेटे का नाम दीन था, जिसे महाराजा क्षितिसर ने बर्दवान शहर के पास कुश नाम का एक गांव दान किया था। इस गांव के नाम के ऊपर वह और उसके वंशज कुशानी कहलाने लगे। नगेन्द्र नाथ बसु और ब्योमकेश मुस्तफी[6] के अनुसार कलकत्ते के ठाकुर सीधे दीन कुशारी को पूर्वज बताते हैं, यद्यपि एक और **कुलजी** के अनुसार, जो उतनी विश्वसनीय नहीं है, ठाकुरों को भट्ट नारायन के सबसे बड़े बेटे का वंशज बताते हैं, जो बंदिया गांव में जाकर बस गया था, इसलिए उसके वंशजों को दरअसल बंदोपाध्याय कुल का होना चाहिए।

ख़ैर, जो भी हो, ठाकुर-वंश की इस लम्बी अर्ध-पौराणिक पंक्ति में मुख्य व्यक्ति पुरुषोत्तम विद्यावागीश था, जो भट्ट नारायन के वंश-क्रम में पच्चीसवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। अजित कुमार चक्रवर्ती ने अपनी महर्षि देवेन्द्रनाथ की बंगाली में लिखी जीवनी में बताया है कि **श्राद्ध** आदि उत्सवों के अवसर पर ठाकुर परिवार में एक **श्लोक** गाया जाता था, जिसमें पुरुषोत्तम से आरंभ करके द्वारकानाथ तक दस पूर्वजों के नाम गिनाये जाते थे।[8]

परिवार की पितर-परंपरा के इस रीतिबद्ध गान में मुख्य स्थान होने के अलावा भी पुरुषोत्तम का एक और कारण से भी, जो इतना पुनीत नहीं है, मुख्य स्थान है। इस परिवार की ज़ात पर, जो मूलत: शुद्ध थी, एक कलंक का आरोप लगवाने के लिए शायद वही उत्तरदायी था। उसके समय से ठाकुरों को पिराली ब्राह्मण कहा जाने लगा, अर्थात ऐसे ब्राह्मण, जिन्होंने **म्लेच्छों** या मुसलमानों के साथ सामाजिक संबंध स्थापित करके अपना ज़ात भ्रष्ट कर ली थी। धार्मिक अनुष्ठानों में उनका अंशत: बहिष्कार किया जाता है और रूढ़िवादी ब्राह्मण उनके यहां शादी-विवाह का संबंध नहीं करते।

यह कलंक कैसे लगा, इस कहानी के साथ भी एक आख्यान जुड़ा हुआ है, और इसके अनेक रूप सुनने में आते हैं, जैसा कि इस क़िस्म की कहानियों के साथ अक्सर होता है। यह कहानी इतनी दिलचस्प है कि इसे बताना ही उचित होगा, इसका ऐतिहासिक मूल्य चाहे जो भी हो।

एक आख्यान के अनुसार पुरुषोत्तम के पिता जगन्नाथ ने, जो भट्ट नारायन के चौबीसवें वंशज थे, ईशवपुर के **शूद्रराजा** सुधाराय की बेटी के साथ विवाह किया

था, इसलिए वे अपनी ज़ात गवां बैठे थे। यह आख्यान सबसे कम विश्वसनीय है, क्योंकि यह मान कर भी कि सर्वोच्च ब्राह्मणवंश का पुरुष अगर निम्नतम ज़ात की लड़की से शादी करता है तो वह पतित हो जाता है, भले ही लड़की राजकुमारी हो, लेकिन इस आख्यान से यह पता नहीं लगता कि 'एतित' पति पिराली कैसे बन जाता है, क्योंकि पिरालियों का संबंध मुसलमानों से जोड़ा जाता है। जो भी हो आख्यान की राजकुमारी हिंदू थी, उसकी ज़ात चाहे कितनी छोटी रही हो।

एक दूसरे आख्यान के अनुसार पुरूषोत्तम अथवा जगन्नाथ, दोनों में से एक ने एक ब्राह्मण की बेटी से शादी की थी, यह ब्राह्मण पीर अली नामक मुस्लिम संत का चेला था इसलिए वह पीर अली ब्राह्मण के नाम से जाना जाने लगा। यह आख्यान भी इतना विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि सदियों से हर ज़ात के हिन्दू मुस्लिम पीरों की दरगाहों पर ज़ियारत करते आये हैं, और उनकी ज़ात पर कोई कलंक नहीं लगा। आज भी हज़ारों हिन्दू दिल्ली के ख़्वाजा निज़ामुद्दीन, अजमेर में ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती, और शिरडी के सांई बाबा की दरगाहों तथा अन्य कई स्थानों पर जाते हैं। बंगाली साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार दिनेशचन्द्र सेन ने जयनन्द द्वारा रचित सोलहवीं शताब्दी की रचना **चैतन्यमंगल** में दिये गये विवरण से भिन्न विवरण प्रस्तुत किया है। गौड़ के शासक हुसैन शाह को जब पता चला कि नवद्वीप के ब्राह्मण उसके खिलाफ़ साज़िशें कर रहे हैं तो उसने उन पर धावा बोल दिया और नज़दीक के एक गांव पीरूलिया के ब्राह्मणों को मुसलमानों के हाथों से पानी पीने पर मजबूर किया। तभी से पिरूलिया अथवा पिराली ब्राह्मणों को कलंकित माना जाने लगा और कट्टर ब्राह्मण परिवार उन्हें शादी-ब्याह के आयोग्य समझने लगे।[9]

सब से अधिक विश्वसनीय और व्यापक रूप से मान्य एक और आख्यान है जो इस प्रकार है : पन्द्रहवीं सदी के पूर्वाध में दिल्ली की सल्तनत ने ख़ान जहान अली को बंगाल में जैसोर का गर्वनर नियुक्त किया था। आस-पड़ौस के इलाकों पर जबरन कब्ज़ा ज़माने और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के काम में उसने इतना उत्साह दिखाया कि उसे नवाब बना दिया गया। एक होनहार ब्राह्मण युवक के प्रति उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। वह युवक महत्वाकांक्षी था और मुसलमान लड़की से प्रेम करता था, इसलिए उसे इस्लाम क़बूल करने के लिए आसानी से राज़ी कर लिया गया और इस तरह एक ही तीर से दो शिकार हो गये। युवक का नया नाम मोहम्मद ताहिर रखा गया और वह जिस लड़की से प्यार करता था उससे उसका विवाह कर दिया गया और नवाब ने उसे एक ऊँचे पद पर नियुक्त कर दिया। अपने पुराने सहधर्मियों को मुसलमान बनाने और दर्जनों मस्जिदों का निर्माण करने में उसका उत्साह इतना प्रबल था कि उसे पीर अली[10] की उपाधि से सम्मानित किया गया और उसे नवाब का वज़ीर और दायां हाथ बना दिया गया।

नवाब की रियासत के चेन्गुतिया परगना में राय चौधरी नाम का एक सम्पन्न

जमींदार परिवार रहता था, जिसके अनेक सदस्यों को मोहम्मद ताहिर पीर अली ने, जो उस परगने का शासक था, ऊँचे पदों की नौकरियां दी थीं। उनमें से दो व्यक्ति कामदेव और जयदेव थे, जिन्हें उसने अपना दीवान नियुक्त किया था। रमज़ान महीने के रोज़ों के एक दिन जब पीर अली अपने मुसाहिबों के साथ अपने महल के बराम्दे में बैठा था, उसका माली एक बड़ा-सा नींबू ताजा तोड़ कर उसके पास लाया। पीर अली ने उसे सूंघ कर कहा, "ओह कितनी तेज़ महक है।" कामदेव ने, जो उसके सामने ही बैठा था, मज़ाक किया कि नींबू को सूंघ कर नवाब साहब ने रोज़ा तोड़ दिया है, क्योंकि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सूंघना एक तरह से आधा खाने के बराबर है। पीर अली ने उस समय तो कुछ नहीं कहा, लेकिन ब्राह्मण के घर में जन्म लेने के कारण व्यंग्य का निशाना अपने ठिकाने पर बैठा था और यह बात उसके मन में चुभती रही। उसका चालाक दिमाग़ अपने गुस्ताख़ मुसाहिब को उचित सबक़ सिखाने की योजना बनाने लगा।

कुछ दिनों बाद उसने दोनों भाईयों, कामदेव और जयदेव को अपने नाते-रिश्तेदारों समेत तथा अन्य ब्राह्मण मुसाहिबों को नाच-मुजरे की एक शाम गुज़ारने के लिए अपने महल में बुलाया। दीवाने आम में जिस समय मेहमानों का मनोरंजन किया जा रहा था, उसी समय बगल के एक कमरे में गोश्त और पुलाव से भरी महकती तश्तरियों से दस्तरखान सजाया जा रहा था, जिनमें गाय के मांस से बने कोफ़्ते-क़बाब और सालन भी थे। उनकी तेज महक दीवानेआम में भी पहुंची, जहां इन खुशबुओं से अनभ्यस्त कट्टर हिन्दुओं ने जल्दी से अपनी नाकों पर रूमाल रख लिए। मुस्कराते हुए पीर अली ने पूछा, "क्या मामला है?" कामदेव ने अपनी ढकी हुई नाक में से हकलाते हुए कहा, "हजूर, वर्जित मांस की गंध आ रही है।" पीर अली हंसा और बोला, "यकीनन, तुमने अपनी नाकें ढंकने से पहले, इस महक को सूंघा होगा और चूंकि तुम्हारे शास्त्र कहते हैं कि सूंघना एक तरह से आधा खाने के बराबर है, इसलिए तुम सबने वर्जित मांस खा लिया है। बेहतर है कि अब तुम लोग इसे खाओ और इस के मज़े लो।"

सब लोग स्तब्ध रह गये, भगदड़ मच गई, लोग फाटक की तरफ भागे, लेकिन पीर अली ने ऐसा प्रबंध कर रखा था कि उसके मुसलमान अफ़सरों ने कामदेव और जयदेव को बाहर नहीं जाने दिया। उन्हें जबरदस्ती वर्जित भोजन खिलाया गया और इस्लाम में दीक्षित कर लिया गया। उनका नाम कमालुद्दीन खान चौधरी और जमालुद्दीन खान चौधरी रख दिया गया। जैसोर से दस मील दूर सिंधिया गांव में उन्हें जागीरें भी प्रदान की गईं।

उनके दो भाई और दूसरे रिश्तेदार, जो दीवानेआम में मौजूद थे, और बिना गोमांस चखे ही ठीक वक्त पर भाग निकले थे, उन्हें भी पिराली ब्राह्मण समझ कर नीचा माना गया, क्योंकि बिरादरी के ख्याल में वे लोग गोमांस की गंध से ही अपवित्र हो चुके थे। सामाजिक बहिष्कार की एक मुसीबत यह थी कि इन

'कलंकित' परिवारों की बेटियों के लिए उपयुक्त वर तलाश करना एक भारी समस्या बन जाती थी। रतिदेव और सुखदेव को भी यही समस्या परेशान कर रही थी जिनके अभागे भाइयों जयदेव और कामदेव के विवेकहीन मज़ाक से यह मुसीबत पैदा हुई थी। इस अपमान से रतिदेव का दिल टूट गया और वह अपनी जायदाद और परिवार की जिम्मेवारी अपने छोटे भाई सुखदेव को सौंप कर उत्तरी बंगाल की तरफ भाग गया।

सुखदेव की एक बहन और बेटी ब्याहने योग्य हो गई थी। उन दिनों लड़कियों की शादी बहुत छोटी उम्र में हो जाती थी। दहेज का प्रलोभन देकर इन लड़कियों के लिए वरों की तलाश में दौड़-धूप की गई। आखिरकार दोनों के लिए वर मिल गये। बेटी के लिए उसे ऐसा नौजवान मिला जो बहादुर और सहृदय होने के साथ-साथ सिरफिरा भी था, क्योंकि वह इस रिश्ते के लिए तैयार हो गया था। कहानी के एक अन्य रूप के अनुसार यह नौजवान खुलना जिले के पीथाभोग गांव का जगन्नाथ कुशारी था, जिसके बारे में पहले बताया जा चुका है, कि शूद्र राजकुमारी से शादी करके वह अपनी जात गंवा बैठा था लेकिन द्वारकानाथ ठाकुर के प्रपौत्र क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने परदादा की जो जीवनी प्रकाशित की थी उसके अनुसार पिराली कन्या से शादी करने का दुस्साहस जगन्नाथ ने नहीं बल्कि उसके बेटे पुरुषोत्तम विद्यावागीश ने किया था। लेखक ने एक और आख्यान का हवाला दिया है, जिसके अनुसार पुरुषोत्तम बड़ा विद्वान और प्रतिष्ठित ब्राह्मण था। जैसोर जाकर जब वह पवित्र नदी में विधिवत स्नान कर रहा था, तो उसी समय यह खबर सुन कर सुखदेव वहां आया, उसने पुरुषोत्तम को साष्टांग प्रणाम किया और वर मांगा। ऐसे अवसरों पर धर्मप्राण ब्राह्मण दान देने से इन्कार नहीं करते,[11] इसलिए जब सुखदेव ने प्रार्थना की कि पुरुषोत्तम उसकी बेटी को अपनी पत्नी बनाना स्वीकार कर ले, तो पुरुषोत्तम को यह वर देना पड़ा।

चाहे पुरुषोत्तम ने या उसके पिता जगन्नाथ ने यह साहसिक और जोशीला कदम उठाया था, लोक-परंपरा के अनुसार तभी से ठाकुर परिवार के नाम पर पिराली होने का कलंक लगा बताया जाता है। परिवार के ऊपर सीधे 'बुरा काम' करने का कोई दोषारोपण नहीं किया गया। उसका पाप सिर्फ़ इतना था कि उसके एक पूर्वज ने एक ऐसे परिवार में शादी की थी, जिसने अनचेते में अपने माथे पर 'कलंक' का टीका लगवा लिया था, यद्यपि द्वारकानाथ के बाद तो यह परिवार रूढ़ि-विरोधी होने के लिए प्रसिद्ध हो गया।

स्पष्ट है कि ऊपर जितने आख्यानों का ज़िक्र किया गया है, उनमें से एक भी पर्याप्त रूप से विश्वसनीय नहीं है। जिन्होंने इन आख्यानों को विश्वसनीय सिद्ध करने की कोशिश की है, उन्होंने भ्रांतियां बढ़ाने में ही मदद की है, जैसा कि जोगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के, जो एक समय नादिया के पंडितों के कॉलेज के सभापति थे, निम्न वक्तव्य से देखा जा सकता है : "एक मुसलमान के यहां ज़ायकेदार पके

मांस की गंध सूंघ लेने मात्र से ही पुरुषोत्तम या पीर अली का कोई दूसरा मेहमान हमेशा के लिए जात-भ्रष्ट हो जाय, यह बात समझ में नहीं आती। स्वेच्छापूर्वक भी अगर कोई ऐसा भोजन कर ले तो भी पाप ऐसा नहीं है कि इसका प्रायश्चित न किया जा सके। सारे शास्त्रों में ऐसा कोई विवेकहीन और निरंकुश नियम नहीं है जो एक व्यक्ति को अनचेते में वर्जित भोजन की गंध सूंघ लेने मात्र से हमेशा के लिए पतित और भ्रष्ट घोषित कर दे।" आगे उन्होंने कहा, "ऐसा अधिक संभव दिखायी देता है कि पुरुषोत्तम क्षेत्रफल मापक (सर्वेक्षक) पीर अली के स्टाफ़ में एक अफसर था और जैसा कि अक्सर अमीन और दूसरे निम्न अधिकारी करते हैं, उसने भी अपने धर्म-भाईयों को अपनी पैतृक-सम्पत्ति के हक से वंचित कराने की कोशिश की होगी, जिससे नाराज होकर उन्होंने मिल कर उसका जाति-बहिष्कार करने की गरज से यह आरोप लगाया होगा कि उसने वर्जित भोजन चखा या सूंघा था।" जोगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने और आगे लिखा है कि "लेकिन कहा जाता है कि कलकत्ते में उनके पूर्वज पंचानन के आने के आधी शताब्दी बाद तक पिरालियों को अच्छा ब्राह्मण माना जाता था। किन्तु जब वे धनी और प्रभावशाली हो गये तो बाग बाज़ार के स्वर्गीय बाबू दुर्गा चरन मुकर्जी ने उनको नीचा दिखाने के लिए एक पार्टी बनायी। संभव है कि कलकत्ते के कुछ कायस्थ धनपतियों ने भी पिरालियों को दण्डित करने में चोरी-छिपे दुर्गा चरन की मदद की होगी।[12]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कट्टरपंथी विचारों के श्रेष्ठतम विद्वान पंडित भी अपने 'तथ्यों' के लिए सुनी-सुनायी बातों पर किस हद तक विश्वास करते थे। भारत में, तथा अन्य देशों में भी, ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो धन और प्रभाव के विवेकपूर्ण प्रयोग से प्राप्त नहीं की जा सकती, और इसमें संदेह नहीं है कि ठाकुर परिवार के लोग अगर चाहते तो अपनी जात की शुद्धता पर लगे कलंक को मिटवा सकते थे। शायद उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। उनके बाद के इतिहास से तो हर सूरत में यही सिद्ध होता है कि वे इतने स्वाभिमानी थे कि कट्टरपंथियों को खुश करने की बात सोच भी नहीं सकते थे। दरअसल उनकी प्रवृत्ति तो कट्टरपंथियों को चिढ़ाने की ओर अधिक थी।

जाति से बहिष्कृत होने के कारण अल्पकालीन असुविधाएं चाहे जितनी हुई हों, आगे चल कर इसके अत्यन्त शुभ परिणाम निकले। इसने पुरुषोत्तम और उसकी संतान को अधिक साहसी और कर्मठ बनाया और उन्हें रूढ़ मान्यताओं और वर्जनाओं के शिकंजे से मुक्त कर दिया। धनोपार्जन की ख़ातिर और अपनी बेटियों के लिए वर तलाश करने के लिए उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ा। रूढ़ि-सम्मत लीक पर चलते रहने के अधिकार से वंचित किए जाने पर, उन्होंने उसको चुनौती देने का साहस जुटा लिया। अपनी जात की शुद्धता खो देने के बाद उनके पास खोने के लिए और कुछ नहीं रहा, जबकि पाने के लिए साहसिक कार्यों और नई-नई दिशाओं में पहल करने का एक विशाल क्षेत्र मिल गया। इस प्रकार

समय के दौरान ये लोग भारत में एक नये युग के अग्रदूत बन गये।

नोट्स

[1] देखिए : **हिस्ट्री ऑफ बंगाल**, भाग–1, हिन्दू-काल। सम्पादक : आर.सी. मजूमदार। प्रकाशक : ढाका विश्वविद्यालय, 1943. साथ ही देखिए : **हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट बंगाल**; लेखक : आर.सी. मजूमदार। प्रकाशक : जी. भारद्वाज एंड कंपनी, कलकत्ता, 1971. आख्यानों के अधिकांश विवरण इन दो इतिहास-ग्रंथों से ही लिए गये हैं।

[2] वही।

[3] **टैगोर फेमिली : ए मेमॉयर**; लेखक : जेम्स डब्ल्यू फरेल (दूसरा संस्करण) निजी वितरण के लिए मुद्रित। प्र० थैकर, स्पिंक एण्ड कंपनी, कलकत्ता, 1892.

[4] क्षितीन्द्रनाथ टैगोर ने बंगाली में लिखित अपने परदादा द्वारकानाथ की जीवनी में इस सर्वमान्य धारणा को चुनौती दी है कि **वेणी संहार** का लेखक भट्ट नारायन था। देखिये : **द्वारकानाथ ठाकुरेर जीवनी**, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, 1969, पृष्ठ 4.

[5] किशोरी चंद मित्रा : **मेमॉयर ऑफ द्वारकानाथ टैगोर**. 27वीं हेयर जयंती सभा के अवसर पर टाऊन हाल (कलकत्ता) में 1 जून 1870 को पढ़ा गया पेपर। संशोधित और परिवर्द्धित पा. थैकर, स्पिंक एंड कंपनी, कलकत्ता, 1870, पृष्ठ 3.

[6] नगेन्द्रनाथ बसु तथा ब्योमकेश मुस्तफ़ी : **बांगेर जातीय इतिहास**, भाग–3, प्रभात चंद्र बोस, 9, विश्वकोश लेन, बाग बाजार, कलकत्ता, 1924 में प्रकाशित। कल्याण कुमार दास गुप्ता द्वारा किशोरी चंद मित्रा के मेमायर के बंगला संस्मरण में दी गई टिप्पणी से उद्धृत।

[7] विद्यावागीश–विद्वानों को दी जाने वाली उपाधि।

[8] अजितकुमार चक्रवर्ती : **महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर** (बंगला), जिज्ञासा, कलकत्ता, 1970. मौलिक श्लोक भी उसी में उद्धृत हैं।

[9] दिनेशचंद्र सेन : **हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैंगुएज लिटरेचर,** कलकत्ता 1954.

[10] आख्यान के एक रूप के अनुसार उसका नाम उसके गांव पीरालय पर रखा गया।

[11] **द्वारकानाथ ठाकुरेर जीवनी** : कलकत्ता, 1969. पृष्ठ 17.

[12] कहा जाता है कि राजा राममोहन राय की मां का विवाह भी उनके पिता से इसी वरदान के बलबूते पर हुआ था। पिता का भिन्न धार्मिक संप्रदाय में जन्म हुआ था, इसलिए साधारण परिस्थितियों में उसका विवाह यहां नहीं हो सकता था।

[13] जोगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य। **हिन्दू कास्टस् एण्ड सैक्टस्**, थैकर, स्पिंक एंड कंपनी, कलकत्ता 1896, VI भाग 'दि डिग्रेडिड ब्राह्मिन्ज़–दी पीराली टैगोर्ज ऑफ कैलकटा', पृष्ठ 119-124।

दो

आख्यान से इतिहास तक

अब तक के वर्णन में, जो इस बारे में प्रचलित आख्यानों और पुराण-कथाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, आरंभ-कालीन बंगाल की कहानी और ठाकुरों के पूर्वजों की कहानी, दोनों एक-दूसरे से अंर्तसंबंधित हैं। पुराण-कथाओं और आख्यानों को केवल इस कारण ही असंगत और अर्थहीन कह कर त्याग नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में उनकी पुष्टि नहीं की जा सकती। वे जातीय स्मृतियों के वाहक होते हैं और उनका महत्व यह है कि वे इतिहास और समाजशास्त्र का ऐसा प्रच्छन्न आधार होते हैं, जो इतिहासकार और समाजशास्त्री के सामान्य शोध-उपकरणों की पहुंच से परे हैं। एक अर्थ में पुराण-कथाएं इतिहास से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उन्होंने मनुष्य की कल्पना को गढ़ा और संवारा है, जो कार्य इतिहास के बस का नहीं है।

इसके पहले कि ठोस तथ्यों की रोशनी में पहुँचे, बहरहाल, कल्पना के धुंधलके से निकल कर अब हम संभाव्य के मंद प्रकाश में कदम रख सकते हैं, यद्यपि देखने में जो तथ्यपरक है, उसके साथ भी प्रश्न-चिन्ह तो लगा ही रहता है।

पुरुषोत्तम से अगली पांचवीं पीढ़ी में हम महेश्वर और सुखदेव नाम के दो भाइयों को जैसोर में रहते हुए पाते हैं। महेश्वर का बेटा, पंचानन कुशारी आधुनिक टैगोर (ठाकुर) कुल का ऐतिहासिक रूप से मान्य पूर्वज था। चाहे परिवार में कलह और झगड़ों से तंग आकर या किसी महत्वाकांक्षा और साहसिक काम करने की लालसा से, पंचानन अपना जैसोर का घर छोड़ कर चला गया। वह अपने साथ अपने चाचा सुखदेव को भी ले गया और जिसे उस समय आदिगंगा कहते थे और जो बाद में वर्तमान हुगली नदो में विसर्जित हो गई, उसके तट के गांव गोविंदपुर में

जाकर बस गया। गोविंदपुर आज के कोलाहलपूर्ण कलकत्ता शहर का एक केन्द्र स्थान है। यह सत्रहवीं सदी के अंतिम दशक की बात है, अर्थात इस जीवनी के नायक के जन्म से लगभग एक शताब्दी पहले की।

वातावरण में नये साहसिक कार्यों की चर्चा थी। यहां तक कि बंगाल के दूर-दराज छोटे से छोटे, नींद में डूबे कस्बों और गांवों में भी 'काला सागर' पार से आए उन 'गोरांग म्लेच्छों' के साहसपूर्ण कार्यों की कहानियां हवा में तैर रही थीं, जिन्होंने पवित्र गंगा के तट पर एक कारखाना और एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर लिया था। वे म्लेच्छ जाति के परदेसी थे और बनिया होने के साथ ही योद्धा भी थे, विचित्र किस्म की पोशाक पहनते थे और हालांकि वे मुट्ठीभर लोग ही थे, लेकिन उनकी इज्ज़त और उनके पास साधन इतने थे कि शक्तिशाली मुसलमान नवाब भी अपना आगा-पीछा सोच कर उनके साथ अच्छे संबंध बना कर रखने को मजबूर था। वे पवित्र गंगा में तरह-तरह की सामग्री से लदी विशाल और भयानक नौकाएं खेते हुए देश के भीतरी भागों में घुसे चले आते थे। उनके हाथों अपनी चीजें और खाद्यान्न आदि बेच कर या उनके लिए विभिन्न तरह के काम करके कोई भी मुंशी के रूप में नवाब की सेवा करने से तो कहीं जल्दी धनी बन सकता था।

गोविंदपुर मछुआरों का एक छोटा-सा गांव था और उस स्थान से अधिक दूर नहीं था, जहां विदेशी जहाज आकर लंगर डालते थे। नीची जात के, अल्प साधनों वाले गरीब मछुए यह देख कर हर्षोन्मत्त हो उठे कि उनके निकट ही एक ब्राह्मण परिवार आकर बस गया है। सुखदेव और पंचानन के प्रति, जो निस्संदेह, राजसी रूप रंग, काया और रौबीले व्यक्तित्व के आदमी थे, जैसे कि पंचानन के अगले वंशज भी रहे हैं, इन मछुओं के दिल में अपार श्रद्धा और आदर था। उनको शायद ही मालूम होगा कि जिन ब्राह्मणों का वे सम्मान कर रहे थे, उनकी जात पर कलंक लगा था, और अगर उन्हें मालूम भी होता तो वे इसकी रंचमात्र भी परवाह न करते। वे इन दोनों को ठाकुर कह कर पुकारते थे – ठाकुर जिसका अर्थ है, भगवान।

पंचानन बड़ा ही चतुर और सक्रिय व्यक्ति था। न उसमें झूठा अभिमान था, और न ही जात-पात की वर्जनाएं ही उसे अधिक जकड़े हुए थीं। जल्द ही वह गोरे साहबों को रसद सप्लाई करने और अनेक दूसरे छोटे-छोटे धंधों में लग गया, जिनमें उसे खूब फायदा होता था। साहब लोग नौकाओं से सफर करते रहते थे। पंचानन ने जरूर अंग्रेज तथा दूसरे विदेशी व्यापारियों और सिपाहियों से बातचीत करने के लिए कहीं से मिश्रित बोली सीख ली होगी और वे लोग भी यही सोचने लगे होंगे, जैसा कि विदेशी आज तक सोचते हैं कि ठाकुर पंचानन के परिवार का नाम था। इसलिए वे उसे मिस्टर ठाकुर कह कर पुकारते थे, सही उच्चारण न कर पाने के कारण वे ठाकुर को टैगोर या टैगूर कहते थे। इस तरह कुशारियों को टैगोर कहा जाने लगा। भारत में, ख़ास तौर पर बंगाल से बाहर आज

भी यही नाम प्रचलित है, हालांकि बंगाल में ठाकुर विशेषण के रूप में अभी तक चलता है, जो गोविंदपुर के मछुआरों की देन है। परिवार का मूल नाम कुशारी जिंदा नहीं रहा।

इस परिवार की पवित्र जात को 'कलंक' लगा मुसलमानों के कारण और उनके नाम के उच्चारण को विकृत किया, ईसाई फिरंगियों ने। समय के साथ 'कलंक' और 'विकृति' केवल नाम की नहीं रही, बल्कि उसमें इतना परिवर्तन आया कि यह नाम एक प्रतीक बन गया, क्योंकि परिवार की भावी पीढ़ियों ने अपने जीवन काल में हिन्दू, मुस्लिम और यूरोपीय संस्कृति के तीन महान सूत्रों को बड़े सुंदर ढंग से आपस में गूंथा, जिसका परिणाम है, आधुनिक भारत।

जिस इलाके में अंग्रेजों ने सबसे पहले अपने व्यापारिक अधिकार स्थापित किये थे, वह इलाका चौबीस परगना के दक्षिण में था और बरीशा के सवर्ण चौधरियों की मिल्कियत था। इन्हीं लोगों से जान कम्पनी ने कलकत्ता, सुतानुती और गोविंदपुर की ज़मींदारियां तेरह हज़ार रूपये की मामूली रकम देकर खरीदी थीं।[1] इस छोटे से व्यापारिक सौदे पर उस साम्राज्य की आधारशिला रखी गई, जो समय पाकर इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य बन गया।

पंचानन के दो बेटे थे, जयराम[2] और संतोषराम। ब्रिटिश अधिकारियों से अपने रसूख का लाभ उठा कर पंचानन ने जयराम को कम्पनी में अच्छी-सी नौकरी दिलवा दी। 1707 में जब रैल्फ सेल्डन कलकत्ता का पहला कलक्टर बना तो उसने जयराम और संतोषराम दोनों को अमीन बना दिया। मालगुजारी एकत्र करने के अलावा सुतानुती और आसपास के इलाकों में शहरी इमारतें बनवाने के लिए ज़मीन की नापजोख का काम भी उनके ज़िम्मे था। पंचानन के कलक्टर तथा अन्य अफसरों से अच्छे संबंध थे। उसकी देखरेख में उसके दोनों बेटों ने काफी कमाया, ज़मीन खरीदी और अपने लिए मकान बनवा लिए। जयराम ने अपने लिए जहां मकान बनवाया, बाद में जाकर उस स्थान का नाम धर्मतल्ला पड़ा, जो कलकत्ता के सबसे अधिक व्यस्त और सम्पन्न व्यावसायिक इलाकों में से है। उसने देहात में भी एक हवेली बनवाई (जिसे बंगाली बागान बाड़ी अथवा वाटिकाघर कहते हैं)। बाद में इस स्थान को कम्पनी ने किले[3] के पुनर्निर्माण के लिए कब्ज़े में ले लिया।

1741-42 में जब कलकत्ते पर मराठों के छापे पड़ने लगे, तो कंपनी ने एक पक्की खाई खुदवाई थी, जिसे 'मराठा डिच' के नाम से पुकारा जाता था (बाद में इस खाई को पाट दिया गया और आजकल इसे सर्कुलर रोड कहा जाता है)। इस खाई के निर्माण का कार्य जयराम को सौंपा गया था। इन विभिन्न कार्यों, व्यापारों, ठेकों और कमीशनों के जरिए उसने काफी धन कमा लिया।

जयराम ने किस तरीके से धन कमाया, इस पर किशोरी चन्द मित्रा की विनोदपूर्ण टिप्पणी भी दिलचस्प है। 'उसके (जयराम के) समय में सरकार ने फोर्ट विलियम के निर्माण का काम शुरू करवाया। जिस सरकारी विभाग को यह

निर्माण-कार्य सौंपा गया था और जो आजकल के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमैंट के अनुरूप था, उसके साथ न जाने कैसे जयराम भी संबद्ध हो गया। किले के निर्माण पर पूरी टकसाल खर्च हो गई, फिर भी उसे मुकम्मल करने में अनिश्चित देर हो गई। इसमें चीफ़ इंजीनियर से लेकर **सरदार मिस्त्री** तक हरेक ने ऊपर से ढेरों रुपये बना लिए। अपने अंग्रेज़ उच्चाधिकारियों की तरह जयराम ने भी बहती गंगा में से पानी पिया या नहीं, इसका निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। लेकिन हमें इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उन दिनों, जब सरकारी निरीक्षण शिथिल ही नहीं, बल्कि नगण्य था, और अफ़सरों की ईमानदारी एक अपवाद थी, न कि एक सामान्य नियम, अगर जयराम भी उन प्रलोभनों के आगे टिका नहीं रह सका, जिनसे वह चारों ओर से घिरा हुआ था, तो इस पर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। जो भी हो, जब वह मरा तो वह एक अमीर आदमी नहीं तो एक अच्छा सम्पन्न आदमी तो था ही।[5]

संभव है कि किशोरी चन्द के तथ्य गड्डमड्ड हो गये हों, क्योंकि अनुमान है कि जयराम की मृत्यु 1756 में हुई थी, जब फोर्ट विलियम का निर्माण एक साल बाद होने वाले प्लासी के युद्ध के बाद ही शुरू किया गया था। नगेन्द्रनाथ बसु और ब्योमकेश मुस्तफ़ी[6] के अनुसार, जब क्लाइव ने युद्ध के बाद नये किले का निर्माण शुरू किया तो उसने जयराम के बेटे गोविंदराम को परिवीक्षक नियुक्त किया। दूसरी ओर, जेम्स फरेल का कहना है कि जयराम की मृत्यु 1762 में हुई थी। इस प्रकार इतनी नजदीक की, यानी अठारहवीं सदी के मध्य की घटनाओं तक के बारे में विभिन्न इतिवृत्तकारों ने जो ऐतिहासिक तथ्य पेश किए हैं, उनमें बहुत बड़ा अंतर है।

किले के निर्माण से चाहे खुद जयराम का सीधा संबंध रहा हो या उसके किसी एक बेटे का, कम्पनी की नौकरी करके और उन अवसरों का लाभ उठा कर, जो नैतिक वर्जनाओं से मुक्त साहसिक व्यक्तियों के लिए सदा खुले रहते हैं, यह परिवार काफी धन कमाने में सफल हो गया था। फिर, कुछ समय के लिए भविष्य अनिश्चित-सा हो गया, जब बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला अपनी फौजें लेकर कलकत्ते में घुस आया और अंग्रेज़ गर्वनर नदी के रास्ते भाग कर फुल्टा चला गया। लेकिन यह धक्का अल्पकालिक सिद्ध हुआ और नवाब के आवेशपूर्ण व्यवहार से क्लाइव ने कम्पनी को व्यापारियों के सिंडीकेट की बजाय इस देश के शासक के रूप में बदलने का बहाना निकाल लिया। कहावत है कि जो बटुआ चुराता है वह चोर कहलाता है, लेकिन जो राजमुकुट चुराता है, वह इतिहास का हीरो कहलाता है। क्लाइव दोनों ही था, उसने अनेक बटुए भी चुराये थे और अपनी कौम के लिए एक राजमुकुट भी।

बहरहाल, उस समय से टैगोर परिवार के भाग्य का सितारा ऊँचा ही उठता गया। उनका भाग्य आरंभ से ही भारत में अंग्रेजी सत्ता के उदय और संस्थापन के

साथ जुड़ गया था, जो वास्तव में अखंड भारत की स्थापना और अंततः एक नये और आधुनिक भारत के विकास का भी कारण था। व्यक्तियों के भाग्यों की तरह राष्ट्रों के भाग्य भी अक्सर अनेक टेढ़े-मेढ़े और व्यंग्यपूर्ण साधनों से अपने लक्ष्य प्राप्त करते हैं।

जयराम के चार बेटे और एक बेटी थी। इनमें से एक बेटे, आनन्दीराम की, जिसे अंग्रेजी भाषा का पहला भारतीय ज्ञाता होने के कारण याद किया जाता है, अपने पिता के रहते ही मृत्यु हो गई थी। बाकी तीन बेटों में से, गोबिंदराम का ज़िक्र पहले ही किया जा चुका है कि उसे फोर्ट विलियम के निर्माण का सुपरवाइजर नियुक्त किया गया था। अन्य दो बेटे, नीलमणि और दर्पनारायण ही कलकत्ते के ठाकुरों की दो मुख्य शाखाओं के सीधे संस्थापक हैं।

नीलमणि और दर्पनारायण ने मिल कर गंगा के पथुरियाघाट में अपने लिए एक कोठी बनवायी, जिसमें वे 1765 तक साथ-साथ रहे। उसी साल क्लाइव ने दिल्ली के सम्राट से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की और उसने नीलमणि को उड़ीसा की नई कलक्टरी का सरिश्तादार नियुक्त करके भेज दिया। उसकी अनुपस्थिति में छोटा भाई दर्पनारायण कलकत्ते में परिवार के मामलों की देखभाल करता रहा और साथ ही चन्द्रनगर में फ्रांसीसी कम्पनी के दीवान की हैसियत से अपना व्यापार भी करता रहा, जिसमें खूब मुनाफ़ा था। कहा जाता है कि बाद में उड़ीसा से नीलमणि का तबादिला चिटागांग[8] कर दिया गया। जो भी हो, वह कई साल तक अपने घर से बाहर रहा, जिसके दौरान वह अपनी बचत के रुपये नियमित रूप से दर्पनारायण को भेजता रहा।

कई साल की नौकरी के बाद नीलमणि लौट कर जब कलकत्ते में अपने पथुरियाघाट वाले घर आया, तो यह स्पष्ट हो गया कि इस बीच जब दोनों भाई धन-सम्पत्ति जुटाने में व्यस्त थे, अर्थपिशाच ने उत्पात करके भाइयों के बीच एक खाई पैदा कर दी थी। वे इस बात पर सहमत नहीं हो सके कि समय-समय पर नीलमणि ने कितनी रकम घर पर भेजी थी। अंत में नीलमणि ताव में आकर परिवार की कोठी छोड़ कर चला गया, साथ में अपने तीन बेटों और एक बेटी को भी ले गया। उसके एक हाथ में **शालिग्राम** यानी परिवार के देवता लक्ष्मी जनार्दन[9] की पवित्र मूर्ति थी दूसरे हाथ में एक बैग था, जिसमें कुल एक लाख रुपये थे, जो भाई ने उसके हिस्से के रूप में कबूल किए थे।[10]

नीलमणि एक धर्मप्राण वैष्णव था और अपनी धर्मनिष्ठा और सीधे-सरल स्वभाव के लिए मशहूर था। उसकी मुसीबतों की ख़बर सुन कर जोरबगान के एक धनी व्यापारी, वैष्णवदास सेठ ने उसे अपने घर लाकर रखा और उसकी धर्मनिष्ठा के उपलक्ष में और उस देवता के नाम पर जिसकी मूर्ति नीलमणि अपने साथ लाया था, उसे ज़मीन का एक प्लाट भेंट के रूप में दिया। सेठ स्वयं भी धार्मिक प्रवृति का हिन्दू था और पवित्र गंगाजल मंगा कर उसका निर्यात करता था। घुराह या पवित्र

गंगाजल से भरे मुहरबंद पात्र, जिन पर वह अपने हस्ताक्षर करता था, नियमित रूप से बंगाल के गांवों और कस्बों में भेजे जाते थे और उस जल को शुद्ध, असली माल समझा जाता था।

उस प्लाट पर नीलमणि ने 1784[11] में अपने लिए एक साधारण-सा मकान बनवाया। क्षितिन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार आरंभ में यह मकान 'एक कुटिया' से अधिक नहीं था, क्यों उस समय नीलमणि के पास थोड़ी पूंजी ही बची थी। अमृतमोय मुकर्जी के अनुसार इस तरह अपने परिवार के सर पर एक छत का प्रबंध करके नीलमणि ने नये सिरे से धन कमाने के लिए उड़ीसा में ही पुनः नौकरी कर ली। इस बीच सार्वजनिक प्रतिवाद के आगे दर्पनारायण को सर झुकाना पड़ा और वह अपनी पैतृक सम्पत्ति में से नीलमणि को उसका हिस्सा देने के लिए राजी हो गया। इससे नीलमणि को अधिक ज़मीन खरीद कर एक बड़ी कोठी बनाने का अवसर मिल गया, जो जोरासेन्को में स्थित ठाकुरों की प्रसिद्ध कोठी का केन्द्रबिन्दु बनी और जहां कालान्तर में नीलमणि के विश्वविख्यात वंशज कवि रवीन्द्रनाथ के नाम पर एक राष्ट्रीय स्मारक और उच्च-शिक्षा केन्द्र स्थापित किए गये। आरम्भ में जब इस कोठी का निर्माण किया गया था, उस समय इस बस्ती का नाम जोरासेन्को नहीं, बल्कि मछुआ बाज़ार था।

सन् 1793 में नीलमणि की मृत्यु हो गई। उसने चेंगुतिया के घोषाल परिवार की लड़की ललितादेवी से शादी की थी और उनके तीन बेटे, रामलोचन, राममणि और रामबल्लभ और एक बेटी कमलामणि थी।[13] सबसे बड़े बेटे रामलोचन ने अपने पिता की व्यापार-बुद्धि पायी थी और उसने अपनी पैतृक सम्पत्ति में (जो बराबर के हिस्सों में तीनों भाइयों को प्राप्त हुई थी) खूब इजाफ़ा किया और काफी जमीन-जायदाद खरीदी। उसने जैसोर के रमाकान्त राय की पुत्री अलकासुंदरी से विवाह किया था, जिससे उनके यहां एक पुत्री पैदा हुई, जो शैशव काल में ही गुज़र गई। इसके बाद उनके यहां कोई सन्तान नहीं हुई।

अपने पितामह जयराम से विपरीत, जो अपनी धर्मनिष्ठा और रूढ़िवादिता के लिए प्रसिद्ध था, रामलोचन उदार विचारों का व्यक्ति था। उसे जीवन को सुखद और सम्पन्न बनाने वाली चीजें पसन्द थीं और वह विशेष कर लोकप्रिय किस्म के संगीत और नृत्य का सरपरस्त था। सरकार की राजधानी बदल जाने के कारण भद्रवर्ग के अनेक धनी-मानी लोग मुर्शिदाबाद छोड़ कर कलकत्ते में आ बसे थे, और उनके साथ अनेक बाईयां, नर्तकियां, राजसेविकाएं और संगीतज्ञ भी उनके पड़ोस की सम्पन्न बस्तियों में आकर बस गये थे, जिनमें से एक जोरासेन्को की बस्ती भी थी जहां रामलोचन उनके सरपरस्तों में से एक था। हर रोज़ तीसरे पहर रामलोचन अपनी पालकी में बैठ कर लम्बी सैर को निकलता था और अक्सर पथुरियाघाट और चोर बगान में रहने वाले अपने चचाज़ात भाइयों के यहां जाता था।

दूसरा बेटा राममणि कलकत्ता की पुलिस में मुलाज़िम था। उसने दो बार शादी की। पहली पत्नी मेनका से, जो उसके बड़े भाई रामलोचन की पत्नी की बहन थी, उसके दो बेटे थे, राधानाथ और द्वारकानाथ। अपनी दूसरी पत्नी दुर्गामणि से उसके एक बेटा रामनाथ और एक बेटी थी।

तीसरे बेटे रामबल्लभ ने कटक की कचहरी में नौकरी कर ली थी, लेकिन बाद में ज़मीनें खरीद कर वह जमींदार बन गया था। उसके या उसकी सन्तान के बारे में अधिक विवरण उपलब्ध नहीं है।

ठाकुर खानदान की जोरासेन्को और पथुरियाघाट वाली इन दो शाखाओं के अलावा एक और (यद्यपि कम विख्यात) शाखा भी थी, जो पंचानन के चाचा सुखदेव के पुत्र कृष्णाचन्द्र की सन्तान थी। यह शाखा चोर बगान के ठाकुरों के नाम से ज्ञात है।

नोट्स

[1] देखिए कलकत्ते के **स्टेट्समैन** (23 दिसम्बर, 1967, पृष्ठ 8) में लेख – 'द सबर्ण चौधरीज़ आफ बरीशा'।

[2] किशोरी चन्द मित्रा ने अपने संस्मरण में **जयराम** को 'ठाकुर खानदान का वास्तविक संस्थापक' बताया है, पृष्ठ 3।

[3] कुछ साल पहले धर्मतल्ला के पुराने परिचित नाम को बदल कर लेनिन सरणि कर दिया गया है।

[4] क्षितिन्द्रनाथ ठाकुर के पौत्र अमृतमोय मुकर्जी के अनुसार जयराम के प्रपौत्र राधाबल्लभ ठाकुर ने सन् 1813 में अपने संबंधियों के विरुद्ध कब्ज़ा हासिल करने का जो दावा किया था, उसमें निम्न तथ्य मिलते हैं : "जयराम की कोठी धन्नो सईस में थी, जिसे आजकल धरुमतोला पुकारते हैं और उनका एक बागवाला मकान था, जहां अब फोर्ट विलियम का निर्माण किया गया है, और उनकी कोठी के पास उनका बैठक-खाना था और धरुमतोला में ज़मीनें थी।' (**समकालीन**, पौष 1365 वि.सं. पृष्ठ 543-550) इसी लेख में लेखक ने आगे दावा किया है कि : 'प्लासी के युद्ध से पहले सिराजुद्दौला के सैनिकों ने जब कलकत्ते पर आक्रमण किया, तो उन्होंने जयराम की पैतृक कोठी और मंदिर को हाथ तक नहीं लगाया, लेकिन अंग्रेज़ों ने जब कलकत्ते पर पुनः कब्ज़ा किया तो उन्होंने इनको सुरक्षित नहीं छोड़ा। सैनिक घेरे के दिनों जयराम की पत्नी गंगादेवी ने गृह-देवता के आगे कसम खायी कि अगर वह वहां से बच कर किसी सुरक्षित स्थान पर पंहुच सके तो वह अपने सारे गहने दान कर देगी। इसके अनुसार, जब प्लासी का युद्ध समाप्त हुआ तो उसने रजिस्ट्री करवा के अपने 13,000/- रु० के गहने गृह-देवता के नाम दान कर दिये।'

[5] **संस्मरण**, पृ० 3-4.

[6] **बंगेर जातीय इतिहास**, भाग-3.

[7] इतिवृत्तकार इस बात पर सहमत नहीं हैं कि बड़ा भाई कौन था, नीलमणि या दर्पनारायण। किशोरी चन्द मित्रा और जेम्स फरेल के विचार में दर्पनारायण बड़ा था, जबकि कल्यान कुमार दास गुप्त ने किशोरी चन्द के **संस्मरण** के बंगाली संस्करण में दिए अपने विद्वतापूर्ण नोट्स में इससे विपरीत मत प्रकट किया है, जिसका समर्थन **बंगेर जातीय इतिहास** के लेखकों ने भी किया है। लगता है कि दोनों शाखाओं के वंशज अपने-अपने पूर्वज को ही बड़ा भाई होने का दावा करते हैं। यहां पर यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि राजा राधाकान्त देव ने सन् 1822 में एच.टी. पिन्सेप के लिए कलकत्ते के पच्चीस सर्वोच्च परिवारों की जो सूची तैयार की थी, उसमें पथुरियाघाट और जोरासेन्को दोनों स्थानों के ठाकुरों को (जिन्हें पिराली ब्राह्मणों और भग्न कुलीनों की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है) 'दर्पनारायण के वंशज' बताया है, 'जो फ्रांसीसी कम्पनी के दीवान का काम करता था' देखिए, कलकत्ता : पुराण और इतिहास (लेखक : एस.एन. मुखर्जी, कलकत्ता 1977) के अंतर्गत तालिका नं० 4.

[8] अमृतमोय मुकर्जी के अनुसार : सबसे पहले नीलमणि की नियुक्ति चिटगांव में हुई थी। बाद में, जब अपने भाई के साथ उसका झगड़ा हो गया और उसने जोरासेन्कों में अपनी कोठी बनायी, तो उसे फिर से धन-सम्पत्ति जुटाने की जरूरत पड़ी और उसने उड़ीसा में दूसरी नौकरी कर ली। (**समकालीन**, पौष 1365 वि.सं., पृ० 543-550)

[9] नीलमणि वैष्णव था, विष्णु का भक्त, जबकि उसका भाई और उसका परिवार शिव के भक्त थे। **शालिग्राम** की जिस मूर्ति को नीलमणि अपने साथ उठा ले गया था, वह आजकल कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के वंशजों के पास है जिसकी नियम से आज भी नित्य पूजा की जाती है।

[10] आमतौर पर यह बात सभी को मान्य है, लेकिन क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी बंगाली भाषा में लिखित, द्वारकानाथ की जीवनी में उल्लेख किया है कि महर्षि देवेन्द्रनाथ ने सन् 1862 में अपने परिवार के सदस्यों के आगे प्रवचन देते हुए कहा था कि नीलमणि को अपने भाई के विश्वासघात से इतना गहरा धक्का लगा कि वह उससे एक भी पैसा लिए बगैर घर छोड़ कर चला गया। यह कहानी संभव है कि एक किंवदंती मात्र हो। बहरहाल, इस विस्तृत पारिवारिक पृष्ठभूमि का विस्तृत विवरण जानने के लिए देखिए अमृतमोय मुकर्जी का **समकालीन,** पौष 1365 वि.सं. में प्रकाशित लेख उनके अनुसार नीलमणि ने बहुत सस्ते दाम पर ज़मीन का एक प्लाट खरीदा था। 'सबसे पहली कुटी का जोरासेन्को की वर्तमान कोठी के उत्तर-पूर्व कोने में तालाब के किनारे निर्माण किया गया, जो बारानसी घोष लेन के साथ लगा हुआ था।......बाद में, जून, 1784 में कुटी का मुख्य द्वार चितपुर की ओर बदल दिया गया। आरंभ में जिस तालाब के किनारे कुटी बनायी गयी थी, उसका जनाना तालाब के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा, जिसके निकट ही सौर-गृह बनाया जाता था। कुछ वर्षों के बाद द्वारकानाथ का जन्म इसी स्थान पर हुआ।

अमृतमोय मुकर्जी की बंगाली पत्रिका **समकालीन** में प्रकाशित लेख में से लिये गये तथा अन्य उद्धरणों के अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए वर्तमान लेखक अपने मित्र श्री मनोरंजन गुहा के सौजन्य का आभारी है।'

[11] एक ऐतिहासिक वर्ष, जिसमें विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की थी।

[12] **बंगेर जातीय इतिहास** के विद्वान लेखकों ने नीलमणि की प्रतिभा, कार्यक्षमता, चरित्र

और धर्मनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। किशोरी चन्द मित्रा के **संस्मरण** के बंगाली संस्करण में दिये गये कल्यान कुमार दास गुप्त के नोट्स में इसके उद्धरण शामिल किये गये हैं।

[13] कमलमणि का विवाह कालीघाट के हरिशचन्द्र हाल्दार से हुआ था, जिसे नीलमणि ने घर-जमाई बना लिया था। दामादों को घर-जमाई बनाकर रखने की प्रथा के कारण ठाकुर-परिवार को अपने परवर्ती इतिहास में अनेक दुखद परिणाम भुगतने पड़े।

तीन

जन्म और शैशवकाल

द्वारकानाथ का जन्म 1794[1] में हुआ था। वे नीलमणि के दूसरे बेटे राममणि और उनकी पहली पत्नी मेनका के दूसरे बेटे और चौथी सन्तान थे। लगभग इन्हीं दिनों, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, मेनका की बहन अलकासुंदरी, जो नीलमणि के बड़े बेटे रामलोचन से ब्याही थी, के भी एक बेटी हुई थी, जिसकी शैशवकाल में ही मृत्यु हो गई थी। अपनी बड़ी बहन की मनोव्यथा और उसका बेटे की लालसा में तड़पना देखकर मेनका अपने दूसरे बेटे द्वारकानाथ को उसे गोद देने के लिए राजी हो गई। इसके तुरन्त बाद ही मेनका की मृत्यु हो गई और ठाकुर परिवार में यह विश्वास किया जाता है कि द्वारकानाथ अपनी दत्तक मां के स्तनों का दूध पीकर ही पले थे। चूंकि रामलोचन सम्पन्न व्यक्ति थे, इसलिए द्वारकानाथ के पिता राममणि ने बालक को अपने चाचा का दत्तकी पुत्र बनाने में कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि वे जानते थे कि उनके यहां उसके लालन-पालन की समुचित व्यवस्था रहेगी। वैसे तो गोद लेने की बाजारू रस्म 1799[2] में सम्पन्न की गई, जब बालक पांच वर्ष का था, लेकिन वास्तव में वह आरंभ से ही रामलोचन और अलकासुंदरी का पुत्र बन गया था, जिस पर उन्होंने अपना सारा प्यार और वात्सल्य निछावर कर दिया था।

यह ज्ञात नहीं है कि बालक द्वारकानाथ को बंगाली और संस्कृत की आरंभिक पढ़ाई के लिए प्राइमरी स्कूल या पाठशाला में भेजा गया था या घर पर ही पढ़ाने के लिए कोई पंडित रखा गया था। उन दिनों आम प्रथा यह थी कि अमीर घरों में किसी पंडित या **गुरूमोशाय** को पढ़ाने के लिए घर पर ही बुलाया जाता था, वहां आस-पड़ोस के बच्चे भी पढ़ने के लिए आ सकते थे। इसलिए यही संभव है कि

द्वारकानाथ की आरंभिक पढ़ाई जोरासेन्को की कोठी में ही हुई हो। संभव है कि अरबी और फारसी पढ़ाने के लिए एक मौलवी भी रखा गया हो, क्योंकि सरकारी नौकरी में सफलता प्राप्त करने के लिए इन भाषाओं का ज्ञान जरूरी था, जैसे कि दो दशक के बाद अंग्रेजी भाषा का ज्ञान ज़रूरी हो गया।

बालक की धर्म-शिक्षा की जिम्मेदारी दत्तकी मां अलकासुंदरी ने अपने ऊपर ली थी, जिसने उसे आरंभिक जप और पूजा की सारी विधियां सिखायीं। जिस दादी मां को उसके विख्यात पौत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ने आगे चल कर अपनी आत्म-कथा में मुक्त हृदय से श्रद्धांजलि अर्पित की है, वह यही थीं। उन्होंने वर्णन किया है कि धर्म के प्रति उनमें कितनी गहरी निष्ठा थी, प्रतिदिन की पूजा में सारी धार्मिक रीतियों का पालन करने के बारे में वे कितनी सावधान और सतर्क थीं, यहां तक कि **शालिग्राम** की मूर्ति के लिए स्वयं ही फूलों की माला गूंधती थीं। कुछ विशेष दिनों वे खुली छत पर सुबह से शाम तक खड़ी सूर्य की पूजा करती रहतीं और रात-रात भर ईश्वर के नाम का कीर्तन सुनती रहतीं। इसके साथ ही वे बड़े नियमित और सुचारू रूप से गृहस्थी का प्रबंध चलातीं। वे निष्ठावान थीं पर अंधविश्वासी नहीं और अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेती थीं। उनके व्यवहार कुशल और सांसारिक जीवन में सफलता पाने की सहज योग्यता रखने वाले पुत्र द्वारकानाथ और गहरे निष्ठावान व्यक्तित्व वाले पोते महर्षि देवेन्द्रनाथ, दोनों में ही उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी और वे अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उनके चरित्र से प्रभावित हुए थे।

नई सदी के आरंभ से ही यह अधिकतर महसूस होने लगा था, विशेषकर उन परिवारों में, जिनके सदस्यों ने कम्पनी की नौकरियां की थीं या जो उसके साथ व्यापार करते थे, कि किसी भी नौकरी या पेशे में चमकने के लिए युवा लोगों को अंग्रेज़ी भाषा का समुचित ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी होगा। लोगों को मालूम था कि सदी के आरंभ में राममोहन राय भी, जो उस समय तीस वर्ष के थे, अंग्रेज़ी सीख रहे थे। इसलिए बालक द्वारकानाथ को भी 1804 में, जब उनकी अवस्था दस वर्ष की थी, पास में ही चितपुर रोड पर स्थित शोरबोर्न स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए दाखिल किया गया। चितपुर रोड आज जैसी दिखाई देती है, उन दिनों वैसी नहीं थी। स्टॉक्वेलर की पुस्तक '**हेण्डबुक ऑफ इंडिया**' की समीक्षा करते हुए मई 23, 1844 के '**फ्रन्ड ऑफ इंडिया**' ने एक सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा : "कलकत्ते का कोई हिस्सा इतना दिलचस्प नहीं है। वहां यूरोपीय पैंशन के अभिजातवर्गीय प्रासादों के साथ बिल्कुल एशियाई पुरोभाग के मकानों की लम्बी कतार भी है और एक के बाद दूसरी जगह दुकाने हैं, जिनमें देसी अमीरों की सुख-सुविधाओं की एक जैसी ही चीजों का प्रदर्शन किया जाता है, यह सब एक ऐसा मिश्रित दृश्य प्रस्तुत करता है, जिसकी मिसाल भारत की किसी राजधानी में नहीं मिलती।"

स्कूल के संस्थापक मिस्टर शोरबोर्न के बारे में अनेक किंवदंतियां प्रचलित थीं। कहा जाता है कि वे एक अंग्रेज़ बाप और ब्राह्मण मां की संतान थे, जिन्होंने उनकी

शिक्षा-दोक्षा को काफी प्रभावित किया था। वह बड़े गर्व से अपने आपको एक 'ब्राह्मण का पौत्र' बताया करते थे। उनके अनेक शिष्य धनी हिन्दू परिवारों के थे, जो उनके लिये उपहार लेकर आते थे, जिन्हें वे प्राचीन गुरू-शिष्य परंपरा की भावना के अनुसार स्वीकार करते थे। द्वारकानाथ उनके प्रिय शिष्यों में से थे और आगे चल कर जब वे अमीर हो गये तो उन्होंने शोरबोर्न के नाम आजीवन पेंशन बांध दी।[3]

स्कूल में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं, उनके नामों का उल्लेख दिलचस्प होगा . **एन्फील्ड्स स्पेलिंग, रीडिंग बुक, तूतीनामा या टेल्ज ऑफ द पैरट, यूनीवर्सल लेटर राइटर, कम्प्लीट लेटर बुक तथा रॉयल इन्ग्लिश ग्रामर**![4] उन दिनों पढ़ाई अधिकतर रटन-विद्या थी। यह अभागी पद्धति अभी तक समाप्त नहीं हुई। महत्वाकांक्षी विद्यार्थियों को क्लिष्ट शब्दों की लम्बी सूचियां रट कर याद कर लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था या प्रलोभन दिया जाता था, और कुछ ऐसे विद्यार्थियों की मिसालें भी सर्वविदित थीं, जिन्होंने पूरी की पूरी डिक्शनरियां (शब्द-कोश) रट रखे थे। सौभाग्य से द्वारकानाथ अधिक तीक्ष्ण सहज बुद्धि के बालक थे और वे ऐसे ऊटपटांग अभ्यासों में नहीं पड़े। आरंभ से ही वे अंग्रेज़ी सीखने के लिए उत्सुक थे, ताकि वार्तालाप तथा अन्य व्यावहारिक कार्यों में उसका समुचित उपयोग कर सकें। स्कूल छोड़ने के बाद भी उन्होंने आदरणीय विलियम एडम्स के संरक्षण में रह कर और राममोहन राय की तरह शिक्षित अंग्रेज़ों के साथ मैत्रीपूर्ण समागम स्थापित करके यह अभ्यास जारी रखा।

12 दिसंबर, 1807 को, जब द्वारकानाथ अभी तेरह वर्ष के थे और स्कूल में थे, उनके दत्तकी पिता रामलोचन की मृत्यु हो गई। सतर्क व्यक्ति होने के कारण वे मृत्यु से पहले ही कलकत्ते की अपनी कोठियों और मकानों और विभिन्न जिलों में स्थित अपनी जायदाद और ज़मीनों समेत अपनी सारी चल और अचल सम्पत्ति की वसीयत अपने दत्तक पुत्र द्वारकानाथ के नाम कर गये थे, जिसमें यह अनुबंध भी शामिल था कि उनके बाद द्वारकानाथ के बालिग होने तक उनकी ज़मीन-जायदाद का प्रबंध बालक की मां अलकासुंदरी करेंगी।[5]

प्रबंध के इस काम में अलकासुंदरी की सहायता स्वयं द्वारकानाथ के सबसे बड़े भाई राधानाथ करते थे। जमींदारियों में पब्ना और नादिया जिले में स्थित बरहामपुर की ज़मीनें थीं और कटक ज़िले के पदुआ और बलिया की ज़मीनें थीं। पिता की मृत्यु के समय इन जमींदारियों की कुल सालाना आमदनी 30,000 रु०[6] से अधिक नहीं थी। विशेष कर बरहामपुर की जमींदारी हमेशा अड़चनें पैदा करती रहती, क्योंकि वहां की रैयत का व्यवहार उपेक्षापूर्ण था और अक्सर पूरी मालगुजारी की वसूली नहीं हो पाती थी। फिर भी, उस जमाने के लिहाज से 30,000 रु० की सालाना आमदनी नगण्य नहीं थी और एक परिवार के लिए आराम से रहने के लिए पर्याप्त थी। लेकिन ऐशो-इशरत से रहने के लिए काफी नहीं थी। उनके प्रथम जीवनी-लेखक किशोरी चन्द मित्रा के अनुसार द्वारकानाथ "मुंह

में चांदी का चम्मच लेकर नहीं पैदा हुए थे। यद्यपि उनके पास प्रचुर मात्रा में साधन उपलब्ध थे, जो गतपीढ़ी के एक भद्रवर्गीय हिन्दू की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त थे, तो भी वे उस आवश्यकता के दायरे से बाहर नहीं थे, जो उद्यम की प्रेरणा देती है। एक लेखक की उक्ति है कि वह स्थिति जो ग़रीबी और वैभव से समानान्तर दूरी पर हो एक ऐसा शीतोष्ण क्षेत्र है, जो लगता है व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए सबसे अधिक अनुकूल है। इस उक्ति में निहित सत्य की ज्वलंत मिसाल द्वारकानाथ थे।"[7]

भाग्य से उनका लालन-पालन भी बहुत अच्छे ढंग से हुआ था। उनके दत्तकी माता-पिता दोनों ही अपने-अपने ढंग के उल्लेखनीय व्यक्ति थे। रामलोचन उदार-मना और उदार-हृदय व्यक्ति थे, व्यवहार-कुशल भी और जीवन को सुखमय बनाने वाली वस्तुओं का आनंद लेने की सूक्ष्म-अभिरुचि से सम्पन्न। यह बात ही कि उन्होंने रुढ़िपंथी पंडितों और मौलवियों की आरंभिक देख-रेख से निकाल कर बालक को शोरबोर्न के अंग्रेज़ी स्कूल में दाख़िल कराया था, सिद्ध कर देती है कि उन्होंने आने वाले युग का मिजाज परख लिया था। उनकी मां अलकासुंदरी, जो देखने में भी सुंदर थीं, बड़ी ममतामयी और उदारहृदय महिला थीं और यद्यपि बड़ी धार्मिक प्रवृति की थीं और अपने धर्म के सभी रीति-रिवाजों का कठोरता से पालन करती थीं, लेकिन इतनी बुद्धिमान थीं कि उनमें धार्मिक असहिष्णुता ज़रा भी नहीं थी।[8] वे इतनी बुद्धिमती और कार्य-कुशल थीं कि उन्होंने अपने पति की मृत्यु के बाद द्वारकानाथ की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व संभाल लिया और साथ ही द्वारकानाथ के भाई की सहायता लेकर जमींदारियों और कलकत्ता की सम्पत्ति का प्रबंध भी हाथ में ले लिया। द्वारकानाथ उनके प्रति अन्त तक श्रद्धालु और वफ़ादार बने रहे।[9]

1810 में, जब द्वारकानाथ सोलह वर्ष के हुए, उन्होंने स्कूल की पढ़ाई छोड़ दी और अपने बड़े भाई राधानाथ के साथ पैतृक जायदाद की देखभाल में लग गये। उन दिनों कुशलतापूर्वक जमींदारी का काम चलाना आसान बात नहीं थी। सन्1793 में कार्नवालिस द्वारा शुरू किए गये इस्तमरारी बन्दोबस्त के अंतर्गत नियम-कानून इतने संश्लिष्ट थे कि आम तौर पर उनकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी। समय पर मालगुजारी अदा न करने पर भारी जुर्माना अदा करना पड़ता था, और जमींदारियां अक्सर नीलाम होकर एक ज़मींदार के कब्ज़े से निकल कर दूसरे के कब्ज़े में पहुंच जाती थीं। न्यायिक व्यवस्था और क्रियाविधियां भी कम संश्लिष्ट नहीं थीं। अंग्रेज़ न्यायाधीश उन पंडितों और मौलवियों की मदद से देशी कानून को लागू करते थे, जो जाति और सम्प्रदाय में परंपरा से प्रचलित कानून और रीति-रिवाज़ों के अनुसार उनकी व्याख्या करके उसको बताते थे। अपील कलकत्ते की सदर दीवानी अदालत में दायर करनी पड़ती थी। कुछ ऐसे कानून और नियम भी थे जो कम्पनी ने आरोपित किए थे और उनके बारे में अपील कलकत्ते की सुप्रीम

कोर्ट में की जाती थी, जो ब्रिटिश न्याय-संहिता के सिद्धांतों का अनुसरण करती थी। इस प्रकार उन दिनों दो कोटि की अदालतें थीं और तीन कोटि की न्याय-व्यवस्थाएं, हिन्दू, मुस्लिम और इंगलिश।

कुछेक जमींदार ही राजस्व व्यवस्था या कानूनी कार्यविधियों की पेचीदगियों को समझते थे। लेकिन जैसा कि संकेत किया गया है, कानून की अज्ञानता लोगों को, मुकदमेबाज़ी से बाज नहीं आने देती, और गांव के लोग तो मुकदमेबाज़ी के बड़े शौकीन थे, हालांकि उनमें से अधिकांश को वहां से कुछ हासिल नहीं होता था। गांव के लोगों की मुकदमेबाज़ी की यह आदत उसी तरह जमींदार के हितों के विपरीत थी, जिस तरह कारिन्दों और गुमाश्तों की कारस्तानियां, जो आम तौर पर ज़मींदार और रैयत के बीच कर्ता-धर्ता बने हुए थे। इस्तेमरारी बन्दोबस्त के बाद ज़मींदारों की अक्सर अदला-बदली के कारण **मंडल** या गांव के मुखिया का ज़ोर और रोबदाव बहुत बढ़ गया था। गांव के भू-सर्वेक्षण और बन्दोबस्त के अभिलेखों की जानकारी, जो उसके पास ही रहते थे, और ज़मींदार के गुमाश्ते या स्थानीय कारिन्दे से सांठ-गांठ होने के कारण उसकी स्थिति ज़मींदार से भी ज्यादा प्रभावशाली थी।[10] इसके अलावा स्थानीय कर्ज़ देने वाले साहूकार और मंदिर के पुजारी के हानिकर प्रभाव को भी शामिल कर लें, जो कुटिल कुचक्र रचने में प्रवीण होते थे। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आम ज़मींदार इन लोगों से अपने हितों की रक्षा के लिए किराये के गुंडों के ज़रिये जोर-ज़बर्दस्ती, मार-पीट और हिंसात्मक साजिशों के हथकंडे अपनाते थे।

लेकिन युवा द्वारकानाथ दूसरी ही मिट्टी के बने थे। यद्यपि अभी वे नाबालिग थे और अभी उनकी शिक्षा भी अधूरी ही थी, फिर भी उन्हें यह एहसास हो गया था कि उन्हें अगर अपनी पैतृक सम्पत्ति में और भी अभिवृद्धि करनी है तो उन्हें सबसे पहले देश में लागू राजस्व और न्यायिक व्यवस्थाओं की अच्छी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। "इस कार्य में वे पूरे मनोयोग से जुट गये, मुफस्सिल ज़िलों में फैली अपनी ज़मींदारियों और कलकत्ता के बीच दौरे करते रहने के बावजूद वे अपने समय के प्रसिद्ध बैरिस्टर, राबर्ट कटलर फर्गूसन के अन्तर्गत ब्रिटिश कानून और अदालती कार्य-विधि का नियमपूर्वक अध्ययन करने लगे। मित्रा के अनुसार उनके आरंभिक जीवन को दो व्यक्तियों ने प्रभावित किया था, बौद्धिक रूप से राममोहन राय ने और कानूनी तौर पर मिस्टर फर्गूसन ने। उनके पास एक बड़े कुशल कलाकार द्वारा बनाया फर्गूसन का एक तेल-चित्र था, जिसे उनके अपने घर की गैलरी में आज भी देखा जा सकता है।"[12]

इस बीच 1811 में, सत्रह वर्ष की अवस्था में द्वारकानाथ का विवाह[13] दिगंबरी से संपन्न हुआ, जो जैसोर ज़िले में स्थित नरेन्द्रपुर के रामतनु राय और आनंदमयी की पुत्री थीं। उनका परिवार भी पिराली परिवार था। नववधु की उम्र केवल नौ वर्ष की थी, वह अत्यंत सुंदर और आकर्षक नयन-नक्श वाली एक कोमलांगी बालिका

थीं और उनके बारे में प्रसिद्ध था कि जहां भी जाती थीं वहां के भाग्य खुल जाते थे। कहा जाता है कि उनके घर में दिगंबरी के आगमन के साथ ही द्वारकानाथ का भाग्य चमक उठा और नरेन्द्रपुर में उनके मायके से समृद्धि चली गई और वह जल्द ही वीरान हो गया। इससे यह धारणा लोक-प्रसिद्ध हो गई कि वे साक्षात लक्ष्मी का अवतार हैं। कहा जाता है कि परिवार में जगद्धात्री की पूजा के लिए जो मूर्ति बनायी जाती थी, वह दिगंबरी की ही अनुकृति होती थी।[14] घर में काम करने वाली बड़ी-बूढ़ी औरतें दिगंबरी के गोरे रंग, उसकी नीली साड़ी में लिपटी भव्य रूपराशि और नन्हीं आयु के बावजूद उसके शालीन व्यक्तित्व और व्यवहार का मुग्ध-भाव से वर्णन करते हुए आत्मविभोर हो उठतीं थीं।

वे अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति की थीं और अपनी उतनी ही सुंदर किन्तु अधिक बुद्धिमान सास अलकासुंदरी से भी अधिक कठोरता से धार्मिक रीतियों का पालन करने की आदी थीं। वे नित्य चार बजे सुबह उठतीं, जाकर गंगा-स्नान करतीं और एक लाख मनकों वाली अपनी माला का एक-एक मनका फेरते हुए ईश्वर का नाम जपतीं थीं। इसके बाद वे दूध और फल का नाश्ता करतीं, जो उनका रसोईया और सेवक परान ठाकुर लेकर आता था। फिर वे दोपहर का सूक्ष्म निरामिष भोजन लेने से पहले घर-गिरस्ती के कामकाज में व्यस्त रहतीं। उन्हें प्याज़ तक से परहेज़ था। दोपहर के भोजन के बाद वे धर्म-ग्रन्थों का पाठ करतीं। फिर गंगाजल से स्नान करके वे माला के बाकी पचास हजार मनके फेर कर नाम-जाप के लिए बैठ जातीं। जाप समाप्त होते ही वे अपनी धर्म-शिक्षक दया वैष्णवी से धर्म-ग्रंथों का पाठ सुनतीं और फिर कुछ अन्य धार्मिक क्रिया-विधियों का पालन करने के बाद ही रात्रि का भोजन करतीं। एकादशी के दिन वे आंशिक उपवास करतीं और वर्ष में चार बार ऐसे अवसरों पर पूरा निर्जल उपवास करतीं। बड़ी-बूढ़ियों के कहने पर कि सधवा स्त्री को एकादशी का व्रत नहीं रखना चाहिए, वे तनिक भी ध्यान न देतीं।

एक ऐसी पत्नी जो, चाहे जितनी सुंदर क्यों न हो, अगर धार्मिक क्रियाओं के पालन में ही हर समय तल्लीन रहती हो, द्वारकानाथ जैसे यौवन और स्फूर्ति से भरपूर नौजवान के लिए एक सहगामिनी और संगिनी की भूमिका नहीं अदा कर सकती थीं। लेकिन सौभाग्य से घर से बाहर द्वारकानाथ इतने कामों में व्यस्त रहते थे कि उन्हें इसकी चिन्ता ही नहीं होती थी कि जनानख़ाने में क्या हो रहा है। उन दिनों पुरुष और नारी एक दूसरे से अलग प्रकार की दुनिया में रहते थे। उनके दाम्पत्य जीवन के बारे में अधिक ज्ञात नहीं है, लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि द्वारकानाथ अपनी पत्नी के सुख-दुख का पूरा ध्यान रखते थे, और दिगंबरी अपने पति के प्रति पूरी तरह वफ़ादार थीं और यद्यपि वे दीर्घजीवी नहीं हो सकीं (1839 में उनकी मृत्यु हो गई),[15] लेकिन वे द्वारकानाथ की एक पुत्री और पांच पुत्रों की मां बनीं।"[16]

विवाह के एक वर्ष बाद द्वारकानाथ बालिग हो गये और उन्होंने अपनी ज़मीन

जायदाद के प्रबंध का काम संभाल लिया। साहसी और कल्पनाशील होने के अलावा, उनमें एक उद्यमशील व्यक्ति की सहज-वृत्ति थी और वे निरंतन अपनी पैतृक सम्पत्ति में इजाफ़ा करने के मार्ग खोजते रहते थे। अपने जीवन के उत्तरार्ध में यद्यपि वे खुले हाथों खर्च करने, यहां तक कि फिजूलखर्ची के लिए मशहूर हो गये थे, वे अपनी सालाना आमदनी में से जितनी भी संभव हो, उतनी पूंजी अधिक लाभकारी व्यवसायों में लगाने के प्रति सदा चौकस रहते थे। उस समय तक सार्वजनिक बैंकों का विकास नहीं हुआ था और अधिकतर लोग अपनी बचत का धन व्यक्तियों को, विशेष कर कम्पनी के कर्मचारियों को, जो अपनी फ़िज़ूलख़र्च की आदतों के कारण हमेशा तंगदस्त रहते थे, निजी कर्ज़ के रूप में देकर पूंजी-निवेश करते थे। यह सर्वविदित है कि राममोहन राय ने इस तरीके से अपने लिए स्वतंत्र रूप से खासी आमदनी का एक जरिया बना लिया था। 'उन दिनों यह असाधारण बात नहीं थी कि समझदार बड़ी-बूढ़ी औरतें अपने परिचितों को ब्याज पर कर्ज़ देकर परिवार की आमदनी में इजाफा करती थीं। सभी जानते हैं कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की मां भी ऐसा ही करती थीं।'[17]

द्वारकानाथ अपनी बचत-पूंजी का निवेश बड़ी सूझ-बूझ के साथ करते थे। वे सिर्फ सूद पर ही कर्ज़ नहीं देते थे बल्कि समय पर मालगुजारी न देने के कारण जिन ज़मींदारियों की नीलामी होती थी, वे उनको भी खरीदते रहते थे। इस बीच वे विभिन्न प्रकार के पट्टेदारी संबंधी नियमों की जटिलताओं, हिन्दू और मुस्लिम कानून, कम्पनी के विधि-नियमों और सदर दीवानी अदालत तथा मुफस्सिल कचहरियों में लागू साक्ष्य-नियमों और क्रिया-विधियों की संपूर्ण जानकारी में पारंगत होने के लिए कड़ा परिश्रम करते रहे। राबर्ट कटलर फर्गूसन की देखरेख में वे अंग्रेज़ी कानून और न्यायिक कार्य-विधि का भी गंभीर अध्ययन करते रहे। इस कार्य में वे विलियम एडम्स[18] के भी बहुत आभारी थे, क्योंकि उन्होंने द्वारकानाथ को अंग्रेज़ी सिखाने में ही मदद नहीं की, बल्कि कलकत्ते के यूरोपीय समाज में प्रतिष्ठित अनेक लोगों से भी उनके उपयोग सम्पर्क स्थापित करवा दिये, जहां अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, आकर्षक व्यक्तित्व और शालीन व्यवहार से उन्होंने अनेक मित्र बना लिए। उनमें जे.जी. गोर्डन और जेम्स काल्डर भी थे, जो उस समय कलकत्ते की प्रमुख व्यवसाय कम्पनी और एजेन्सी के साझेदार मालिक थे।

राजस्व संबंधी कानून और न्यायिक कार्य-विधि के विख्यात जानकार होने के कारण, बड़े-बड़े ज़मींदार, जिनपर मुकदमे चलने वाले होते थे या जिनकी ज़मींदारियां छिनने का डर होता था, वे द्वारकानाथ से कानूनी सलाह लेते थे। उनके मुवक्किलों में जैसोर के राजा वरदकान्त, त्रिपुरा के महाराजा, कासिम बाजार के कुमार हरिनाथ राय, रानी कात्यानी आदि अनेक बड़े ज़मींदार थे। भूमि और राजस्व संबंधी मामलों में कानूनी सलाहकार के रूप में उनकी ख्याति इतनी फैल गई कि वे अपनी सलाह के लिए भारी फीस लेने लगे, यद्यपि उन्होंने बाजाप्ते वकालत

की प्रैक्टिस कभी नहीं की। क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार कानून की पूरी जानकारी और फारसी, अरबी और अंग्रेज़ी भाषाओं में दरख़ास्तों का मसौदा तैयार करने की विशेष योग्यता से, (अंग्रेज़ी में दरख़ास्त के अनुवाद की फीस प्रति पंक्ति दो गिनी थी) उनको प्रति मास हजारों रुपयों की आमदनी होती थी।[19]

इस प्रकार बालिग होने के बाद कुछ वर्षों के अंदर ही द्वारकानाथ ने आमदनी बढ़ाने के कई स्रोत खोज निकाले। उनकी व्यक्तिगत और व्यवस्थित देख-रेख में पैतृक जमींदारियों से प्राप्त होने वाली आमदनी में भी काफी वृद्धि हो गई थी। इनमें अब कई दूसरी और अधिक लाभदायक जमींदारियां भी शामिल होती गई थीं, जो समय-समय पर नीलामी में से वे खरीदते गये थे। अपने जीवन-काल के आरंभिक वर्षों में मितव्यता से काम लेकर वे अन्य कार्यों में पूंजी लगाने के लिए काफी बचत करते रहे। क्षितीन्द्रनाथ का अनुमान है कि उनके पितामह करीब 50,000 रु० सालाना की बचत कर लेते थे। जमींदारियों से प्राप्त होने वाली इस आमदनी में कानूनी सलाहकार की फीस के रूप में कमाई गई बड़ी-बड़ी रकमों और यूरोपीय तथा भारतीय मित्रों को दिये गये कर्जों से प्राप्त ब्याज को भी जोड़ लेना चाहिए।[20] हालांकि जोखिम उठाने से वे डरते नहीं थे, लेकिन द्वारकानाथ कभी सट्टेबाज़ी नहीं करते थे और न अपने सारे अण्डे एक ही टोकरी में रखते थे।

उनके व्यक्तिगत, सामाजिक और व्यावसायिक सम्पर्क अत्यंत व्यापक थे। यद्यपि वे मुख्यत: राजधानी में ही रहते थे, लेकिन देहातों में भी उनके व्यापक सम्पर्क थे, जहां वे अक्सर स्वयं अपनी जमींदारियों के प्रबंध के सिलसिले में और अपने जमींदार मुवक्किलों से मिलने के लिए जाया करते थे। कलकत्ते के अंदर उनके विशाल मित्र-वर्ग और व्यावसायिक सहयोगियों में अपने सम्प्रदाय के सदस्यों के अलावा अनेक अंग्रेज और पारसी भी थे। अंग्रेज जाति के व्यापारियों और सरकारी अफ़सरों से बड़ी कोशिशों के साथ स्थापित किए गए गहरे साहचर्य और सहयोग के कारण उन्हें भारत में यूरोपीय व्यावसायिक उद्यमों के तौर-तरीकों, उनके संगठन की व्यवस्था, उनकी शक्ति और सीमाओं की अधिकाधिक अंतरंग जानकारी प्राप्त हो गई थी।

नोट्स

जन्म-तिथि ज्ञात नहीं है, जो कि यह विचार करके आश्चर्यजनक बात लगती है कि आम तौर पर सम्पन्न हिन्दू परिवारों के बच्चों की जन्म-कुंडलियां बनवायी जाती हैं, जिनमें जन्म-तिथि ही नहीं, जन्म का ठीक-ठीक समय भी अंकित किया जाता है। उन दिनों जन्म और मरण का सार्वजनिक रूप से रजिस्ट्रेशन नहीं होता था।

[2] **आत्म-जीवनी** : देवेन्द्रनाथ ठाकुर। सतीशचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित। विश्वभारती, कलकत्ता, 1962.

[3] शोरबोर्न का स्कूल कलकत्ते में अंग्रेजी पढ़ाने वाला न तो एकमात्र स्कूल था और न सबसे पहला ही। कलकत्ते में अंग्रेजी का सबसे पहला स्कूल बेल्लामी का चेरिटी स्कूल था, जो 1731 में शुरू हुआ था। बहरहाल, ड्रमण्ड की अकादमी, जो 1810 में शोरबोर्न स्कूल के बाद शुरू की गई थी, बेहतर किस्म का स्कूल था, जिसकी पढ़ाई पूरी तरह धर्म-निरपेक्ष थी और जहां डेरोजियो (प्रसिद्ध देशभक्त आंग्ल-भारतीय अंग्रेजी कवि) पढ़ाता था। और भी कई स्कूल थे, एक अहीरीटोला में था, जिसे मार्टिन बोअल चलाता था, दूसरा एक स्कूल था, जिसे आर्मीनिया निवासी अरातून पैत्रूज चलाता था तथा बहूबाजार में एक और स्कूल था, जो कलकत्ता अकादमी के नाम से प्रसिद्ध था, जहां राजा राधाकान्त देव ने अंग्रेजी सीखी थी। उसे कमिंग्ज चलाता था। कोलूटोला में एक अंग्रेजी स्कूल भारतीय प्रबंध में चल रहा था, जो मदन मास्टर का स्कूल के नाम से प्रसिद्ध था। इन सभी स्कूलों में अंग्रेजी की पाठ्य-पुस्तकें प्रायः एक जैसी ही थीं। देखिए **ए बंगाल ज़मींदार – जयकृष्ण मुकर्जी ऑफ उत्तरपारि एण्ड हिज़ टाइम्ज, 1808-1888**, लेखक : नीलमणि मुखर्जी, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1975.

[4] किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण**, पृ० 5. क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर : जीवनी, पृ० 42.

[5] मृत्यु से पांच दिन पहले की गई वसीयत, कल्याण कुमार दास गुप्ता द्वारा सम्पादित **संस्मरण** के बंगाली संस्करण में ज्यों की त्यों प्रकाशित की गई है।

[6] क्षितिन्द्रनाथ ठाकुर : **जीवनी**, पृ० 47.

[7] किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण**, पृ० 7.

[8] नीलमणि के परिवार के लोग वैष्णव थे और गोसांईयों से दीक्षा लेते थे। रामलोचन के गुरु हरिमोहन गोस्वामी थे, जिनकी पत्नी कात्यानी अलकासुंदरी की धर्म-गुरु थीं और नियमित रूप से उनके यहां जाती थीं और वहां उन्हें मां गोसाई कह कर पुकारा जाता था। देखिए महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर की **आत्म-जीवनी**, विश्वभारती, कलकत्ता, 1962 में प्रकाशित सतीशचन्द्र चक्रवर्ती के नोट्स।

[9] द्वारकानाथ के पुत्र देवेन्द्रनाथ के धार्मिक व्यक्तित्व के विकास पर उनका प्रभाव तो और भी अधिक पड़ा था।

[10] **ए बंगाल जमींदार**, पृ० 92.

[11] राममोहन राय के साथ फर्गूसन का संबंध काफी पुराना था। राममोहन राय के भतीजे गोविन्द प्रसाद ने उसे अपने चाचा के विरुद्ध मुकद्दमे में वकील किया था। बाद में फर्गूसन ने राममोहन राय के मित्र, **कलकत्ता जर्नल** के सम्पादक जेम्स सिल्क बकिंघम की, उनके ऊपर किए गये मानहानि के दावे के विरुद्ध पैरवी की थी। उसने सुप्रीम कोर्ट के सामने राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर तथा अन्य लोगों की ओर से प्रेस की स्वतंत्रता की अपील भी दायर की थी। इंगलैण्ड लौट जाने के बाद फर्गूसन ने रूढ़िवादी हिन्दू सम्प्रदाय की ओर से हाऊस आफ कामन्स के आगे भारत में अंग्रेज बस्तियां कायम करने के विरूद्ध अपील दायर की थी, जिसका राममोहन राय और द्वारकानाथ ने समर्थन किया था।

[12] **संस्मरण,** पृ० 8.

[13] क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार (**जीवनी,** पृ० 71) यह विवाह 1809 में हुआ था, जब

द्वारकानाथ की उम्र पन्द्रह साल और उनकी पत्नी की उम्र कुल छः साल थी। 22 अप्रैल, 1978 के बंगाली साप्ताहिक **देश** में प्रकाशित बैद्यनाथ मुखोपाध्याय के लेख 'बोधु दिगंबरी और बाबू द्वारकानाथ' में भी इसे दोहराया गया है। इसके विपरीत क्षितीन्द्रनाथ के पौत्र अमृतमोय मुकर्जी ने विवाह का वर्ष 1811 और वधू की उम्र नौ वर्ष बतायी है। (देखिए **समकालीन,** जेष्ठ 1373 में प्रकाशित उनका लेख 'द्वारकानाथ परिवार'।)

14 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर, **जीवनी**, पृ० 72.

15 ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय द्वारा सम्पादित और बंगीय साहित्य परिषद कलकत्ता द्वारा वि.सं. 1356 में प्रकाशित **सम्बाद पत्रे सेकालेर कथा** में उद्धत 26 जनवरी, 1839 का **समाचार दर्पण।**

16 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर तथा परिवार में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार दिगंबरी की कोख से एक भी पुत्री नहीं पैदा हुई और चूंकि उनके केवल पुत्र ही पुत्र पैदा हुए, इसलिए उन्हें 'रत्न-गर्भा' कहा जाता था। लेकिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगाली भाषा में जीवनी लिखने वाले खगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय का कहना है कि दिगंबरी को प्रथम संतान एक पुत्री थी, जिसकी शैशवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी। देखिए, खगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित **रवीन्द्र-कथा।** प्र० जय श्री पुस्तकालय, 165 कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता, 1348 वि.सं., पृ० 22-23.

17 **ए बंगला जमींदार**, पृ० 8.

18 आदरणीय विलियम ऐडम एक अमरीकी मिशनरी थे, जो सिरामपुर के बेप्टिस्ट मिशन में शामिल हो गये थे। राममोहन राय के प्रभाव में आकर उन्होंने घोषित किया कि वे यूनीटेरियनिज्म (एकात्मवाद) में विश्वास करने लगे हैं। इस पर उनके पूर्व सहयोगी उन्हें 'दूसरा पतित ऐडम' (आदम) कह कर उनका मजाक उड़ाते थे। वे आजीवन राममोहन राय और भारत के गहरे मित्र बने रहे। वे 'कलकत्ता क्रॉनिकल' के सम्पादक थे।

19 क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर : **जीवनी**, पृ० 58-59.

20 विभिन्न लोगों को उन्होंने समय-समय पर दो हजार से लेकर दो लाख या इससे भी अधिक रुपयों तक के जो कर्ज दिये थे, उनकी सूची के लिए देखिए ब्लेयर बी. क्लिंग की पुस्तक **पार्टनर्स इन ऐम्पायर**, पृ० 40.

चार

द्वारकानाथ और राममोहन

इस महत्वाकांक्षी, व्याकुल और उदीयमान नवयुवक के चरित्र की सबसे विलक्षण बात यह थी कि धन कमाने की प्रक्रिया चाहे जितनी उत्साहवर्धक क्यों न रही हो, वह उसकी सम्पूर्ण अभिरुचियों को आत्मसात नहीं कर सकी। अंग्रेजों को वे जितना ही ज्यादा पसन्द करते, उतना ही ज्यादा उन्हें यह सोच कर हैरानी होती कि उनके अपने देश के लोग, जिनकी क्षमताएं ब्रिटेन और उसके निवासियों से किसी भी कदर कम नहीं हैं, इतनी गरीबी और जहालत में क्यों आकंठ डूबे हुए हैं। वे इतने ठोस यथार्थवादी और कर्मठ व्यक्ति थे कि भारत के अतीत गौरव की कल्पनाओं में ही रमे नहीं रह सकते थे। भारत का अतीत गौरव क्या था, यह नहीं बल्कि भारत का वर्तमान और भावी गौरव क्या होना चाहिए, उनकी कल्पना इस ओर ही दौड़ती थी। राममोहन राय की ही तरह और उनके संग वे एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में अपने देश के पुनर्जन्म के स्वप्न देखते थे और सोचते थे कि यूरोपीय, मुख्यत: ब्रिटिश सहयोग इस प्रक्रिया में एक दाई का काम कर सकता है। यह हार्दिक चिन्ता उनकी कल्पना को आजीवन उद्वेलित करती रही, और इसने ही उन्हें अनेक ऐसे कार्यों का आरंभ करने की प्रेरणा दी (अपनी निजी सम्पत्ति बढ़ाने की महत्वाकांक्षा के साथ-साथ, क्योंकि उन्हें संपन्न जीवन बिताना प्रियकर लगता था) कि अगर वे सब पूरे हो जाते तो भारत में आधुनिक युग की शुरुआत कम से कम आधी सदी पहले ही हो जाती।

अपने देश के भविष्य की इस चिन्ता और एक सहज नैतिक संवेदना ने ही, जो सच्ची मानता को, यदि वह कहीं मौजूद है तो, पहचानने में समर्थ होती है, उन्हें राममोहन राय के प्रति आकर्षित किया होगा, जो 1815 में कलकत्ता आकर बस गये

थे और जिन्होंने वहां से समाज-सुधार का अपना अभियान शुरू कर दिया था। राममोहन राय रूढ़िभंजी अभिरुचि के व्यक्ति थे, जो हिन्दुओं के मूर्तिपूजन की कठोर निन्दा करते थे, जबकि द्वारकानाथ ने अपनी मां की आस्था और हिन्दू वैष्णव धर्म की परंपरा में अपने लालन-पालन की बात को कभी नहीं नकारा। जोरासेन्को के ठाकुर खरदाह के गोसाईयों के शिष्य थे और कट्टर शाकाहारी थे, यहां तक कि लहसुन-प्याज से भी परहेज करते थे। उनके पथुरियाघाट वाले चचाजात भाई-बंद, जो शैव सम्प्रदाय के थे, उन्हें 'मछुआबाजार के कठमुल्ले' पुकार कर इनका मजाक उड़ाते थे। द्वारकानाथ को उनकी मां ने एक निष्ठावान हिन्दू ब्राह्मण की तरह धार्मिक रीतियों का पालन करना सिखाया था और वे दीर्घायु तक उनका पालन करते रहे थे।[1] यहां तक कि इतनी लंबी अवधि बीतने के बाद भी 1831 के 22 अक्तूबर के **समाचार दर्पण** ने **चन्द्रिका** में से एक अवतरण उद्धृत किया था, जिसमें यह दलील पेश की गई थी कि अंग्रेजी शिक्षा या राममोहन राय के अनुयायी होने का अर्थ कतई नहीं है कि व्यक्ति अपने परम्परागत धार्मिक रीति-रिवाजों को त्याग दे, और इसके लिए द्वारकानाथ की मिसाल दी थी,[2] जो राममोहन राय के भक्त और मित्र थे, लेकिन फिर भी अपने घर में दुर्गा-पूजा, श्यामा जगधात्री पूजा आदि नियमित रूप से सम्पन्न करते थे।

इसलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि **फिशर्स कोलोनियल मैगेजीन** के 1842 के अंक में द्वारकानाथ की जीवनी का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए, उसके लेखक ने लिखा कि द्वारकानाथ ने 'आरंभ में राममोहन राय का विरोध किया था, जिन्होंने उन दिनों हिन्दू-धर्म की प्राचीन सादगी और शुद्धता से ब्राह्मणों के पथभ्रष्ट हो जाने का प्रश्न उठा कर उनके साथ तीखा विवाद छेड़ रखा था। कई सालों तक द्वारकानाथ अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण राममोहन राय से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने से कतराते रहे।' उनके भारत लौटने से पूर्व यह कहानी जार्ज थाम्सन ने एडिनबरा की प्रिंसेज स्ट्रीट में द्वारकानाथ के सम्मान में दिए गए एक सार्वजनिक जलपान के अवसर पर सुनायी थी।[3]

यह कहना कठिन है कि इस कहानी का स्रोत क्या था, निस्संदेह इसका एक सामान्य स्रोत था। शायद यह इस पूर्व धारणा पर आधारित थी कि चूंकि द्वारकानाथ हिन्दू-रीतियों का पालन करते ही चले जा रहे थे, इसलिए वे राममोहन राय द्वारा हिन्दू-धर्म पर किए जाने वाले आक्रमणों का स्वागत नहीं कर सकते थे। लेकिन इस धारणा में इस तथ्य को अनदेखा किया गया है कि मूर्तिपूजा-विरोध ही राममोहन राय के व्यक्तित्व का एकमात्र स्वरूप नहीं था, बल्कि उनके व्यक्तित्व में अनेक दूसरे सकारात्मक और दीप्तिमान गुण भी थे, जिन्होंने द्वारकानाथ को अपनी ओर बरबस आकर्षित किया होगा। वस्तुतः, उपलब्ध तथ्य तो इसी ओर संकेत करते हैं कि द्वारकानाथ राममोहन राय के मित्रों और प्रशंसकों की उस अंतरंग मंडली के सदस्य थे, जो राममोहन राय के प्रति उनके 1815 में कलकत्ते में आकर बसने के

तुरंत बाद ही आकृष्ट होकर जमा हो गये थे और जो उनके निवास पर **आत्मीय सभा** की साप्ताहिक बैठकों में मिलते थे, जहां हिन्दू धर्म-ग्रंथों से पाठ और भक्ति-पदों के गायन के अलावा राममोहन राय अपने अंतरंग मित्रों के साथ धार्मिक उदारतावाद और समाज-सुधार के सिद्धांतों पर चर्चा करते थे। इस आत्मीय सभा का उल्लेख करते हुए और केशवचन्द्र सेन के एक लेख का हवाला देते हुए, राममोहन राय की अंग्रेज जीवनी-लेखिका, सौफिया डॉब्सन कॉलेट ने लिखा है कि उन अंतरंग मित्रों में, जो इन मीटिंगों में भाग लेते थे, द्वारकानाथ भी एक थे।[5] वस्तुतः राममोहन राय का उद्देश्य हिन्दू-धर्म को नष्ट करना या उसे बदनाम करना नहीं था, बल्कि उसके गहरे सत्यों की खोज करना था, और द्वारकानाथ इतने अधिक बुद्धिमान थे कि यह संभव ही नहीं कि उन्हें इस बात का पता न हो।

राममोहन राय से द्वारकानाथ की मित्रता आरंभ में ही हो गई थी, इस तथ्य की और भी पुष्टि खगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा बंगाली में लिखित द्वारकानाथ के पौत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जीवनी से हो जाती है।[6] उनके अनुसार द्वारकानाथ की पहली सन्तान एक पुत्री थी, जिसकी शैशवकाल में ही मृत्यु हो गई थी। उसके जन्म पर एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि दिगंबरी देवी की कोई भी सन्तान अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहेगी। इस अमंगलकारी भविष्यवाणी से भयभीत होकर द्वारकानाथ ने राममोहन राय से परामर्श किया और उनकी सलाह पर उन्होंने रंगपुर से एक तांत्रिक पुरोहित बुलाया,[7] जिसने कुछ तांत्रिक पूजाएं सम्पन्न कीं, जिनके फलस्वरूप, कहा जाता है कि यह निश्चित कर दिया कि इसके बाद जन्म लेने वाला उनका पहला बेटा, दीर्घजीवी होगा। देवेन्द्रनाथ अट्ठासी वर्ष की आयु तक जीवित रहे। चूंकि देवेन्द्रनाथ का जन्म 1817 में हुआ था, इसलिए उनकी बड़ी बहन का जन्म, जिसकी बचपन में ही मृत्यु हो गई थी, निश्चय ही सन् 1815 में राममोहन राय के कलकत्ता आगमन से बहुत बाद में नहीं हुआ होगा।

बहरहाल जो भी हो, तथ्य यह है कि अपनी धार्मिक रूढ़िवादिता के बावजूद, द्वारकानाथ, यदि उनके जीवनीकार क्षितीन्द्रनाथ की उपमा का प्रयोग करें तो, राममोहन राय के प्रति इस प्रकार आकर्षित हुए थे, जैसे लोहा चुम्बक के प्रति आकर्षित होता है। दोनों के बीच कोई अत्यंत गहरी समानता अवश्य रही होगी कि दोनों के स्वभाव और जीवन-पद्धतियों में इतना जबर्दस्त फर्क होने के बावजूद वे एक दूसरे के इतने निकट खिंचे चले आये। इतने मशहूर धर्मद्रोही के साथ इतने घनिष्ठ संबंध होने के कारण द्वारकानाथ को स्वयं अपने हिन्दू सम्प्रदाय में कम गलतफहमियों का शिकार नहीं होना पड़ा। हालांकि आत्मीय सभा की मीटिंगों में अधिकतर उपनिषदों का पाठ और भक्ति-पदों का गायन ही होता था, जिनमें से अनेक स्वयं राममोहन राय द्वारा विरचित होते थे, लेकिन उनके कट्टरपंथी विरोधियों ने तरह-तरह की अफवाहें फैला रखी थीं कि इन मीटिगों में गुप्त रूप से गौ-मांस खाया जाता था।[8] काफी लोग इन अफवाहों पर विश्वास करने लगे थे।

सत्य के प्रति राममोहन राय का सबल प्रेम, हिन्दू रूढ़िवादियों और उतने ही कट्टरपंथी ईसाई प्रचारकों के कठोर विरोध के बावजूद उस सत्य की घोषणा करने का उनका अदम्य साहस, दुःखी हिन्दू विधवा के प्रति उनकी करुणा, जिसे पति की चिता पर बैठकर अपने आपको जिन्दा जलाने के लिए मजबूर होना पड़ता था, समाज सुधार के लिए उनका तीव्र उत्साह, उनका व्यापक तर्कसंगत दृष्टिकोण और भारत के उज्ज्वल भविष्य में उनका अडिग विश्वास – ये कुछ बातें थीं, जिन्होंने द्वारकानाथ को राममोहन राय के प्रति आकृष्ट किया था।

दो बातें तो द्वारकानाथ को सहज रूप में जीवन के आरंभ से ही समझ में आ गई थीं। पहली तो यह कि तत्कालीन भारत में अंग्रेजों के राज की स्थापना उस समय की ऐतिहासिक आवश्यकता थी और इस अर्थ में ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी।[9] उस समय भारत इतने अराजक ढंग से छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ था कि उसे ऊपर से आरोपित एक मजबूत शासन के बिना एक सम्पूर्ण इकाई में ढाला ही नहीं जा सकता था। ऐसा नहीं है कि यह नौजवान जमींदार उस समय तक अपने भारत को भली भांति जानता था। सच तो यह है कि उस समय बहुत थोड़े भारतीय ही ऐसे होंगे जिन्हें कुछ तीर्थों और ऐतिहासिक स्थानों के अलावा यह ज्ञात हो कि वे जिस छोटे से क्षेत्र में रहते हैं, उसके परे कौन से क्षेत्र हैं और कौन से लोग बसते हैं। चूंकि द्वारकानाथ स्वयं एक व्यवसायी थे और उन्होंने निकट से देखा था कि बंगाल में युरोपीय व्यवसाय किस ढंग से चलता था, इसलिए एक दूसरी बात ने उनके मन पर गहरी छाप डाल कर उनमें यह अहसास पैदा कर दिया था कि उनका देश विदेशी व्यवसाय का तब तक मुकाबला नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं नये तरीकों और संगठन और कुशल तकनीकों को नहीं अपनाता, विशेष कर भाप-शक्ति को, जिसका औद्योगिक क्रांति के दौरान इंगलैंड में प्रयोग किया गया था।[10] लेकिन उन्हें अपने देशवासियों की मनोवृत्ति का भी ज्ञान था और वे जानते थे कि असंख्य वर्जनाओं में जकड़े होने के कारण उनके अंदर गतिशीलता और आगे बढ़कर कोई नया कदम उठाने की क्षमता तब तक पैदा नहीं होगी जब तक उसके अनुरूप ही उनके धार्मिक, नैतिक और बौद्धिक दृष्टिकोण और तौर-तरीकों में भी परिवर्तन नहीं होता। राममोहन राय के रूप में उन्हें एक ऐसे ही परिवर्तित, अपनी निद्रा और अपने 'भ्रामक स्वप्न' से जागे हुए और प्रगति के पथ पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर भारत का एक अग्रदूत नजर आया। इसलिए स्वयं अपने भौतिकवादी दृष्टिकोण और सांसारिक महत्वाकांक्षाओं और हिन्दू-धर्म के रीति-रिवाजों के प्रति अपनी व्यक्तिगत आस्था के बावजूद वे बड़ी आसानी से और बड़ी खुशी से राममोहन राय के व्यक्तित्व के नैतिक और बौद्धिक प्रभाव में आ गये। राममोहन राय की आध्यात्मिक आकांक्षाओं और द्वारकानाथ की सांसारिक महत्वाकांक्षाओं के बावजूद दोनों में यह एक बड़ी समानता थी कि दोनों ही इहलोकवादी थे, परलोकवादी नहीं। अगर स्वर्ग की प्राप्ति ही लक्ष्य था तो वह यहां पृथ्वी पर और

अभी प्राप्त होना चाहिए।

इस प्रकार द्वारकानाथ सहज भाव से और पूरी तरह राममोहन राय के उदार मानववाद, उनके तर्कसंगत दृष्टिकोण और एक सार्वभौम और अदृष्ट ईश्वर और मनुष्यों के एक सामान्य संसार के अंदर उनकी आस्था में विश्वास करने लगे। राममोहन राय के साथ ही, जो एक प्रकार से उनके नैतिक और बौद्धिक गुरू थे, वे अंग्रेजों के उदार मानववाद, जनतंत्र विचारों की स्वतंत्रता के दावों और न्यायसम्मत शासन में आस्था की ईमानदारी पर भरोसा करने लगे। यह जानते हुए कि उनके देश को अंग्रेजों से बहुत-कुछ सीखना था और यह भी जानते हुए कि भारत और ब्रिटेन दोनों को अपने पारस्परिक संबंध से बहुत कुछ पाना था, उनका यह विश्वास था–संभवतः अपने भोलेपन के कारण–कि अंग्रेज शासकों को स्वयं अपने हित में समानता के आधार पर भारतीयों के सहयोग से एक महान सहकारी राष्ट्रमंडल (कॉमनवेल्थ) का निर्माण करना चाहिए। यह विश्वास जो कालान्तर में केवल भ्रम पर आधारित सिद्ध हुआ, उस समय राममोहन राय और द्वारकानाथ दोनों को बुद्धिसंगत और सही नजर आता था।

'स्वदेशी विचारधारा के विकास' का विवेचन करते हुए प्रसिद्ध देशभक्त और क्रांतिकारी, स्वर्गीय सोमेन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा : "अठारहवीं सदी के अंतिम दिनों और उन्नीसवीं सदी के आरंभ में सारे भारत में केवल दो ही व्यक्ति थे जो भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के संदर्भ में होने वाली आर्थिक क्रांति के ऐतिहासिक महत्व को समझ सके थे। उनमें से एक राजा राममोहन राय (1772-1833) थे और दूसरे द्वारकानाथ टैगोर (1794-1846)। दोनों अपने देश से प्यार करते थे, अपनी राष्ट्रीय विरासत पर उन्हें गर्व था, फिर भी उन्होंने भारत और बाहर की दुनिया में कार्यरत शक्तियों को आंखों पर पट्टी बांध कर कभी नहीं देखा। सारे भारत में उस समय केवल ये दो व्यक्ति ही ऐसे थे जिन्होंने अपने अंदर ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत में आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का जो दौर चल पड़ा था, उसको समझने की ऐतिहासिक चेतना का विकास कर लिया था। दोनों ने आर्थिक क्रांति का स्वागत किया था और उन्हें इस बात का पूरा अहसास था कि आर्थिक शक्तियों की पूर्ण अंतरप्रक्रिया के विकास के लिए अनुकूल ज़मीन तैयार करने के दौरान जो भी राजनीतिक परिवर्तन अनिवार्यतः होंगे, उनसे देश को अपार लाभ होगा।"[1]

निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि राममोहन राय जब कलकत्ते में आकर निवास करने लगे, उस समय पादरी विलियम ऐडम थे या डेविड हेयर[2] या पथुरियाघाट शाखा के उनके चचेरे भाई थे, या उनकी अपनी जिज्ञासा और साहस था, जिन्होंने द्वारकानाथ का राममोहन राय के साथ सम्पर्क करवाया। संभव तो यह लगता है कि मध्यस्थ का काम द्वारकानाथ के चचेरे भाई गोपी मोहन टैगोर ने किया हो, जो टैगोर खानदान के **दलपति** समझे जाते थे और जिनका मेकिन्टोश

एण्ड कम्पनी के साथ व्यापार था, जिसके संस्थापक इनियास मेकिन्टोश राममोहन राय के मित्र थे। संभव है कि विलियम ऐडम और डेविड हेयर से द्वारकानाथ की मुलाकात राममोहन राय के जरिए हुई हो, न कि उनके द्वारा राममोहन राय से। बहरहाल, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि राममोहन राय से उनका परिचय किसने करवाया, बल्कि यह महत्वपूर्ण है, कि जैसे ही इन दोनों की मुलाकात हुई वे एक-दूसरे के आत्मीय बन गये और उम्र में छोटे द्वारकानाथ ने सहर्ष राममोहन राय की बौद्धिक और नैतिक वरीयता स्वीकार कर ली। अपने परिवार में पालन किये जाने वाले परम्परागत हिन्दू रीति-रिवाजों को त्यागे बिना भी, द्वारकानाथ समाज सुधार, धार्मिक सहिष्णुता और बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए चलाये गये राममोहन राय के प्रत्येक अभियान का खुल कर समर्थन करते रहे।

वे नियमित रूप से राममोहन राय के मानिकतल्ला वाले उद्यान-भवन में आत्मीय सभा की मीटिंगों में, 1815 में उसकी स्थापना के समय से ही, लगातार भाग लेते रहे। '18 मई, 1819 के **इंडिया गजट** में 7 मई, 1819 के दिन कृष्ण मोहन मजूमदार के घर पर हुई एक मीटिंग का विवरण छपा था, जहां विभिन्न जातों में सामाजिक समागम और परस्पर खान-पान पर लगे प्रतिबंधों, बाल-विधवाओं को आजीवन ब्रह्मचारिणी का जीवन व्यतीत करने की तथाकथित आवश्यकता, पुरूषों में बहु-विवाह और स्त्रियों के लिए सती-प्रथा आदि का प्रचलन आदि अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ। रिपोर्ट से स्पष्ट है कि किस प्रकार समाज-सुधार नये धर्म-सुधार आंदोलन का ही एक अंग था।'[14] जितने सदस्यों ने मीटिंग में भाग लिया था, वे सभी समान रूप से न तो सुधार-आंदोलन के प्रति ईमानदार थे और न वफादार ही। उदाहरण के लिए, 'जयकृष्ण सिन्हा, जो सभा के संस्थापक सदस्यों में से थे, शीघ्र ही उसे छोड़ कर अलग हो गये और झूठी अफवाहें फैलाने लगे कि मीटिंगों के अवसर पर बछड़े काटे जाते थे और सभा के सदस्य उनका मांस खाते थे।'[15] इस ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है कि रामचन्द्र विद्यावागीश ने भी, जो सभा की मीटिंगों में प्रवचन दिया करते थे और बाद में ब्रह्मोसमाज के आचार्य बन गये थे, 'उस दरखास्त पर हस्ताक्षर किये थे जो गवर्नर जनरल विलियम बेन्टिंक को पेश की गई थी और जिसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि सती-प्रथा के विरुद्ध लागू किये गये अधिनियम को रद्द कर दिया जाय, और इस प्रकार उन्होंने अपने नेता राममोहन राय की नाराजगी मोल ली थी।'[16] लेकिन द्वारकानाथ एक चट्टान की तरह अपनी जगह अटल बने रहे और राममोहन राय के प्रति अपनी वफादारी या अपने उदार मानववाद के सिद्धांत से कभी विचलित नहीं हुए। दरअसल, यह वफादारी और आस्था उम्र के साथ और भी दृढ़ होती गई और राममोहन राय की मृत्यु के बाद भी बरक़रार रही।

1821 में जब आत्मीय सभा की जगह कलकत्ता युनीटेरियन कमेटी स्थापित की गई और उसकी रविवारीय प्रार्थना-सभा पादरी ऐडम के घर पर होने लगी—ऐसा

शायद पादरी विलियम ऐडम की भावना का सम्मान करने के लिए किया गया था क्योंकि उनके धर्म-परिवर्तन की घोषणा कुछ दिन पहले ही की गई थी और उन्हें प्रथम यूनिटेरियन पादरी बनाया गया था – तब अपने चचेरे भाई प्रसन्नकुमार और बैरिस्टर थ्योडोर डिकेन्स और मेकिन्टोश कम्पनी के जी.टी. गॉर्डन के साथ द्वारकानाथ टैगोर नियमित रूप से इन सभाओं में भाग लेते थे।[17] बाद में जब राममोहन राय और विलियम ऐडम ने कलकत्ता में एक यूनिटेरियन मिशन का संगठन किया तो द्वारकानाथ ने इस कार्य के लिए 2500/- रु० का चंदा दिया।[18] स्वयं उनको ईसाई धर्म-सिद्धांतों या रुढ़ि-नियमों में कोई दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन वे अपने वरिष्ट मित्र की रुचि का सम्मान करते थे और उनके प्रभाव के कारण एक ऐसे सार्वभौम ईश्वर में विश्वास करने लगे थे जो मानवमात्र का ईश्वर था और जिसके विभिन्न रूपों और विभिन्न गुणों की विभिन्न धर्म विभिन्न रूपों में व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार के विश्वास को अपना लेना उनके लिए कठिन नहीं था, क्योंकि हिन्दू विचारधारा के अंतर्गत दिव्य-शक्ति की हर संभव परिकल्पना सुगम है और जहां तक द्वारकानाथ का संबंध है, सच तो यह है कि उन्हें स्वयं अपने धर्म के अध्यात्म-दर्शन या सिद्धांत-शास्त्र में कतई दिलचस्पी नहीं थी, यद्यपि वे उसकी विधियों और रीतियों का पालन करने को त्याज्य मानने से कतराते थे। उनकी अपनी जीवन-पद्धति बिल्कुल सांसारिक थी और वे स्वभाव से ही सुखद जीवन के प्रेमी थे, यहां तक कि उन्हें भोगवादी भी कहा जा सकता है, यद्यपि उनके भोगवाद का अपने देशवासियों के प्रति प्रेम और अपने सामाजिक दायित्व की तीव्र चेतना से प्रायश्चित हो जाता था। यदि यह मान लिया जाय कि उनका कोई जीवन-दर्शन भी था, तो वह एक फलवादी का जीवन-दर्शन था, जिसका विश्वास था कि जिस तरीके से भी उनकी अपनी धन-सम्पत्ति और उनके देश की खुशहाली बढ़ती हो (उनके मन में दोनों अगर एक ही चीज़ नहीं थीं तो आपस में जुड़ी हुई अवश्य थीं) और जो भी चीज़ मानवजाति की सुख-समृद्धि की मात्रा में जरा भी इज़ाफ़ा करती हो और मनुष्य की आत्मा को बंधनों से मुक्त करने में सहायक सिद्ध हो, वह अपने आप में शिव और शुभ है। द्वारकानाथ न तो अपने गुरु राममोहन राय या अपने बेटे महर्षि देवेन्द्रनाथ जैसे विद्वान थे और न संत-पुरुष ही, लेकिन कुदरत नें उन्हें अत्यंत प्रबल सहज-बुद्धि प्रदान की थी, जिसके बलबूते पर वे अनावश्यक रूप से विरोध की धूल उड़ाये या अपने सहधर्मियों को नाराज़ किए बग़ैर ही जीवन-पथ पर चलते रहे। उनका विश्वास था कि एक न एक दिन युग की भावना विजयी होगी और सड़े-गले विचार और विश्वासों का लोगों के जीवन पर कोई वास्तविक प्रभाव नहीं रहेगा, चाहे उनका बाह्य रूप ज्यों का त्यों क्यों न बना रहे। दरअसल समय बीतने के साथ हुआ भी ऐसा ही।

1828 में राममोहन राय और उनके निकट सहयोगियों ने, जिनमें द्वारकानाथ

भी थे, यह निर्णय किया कि धार्मिक पूजा को अगर कोई रूप देना है तो सूक्ष्म और संक्षिप्त होने के बावजूद, उनकी साप्ताहिक प्रार्थना का रूप, मूलतः भारतीय होना चाहिए, न कि ईसाई रूप जैसा कि ऐडम के यूनीटेरियन गिरजाघर की रविवारीय सभा की प्रार्थना का था। इस प्रकार ब्रह्म-सभा या समाज की स्थापना हुई, जिसका बज़ाप्ता उद्घाटन बुधवार 20 अगस्त 1828 को किया गया। आरंभ में ब्रह्म-समाज चितपुर रोड पर एक किराये के मकान में स्थापित किया गया था। विचित्र संयोग की बात है कि यह वही मकान था, जिसमें एक समय शोरबोर्न का इंग्लिश स्कूल था और जहां बालक द्वारकानाथ उनके शिष्य थे। एक साल बाद पड़ोस में ही एक जमीन खरीदी गई और उस पर ब्रह्म-समाज का नया भवन निर्मित किया गया। इसके लिए द्वारकानाथ ने भी अपने हिस्से का चन्दा दिया। समाज के न्यास-विलेख पर हस्ताक्षरकर्ताओं की पंक्ति में सबसे ऊपर का नाम द्वारकानाथ ठाकुर का है।

क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, आरंभ में राममोहन राय की इच्छा थी कि प्रार्थना का पाठ और सारी उपासना की कार्रवाई अंग्रेज़ी भाषा में हो ताकि विलियम ऐडम और उनके अन्य यूरोपीय मित्र उसमें भाग ले सकें। अगर ऐसा किया जाता, तो ब्रह्म-समाज का क्या हश्र होता, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। सौभाग्य से द्वारकानाथ की सलाह मान ली गई और यह निर्णय किया गया कि प्रार्थना और उपासना की बाकी कार्रवाई बंगाली भाषा में होगी और साथ ही रीति-पालन की दृष्टि से एक वैदिक ऋचा का पाठ भी शामिल किया जायगा। क्षितीन्द्रनाथ का विवरण अधिक विश्वसनीय नहीं लगता, क्योंकि राममोहन राय का वेदों के प्रति प्रेम और अपनी मातृ-भाषा के विकास में उनकी गहरी दिलचस्पी सर्वविदित है। इसके विपरीत, यह अनुमान गलत न होगा कि उनकी यह इच्छा रही हो कि उनके यूरोपीय मित्र उस समाज में शामिल हों, जो उनकी दृष्टि में एक सुधरा हुआ हिन्दु-चर्च नहीं था, बल्कि एक संयुक्त मंच था जिस पर हर धर्म और सम्प्रदाय के लोग जमा होकर समस्त मानवजाति के सार्वभौम ईश्वर की सम्मिलित उपासना में भाग ले सकें। जो भी हो, द्वारकानाथ ठाकुर के जोर देने पर ब्राह्मण-बिदाई अर्थात् ब्राह्मणों को हर वर्ष भेंट-उपहार देने की प्रथा शुरू की गई।

राममोहन राय और उनके मित्र ब्रह्म-समाज की साप्ताहिक प्रार्थना-सभाओं के अवसर पर मुस्लिम दरबार की चोगा और पगड़ी वाली सामान्य पोशाक धारण किया करते थे, जो उस ज़माने के भद्र-लोक की भी सामान्य औपचारिक पोशाक थी। वे इस बात पर बड़ा ज़ोर देते थे कि चूंकि वे बादशाहों के बादशाह ईश्वर के दरबार में अपने को पेश करने जा रहे थे; इसलिए उन्हें इस पोशाक में ही समाज की प्रार्थना-सभाओं में जाना शोभा देता था। उनके मित्रों में अकेले द्वारकानाथ ही थे जो इस शिष्टाचार का पालन नहीं करते थे और सीधी सादी धोती-चादर वाली बंगाली पोशाक में जाते थे। राममोहन राय इस पर जब उनकी ताड़ना करते तो वे बहाना

करके कहते कि सारे दिन औपचारिक पोशाक में काम करने के बाद वे जब घर गये तो उन्होंने अपनी बंगाली पोशाक में विश्राम किया, फिर समाज में आने से पहले वे इतनी सुस्ती और थकान महसूस कर रहे थे कि उनमें दोबारा औपचारिक पोशाक धारण करने की शक्ति नहीं रही। साथ ही वे यह भी जोड देते कि आदमी को ईश्वर की उपासना सादे से सादे कपड़ों में ही करनी चाहिए।[21]

यह छोटी-सी कहानी धर्म के प्रति दोनों मित्रों के भिन्न विचारों पर रोशनी डालती है। राममोहन राय के धार्मिक अभियान की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए अमिताभ मुखर्जी ने लगातार यह विचार प्रकट किया है कि : 'राममोहन राय मूलतः उस अर्थ में एक धर्म-सुधारक नहीं थे, जिस अर्थ में मध्यकालीन भारतीय इतिहास के रामानन्द, कबीर, नानक और चैतन्य धर्म-सुधारक थे। वास्तव में वे एक उदारपंथी बुद्धिजीवी थे, जिनमें प्रबल सामाजिक चेतना और सर्वतोमुखी विकास की तीव्र उत्कण्ठा थी। धार्मिक सुधार का प्रश्न उनके निकट उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।' उन्होंने **ट्रान्सलेशन ऑफ एब्रिजमेन्ट ऑफ द वेदान्त** (1816) की भूमिका में लिखा है : "हिन्दू मूर्ति-पूजा की विचित्र क्रिया ने जिस तरह की असुविधाजनक या कहें हानिकारक रीतियां चला रखी हैं जो अन्य हर प्रकार की व्रात्य उपासना के मुकाबले में कहीं ज्यादा समाज की गठन को नष्ट-भ्रष्ट करती हैं, उनके बारे में मेरे निरंतर चिन्तन और साथ ही अपने देशवासियों के प्रति मेरी करुण सहानुभूति ने मुझे इस बात के लिए विवश कर दिया है कि मैं उन्हें इस गलत सपने से जगाने के लिए हर संभव उपाय करूं।" किशोरी चन्द मित्रा का शायद यह विचार सही है कि राममोहन राय एक 'धार्मिक बेन्थमवादी' थे जो दुनिया में प्रचलित धर्मों को 'सत्य और असत्य संबंधी अपनी धारणाओं की कसौटी पर नहीं, बल्कि उनकी उपयोगिता, और मानव-सुख को अधिक से अधिक बढ़ाने और दुख-दारिद्रय को कम से कम करने की दिशा में उनकी प्रवृत्ति से जांचते थे।'[22]

इसके विपरीत द्वारकानाथ परम्परागत रीतियों का पालन करते जाने से सन्तुष्ट थे और उन्हें धर्म के सत्य या सामाजिक प्रयोजन में कोई गंभीर दिलचस्पी नहीं थी। यहां तक कि वे जिन रीतियों का पालन करते थे, उन्हें भी वे उतनी गंभीरता से नहीं लेते थे, जितनी गहरी दिलचस्पी वे अपने घर पर राममोहन राय के पधारने की बात में लेते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने बाद में पुरानी स्मृतियों को जगाते हुए बताया कि यद्यपि उनके पिता नियमित रूप से प्रतिदिन अपना पूजा-पाठ करते थे, लेकिन जब कभी और जैसे ही उन्हें पता चलता कि राममोहन राय उनसे मिलने के लिए आये हैं तो वे पूजा को बीच में ही छोड़कर तुरन्त अपने वरिष्ठ मेहमान का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़ते। मनुष्य राममोहन राय उनकी दृष्टि में देवता की उस मूर्ति से ज्यादा पवित्र और महान था, जिसकी पूजा वे करते थे।

इसलिए आश्चर्य नहीं कि यद्यपि वे मूर्ति-पूजन या कथित हिन्दू मूर्ति-पूजा को व्यक्तिगत रूप से बुरा और वर्जनीय नहीं समझते थे, फिर भी उन्होंने ब्रह्म-

समाज की स्थापना में राममोहन राय की भरसक मदद की। दरअसल, क्षितीन्द्रनाथ टैगोर का तो यहां तक दावा है कि, "द्वारकानाथ जैसे सक्रिय और सहृदय मित्र के बिना यह संदिग्ध है कि ब्रह्म-समाज की स्थापना भी हो पाती और अगर हो भी जाती तो वह इतने दिन चल पाता।"[23] यह भी सच है कि 1833 में ब्रिस्टल के स्थान पर राममोहन राय की मृत्यु के बाद ब्रह्म-समाज के बारे में आम लोगों की दिलचस्पी खत्म हो गई थी और अगर द्वारकानाथ टैगोर समाज को चलाने का सारा खर्च उठाने के लिए, जिसमें प्रधान पंडित, रामचन्द्र विद्यावाचस्पति का मासिक वेतन भी शामिल था, आगे न आते तो उसकी साप्ताहिक प्रार्थना-सभाएं धीरे-धीरे बंद हो जाती और ब्रह्म-समाज को शायद अपने द्वार पर ताला डालना पड़ जाता। द्वारकानाथ वार्षिकी ब्राह्मण-विदाई का भी पूरा खर्च उठाते रहे।

राममोहन राय द्वारा की जाने वाली रूढ़िवादी हिन्दू कर्मकाण्ड और विधि की सोलहआना निन्दा से यद्यपि द्वारकानाथ सहमत नहीं थे और उन्होंने स्वयं कभी उसे अंधविश्वास मूलक मूर्तिपूजा कह कर उसकी निन्दा नहीं की थी, लेकिन उन्हें अपने मित्र के सामाजिक और शिक्षा-संबंधी अभियान में ईमानदारी और पूरे हृदय से विश्वास था। हिन्दू-सम्प्रदाय के आम विरोध, यहां तक कि स्वयं अपने परिवार और रिश्ते के अनेक सदस्यों के विरोध की परवाह न करके उन्होंने निर्भीकता से राममोहन राय के सती-प्रथा विरोधी आंदोलन का खुल कर समर्थन किया। गवर्नर जनरल विलियम बेन्टिंक के साथ उनके मैत्रीपूर्ण संबंध थे और कानूनी तौर पर इस निर्दयी प्रथा को बंद करने का निर्णय लेने में द्वारकानाथ के परामर्शों का उस पर अवश्य प्रभाव पड़ा होगा। कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल म्यूजियम के अभि-लेखागार में द्वारकानाथ के नाम लेडी विलियम बेन्टिंक का एक पत्र सुरक्षित है, जिससे यह साक्षी मिलती है कि "कलकत्ता के भारतीय निवासियों में स्वर्गीय राममोहन राय और आप ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने इस मामले में सबसे अधिक पुरजोश दिलचस्पी ली।" राममोहन राय, प्रसन्नकुमार टैगोर, कालीनाथ राय चौधरी तथा अन्य जिन व्यक्तियों ने सती-प्रथा को बंद करने का अध्यादेश जारी होने के बाद लार्ड विलियम बेन्टिक को मान-पत्र भेंट किया था, उनमें द्वारकानाथ का भी नाम था।[24]

सती-प्रथा के विरुद्ध ब्रह्म-समाज के अभियान को छिन्नभिन्न करने के लिए परम्परावादी हिन्दुओ ने राजा राधाकान्त देव के नेतृत्व में, जो एक प्रखर विद्वान और अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति थे, प्राचीन हिन्दू प्रथाओं की रक्षा के निमित्त एक धर्म-सभा स्थापित की। उन्होंने सती-प्रथा को बद करने वाले विलियम बेन्टिंक के अध्यादेश को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए हाऊस ऑफ कामन्स में एक दरखास्त पेश की। यह दरखास्त रद्द कर दी गई – इसका आंशिक श्रेय लंदन में राममोहन राय के प्रभाव और समय पर किये गये उनके प्रयासों को भी है। इस हार

के बाद अपने अस्तित्व का औचित्य ही समाप्त हो जाने से धर्म-सभा शीघ्र ही निष्क्रिय हो गई। कुछ समय बाद द्वारकानाथ को अपने एक अंग्रेज मित्र जान स्टॉर्म का, जो इंगलैंड में था, एक पत्र मिला कि मेकडूगल नाम के एक व्यक्ति को, जिसने धर्म-सभा की दरख़ास्त पेश करने में मदद की थी, बार-बार परम्परावादी हिन्दू-सम्प्रदाय के नेताओं को स्मरण-पत्र भेजने के बावजूद अभी तक उसका पारिश्रमिक नहीं मिला है। द्वारकानाथ की दरियादिली से परिचित होने के कारण मेकडूगल ने अब उनसे आग्रह किया कि 'अपने और अपनी देश की साख रखने की खातिर' वे स्वयं यह रकम चुका दें। 19 अगस्त 1841 को द्वारकानाथ ने मेकडूगल को जो उत्तर दिया वह उनके ही अनुरूप था :

'क्या तुमने मुझसे कहा है, 'अपनी और अपने देश की खातिर' ! मेरा ख्याल है कि तुम एक क्षण के लिए भी यह मान कर नहीं चल सकते कि मैं या एक सुधारक[25] या मानवता का कोई सच्चा सपूत उस रकम को चुकाने के निमित्त एक कौड़ी भी देगा, जो लगता है कि मिस्टर मैकडूगल को देय है, सती प्रथा जैसी दानवी प्रथा बंद करने के विरुद्ध अपील दायर करने के सिलसिले में हुए खर्च के कारण...'[26]

भारत में राष्ट्रीय विकास और एकता को बढ़ावा देने की दिशा में एक आवश्यक कदम के रूप में अंग्रेजी शिक्षा को शुरू करने और उसको अधिक से अधिक फैलाने के प्रति राममोहन राय के उत्साह का द्वारकानाथ पूरा-पूरा समर्थन करते थे। जिस तरह पूर्ववर्ती पीढ़ियों को मुस्लिम शासकों की दरबारी और सांस्कृतिक भाषा फारसी का अध्ययन करना पड़ा था, उसी तरह नई पीढ़ी को अंग्रेज शासकों की भाषा अंग्रेज़ी में, जो एक नये जागरण की वाहक भी थी, पूरी निपुणता हासिल करनी होगी। अंग्रेज़ी भाषा में द्वारकानाथ की दिलचस्पी की जड़ें राममोहन राय से भी अधिक गहरी थीं। उनके पितामह जयराम के बड़े भाई आनन्दीराम, कहा जाता है कि पहले बंगाली थे जिन्होंने विदेशी भाषा में निपुणता प्राप्त की थी और वैसे भी कम्पनी शासन के साथ टैगोर परिवार के घनिष्ट संबंध ने उनके बीच अंग्रेजी भाषा के प्रचलन को प्रोत्साहन दिया था। इसलिए जब 1817 में हिन्दू कालेज[27] के रूप में सार्वजनिक चन्दे से उच्च अंग्रेजी शिक्षा का प्रथम केन्द्र स्थापित किया गया तो द्वारकानाथ उसके संरक्षकों में से एक थे। उनके ज्येष्ठ चचेरे भाई ने कालेज-फंड के लिए दस हजार रूपये दिये थे और क्षितीन्द्रनाथ टैगोर का अनुमान है कि द्वारकानाथ ठाकुर ने भी इतनी ही रकम दी होगी, क्योंकि उन्हें एक विद्यार्थी को हर साल वजीफा प्रदान करने का अधिकार था। यह अधिकार केवल उनको ही प्राप्त था, जिन्होंने कम से कम दस हजार की राशि चन्दे में दी थी।[28]

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति उत्साह ने द्वारकानाथ को अपनी मातृभाषा को प्रोत्साहन देने और उसका विकास करने की आवश्यकता के प्रति उदासीन नहीं बनाया था।[29] राजा राधाकान्त देव के साथ मिल कर उन्होंने 1823 में गौड़ीय समाज की स्थापना की, जो बंगाली भाषा के उत्थान के उद्देश्य से बनायी गई एक सांस्कृतिक संस्था

थी। इसकी पहली मीटिंग हिन्दू कालेज में 8 मार्च, 1823 को हुई थी।[30]

हिन्दू कालेज ही की तरह, इस समाज की स्थापना हिन्दू सम्प्रदाय के प्रगतिशील और रूढ़िवादी दोनों श्रेणी के सदस्यों ने मिल कर की थी। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू समाज के सारे नेता, धार्मिक-उपासना के परम्परागत रूप के प्रति अपने परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण के बावजूद अंग्रेजी और बंगाली दोनों भाषाओं की शिक्षा के प्रसार के बारे में समान रूप से उत्साही थे। द्वारकानाथ और उनके घनिष्ठ चचेरे भाई प्रसन्न कुमार हिन्दू सम्प्रदाय की दोनों श्रेणियों के बीच एक प्रकार की कड़ी थे। सभी जानते हैं कि यद्यपि राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा का आरंभ कराने में पहल की थी, लेकिन हिन्दू कालेज के रूढ़िवादी संरक्षकों ने उन्हें भी संस्थापकों में से एक बनने की इजाजत नहीं दी। लेकिन उनके मित्र और शिष्य द्वारकानाथ के प्रति इन लोगों के हृदय में कोई विरोध या आक्रोश नहीं था, क्योंकि लोग जानते थे कि अपने व्यक्तिगत जीवन में उनके अंदर हिन्दू-विरोधी कोई पूर्वग्रह नहीं था।

फिर भी, राममोहन राय के प्रति द्वारकानाथ इतने अधिक वफादार थे कि जब तीसरे दशक में राममोहन राय ने अपना ऐंग्लो हिन्दू स्कूल स्थापित किया तो द्वारकानाथ ने अपने पुत्र देवेन्द्रनाथ को पढ़ने के लिए वहां भेजना बेहतर समझा, न कि अधिक सम्मानित हिन्दू कालेज में।

राष्ट्र-निर्माण के कार्य में बुनियादी महत्व का एक और सार्वजनिक क्षेत्र था, जिसमें दोनों मित्रों का गहरा सहयोग रहा, और वह था भारतीय प्रेस का विकास। वे सबसे पहले व्यक्तियों में से थे, जिन्हें इस बात का अहसास हुआ कि लोकमत को प्रभावित और संगठित करने में छपे हुए अखबार का कितना बड़ा महत्व है और हालांकि द्वारकानाथ ने अपने वरिष्ठ मित्र की तरह कभी किसी समाचार पत्र का सम्पादन नहीं किया, लेकिन उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाएं निकालने और उनके विकास में भरपूर मदद की। क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार द्वारकानाथ ने ही राममोहन राय को 1821 में अपनी बंगाली की साप्ताहिक पत्रिका **संवाद कौमुदी** निकालने में मदद की थी, जिसके कारण यह संभव हो सका कि वह 1833 में राममोहन राय की मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक बराबर निकलती रही।[31] एस. नटराजन का कहना है कि 'बंगाल के समाचार-पत्र एक बड़ी सीमा तक द्वारकानाथ के आभारी थे, जो अंग्रेजी साप्ताहिक **बंगाल हेरल्ड** और बंगाली **बंग-दूत** को निकालने के लिए जिम्मेदार थे, यहां तक उन्होंने **बंगाल हरकारू, इण्डियन गजट** और **इंग्लिशमैन** को जारी रखने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी थी।'[32]

बंगाल हरकारू आरंभ में एक साप्ताहिक पत्र था, जो 1795 में निकाला गया था। इसके परवर्ती इतिहास का निम्न विवरण उसके 30 जून, 1836 के अंक में प्रकाशित हुआ था: 'दैनिक **हरकारू** का प्रथम अंक (जो भारत में प्रकाशित सबसे **पहला** दैनिक पत्र था) 29 अप्रैल, 1819 को प्रकाशित हुआ था।......समय-समय पर कलकत्ते के अनेक समाचारपत्रों के हित और साधन **बंगाल हरकारू** में विलीन होते रहे हैं और

1 अक्तूबर, 1834 को इसे महत्वपूर्ण सहायता मिली, जब भारत के सबसे पुराने समाचारपत्र को, उसके समस्त साजों-सामान समेत द्वारकानाथ जैसे लोक-भावना से प्रेरित संभ्रान्त भारतीय ने खरीद कर **हरकारू प्रेस** से संबद्ध कर दिया। इस महत्वपूर्ण अनुवृद्धि के कारण हरकारू का अब किसी भी दृष्टि से कोई पत्र मुकाबला नहीं कर सकता – इसके पाठकों की संख्या भारत के किसी भी अखबार से ज्यादा है – **हरकारू** भारत में प्रकाशित पहला **दैनिक** पत्र है और पहला और एकमात्र पांच कालम में छपने वाला पत्र – और **इण्डियन गजट** (जो अभी तक सप्ताह में केवल तीन बार ही छपता है) भारत का सबसे पुराना प्रकाशन है।'

मॉन्टगोमरी मार्टिन ने अपनी पुस्तक **हिस्ट्री ऑफ द ब्रिटिश कॉलोनीज** में लिखा है : '......किसी भी व्यक्ति के प्रति भारतीय प्रेस इतना आभारी नहीं है जितना स्वर्गीय राममोहन राय और उदार-हृदय द्वारकानाथ टैगोर के प्रति।[33] यह याद दिलाना अनुचित न होगा कि द्वारकानाथ से मॉन्टगोमरी मार्टिन का परिचय कैसे हुआ और कैसे वह स्वयं एक पत्रकार बन गया। मूलतः वह एक शल्य-चिकित्सक (सर्जन) था और कलकत्ता में प्रेक्टिस करता था। उसकी सर्जरी **बंगाल हरकारू** के दफ्तर के पास थी, जिसके मालिकों में से द्वारकानाथ भी एक थे और वहां अकसर आते थे। एक दिन वहां जाते समय उनकी बग्घी उलट गई और गिरने से द्वारकानाथ के पैर की हड्डी टूट गई। चूंकि यह दुर्घटना मांन्टगोमरी मार्टिन की शल्य-शाला (सर्जरी) के सामने हुई थी, इसलिए उनको वहां ले जाया गया और वहां उनकी मरहमपट्टी हुई। दोनों मित्र बन गये और द्वारकानाथ को मॉन्टगोमरी की एक पत्रकार की तीव्र आकांक्षा का पता चला। इसलिए द्वारकानाथ ने राममोहन राय, प्रसन्न कुमार टैगोर, मॉन्टगोमरी मार्टिन तथा अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर 1829 में **बंगाल हेरल्ड** नाम से एक अर्ध-साप्ताहिक पत्र निकाला। यह पत्र चार भाषाओं – अंग्रेजी, बंगाली, फारसी और देवनागरी में छपता था और इसके हिस्सेदारों को मानहानि के अनेक दावों में फंसना पड़ा।[34] अंत में वह **बंगाल हरकारू** में विलीन कर दिया गया।

मॉन्टगोमरी मार्टिन एक स्पष्टवादी आदमी था और लाग-लपेट से काम नही लेता था। उसने इण्डिया हाऊस में जो भाषण दिया था, उसके लिए 7 मार्च, 1839 के **फ्रेंड ऑफ इण्डिया** नामक पत्र ने उसकी कड़ी आलोचना की क्योंकि उसने कहा था : 'जो भी हो, हमारी सरकार नाममात्र के लिए ही ईसाई-धर्मी है, लेकिन व्यवहार में वस्तुतः मुसलमानों से भी बुरी है... हमने भारत से अरबों रुपये निचोड़ लिए हैं और इसके बदले में उन्हें दिया क्या है? दुर्भिक्ष! दुर्भिक्ष! दुर्भिक्ष! नदी-नालों में तैरती हुई इंसानों की हजारों लाशें, अपनी सड़ांध से वातावरण को जहरीला और पानी को बदबूदार वमनकारी बनाती हुई, और चालीस हजार मील वर्गभूमि का एकदम निर्जनीकरण!'

1834 में जब क्रटेन्डन का दिवाला निकला, जो प्रतिक्रियावादी टोरी (अनुदार)

अखबार **जॉन बुल** का मालिक था, उस समय द्वारकानाथ ने जे.एच. स्टाक्वेलर को 18000 रु० में उसका प्रेस खरीदने और उसे **इंग्लिशमैन** के नये नाम से एक उदारवादी दैनिक-पत्र के रूप में प्रकाशित करने में मदद की। स्टॉक्वेलर एक दिलचस्प और उद्यमशील व्यक्ति था, साहित्यिक रुचि का और थियेटरप्रेमी। आरंभ में वह 1822 में बंबई आया था, जहां उसे **आर्गस** पत्र का सम्पादन करने के लिए बुलाया गया था। उसने **आर्गस** का नाम बदल कर **बॉम्बे क्रॉनिकल** कर दिया। बाद में, कलकत्ते में सम्पादन कार्य करने के बाद उसने 1844 में **द हैण्डबुक ऑफ इंडिया**[35] प्रकाशित की, जिसे द्वारकानाथ को समर्पित करते हुए उसने लिखा : **'ये पृष्ठ द्वारकानाथ टैगोर को**, जिनके उदात्त गुणों ने अपने देश को, जिसको उन्होंने अपनी उदारता और बेमिसाल सेवा से हर वर्ग के अंग्रेजों के निकट दिलचस्पी का केन्द्र बना दिया है, उस व्यक्ति की ओर से समर्पित हैं, जो उनके गुणों और लोक सेवा की भावना का प्रशंसक है और जो उनके विगत उपकारों का सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता है।'

भारत में मुद्रित अखबारों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। सब से पहला अखबार, दो-पृष्ठी **बंगाल गजट** जनवरी, 1780 में जेम्स ऑगस्टस हिकी ने कलकत्ते से प्रकाशित किया था, जिसने उसके बारे में दावा किया था कि वह 'एक राजनीतिक और व्यावसायिक साप्ताहिक है, जिसके कॉलम सभी पार्टियों के लिए खुले हैं, लेकिन वह किसी से प्रभावित नहीं है', यद्यपि यह संदेह किया जाता था कि कुख्यात 'लेटर्स ऑफ जूनियस' का छद्मनामी लेखक वास्तव में फिलिप फ्रांसिस था। वारेन हेस्टिंग्स के व्यक्तिगत जीवन के बारे में लज्जाजनक खबरें छापने के कारण हिकी अधिकारियों का कोपभाजन बना और 1782 में उसे यह अखबार बंद कर देना पड़ा।[36] इस बीच **इण्डिया गजट** नाम से एक और अखबार निकला, जिसे अधिकारियों का संरक्षण प्राप्त था। कुछ ही सालों में छः और अखबार प्रकाशित होने लगे, सारे के सारे अंग्रेजी में थे, अंग्रेजों द्वारा चलाये गये। निश्चय ही और भी ज्यादा अखबार निकलते, अगर 1799 में उनके ऊपर वेलेजली की तलवार न गिरती। **इण्डिया गजट** के अलावा, जिसे सरकारी संरक्षण प्राप्त था, सात में से और कोई अखबार जिन्दा नहीं रह सका। वेलेजली, जो सैंतीस वर्ष की आयु में एक साल पहले ही गर्वनर जनरल बन कर आया था, अत्यन्त दंभी और अक्खड़ स्वभाव का आदमी था, जैसा कि अपने एक मित्र को लिखे उसके पत्र से स्पष्ट है : 'शाम को मेरे सामने इसके सिवा कोई चारा नहीं कि मैं या तो अपने अधीन लोगों के बीच समय गुजारूं या अकेला रहूं...... मैं शाही बाघ की तरह व्यग्र इधर से उधर चक्कर काटता रहता हूं, साथ में कोई दोस्त गीदड़ भी नहीं, जो मेरे विचारों की तीव्र कटुता को कुछ शांत कर सके।'[37] इसलिए जब शाही बाघ ने टीपू सुलतान पर झपटने की तैयारी की तो उसने इसका पूरा प्रबंध कर लिया कि जंग के मैदान में ब्रिटिश फौज की महानता का यशोगान करने के लिए एक मामूली गीदड़ के

अलावा और कोई जिन्दा न बचे।

इसके मुकाबले में मारक्विस ऑफ हेस्टिंग्स की किंचित उदार नीति ने भारतीय पत्रकारिता के पुनरुद्धार में मदद की और 1816 में **बंगाल गजट** फिर से प्रकाशित हुआ, जो सबसे पहला अंग्रेजी साप्ताहिक था जिसका संपादक एक भारतीय था – गंगाधर भट्टाचार्य, जो एक शिक्षक था और राममोहन राय का सहयोगी था। 1818 में अंग्रेजी मासिक-पत्र '**फ्रेंण्ड ऑफ इण्डिया**' और उसका बंगाली संस्करण **समाचार-दर्पण** निकला। इन दोनों का सम्पादन और प्रकाशन सिरामपुर के मिशनरी मार्शमैन और वार्ड करते थे। इसी वर्ष जॉन पामर के नेतृत्व में कलकत्ते के कुछ व्यापारियों ने **कलकत्ता जर्नल** प्रकाशित किया, जिसका सम्पादक जेम्स सिल्क बकिंघम था, जो राममोहन राय का मित्र था, और संभवतः द्वारकानाथ टैगोर का भी। वह एक असाधारण व्यक्ति था, विद्वान और देश-विदेश घूमा हुआ, बहुविज्ञ और स्वतंत्रचेता, जैसा कि उसके पत्र में प्रकाशित उसकी निम्न टिप्पणी से जाहिर है, जिसमें उसने इंगलैंड और भारत में शासक वर्ग की मनोवृत्ति का वैषम्य दिखाया है:

'एक व्यक्ति जिसे इंगलैंड में प्रतिष्ठित, बुद्धिमान और समाज का उपयोगी सदस्य समझा जाता है, उसे यहां भारत में आवारा, उपद्रवी और मूर्ख समझा जाता है। इंगलैंड में जिसे स्वतंत्र विचार कहा जाता है, उसे यहां दुस्साहस, अहंकार और गुस्ताखी समझा जाता है।'[38]

कलकत्ता जर्नल की उदारतावादी नीति के जवाब में कलकत्ते के कट्टरपंथी अनुदार यूरोपियनों ने 1821 में एक पत्र शुरू किया – **जॉन बुल इन द ईस्ट**। इसका सम्पादक डॉ० ब्राइस एक प्रेसबिटेरियन पादरी था। वह सत्ता का इतना लाड़ला था कि उसे सरकार के स्टेशनरी डिपार्टमैन्ट में एक दायित्वहीन पद दिया गया। जेम्स सिल्क बकिंघम ने इसका ठीक ही मखौल उड़ाया, जिसके लिए उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। इसी साल, 1821 में राममोहन राय ने बंगाली साप्ताहिक **संवाद कौमुदी** प्रकाशित किया और एक वर्ष बाद फारसी साप्ताहिक **मीरात-उल-अखबार** निकाला।

1822 के अन्त में लार्ड हेस्टिंग्स, जिसने वेलेजली द्वारा 1799 में लगाये सेंसरशिप के प्रतिबंधों से भारतीय प्रेस को मुक्त करने का साहसपूर्ण कदम उठाया था, गवर्नर जनरल के पद से रिटायर हो गया। उसके रिटायर होने और उसके उत्तराधिकारी लार्ड एम्हर्स्ट द्वारा आकर पद संभालने के बीच की अवधि में जॉन ऐडम्स ने स्थानापन्न गर्वनर जनरल का काम किया। उन दिनों बकिंघम अर्ध-साप्ताहिक **कलकत्ता जर्नल** का सम्पादन कर रहा था, जिसमें उसने घोषणा की कि उसका कर्तव्य है कि वह : 'गवर्नरों को उनके कर्तव्यों के बारे में सावधान करता रहे, उन्हें उग्रतापूर्वक उनकी गलतियों के बारे में आगाह करता रहे और उन्हें अप्रिय सत्यों के बारे में बताता रहे।' और चूंकि नौकरशाह अप्रिय सत्यों के बारे में सुनना

कभी नहीं पसंद करते, इसलिए जॉन ऐडम्स ने सबसे पहला काम यह किया कि उसने फरवरी, 1823 में बकिंघम को डॉ० ब्राइस और सत्ता के संबंधों के बारे में अप्रिय सत्य का भंडाफोड़ करने की गुस्ताखी के लिए निर्वासित कर वापस इंगलैंड जाने का आदेश जारी किया। इसके तुरंत बाद उसने प्रेस पर अपमानजनक पाबंदियां लगाते हुए एक ऑर्डिनेन्स जारी किया। बकिंघम के निर्वासन और इसके फलस्वरूप **कलकत्ता जर्नल** के बंद हो जाने के बाद, उदार नीतियों की पेरवी करने वाला अंग्रेजी का एकमात्र पत्र **हरकारू** ही बाकी रह गया। उस समय जेम्स सदरलैंड उसका सम्पादक था। बाद में सेम्युअल स्मिथ उसके स्थान पर सम्पादक बना।

उन चार समाचारपत्रों में से, जो प्रेस आर्डिनेन्स का शिकार बने, दो, **संवाद भारती** और **मीरात-उल-अखबार** राममोहन राय के थे। इस बारे में उनका परेशान होना स्वाभाविक था और उन्होंने सरकार और सुप्रीम कोर्ट को आवेदन-पत्र और किंग-इन-कौंसिल को एक अपील भेजने में देर नहीं की। इन आवेदन-पत्रों और अपील का मसविदा स्वयं राममोहन राय ने तैयार किया था और उन पर उनके अलावा उनके निकटतम सहयोगियों के, जिनमें द्वारकानाथ भी थे, हस्ताक्षर थे। यद्यपि इन आवेदन-पत्रों और अपील का न तो भारत सरकार ने और न किंग-इन-कौंसिल ने कोई उत्तर दिया, लेकिन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में आस्था (जो उस जमाने में एक असाधारण बात थी) के वसीयती दस्तावेजों के रूप में और साथ ही अभिव्यक्ति की शालीनता और असाधारण ओजस्विता की मिसाल के रूप में ये आवेदन-पत्र और यह अपील अद्वितीय हैं, जिसके कारण राममोहन राय के अंग्रेज जीवनीकार ने उन्हें 'द एरियोपेजीटिका ऑफ इण्डियन हिस्ट्री'[39] कहा है।

अभिव्यक्ति की भावपूर्णता के अलावा, जो राममोहन राय की खूबी है, इन दस्तावेजों में राममोहन राय, द्वारकानाथ और उनके अग्रगामी सहयोगियों के छोटे से दल की राजनीतिक आस्था का स्पष्टीकरण किया गया है। यह आस्था, भारत के परवर्ती राजनीतिक नेताओं की आस्था की तरह ब्रिटिश संस्थाओं और जीवन-पद्धति की जानकारी से प्रभावित थी और इस विश्वास पर आधारित थी कि विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जितनी व्यक्ति के विकास के लिए, उतनी ही राज्य के भले के लिए जरूरी है। 'स्वतंत्र प्रेस ने अभी तक कभी इन्कलाब नहीं पैदा किया, लेकिन जहां सार्वजनिक विचार-विमर्श के लिए स्वतंत्र प्रेस नहीं रहा, वहां अनगिनत इन्कलाब हुए हैं।'[40] अंग्रेज सम्राट के नाम भेजी अपील में स्पष्ट संकेत किया गया है कि यद्यपि पूर्ववर्ती शासकों के जमाने में, चाहे वे हिन्दू रहे हों या मुसलमान, एक भारतीय पुरुष देश के ऊंचे से ऊंचे पद को सुशोभित कर सकता था, लेकिन वह अब कम्पनी राज में ऐसा नहीं कर सकता, फिर भी भारत के निवासी इसे दैवी कृपा ही समझते हैं कि ब्रिटिश शासन ने उन्हें पुराने शासकों के निरंकुश, स्वेच्छाचारी व्यवहारों से बचा कर उन्हें न्यायिक संहिता के संरक्षण में रखा है, जो सब नागरिकों के साथ एक जैसा व्यवहार करती है। '...आपकी आज्ञाकारी प्रजा ने,

इसी कारण, अंग्रेजों को आततायी विजेताओं के दल के रूप में नहीं देखा, बल्कि मुक्तिदाताओं के रूप में देखा है और वह शाहे आलम आपको एक शासक के रूप में ही नहीं बल्कि अपने पिता और संरक्षक के रूप में देखती है।"[41] माना कि इस तरह का विश्वास आजकल नहीं प्रकट किया जाता, लेकिन उस समय जब यह अपील दायर की गई थी तब और उसके बहुत सालों बाद तक भी, अधिकांश भारतीय बुद्धिजीवियों की यही भावना थी।

राममोहन राय और द्वारकानाथ दोनों ही अंग्रेजों के उदात्त नैतिक गुणों, उनके उदार मानववादी दावों की सचाई और इस कारण ब्रिटिश शासन की आधारभूत परोपकारिता और भारत की तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रिटिश शासन की आवश्यकता के बारे में ईमानदारी से विश्वास करते थे। ऐसा नहीं है कि वे अपने देश के लिए स्वायत्त-शासन की कामना या कल्पना नहीं करते थे। वे दरअसल एक स्वतंत्र भारत के स्वप्न देखते थे, लेकिन उनका विश्वास था कि ऐसा स्वतंत्र भारत आधी सदी तक अंग्रेजों के अधीन रहने के बाद अधिक कुशलतापूर्वक अपना प्रबंध चला सकेगा (दरअसल भारत को विदेशी गुलामी से आजाद होने में एक सदी से कुछ ज्यादा ही समय लगा।) हालांकि उन्हें अपने देशवासियों से प्यार था और वे उनके हित-साधक थे, लेकिन उनके चारित्रिक गुणों के बारे में उनकी बहुत ऊंची राय नहीं थी – इसलिए नहीं कि भारतीय लोगों में निसर्ग क्षमताओं की कमी थी, बल्कि इसलिए कि जात-पांत के भेदभाव और अंधविश्वासों के सहारे चलने वाले हिन्दु-समाज के विच्छिन्न संगठन के कारण, जिसने यहां के लोगों की उद्यमशीलता और पहलकदमी की शक्ति को पंगु बना दिया था। उनका विश्वास था कि भारतीय चरित्र तत्कालीन 'निम्न स्तर' को निरंतर 'उच्च कोटि' के यूरोपीय चरित्र, संस्थाओं और जीवन-मूल्यों के समागम से 'ऊंचा उठाने' की जरूरत थी। वह ऐसे युग की कामना करते थे जब भारत और ब्रिटेन एक बृहद् और बेहतर साम्राज्य के राष्ट्रमण्डल में बराबरी के दरजे के और बराबर के दायित्वों का वहन करने वाले साझीदार बनेंगे। वे चाटुकार पिट्ठू नहीं थे, न ऐसे व्यक्ति जिन्हें अपने देश के उज्ज्वल भविष्य में आस्था नहीं थी। बल्कि वे सचमुच स्वप्नद्रष्टा थे, उसी तरह के जैसे 1918 तक गांधी थे और उदारवादी नेता तो और भी काफी बाद तक स्वप्नद्रष्टा मात्र बने रहे थे। द्वारकानाथ ने बाद में जो कुछ किया और कहा, उसको सही परिप्रेक्ष्य में रख कर समझने के लिए उनके राजनीतिक विश्वास के इस मूलभूत पहलू को जानना अत्यंत जरूरी है। ऐतिहासिक संदर्भ से हट कर उनका मूल्यांकन करना दरअसल उनका अवमूल्यन करना होगा।

एक और सार्वजनिक कार्य, जिसमें दोनों मित्रों ने सहयोग किया और जिसका उनके सती-विरोधी अभियान की तरह ही हिन्दू समाज के एक वर्ग ने विरोध किया, वह था भारत में यूरोपीय बस्तियों का समर्थन। स्वतंत्र व्यापार की विचारधारा की ज़ोर-शोर से चर्चा थी और इंगलैंड हो या भारत, यूरोपीय व्यापारी

वर्ग को भारत के साथ होने वाले व्यापार पर कम्पनी की इजारेदारी से सख्त नाराजगी थी। 1833 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर के नवीकरण से ऐन पहले उन्होंने अपना आंदोलन तेज कर दिया था। राममोहन राय और द्वारकानाथ टैगोर दोनों ने ही इस प्रस्ताव का पूरा समर्थन किया कि दोनों देशों के मध्य होने वाला व्यापार स्वतंत्र और सबके लिए खुला होना चाहिए और यूरोपियनों द्वारा मुफस्सिल नगरों में जमीन खरीदने पर कोई पाबन्दी नहीं होनी चाहिए। इस उद्देश्य से दिसम्बर, 1829 में कलकत्ते के टाऊन हाल में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया।[42] 'इस मीटिंग के महत्व की अवहेलना नहीं की जा सकती। यह शायद पहला सार्वजनिक अवसर था जब उभरते हुए मध्य-वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले भारतीय और यूरोपीय प्रवक्ता एक ही मंच पर एकत्र हुए थे।'[43] द्वारकानाथ ने भारत में रहने वाले यूरोपियनों पर से हर प्रकार की पाबंदियां हटाने की मांग का एक प्रस्ताव रखा, जिसका अनुमोदन उनके चचेरे भाई प्रसन्न कुमार ने किया। उन्होंने अपने भाषण में बताया कि नील की खेती से कितना फायदा हुआ है और उन्होंने दावा किया कि इससे जमींदार और रैय्यत दोनों ने लाभ उठाया है और इस संबंध में स्वयं अपनी एक जमींदार तथा अपने रिश्तेदारों और दोस्तों की जमींदारियों के उदाहरण देते हुए कहा कि नील की खेती करने से उनकी हालत पहले से बहुत बेहतर हो गई है। 'अगर एक ही वस्तु के उत्पादन में', उन्होंने आगे कहा, 'यूरोपीय तकनीकी कौशल के इस्तेमाल से इतने अधिक लाभ प्राप्त हुए हैं, जिनका वर्णन मैंने अभी किया है, तो इस देश में अनेक किस्म की जिन वस्तुओं को पैदा करने की क्षमता है, अगर उन सभी के उत्पादन में निर्बन्ध रूप से अंग्रेजों के तकनीकी ज्ञान और कौशल, पूंजी और उद्योग का इस्तेमाल करके उतनी ही अधिक मात्रा में और उतनी ही बढ़िया किस्म की जैसी कहीं भी दुनिया में बनती हैं, वस्तुएं बनाई जायें, जो यूरोपीय लोगों से मुक्त आदान-प्रदान के बगैर संभव नहीं है, तो आप पूर्वानुमान कर सकते हैं कि इससे और भी कितने अधिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।'

उन्होंने यह स्वीकार किया कि नील की खेती करने वाले कुछ अंग्रेज जमींदारों का व्यवहार निर्दोष नहीं था। लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि भारत में यूरोपीय उद्योग से जितने फायदे हासिल हैं उनकी तुलना में नुक्सान कहीं कम हैं। राममोहन राय ने इस मीटिंग में भाषण देते हुए इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए और कहा कि 'यूरोपीय लोगों के साथ हमारा सम्पर्क और आदान-प्रदान जितना ही अधिक होगा, उतना ही साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक मामलों में हमारा अधिक सुधार होगा।' द्वारकानाथ टैगोर की तरह उन्होंने भी नील की खेती करने वाले अंग्रेजों के कार्यों की प्रशंसा की, हालांकि उन्होंने स्वीकार किया कि इनमें से कुछ काश्तकारों पर अत्याचार करने के अपराधी थे।[44]

इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि उसी **समाचार दर्पण** ने, जिसमें से ये

उद्धरण लिए गये हैं, अपने 2 जनवरी, 1830 के अंक में 'एक जमींदार का पत्र' प्रकाशित किया, जो सबसे पहले बंगाली समाचारपत्र **समाचार चन्द्रिका** में छपा था और जिसमें द्वारकानाथ के प्रस्तावों और तर्कों की सख्त आलोचना की गई थी। एक संवाददाता का यह तर्क तो महात्मा गांधी को भी अत्यंत प्रिय लगता : 'पहले वक्तों में गरीबी और मुफलिसी में रहने वाली इस देश की औरतें चरखे पर सूत कात कर किसी तरह जीने का साधन जुटा लेती थीं, लेकिन जब से मशीन से बने सूत का इंगलैंड से आयात किया जाने लगा है, वे भूखों मर रही हैं। जरा सोचिए, कि अगर इंगलैंड में रहने वाले उद्योगपति इस देश के निवासियों को अपनी आजीविका से वंचित कर सकते हैं तो अगर वे इस देश में आ जायें तो उनसे बचाव का कौन-सा मार्ग होगा?'

अनेक रूढ़िवादी हिन्दुओं को, जिनमें से एक **चन्द्रिका** का सम्पादक भी था, यह भय था कि अगर यूरोपियनों को भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आकर बसने की इजाजत दी गई तो 'भारतीय जाति-भ्रष्ट हो जायेंगे...' यह बात भी नोट करने की है कि 'बिशप हेबर को बंगाल के नील बगानों के अंग्रेज मालिकों के निरंकुश और अत्याचारपूर्ण व्यवहार और साथ ही भारत में आये 'निम्न स्तर के यूरोपियनों के आम तौर-तरीकों' का पूरा पता था, जिसके कारण वे न सिर्फ यूरोपियनों को अपने "उपनिवेश बसाने की खुली छूट" देने के विचार के विरोधी थे, बल्कि चाहते थे कि उनकी संख्या में भी इजाफा न हो।[45] बेप्टिस्ट मिशन के साप्ताहिक पत्र **फ्रेंड ऑफ इण्डिया** ने भी उपनिवेशन के प्रस्ताव की निन्दा की।

द्वारकानाथ के व्यक्तिगत जीवन पर राममोहन राय का प्रभाव अधिक गहरा नहीं था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जोरासेन्को के ठाकुर कट्टर निरामिष भोजी थे। इसके विपरीत, ब्राह्मण होते हुए भी, राममोहन राय पर मुसलमानों की जीवन-पद्धति का गहरा प्रभाव था और मांस-मछली बड़े स्वाद से खाते थे, यद्यपि गो-मांस से उन्हें सख्त परहेज था। वे इस्लामी धर्मविज्ञान के ऐसे प्रकांड विद्वान थे कि मुसलमान उन्हें एक 'जबर्दस्त मौलवी' मान कर उनका आदर करते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार डा. ए.के. मजूमदार के अनुसार, 'ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राममोहन राय से पहले किसी विख्यात ब्राह्मण ने कभी इस्लाम का गंभीर अध्ययन किया हो।'[46] यद्यपि वे मुसलमानों के साथ बैठकर भोजन नहीं करते थे। (इस डर से कि उन्हें जाति-भ्रष्ट न कर दिया जाय) लेकिन उनका बाबर्ची मुसलमान था। युरोपियनों के साथ सम्पर्क होने के कारण, वे कभी-कभी शेरी का एक गिलास भी पीते थे। संभव है कि यूरोपियनों की संगत में शेरी की चुस्कियां लेना सीखने से पहले ही वे तांत्रिक साधकों, विशेष कर अपने मित्र और गुरु हरिहरानन्द तीर्थस्वामी के साथ अपने गहरे संबंध के कारण मदिरापान के विरुद्ध अपने पूर्वग्रहों का त्याग कर चुके हों, जैसा कि महर्षि देवेन्द्रनाथ की आत्म-कथा में तत्संबंधी उल्लेख से अनुमान किया जा सकता है।

एक बार देवेन्द्रनाथ मथुरा में एक साधू से मिलने गये। उसके कमरे में रखी पुस्तकों के बारे में उन्होंने लिखा : मैंने देखा कि वे सब राममोहन राय की कृतियों के हिन्दी अनुवाद थे। उस साधू ने ब्रह्म की भक्ति में महानिर्वाण तंत्र से नमस्ते सते का पाठ किया (जो राममोहन राय का सबसे प्रिय तंत्र था)। मैंने देखा कि हमारे धार्मिक सिद्धांत बहुत कुछ एक जैसे थे। मुझे एक मामूली गली-कूचे में रहने वाले ऐसे व्यक्ति को देख कर आश्चर्य हुआ। मैंने उसे अपने बजरे पर निमंत्रित किया। वह आया और उसने मेरे साथ भोजन भी किया, मुझे सिर्फ उसको थोड़ी-सी **करन** (शराब) देनी पड़ी। शराब पीते हुए उसने यह सूत्र सुनाया : **अलिन विन्दुमात्रीना त्रि-कटी कुलम उद्धारेत** अर्थात 'जो शराब की एक बूंद भी पीता है, वह पूर्वजों की तीन करोड़ पीढ़ियों का उद्धार करता है।'[47] अपनी दिल्ली यात्रा का वर्णन करते हुए महर्षि ने लिखा, 'यहां मेरी एक तांत्रिक ब्रह्म भक्त सुखानन्द स्वामी से भेंट हुई, जो हरिहरानन्द तीर्थस्वामी का शिष्य था। राममोहन राय इन हरिहरानन्द के बड़े घनिष्ठ मित्र थे, जो उनके उद्यान-भवन में आकर ठहरते थे और जिनके छोटे भाई रामचन्द्र विद्यावागीश थे। मैं अभी दिल्ली पहुंचा ही था कि सुखानन्द स्वामी ने मेरे लिए अंगूर और मिठाइयां भेजीं। मैंने भी उन्हें कुछ उपहार भेजे और उनसे मिलने गया। इसके बाद वे मुझे मिलने आये और इस प्रकार उनके सम्पर्क में आने और उन्हें जानने का मौका मिला। सुखानन्द स्वामी ने कहा : 'मैं और राममोहन राय दोनों ही हरिहरानन्द तीर्थस्वामी के शिष्य हैं। राममोहन राय भी मेरी तरह ही एक तांत्रिक थे।'[48]

जो भी हो, इसमें जरा भी संदेह नहीं कि राममोहन राय के प्रभाव के कारण ही द्वारकानाथ टैगोर और उनके छोटे भाई रामनाथ टैगोर अपनी पारिवारिक वर्जनाओं से मुक्त हो सके और चाव से मांस-मदिरा का सेवन करने लगे, जैसा कि बाद में रामनाथ की पत्नी ने इस बात की पुष्टि की थी। 'दोनों भाइयों ने जब पहली बार मांस खाया तो उन्हें उल्टियां आने लगीं। लेकिन लगातार कोशिश करने के बाद वे मांस खाने के आदी हो गये। मिट्टी की जिन हांडियों में मांस पकाया जाता था, वे बाद में फेंक दी जाती थीं। बाद में यूरोपियनों के साथ जब दोनों भाइयों का सम्पर्क और गहरा होता गया, वे उनके साथ एक ही मेज पर बैठ कर मांस-मदिरा का सेवन करने लगे। शुरू में उनका खाना दो ब्राह्मण रसोइये, आनन्द और परमानन्द पकाते थे। अब मुसलमान बावर्ची तैनात किए गये, जिनका चुनाव राममोहन राय करते थे। यहां तक कि राममोहन राय के आग्रह पर ही द्वारकानाथ मदिरा भी पीने लगे थे, लेकिन वे इसके आदी नहीं हुए। कहा जाता है कि भोजन के समय वे शेरी का एक छोटा गिलास ही लेते थे। वे शराब इसलिए नहीं पीते थे कि उन्हें इसमें मजा आता था, बल्कि उन लोगों की पांत में शरीक होने के लिए पीते थे, जो अंधविश्वासों से लड़ने के नाम पर पुरानी रूढ़ियों को तोड़ना चाहते थे। जहां तक ज्ञात है, द्वारकानाथ टैगोर ने जीवन के उत्तरार्ध में शराब एकदम छोड़ दी

थी।"[49] लेकिन इस आखिरी बात की कि द्वारकानाथ ने जीवन के उत्तरार्ध में शराब छोड़ दी थी, तत्कालीन प्रमाणों से पुष्टि नहीं होती। द्वारकानाथ की मृत्यु इंगलैंड में हुई थी, जहां अपनी आकस्मिक बीमारी से पहले वे अपने इष्ट-मित्रों को पार्टियां देते थे और उनकी पार्टियों में जाते थे, जहां खुले हाथों कीमती शराब के दौर चलते थे। यहां तक कि विख्यात आइरिश देशभक्त और मद्यत्याग के उपदेशक, पादरी थियोबॉल्ड मैथ्यूज भी, जिनके द्वारकानाथ बड़े प्रशंसक थे और जिनका चित्र उन्होंने पेन्ट करवाया था, उनसे शराब को हाथ न लगाने का वायदा नहीं करवा सके।

ऐसा लगता है कि इंगलैंड की यात्राओं से काफी पहले ही, जहां 1846 में उनका देहान्त हुआ और शायद 1833 में राममोहन राय की मृत्यु के तुरंत बाद ही द्वारकानाथ के रहन-सहन के ढंग में एक निश्चित परिवर्तन आया था। 1838 में अपनी मां अलकासुंदरी की मृत्यु के साथ ही वर्जनाओं का अन्तिम सूत्र भी टूट गया और वे खुल्लम-खुल्ला एक भोगवादी बन गये। कलकत्ता के उपनगर बेलगच्छिया में स्थित उनका भव्य बंगला शानदार पार्टियों और अक्सर बेहद खर्चीले मनोरंजनों के लिए प्रसिद्ध था। 1843 में एक अभिजातवर्गीय जर्मन कलकत्ते में आया था।[50] वह द्वारकानाथ के व्यक्तित्व और उनकी जीवन-पद्धति के बारे में एक अत्यंत स्पष्ट और प्रामाणिक विवरण छोड़ गया है, जो यहां पर उद्धृत करने योग्य है:

"मैं बड़ी खुशी से द्वारकानाथ टैगोर से मिलने के लिए उनके यहां गया। मैं उनसे एक बार (साम्राज्ञी) के दीवानखाने में लंदन में मिल चुका था, जहां यह बुद्धिमान और अत्यंत शालीन और गौरवशाली हिन्दू अपनी साम्राज्ञी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने गया था। मैं जिस समय भारतीय संसार का निरीक्षण करने में व्यस्त था, उसने एक पैनी, अन्तर्भेदी दृष्टि से योरप के तौर-तरीकों की जांच-परख की, और उसका विचार था कि उसने जो समय वहां बिताया था वह उसके जीवन का सबसे आनन्ददायी काल था। यद्यपि उसके और उसके परिवार के बीच इस बात को लेकर कुछ मतभेद पैदा हो गये हैं, वह गंभीरता से पुनः योरप वापस जाने, अपने दूसरे बेटे को इंगलैंड में शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजने का विचार कर रहा है।[51] राममोहन राय के बाद, द्वारकानाथ टैगोर अपने देश के सबसे विख्यात लोगों में से एक है; वह भी उनकी गलतियों और उनमें फैले भ्रष्टाचार की निन्दा करते हैं, लेकिन वह अपने देशवासियों के प्रखर मस्तिष्क की ऊर्जा और उनके अपार साहस को संजोना चाहता है। उसकी बुद्धि और भावना से परखें तो वह मुझे हिन्दू से अधिक ईसाई नजर आता है, हालांकि उसने अपना धर्म नहीं छोड़ा है और उसकी कुछ रूढ़ियों का वह अब भी पालन करता है। उसकी पत्नी एकदम अलग रहती है,[52] और उसका बड़ा बेटा अपने पिता के धार्मिक विचारों में भाग नहीं लेता। इस विलक्षण आदमी को वार्तालाप के दौरान देखते ही बनता है, जब वह अपना

नन्हा-सा कोमल हाथ अपनी दाढ़ी पर फेरता है और उसकी सुंदर, बड़ी-बड़ी आंखें बुद्धि की प्रखर ज्योति बिखेरती हुई एक विहंगम दृष्टि से चारों ओर देखती हैं तो उस समय उसके मन में उठने वाली विचारों की तरंगें उद्‌भासित हो जाती हैं। द्वारकानाथ टैगोर, जो अपनी योग्यता और उद्यमशील भावना के कारण भारत के सबसे धनी व्यापारियों में से एक बन गया है, उस मेहमाननवाज देश का सबसे बड़ा मेहमाननवाज व्यक्ति है : यह उसका सौजन्य था कि उसने मुझे एक उत्सव में अपने बंगले पर आमंत्रित किया...

'उसका बंगला कलकत्ते से करीब पांच मील दूर एक छोटे-से पार्क में स्थित है, जो अंग्रेजी शैली से संवारा गया है और जिसमें शीतोष्ण परिदृश्य की सुंदरताओं का भी मिश्रण है। इस शान्त, एकान्त बंगले के गिर्द एक उद्यान है, जिसके लॉन की शोख, मखमली हरियाली के बीच फूलों की सुंदर क्यारियां हैं, जिन्हें स्वच्छ पानी की नालियां हरा-भरा बनाती हैं और जिनके पीछे आम, इमली और केलों के पेड़ों के कुंज हैं। पूरे बंगले के गिर्द नारियल और ताड़ वृक्षों की बाढ़ लगी हुई है। यह रमणीय स्थान नव-विवाहित दम्पतियों की मनपसंद सैरगाह है और इस बंगले का मेहमाननवाज मालिक अक्सर इन दम्पतियों को अपना हनीमून मनाने के लिए वहां निमंत्रित कर लेता है। बंगला दो-मंजिला है और पूरी तरह से उसे यूरोपीय शैली में सजाया गया है, और कलात्मक मूर्तियों और चित्रों से अलंकृत किया गया है...

'हमारे मेजबान के भाई और एक भतीजा भी उस दावत में शामिल हुए। उसमें कीमती से कीमती शराबों, यहां तक कि पवित्र पशु के भुने हुए टिक्कों की कोई कमी नहीं थी। भोजन के बाद वहां छः बाईयां अपने साजिन्दों के साथ प्रकट हुईं। उनका नृत्य इतना प्रशंसनीय नहीं था, जितने उनके सुंदर और कोमल हाथ-पांव और शरीर के उभार थे...'

द्वारकानाथ की तरह राममोहन राय यद्यपि भोगवादी नहीं थे और कुल मिला कर सीधा-सादा जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन उनकी सादगी में भी एक शालीनता थी, जो फूहड़पन और दिखावटी आडम्बर से पूरी तरह मुक्त थी, जिसे भारत में आमतौर पर 'उच्च विचार' की मिसाल के रूप में सराहा जाता है। अपने कलकत्ते की कोठी में राममोहन राय उदारतापूर्वक लोगों को दावतें देते थे और कुछ पाश्चात्य मेहमानों ने उनके मनोरंजन के लिए बुलाई गई बाईयों का भी उल्लेख किया है। लंदन में राममोहन राय का समाज की उच्चतम श्रेणी के बीच उठना-बैठना था और अभिजातवर्ग और धर्म के नेताओं के लिए समय निकालने और समकालीन राजनीतिक समस्याओं और चर्चाओं में निरंतर व्यस्त रहने के बावजूद वे राजधानी के सामाजिक जीवन के कम गंभीर मानवीय पहलू में भाग लेने से अपने को तटस्थ नहीं रखते थे। वे दावतों और पार्टियों में शरीक होते थे और थियेटरों में जाते थे और उन्होंने वहां अनेक नाटक देखे थे। प्रसिद्ध अभिनेत्री फेनी

केम्बल ने 22 दिसम्बर, 1831 की तारीख को अपनी डायरी में लिखा : 'आज शाम को **इसाबेल** नाटक मंचित हुआ। डेवनशायर के ड्यूक के बॉक्स में राजा राममोहन राय बैठे थे, और बिलख-बिलख कर रो रहे थे, बेचारे!' एक दूसरे स्थान पर उसने दर्ज किया है कि एक 'सुखद पार्टी' में मॉन्टेग्यू परिवार के यहां 6 मार्च 1832 को राजा से उसकी मुलाकात हुई। 'हम तत्काल निरर्थक किन्तु बेहद दिलचस्प वार्तालाप में तल्लीन हो गये, जो काफी देर तक चलता रहा और जिसमें मुझे बड़ा आनंद आया। उनका रूप-रंग अत्यन्त प्रभावशाली है। उनकी चित्रोनम पोशाक और रंग लंदन के किसी भी बॉल-रूम को निश्चय ही एक दर्शनीय वस्तु बना देते हैं। अत्यंत बौद्धिक होने के अलावा उनकी मुखाकृति में अपार माधुर्य और सौम्यता की अभिव्यक्ति है।' तीन दिन बाद उसने दर्ज किया कि 'उसे पूरब के बुद्धिमान लोगों में से सबसे अधिक सौम्य व्यक्ति के यहां से एक मोहक पत्र और कुछ भारतीय पुस्तकें प्राप्त हुई हैं।'[53]

यद्यपि दोनों मित्रों में बहुत-सी बातें सामान्य थीं जिन्होंने उन्हें एक अटूट सूत्र में बांधे रखा, लेकिन उनके स्वभाव और उनकी अभिरुचियां काफी भिन्न थीं। यद्यपि राममोहन राय को अपधर्मी कह कर उनकी निन्दा की जाती थी, लेकिन दरअसल वे अत्यंत धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और धार्मिक और सामाजिक सुधार की उत्कट नैतिक भावना से प्रेरित थे। इसके विपरीत धर्म में द्वारकानाथ की दिलचस्पी केवल औपचारिक मात्र थी। उनकी प्रेरणा का स्रोत भौतिक सफलता पाने और आधुनिक यूरोपीय अर्थों में प्रगति करने की भावना थी। पाश्चात्य विचारधारा और नीतिशास्त्र की चुनौती कबूल करते हुए राममोहन राय ने यूरोपीय और भारतीय विचारधाराओं में मुख्यतः शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक समन्वय और सांझेदारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया, जबकि उनके मित्र द्वारकानाथ ने पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति की चुनौती कबूल करते हुए यूरोपीय संगठन और तकनीकी कौशल और भारतीय उद्यम और पूंजी के बीच एक आर्थिक समन्वय और सांझेदारी कायम करने का प्रयत्न किया।[54] इन मूलभूत भिन्नताओं के बावजूद, राममोहन राय का कोई भी समकालीन द्वारकानाथ से ज्यादा उनका वफादार नहीं था और न उतना दृढ समर्थक ही। 25 दिसम्बर, 1842 के **इंग्लिशमैन** ने अपने सम्पादकीय में लिखा : 'द्वारकानाथ के चरित्र की हमारी दृष्टि में उज्ज्वल विशेषता यह है कि वे आरंभ से ही और दृढ़तापूर्वक राममोहन राय के साथ जुड़े रहे, उस समय भी जब जोय किसन सिंह और दूसरे प्रभावशाली बाबू लोग उनका साथ छोड़ गये थे। उनकी योग्यता और उनके प्रभाव के फलस्वरूप राममोहन राय द्वारा प्रतिपादित उदारवादी सिद्धांतों को, कट्टरपंथी **धर्मसभा** के अस्तित्व के बावजूद, कलकत्ते के हिन्दू निवासियों ने आम तौर पर अपना लिया है।'

यह तथ्य कि राममोहन राय धार्मिक कर्तव्य पूरा करने की भावना से काम करने वाले मुख्यतः एक समाज सुधारक थे, इस बात पर रोशनी डालता है कि हिन्दू-

समाज को रूढ़ मान्यताओं का साहसपूर्वक विरोध करने के बावजूद उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा था कि अपने हिन्दू आलोचकों की दृष्टि में वे जाति-भ्रष्ट न समझे जायें। इसलिए वे मुसलमानों और यूरोपियनों के साथ एक ही मेज पर बैठ कर कभी भोजन नहीं करते थे। यहां तक कि इंगलैंड में भी उन्होंने अपने अंग्रेज मित्रों के साथ यह सावधानी बरती, जिनकी संख्या काफी बड़ी थी। लेकिन मेकिन्टाश एण्ड कम्पनी का दिवाला निकल जाने के बाद, जो कलकत्ते में उनके बैंकर थे, वे आर्थिक कठिनाइयों में फंस गये, और इसके बाद ही, एक प्रकार से विदेश में अपने दीर्घ प्रवास के बाद और अपने जीवन के अंतिम दिनों में ही (उनके मित्र बाबू नन्द किशोर बोस की साक्षी के अनुसार) उन्हें, जिन्होंने हमेशा 'अंग्रेज़ों के साथ बैठ कर खाने से परहेज किया था, आवश्यकतावश कारपेन्टर्स के यहां भोजन करने के लिए मजबूर होना पड़ा।'[55]

वे भली भांति जानते थे कि रूढ़िवादियों के लगाये प्रतिबंध को तोड़ कर 'काला सागर' पार करने के अपराध में भारत लौटने पर उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया जायगा, अगर वे उनकी बतायी प्रायश्चित की अपमानजनक रीतियों के आगे नहीं झुकेंगे, जैसा कि निश्चय ही वे नहीं करते। तो फिर वे अपने विदेशी मेजबानों के साथ बैठ कर खाने पर लगी इन निरर्थक वर्जनाओं को तोड़ने से क्यों हिचकिचाते थे? संभव है कि सोचते हों कि एक धार्मिक और नैतिक नेता होने के नाते उन्हें अपने अनुयायियों की भावनाओं पर जरूरत से ज्यादा दबाव नहीं डालना चाहिए, जिन्होंने यद्यपि मूर्तिपूजा तो त्याग दी थी, लेकिन जो अभी तक अनेक पुरानी प्रथाओं और पूर्वग्रहों को अपनाये हुए थे। या इसका कोई और कारण था? एक महान पुरुष के मन की संश्लिष्टताओं की टोह लगाना आसान काम नहीं है।

लेकिन एक धार्मिक नेता न होने के कारण द्वारकानाथ के मन में अपने अनुयायियों के प्रति उत्तरदायी होने का कोई भाव नहीं था। उनके अनुयायी थे भी नहीं। वे आरंभ से ही एक ऐसे व्यक्तिवादी, उद्यमी और उत्साही व्यक्ति थे जो अमीर बनने और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करने पर तुले थे, और अन्त तक वे ऐसे ही रहे। यद्यपि उनमें समाज के प्रति अपने दायित्व की भावना काफी प्रबल थी, लेकिन उन्होंने अपने लिए एक नैतिक पुरुष की छवि बनाने की विवशता कभी महसूस नहीं की। वे खुलेआम एक दुनियादार आदमी थे और यह स्वीकारने में उन्हें कोई शर्म नहीं थी। वे स्वस्थ और तेजस्वी मन के और मानवोचित सहृदय स्वभाव के थे, अपने ढंग के सच्चे और ईमानदार व्यक्ति, और इसी कारण अत्यंत प्रशंसनीय और स्तुत्य। जब वे पहली बार इंगलैंड से वापस आये, तो उन्हें धमकी दी गई कि वे नियमानुसार पापमुक्ति के लिए प्रायश्चित करें, नहीं तो उनका जाति-बहिष्कार कर दिया जायगा। वे हंसे और पुरोहितों से बोले, 'मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा। तुम से जो करते बने, करो।' पेरिस में महान भारतविद् मैक्समूलर ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें इसका भय नहीं है कि देश लौटने पर ब्राह्मण उन्हें जाति से

निकाल देंगे। 'मेरा भारतोय मित्र द्वारकानाथ टैगोर बहुत बड़ा विद्वान तो नहों था, लेकिन बड़ा बुद्धिमान और दुनियादारो से वाकिफ व्यक्ति था। वह ब्राह्मणों को हेय दृष्टि से देखता था, और जब मैंने पूछा कि भारत लौटने पर क्या उसे प्रायश्चित करना पड़ेगा, तो उसने हंस कर कहा, "नहों, घर पर मैं अब तक लगातार बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराता रहा हूं, इतना हो काफो बड़ा प्रायश्चित है!"[56]

यह द्वारकानाथ हो थे, जो अपनो पहलो इंगलैंड यात्रा के दौरान, तोर्थस्थान समझ कर ब्रिस्टल गये, जहां कुछ वर्ष पूर्व राममोहन राय को मृत्यु हुई थो और जहां स्टेप्लेटन के निजो हाते में उन्हें दफनाया गया था, जहां वे अपने अंतिम दिनों में मिस कासेल के महमान थे। देखभाल के बिना उनको कब्र को हालत बहुत खराब हो गई थो। द्वारकानाथ ने आर्नोवेल स्थित नगर को सार्वजनिक कब्रगाह में दफनाने के लिए राममोहन राय का शव ले जाने का प्रबंध किया और फिर वहां उनको कब्र पर भारतोय शैलो का एक शानदार स्मारक बनवाया जहां अपनो श्रदांजलि अर्पित करने के लिए यात्रो बड़ो संख्या में आज भो जाते हैं।[57] इसमें संदेह नहों कि द्वारकानाथ अपने दिवंगत मित्र को स्मृति सुरक्षित रखने के लिए इतना तो हर सूरत में करते हो, लेकिन सबसे पहले इस विचार को सुझाने का श्रेय बेप्टिस मिशन के समाचारपत्र **फ्रेंड ऑफ इण्डिया** को देना चाहिए, जिसने कलकत्ता के इस प्रमुख नागरिक को इंगलैंड यात्रा के अवसर पर उसे शुभकामनाएं देने के लिए आयोजित सार्वजनिक सभा के दिन बृहस्पतिवार, जनवरो 6, 1842 के सम्पादकोय में लिखा था : '...राममोहन राय के सबसे प्रिय मित्र और सबसे पहले समर्थक से विदा लेते समय, जब उनके पदचिन्हों पर चल कर वे आज हमारे प्यारे देश को जा रहे हैं, हम आशा करते हैं कि इंगलैंड पंहुच कर द्वारकानाथ का सबसे पहला प्रयत्न उस विख्यात पुरुष को कब्र को उस उपेक्षा और निरादर से बचाना होगा जिसके कारण उसको बुरो दशा हो रहो है और फिर उस पर एक भव्य स्मारक बनाना होगा, ताकि वह इंगलैंड आने वाले भारत के भावो तोर्थयात्रियों को उस स्थान पर जाने के लिए आकर्षित कर सके जहां उनके अवशेष रखे हैं... यह भारत के लिए शोभा को बात नहों है कि राममोहन राय इंगलैंड में एक अज्ञात कब्र में पड़े रहें। हम तो यह भो आशा करना चाहते हैं कि आज के दिन द्वारकानाथ को सम्मानित करने के लिए जो माटिंग हो रहो है, उसमें इस विषय पर भो सार्वजनिक भावना को कुछ तो अभिव्यक्ति होगो हो; और अगर संभव हो तो उस अग्रगण्य मानव को कब्र पर एक मकबरा या समाधि का निर्माण करने के लिए कुछ चन्दा भो जमा किया जायगा, और इस काम में इस्तेमाल करने के लिए यह रकम सार्वजनिक रूप से इस प्रतिष्ठित व्यक्ति को भेंट को जायगो। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि द्वारकानाथ इस दायित्व को सहर्ष स्वोकार कर लेंगे।'

कहने को जरूरत नहों कि उस मोटिंग ने बड़े उत्साह से इस प्रस्ताव का पुरजोश समर्थन किया था।

कुछ प्रश्न प्रस्तुत पुस्तक के लेखक के मन को उद्वेलित करते रहे हैं, जिनका संतोषजनक उत्तर वह अभी तक नहीं खोज पाया।

मेकिन्टॉश एण्ड कम्पनी कलकत्ते में राममोहन राय की बैंकर और एजेन्ट थी, जो 1833 में फेल हो गई। इसका राममोहन राय पर गहरा आर्थिक दबाव पड़ा, जो कम्पनी की मार्फत नियमित रूप से प्राप्त होने वाली रकम के सहसा बन्द हो जाने के कारण विदेश के अंदर संकट में फंस गये थे। इससे पैदा होने वाली आर्थिक चिन्ता एक स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अपमानित महसूस करने का स्रोत बन गई, और जिसने, कहते हैं कि उनकी मृत्यु की घड़ी को जल्द निकट लाने में मदद की। उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से कर्ज मांगा, ताकि वे घर वापस लौट सकें। यद्यपि कम्पनी को भारत में उनकी जमीन-जायदाद के बारे में मालूम था, लेकिन उसने बड़े रूखे शब्दों में कर्ज देने से इन्कार कर दिया। यह समझने में कठिनाई होती है कि उनके अपने बेटे उन्हें पैसे क्यों नहीं भेज सके? क्या द्वारकानाथ ने, जिनका मेकिन्टॉश एण्ड कम्पनी से गहरा संबंध था, और जो दरअसल उस कामर्शियल बैंक में एक हिस्सेदार थे, 'जो धीरे-धीरे मेकिन्टॉश एण्ड कम्पनी के रोकड़ विभाग का ही पर्याय बन गई थी,'[58] इस संकट का पूर्वानुमान किया था और क्या उन्होंने अपने 'मित्र की धन-सम्पत्ति को आसन्न दिवाले से बचाने की कोशिश की थी? क्या उन्होंने अपने मित्र को आर्थिक सहायता प्रदान की थी या इसका प्रस्ताव किया था, क्योंकि उस समय तक वे काफी धनवान व्यक्ति बन चुके थे और इंगलैंड में उनके काफी लोगों से आर्थिक संबंध थे? संभव है कि उन्होंने जो कुछ भी कर सकते थे किया हो, लेकिन उन्होंने क्या किया, इसका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। निश्चय ही यह ध्यान में रखने की जरूरत है कि जहाज के जरिये केप ऑफ गुड होप के गिर्द होकर आने के कारण चिट्ठी-पत्री या खबर को एक देश से दूसरे देश तक पहुंचने में कई महीने लग जाते थे। फिर भी यह कितना दुखदायी तथ्य है कि न तो राममोहन राय की अपनी सन्तान में से कोई और न उनके अपने देश के अनेकानेक अनुयायियों और मित्रों में से ही कोई महान हितैषी और उपकारक नेता के अंतिम दिनों में उनके काम आया। इसका अमर श्रेय राममोहन राय के उन अंग्रेज प्रशंसकों को है जिन्होंने आखिरी दम तक बड़ी शालीनता और वफादारी से उनका साथ दिया था।

हालांकि द्वारकानाथ ने ब्रिस्टल में राममोहन राय की कब्र पर एक स्मारक बनवा दिया था, लेकिन खुद कलकत्ता में, जहां उन्होंने अपने जीवन का श्रेष्ठतम कार्य किया था, कोई स्मारक नहीं खड़ा किया गया। 1834 में जब राममोहन राय की मृत्यु की खबर कलकत्ते पहुँचती तो एक शोक सभा आयोजित की गई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि 'स्वर्गीय राममोहन राय की प्रतिभा और गुणों की स्मृति को अमर रखने के लिए एक उपयुक्त स्मारक बनाया जाय', लेकिन आठ साल बीतने पर भी इस पुण्य प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया, जैसा कि **फ्रेंण्ड ऑफ इण्डिया** के 7 जुलाई, 1842 की एक सम्पादकीय टिप्पणी

ने लोगों को याद दिलाते हुए लिखा था। **बंगाली स्पेक्टेटर** के जुलाई अंक की समीक्षा करते हुए सम्पादकीय टिप्पणी ने लिखा :

'सबसे पहले निबंध में कलकत्ते के निवासियों की उस उत्साह का, जो आठ साल पहले राममोहन राय की प्रतिभा और गुणों की स्मृति में एक उपयुक्त स्मारक बनाने के प्रस्ताव के प्रति प्रदर्शित किया गया था, तत्काल उसी अवसर पर चन्दे के रूप में जो 8,000 रु० जमा किए गये थे, – और उस समय से लेकर अब तक इस रकम का उपयोग करने के प्रयत्नों के पूर्ण अभाव का, स्मरण दिलाया गया है। महलों के इस शहर के मस्तक पर कलंक का यह टीका नहीं लगा रहने देना चाहिए। अप्रैल, 1834 की मीटिंग में जो प्रस्ताव पास किया गया था उसको कार्यान्वित करने के लिए अविलम्ब कदम उठाने चाहिए। यह एक बेमिसाल और अपूर्व तथ्य है कि आठ साल पहले चन्दा जमा करने के लिए जिन नौ भद्र पुरुषों की कमेटी बनायी गयी थी, उनमें से हरेक इस समय भारत में है और कलकत्ता में। हम आशा करते हैं कि वे दिवंगत पुरुष की स्मृति को चिरस्थायी बनाने की योजना तैयार करने के उद्देश्य से शीघ्र ही टाऊन हॉल में एक मीटिंग बुलायेंगे। **स्पेक्टेटर** का प्रस्ताव है कि सबसे पहले उस रकम का इस्तेमाल उनकी संपूर्ण कृतियों के प्रकाशन के लिए और फिर उनमें से अधिक उपयोगी कृतियों के बंगाली भाषा में अनुवाद-कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए किया जाय। इसमें पहले प्रस्ताव को हमारा हार्दिक समर्थन प्राप्त है। आज भी राममोहन राय की कृतियों का असंक्षिप्त संस्करण प्राप्त करना कठिन है, और यह डर अकारण नहीं है कि उनमें से कुछ कृतियां हमेशा के लिए खो न जायें। लेकिन जो रकम बचेगी, उसे हम हिन्दू कालेज के हॉल के अन्दर उनकी स्मृति में एक शानदार भित्ति-चित्र फलक के निर्माण पर खर्च करना अधिक पसंद करेंगे। दरअसल हम इससे बेहतर प्रस्ताव की कल्पना नहीं कर सकते कि उस हॉल में, क्रमशः उन महानुभावों की स्मृति में लगे कृतज्ञता-ज्ञापक भित्ति-फलकों की पंक्ति बन जाय, जिन्होंने अपनी मातृभूमि को ऊंचा उठाने में उल्लेखनीय योगदान किया था।'

बाद में यही प्रश्न **बंगाल हेरल्ड** ने भी अपने 22 जुलाई, 1843 के अंक में उठाया था। लेकिन कलकत्ते के प्रतिष्ठित पत्रों द्वारा किये गये ये सारे तकाजे जैसे किसी ने बहरे कानों भी नहीं सुने, क्योंकि ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता जिससे जाहिर हो कि नौ प्रतिष्ठित नागरिकों की कमेटी ने, जिसके पास चन्दा जमा किया गया था, स्मारक बनाने के लिए कुछ भी किया हो। संभवतः शुरू में जमा की गई आठ हजार रुपये की रकम या तो यूनियन बैंक में जमा कर दी गई थी या कार, टैगोर एण्ड कम्पनी में, जिसके साथ द्वारकानाथ का गहरा संबंध था। अगर सार्वजनिक चन्दा न भी जमा किया जाता और एक कमेटी नियुक्त न की जाती तो भी स्वयं द्वारकानाथ के पास इतने साधन थे कि वे अपने मित्र की स्मृति में, जो मित्र से ज्यादा दरअसल उनके गुरू थे, एक उपयुक्त स्मारक बनवा सकते थे। 1838 में अपनी मां

की मृत्यु के बाद उन्होंने उनकी स्मृति में कलकत्ते की डिस्ट्रिक्ट चैरिटेबल सोसाइटी को एक लाख रुपया (जो उस समय एक विशाल रकम थी) दान किया था और उनके श्राद्ध पर लगभग पचास हजार रुपये अलग से खर्च किये थे। अपनी उस मां की स्मृति कायम रखने के लिए उन्होंने इतना कुछ किया, जिनकी कोख से वे जन्में नहीं थे, लेकिन अपने मित्र की स्मृति कायम रखने के लिए, जिससे उन्हें नैतिक और बौद्धिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी, और एक प्रकार से उनका नया जन्म हुआ था, उन्होंने जो करना चाहिए था, नहीं किया। फिर भी उनके पुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ने अपनी वृद्धावस्था में पुरानी बातों को याद करते हुए बताया कि 23 सितम्बर, 1833 को ब्रिस्टल में राममोहन राय की मृत्यु की खबर आयी तो द्वारकानाथ बच्चे की तरह सुबक-सुबक कर रोने लगे। मां की मृत्यु पर वे सुबक कर रोये थे, ऐसी कोई सूचना नहीं मिलती।

द्वारकानाथ के प्रथम जीवनीकार, किशोरीचन्द मित्रा ने लिखा है कि 1845 में अपनी दूसरी इंगलैंड यात्रा के दौरान 'द्वारकानाथ ने पत्र द्वारा जोसेफ हेयर से उनके भाई और भारतीयों में शिक्षा-प्रसार के समर्थक डेविड हेयर की जीवनी के बारे में सामग्री एकत्र करने के उद्देश्य से सम्पर्क स्थापित किया। हजार अफसोस कि द्वारकानाथ इस कार्य को पूरा करने के लिए जीवित न रह सके।'[59] इससे भी ज्यादा अफसोस की बात यह है कि द्वारकानाथ को अपने मित्र राममोहन राय के बारे में ऐसी ही कोई योजना क्यों नहीं सूझी, जबकि राममोहन राय ने उनके राजनीतिक और सामाजिक विश्वासों को प्रेरित और पोषित किया था और अपने देशवासियों और देश के भविष्य के प्रति उनकी सेवाएं मुकाबले में किसी से भी ज्यादा थीं। भारत में अपनी अन्य व्यस्तताओं के कारण अगर उनके पास राममोहन राय की जीवनी लिखने का अवकाश नहीं था तो वे राममोहन राय के प्रशंसकों में से, जिन्हें वे भली भांति जानते थे, किसी भी योग्य लेखक से उनकी जीवनी लिखवा सकते थे। ऐसी परियोजना का पूरा खर्च उठाने के लिए, जिसे बाद में एक सुदूर देश की रोग-शैय्या ग्रस्त, अपाहिज अंग्रेज महिला ने स्वान्तः-सुखाय पूरा किया, उनके पास पर्याप्त साधन थे।

इतिहास की विडम्बना ने पांसा ही उल्ट दिया है। राममोहन राय की स्मृति को उनके देशवासी आज भक्ति और आदर से हृदय में संजो कर रखते हैं, जबकि द्वारकानाथ की स्मृति जैसे विस्मृति के गर्भ में सो गई है, यहां तक कि उनकी सन्तान के लिए भी। यह दुख की बात है, क्योंकि ये दोनों दिग्गज कंधे से कंधा मिला कर एक-दूसरे के साथ खड़े रहे थे, दो मित्रों के रूप में ही नहीं बल्कि आधुनिक भारत के सबसे पहले पथ-खोजियों के रूप में – राममोहन राय धार्मिक, नैतिक और समाज-सुधार की चेतना जगाने वाले हरकारे की भूमिका में और द्वारकानाथ देश के व्यावसायिक और औद्योगिक क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात करने वाले की भूमिका में। अज्ञान, अंधविश्वास और नैतिक उदासीनता के विरुद्ध संघर्ष में एक

साथ जूझने वाले मित्रों और सेनानियों की तरह, उन्होंने भारत के पुनरुत्थान के लिए विकट अवरोधों के खिलाफ संघर्ष किया था।

राममोहन राय का नाम ब्रह्मोसमाज के साथ जुड़ा होने से उनकी स्मृति को जीवित रखने में मदद मिली है, लेकिन इसने भावी पीढ़ियों के लिए उनकी सच्ची महत्ता को सीमित भी किया है। उन्होंने जिसकी स्थापना की थी, वह स्थूल अर्थों में ब्रह्म समाज नहीं था, चाहे वह आदि, साधारण या नवविधान के रूप में हो, बल्कि वह सभी धर्मों का एक संयुक्त मंच था। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता की नींव रखी थी, अर्थात् उसकी जिसे आज हम धर्मनिरपेक्षवाद या सेक्युलरिज्म कह कर सराहते हैं। वे और द्वारकानाथ दोनों ही अपने कार्यों और दृष्टिकोण में वर्तमान धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के पूर्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वे जिनमें विश्वास करते थे और जिन्हें पाने के लिए आजीवन प्रयत्न करते रहे, वे बातें दरअसल घटित हो गई हैं, लेकिन ऐसे ढंग से जो इतिहास की विडम्बना को एक नये प्रकार से उद्घाटित करती हैं। यद्यपि धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अब अधिकतर सभ्य मानव का गुण माना जाने लगा है, लेकिन वह सच्ची धार्मिक भावना क्षीणतर होती जा रही है, जो राममोहन राय और हमारे अपने समय में गांधी जी के चरित्र की विशेषता थी। इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि धर्म के बाह्य रूपों की तड़क-भड़क क्रमशः बढ़ती जा रही है और उसके साथ ही सांस्कृतिक तमाशा बनाकर उनको अधिक प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति भी। इस अर्थ में सच्चा राममोहन राय आज खो गया है, और उसी तरह वस्तुतः गांधी भी, राजनीतिज्ञों द्वारा गला फाड़-फाड़ कर उनके नामोच्चार करने के बावजूद। दूसरी ओर, द्वारकानाथ जिस बात में विश्वास करते थे और जिसकी उन्होंने शुरूआत की थी, अर्थात व्यावसायिक और औद्योगिक संस्थाओं का भारतीकरण और यूरोपियन या विदेशी तकनीकी ज्ञान की साझेदारी में औद्योगिक तकनीकों का विकास, एक बड़े पैमाने पर इस लक्ष्य की पूर्ति ठीक उसी तरह हो रही है, जिस तरह द्वारकानाथ ने कामना की थी। इसलिए, यद्यपि उनकी स्मृति मिट गई है, द्वारकानाथ आज भी टाटा, बिड़ला और उनके जैसे अन्य उद्योगपतियों के रूप में जिन्दा हैं। यद्यपि राममोहन राय और गांधी आज इने-गिने 'अनुपयुक्त' व्यक्तियों के अंदर जी रहे हैं, जिन्हें गांधी अक्सर मजाक करते हुए 'संनकी' पुकारा करते थे, लेकिन द्वारकानाथ उन तमाम धनी और अमीरों के अंदर जीवित हैं जो आज भारतीय रंगमंच पर लम्बे-लम्बे डग भर कर आगे बढ़ रहे हैं।

राममोहन और द्वारकानाथ दोनों के जीवन के अंतिम दिनों पर जैसे एक त्रासदी की छाया पड़ गई थी। वे दोनों उस वक्त के दिलफरेब लन्दन में प्राप्त यूरोप की सामाजिक और बौद्धिक जिन्दगी के घातक आकर्षण में फंस गये थे और आवश्यकता से अधिक दिनों तक वहां टिके रहे – किसी भी विशेष कारण के बिना ही। लगता है कि दोनों को ही आने वाले विनाश का धुंधला-सा आभास तो था,

लेकिन हो सकता है कि उनको वह वज्रवत् संकल्पशक्ति, जिसने भारत में उन्हें हर कठिनाई और अवरोध पर काबू पाने में मदद की थी, अब क्षीण हो गई थी। राममोहन राय के बारे में सूचना देते हुए होरेस विल्सन ने दीवान राम कोमल को एक पत्र में लिखा कि अपनी मृत्यु से पहले राममोहन 'बहुत मोटे हो गये थे और जब मैंने उन्हें अंतिम बार देखा तब अत्यंत उत्तेजित दिखाई देते थे।' 7 अक्तूबर, 1833 को अपने पत्र में उन्होंने लिखा था : 'तुरंत भारत लौटने का उनका कतई इरादा नहीं था और भाग्य का फैसला था कि वे कभी लौट कर न जायें। मुझे इसका सख्त अफसोस है। वे भारत छोड़ने से पहले के मुकाबले में अधिक विवेकशील और कहीं अधिक उदार विचारों के व्यक्ति के रूप में भारत लौटते।'

इसमें जरा भी संदेह नहीं (कम से कम प्रस्तुत लेखक के मन में) कि अगर अपना काम पूरा करने के बाद राममोहन राय 1832 के अन्त में भारत लौट आते तो वे एक नई शक्ति और लगन और विवेकपूर्ण उत्साह के साथ, धार्मिक विवादों में उतना न पड़ कर भारतीय नारी जाति के अधिकारों, विशेष कर उनके शिक्षा और विधवा-विवाह के अधिकारों के लिए आंदोलन चलाते। उन्होंने अपनी आंखों से देखा था कि इंगलैंड के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में स्त्रियां कितनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही थीं। इंगलैंड जाने से पहले भी उनकी सहानुभूति तो नारी जाति के प्रति ही थी। अमिताभ मुकर्जी ने लिखा है : 'राममोहन पुरुषों में प्रचलित बहुविवाह प्रथा के विरोधी थे। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी वसीयत में ऐसी धाराएं जोड़ दी थीं, जिनके अनुसार उनका कोई भी पुत्र या अगली पीढ़ियों के किसी वंशज को अगर एक ही समय में एक से अधिक पत्नियां हों तो उसे उनकी विरासत से वंचित करने का विधान था। वे बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह के भी पक्ष में थे। उनके जीवनीकार नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने बताया है कि राममोहन कहा करते थे कि बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा चलानी चाहिए और वे विदेश से लौट कर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम करेंगे। दूसरी ओर, अपनी एक खण्डनात्मक बंगाली पुस्तिका **प्रथोय प्रदान** में राममोहन राय ने लिखा था कि विधवा-विवाह का विरोध हिन्दुओं के प्रायः सभी सम्प्रदायों ने किया है, इसलिए इसे उचित नहीं समझा जा सकता। लेकिन उन्होंने शैव-पद्धति से विवाह का प्रबल समर्थन किया, जिसके कारण इसमें संदेह की जरा भी गुंजाइश नहीं रह जाती कि वे हृदय से अंतर्जातीय, यहां तक कि अंतर्धर्मी विवाह के भी पक्ष में थे।'[60] इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि अगर वे वापस आने के लिए जीवित रहते तो कई वर्षों पहले ही वह कार्य हाथ में उठा लेते जो बाद में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सम्पन्न किया। किन्तु ऐसा होना नहीं था।

द्वारकानाथ के लिए भी बुद्धिमानी इसी में थी कि वे 1845 के अंत में देश लौट आते, न कि यूरोप की कठोर सरदियों में पेरिस और लंदन के बीच चक्कर काटने और अपनी शान-शौकत का प्रदर्शन करने की खातिर बेपनाह फजूलखर्ची करने में

अपनी जिन्दगी की शमा को दोनों सिरों से जलाते रहते। अगर वे समय पर लौट आते तो अपने व्यापार को डूबने से बचा सकते थे। उनके व्यावसायिक साम्राज्य को उस तरह तबाह होने की कोई जरूरत नहीं थी, जैसा कि हुआ और तब बंगाल का इतिहास कुछ और ही होता। बहरहाल, ऐसा भी नहीं होना था।

दोनों की मृत्यु प्रवास काल में हुई और दोनों विदेशी भूमि में दफनाये गये, राममोहन राय ब्रिस्टल में और द्वारकानाथ लंदन में। उन दिनों ब्रिटेन में दाह-संस्कार की इजाजत नहीं थी, गिरजाघर अपने मृतोत्थान के सिद्धांत के कारण दाह-संस्कार को बुरा समझता था। (ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 1902 में ही पहली बार क्रोमेशन एक्ट पास किया)। उन्हें गिरजे की पवित्र भूमि के अंदर भी नहीं दफनाया जा सकता था, क्योंकि दोनों ही हिन्दू के रूप में मृत्यु को प्राप्त हुए थे और अंत तक 'ओम' का उच्चारण करते रहे थे। द्वारकानाथ की कृपा से राममोहन राय की कब्र की भली भांति देखभाल होती है, जिन्होंने उनके शव को आर्नो के वेल कब्रगाह में फिर से दफनाने का और उनकी कब्र पर एक स्मारक खड़ा करने का प्रबंध किया था। वहां कब्रगाह के द्वार पर प्रभारी के पास आने वालों के लिए एक पुस्तिका रखी है, जिसमें अनेक दर्शनार्थियों ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलियां दर्ज की हैं। लेकिन केन्सल ग्रीन, लंदन में द्वारकानाथ की कब्र मई 1976 में अत्यंत बुरी हालत में थी, जब इन पंक्तियों का लेखक उसे देखने गया था।[61]

शायद यह अच्छा ही है कि इन दोनों पूर्वज अग्रदूतों के पार्थिव शरीर ब्रिटेन की भूमि में दफन हैं, क्योंकि वे सच्चे हृदय से भारत-ब्रिटिश सांझेदारी में विश्वास करते थे। उनकी कब्रें उस विश्वास का प्रमाण हैं, जो कभी जीवित था।

दोनों मित्रों का स्मरण करते हुए मैक्समूलर ने कहा : '...राममोहन राय ऐसे ही थे, मेरे विचार में सचमुच के महान पुरुष, एक ऐसे पुरुष, जिन्होंने सचमुच महान कार्य किया था, और उनका नाम, अगर भविष्यवाणी करना उचित हो तो, उनके कुछ सहयोगियों और अनुयायियों समेत मानवजाति के महान हितैषी के रूप में सदा अमर रहेगा।' और द्वारकानाथ के बारे में लिखा : 'मैं उन्हें अच्छी तरह जानता था, जब वे पेरिस में बड़े शाही ठाठ से रहते थे। वे प्रबुद्ध विचारों के उदारमना व्यक्ति थे, लेकिन दरअसल वे इहलोक के आदमी थे, परलोक के नहीं।'[62]

नोट्स

1 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी बंगला पुस्तक **द्वारकानाथ ठाकुरेर** जीवनी में लिखा है, "मैंने एक विश्वसूत सूत्र से सुना है कि द्वारकानाथ अपने धर्म-कर्म के पालन में पक्के थे और नित्य नियम से दो घंटों तक जाप करते थे... जब पहली बार इंगलैंड गये थे तब वहां उन्होंने जिस जगह ठहरे थे, उसके एक कमरे के फर्श को गंगा की मिट्टी से लिपवा दिया

था, जिस पर बैठ कर वे ईश्वर के नाम का जाप करते थे।" यह आखिरी वक्तव्य प्रामाणिक नहीं लगता और इस पर विश्वास करना आसान नहीं है। **बगैर जातीय इतिहास** के लेखकों के अनुसार (कल्यान कुसम दास गुप्त द्वारा उद्धत, पृ० 263-265), द्वारकानाथ प्रतिदिन पारिवारिक **शालिग्राम** की पूजा करते थे और परम्परागत धार्मिक रीतियों का उस समय तक पूरा पालन करते रहे, जब तक उनके व्यावसायिक हितों ने उन्हें यूरोपियनों के साथ अधिक खुल कर मिलने-जुलने और उनके साथ बैठ कर खाने-पीने के लिए मजबूर नहीं कर दिया। तब यह महसूस करके वे स्वयं पूजा सम्पन्न कराने के योग्य नहीं रहे, उन्होंने विभिन्न धार्मिक रीतियों को सम्पन्न करने के लिए अठारह ब्राह्मणों को नौकर रखा। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने भी क्षितीन्द्रनाथ को (जो उनके प्रपौत्र और द्वारकानाथ के जीवनीकार थे) बताया था कि बचपन में वे अपने पिता को बड़े उत्साह से पूजा करते हुए देखा करते थे और यह कि लन्दन में अपनी अंतिम सांस तक वे गायत्री मंत्र का जाप करते रहे थे।

2 **संवाद पत्रे सेकालेर कथा,** भाग - 2, पृ० 241.

3 **फिशर्स कोलोनियल मैगेजीन,** जिल्द - 1, 1842, पृ० 393-399.

4 **दी स्काट्समैन**, अक्तूबर 26, 1842.

5 सोफिया डॉब्सन कॉलेट : **दी लाइफ एण्ड लेटर्ज ऑफ राजा राममोहन राय**। डी.के. बिस्वास और पी.सी. गांगुली द्वारा सम्पादित और साधारण ब्रह्मो-समाज द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता 1962, पृ० 62.

6 देखिए परिच्छेद तीन के अन्त में नोट 16.

7 कलकत्ते में आकर स्थायी रूप से निवास करने से पहले राममोहन राय कई साल तक रंगपुर में नौकरी करते रहे थे और यह ज्ञात तथ्य है कि वहां तांत्रिक साधुओं के साथ उनके गहरे संबंध थे, विशेष कर प्रसिद्ध विद्वान हरिहरानन्द तीर्थस्वामी के साथ, जो उनके संग ही कलकत्ता आये थे। ...जिस तांत्रिक पुजारी को द्वारकानाथ ने बुलवाया था, उसके नाम की सिफारिश संभवतः हरिहरानन्द ने ही की हो। देखिए कॉलेट संबंधी नोट, पृ० 101.

8 क्षितिन्द्रनाथ टैगोर ने बताया है कि उन्होंने अपने दादा महर्षि देवेन्द्रनाथ से सुना था कि अपने बचपन में वे एक बार राममोहन राय से मिलने गये थे। उस समय राममोहन राय शहद और रोटी खा रहे थे, जो उनका भोजन था। बालक देवेन्द्र को देख कर वे मुस्कराए और बोले, 'बिरादर (राममोहन निरपवाद रूप से हरेक को, चाहे बूढ़ा हो या बालक, भाई के फारसी पर्यायवाची शब्द से सम्बोधित करते थे) तुम देखते हो न, मैं क्या खा रहा हूं, फिर भी बाहर के लोगों को विश्वास है कि मैं गोमांस खाकर जिन्दा हूं।'

9 महात्मा गांधी भी, सौ साल बाद, पहले महायुद्ध के उपरान्त तक समग्र रूप से ब्रिटिश साम्राज्य को एक देवी वरदान के रूप में देखते थे।

10 ब्लेयर बी. क्लिंग ने द्वारकानाथ संबंधी अपने प्रशंसनीय अध्ययन **पार्टनर इन ऐम्पायर** में इस पहलू को बड़ी योग्यतापूर्वक उभारा है – (यूनीवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1976)

11 **स्टडीज इन बंगाल रिनेसां** : सम्पादक – अतुलचन्द्र गुप्त, प्र० द नेशनल कौंसिल ऑफ एजूकेशन, बंगाल, 1958, पृ० 303.

12 डेविड हेयर एक विलक्षण आदमी था। वह घड़ीसाज के रूप में कलकत्ता आया था और यहीं बस गया। उसने अपना सारा जीवन और अपने साधन शिक्षा के प्रसार में लगा दिये।

वह राममोहन राय और द्वारकानाथ का मित्र था और कहा जाता है कि उसने ही हिन्दू कालेज की स्थापना का प्रस्ताव करने में पेशकश की थी।

13 गोपी मोहन और हरीमोहन टैगोर दर्पनारायन के बेटे थे। वैसे तो वे कट्टर शैवमत के हिन्दू थे, लेकिन सुशिक्षित और प्रगतिशील दृष्टिकोण के थे। बिशप हेबर एक बार हरीमोहन के घर गये थे, इसका उन्होंने अपनी डायरी में विवरण दिया है : 'तमाम देसी अमीर आजकल अपनी कोठियों को कोरिन्थियन स्तंभों से सजाने लगे हैं और अंदर ब्रिटिश फर्नीचर से। वे सबसे शानदार फिटन गाड़ियों में सबसे बढ़िया घोड़े जोत कर कलकत्ते में घूमते हैं। उनमें से अनेक धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हैं और उन्हें अंग्रेजी साहित्य की भी अच्छी खासी जानकारी है। और एक दिन एक मित्र के यहां मैंने बच्चों को जाकेट और पतलूनें पहने देखा। उनके सर पर हैट और पैरों में जूते और मौजे थे।' हरीमोहन की कोठी पर जाने का जिक्र करते हुए संयोग से उसने उन कहानियों में एक कहानी और जोड़ दी जो उन दिनों टैगोर परिवार की जाति पर कलंक लगा होने के बारे में प्रचलित थीं। इसमें संदेह नहीं कि उसने परिवार के ही किसी सदस्य से यह कहानी सुनी होगी : 'यह ब्राह्मण परिवार है और विशिष्ट रूप से शुद्धतर कुल का वंशज है; लेकिन 400 साल पहले, भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के दिनों उसका एक पूर्वज भ्रष्ट हो गया था, क्योंकि विजेता मुसलमान उसके जनानखाने में घुस आया था, जिसके कारण कहा गया कि कुल ने जनेऊ धारण करने का अधिकार खो दिया है, और कट्टर ब्राह्मण उनके यहां भोजन नहीं ग्रहण करते।' **नैरेटिव ऑफ ए जरनी थ्रू दी अपर प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया फ्राम केलकटा टू बाम्बे**, 1824-1825, जिल्द-2, जॉन मरे, लंदन।

14 अमिताभ मुखर्जी : **रिफार्म एण्ड रीजेनेरेशन इन बंगाल** : 1774-1823, रवीन्द्र भारती यूनिवर्सिटी, कलकत्ता, 1968, पृ० 152.

15 वही, पृष्ठ 154.

16 वही.

17 कोलेट, पृ० 131.

18 वही, पृ० 154.

19 कोलेट के परिशिष्ट-9 में वसीयत का पूरा पाठ दिया गया है।

20 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर : **जीवनी**, पृ० 66.

21 अंग्रेजी और बंगाली दोनों भाषाओं में यह मान-पत्र 18 जनवरी, 1830 के सरकारी गजट में प्रकाशित हुआ था।

22 अमिताभ मुकर्जी, पृ० 139-140.

23 क्षितीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० 70.

24 18 जनवरी, 1930 के सरकारी गजट में प्रकाशित भाषण (अंग्रेजी व बांगला में)।

25 संकेत उनके चचेरे भाई प्रसन्न कुमार टैगोर की ओर है, जो **रिफार्मर** पत्र के संस्थापक थे।

26 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर, पृ० 91.

27 जिसके स्थान पर बाद में प्रेसिडेन्सी कालेज बना, जो कलकत्ता यूनीवर्सिटी का नाभि-केन्द्र था।

28 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर, पृ० 97.

29 इस मामले में तथा अन्य मामलों में भी, जैसे संगीत, थियेटर और ललित कलाओं से प्यार और लगाव में द्वारकानाथ अपने पौत्र, विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अधिक निकट

के पूर्वज थे – इस तथ्य को रवीन्द्रनाथ के प्रशंसक और भक्त अक्सर अनदेखा कर जाते हैं।

30 **संवाद पत्रे सेकालेर कथा**। साथ ही देखिए **फ्रीडम मूवमेन्ट इन बंगाल** 1818-1904, संकलनकर्ता और सम्पादक, निर्मल सिन्हा। पश्चिम बंगाल की सरकार द्वारा प्रकाशित।

31 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर, पृ० 200.

32 **हिस्ट्री ऑफ दी प्रेस इन इण्डिया** : एस. नटराजन एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1962, पृ० 47.

33 भाग - 1, पृ० 254. कॉलेट द्वारा उद्धत, पृ० 415.

34 समाचार दर्पण, 23 मई 1829 और 8 अगस्त, 1829.

35 डब्ल्यू.एच. एलेन, लन्दन द्वारा प्रकाशित। इस पुस्तक में स्टॉक्वेलर ने कलकत्ता की आबादी का बड़ा दिलचस्प विश्लेषण किया है। उसने आबादी को निम्न वर्गों में बांटा है : अंग्रेज – 3,138; यूरोएशियाई – 4,746; पुर्तगाली – 3,181; फ्रांसीसी – 160; चीनी – 362; आर्मीनियन – 636; यहूदी – 307; पश्चिमी मुसलमान – 13,677; बंगाली मुसलमान – 45,067; पश्चिमी हिन्दू – 17,333; बंगाली हिन्दू – 1,20,318; मुगल – 527; पारसी – 40; अरब – 351; मग – 683; मद्रासी – 55; देसी ईसाई – 49; नीच जातों के – 19,084; कुल – 2,29,714.

स्टाक्वेलर ने बाद में – 1873 में – **मेमायर्स ऑफ ए जर्नलिस्ट** भी प्रकाशित किए (टाइम्स ऑफ इण्डिया, बम्बई और फ्लीट स्ट्रीट, लंदन), जिसमें उसने कई स्थानों पर द्वारकानाथ का उल्लेख किया है। इस पुस्तक में उसने 1822 में बंबई को जैसा पाया था उसका वर्णन किया है जो आज अविश्वसनीय लगता है : 'आज की पीढ़ी के लोगों को 1822 के बंबई के दृश्य का चित्र प्रेषित करना कठिन काम है। इसे केवल नकारों के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है। उस समय कोई टाउन हॉल नहीं था, देसी आबादी के लिए कहीं, किसी भी प्रकार की, कोई शिक्षण संस्था नहीं थी, एक भी बोर्डिंग हाऊस नहीं था, कोई बैंक नहीं थी; सिर्फ एक पुराना होटल था, जहां शायद ही कभी कोई जाता था, मिस्त्रियों की कोई दुकान नहीं थी, कोई टकसाल नहीं थी, एक भी दैनिक अखबार नहीं निकलता था, कोलाबा के साथ भाटे के समय के अलावा किसी प्रकार का यातायात नहीं था, भाप से चलने वाले किसी तरह के भी इंजन नहीं थे और खैर रेलगाड़ी तो थी ही नहीं। उसका तो उस समय तक सिर्फ जार्ज स्टीवेन्सन की कल्पना में ही अस्तित्व था, इंगलैंड में तब तक पहली रेलगाड़ी का निर्माण नहीं हुआ था। हम जिस रूप में सभ्यता को समझते हैं, वह उस समय निश्चय ही गतिहीन थी। वहां तब न्याय व्यवस्था के लिए सुप्रीम कोर्ट नहीं थी और सिर्फ एक इंग्लिश और एक स्काटिश गिरजाघर था।'

36 एस. नटराजन : **हिस्ट्री ऑफ दी प्रेस इन इण्डिया**, पृ० 13.

37 वही, पृ० 22.

38 बकिंघम पहले मस्केट के इमाम के यहां नौकरी करता था, जो उसने गुलामों के व्यापार के विरोध में छोड़ दी। वह सारे मुस्लिम जगत में काफी घूमा-फिरा था और उसने मिश्र के मेहमेत अली पाशा को सलाह दी थी कि वह किस प्रकार पाश्चात्य तकनीकी ज्ञान का अपने देश में उपयोग कर सकता था और उसने ही भूमध्य सागर से लेकर लाल सागर तक नहर खोदने का सुझाव दिया था, और सलाह दी थी कि अमरीका से मंगा कर लम्बे रेशे वाली कपास की खेती मिश्र में शुरू करें।

[39] कालेट, पृ० 131.
[40] वही, 443.
[41] वही। पूरा मूल-पाठ परिशिष्ट। बी. के रूप में दिया गया है, पृ० 430-454.
[42] **बंगाल हरकारु,** 17 दिसम्बर, 1929.
[43] ए.एफ. सलाहुद्दीन अहमद : **सोशल आइडियाज एण्ड सोशल चेन्ज इन बंगाल,** 1818-1835.
[44] **समाचार दर्पण,** 19 दिसम्बर, 1829.
[45] **फ्रीडम मूवमेन्ट इन बंगाल,** 1818-1904.
[46] ऐ.के. मजूमदार : इम्पैक्ट ऑफ शंकराचार्य ऑन इण्डियन थॉट : **विश्व भारती क्वार्टरली,** जिल्द 37.
[47] वही।
[48] वही।
[49] अमृतमोय मुकर्जी : **समकालीन,** ज्येष्ठ 1373, वि.सं., मूल पाठ बंगाली में।
[50] कप्तान लियोपोल्ड वान ओर्लिच : **ट्रेवल्स इन इण्डिया** (जर्मन से अनूदित), 2 जिल्दों में, लांगमैन, ब्राऊन, ग्रीन एण्ड लांगमैन, 1845, जिल्द-2, पृ० 181.
[51] अपने दूसरे बेटे को नहीं बल्कि तीसरे बेटे नगेन्द्रनाथ को द्वारकानाथ अपने साथ दूसरी इंगलैंड यात्रा पर अपने साथ ले गये थे।
[52] पत्नी दरअसल चार साल पहले ही दिवंगत हो चुकी थी।
[53] कॉलेट, पृ० 328.
[54] अमलेश त्रिपाठी : **ट्रेड एण्ड फाइनेन्स इन दी बंगाल प्रेसिडेन्सी,** 1793-1833, बम्बई, 1956.
[55] कालेट, पृ० 356.
[56] फेड्रिक मैक्समूलर : **आल्ड लैंग सीन**। लांगमैन, ग्रीन एण्ड कं०, 1899. दूसरी माला में 'माई इण्डियन फ्रंडस' नामक परिच्छेद। यह उससे करीब आधी सदी पहले की बात है, जब इंगलैंड से तत्काल लौटे नौजवान गांधी को अपनी इच्छा के विरूद्ध और अपने बड़े भाई के आदेश पर और मां की अंतिम इच्छा का सम्मान करने के लिए गोदावरी तटपर प्रायश्चित की रस्म अदा करनी पड़ी थी।
[57] देखिए, रवीन्द्र सदन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन के संग्रहालय में रखी 'विजिटर्स बुक' की फोटोस्टेट कापी।
[58] क्लिंग, पृ० 42.
[59] केशवचन्द्र मजूमदार : **संस्मरण**, पृ० 114.
[60] अमिताभ मुखर्जी : **रिफार्म एण्ड रीजेनेरेशन इन बंगाल**, 1774-1823, पृ० 287-288.
[61] देखिए उपसंहार में द्वारकानाथ की कब्र पर पैराग्राफ।
[62] 27 सितम्बर, 1883 को, राजा राममोहन राय की पचासवीं पुण्य-तिथि के अवसर पर ब्रिटिश म्यूजियम में आयोजित सभा में भाषण। मैक्स मूलर, **बायोग्राफीकल एसेज**, लांगमैन ग्रीन एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1884.

पांच

द्वारकानाथ एक जमींदार और कंपनी के कर्मचारी के रूप में

द्वारकानाथ किस तरह के जमींदार थे? जहां तक उपलब्ध विवरणों से आंका जाय तो वे अपने समय के अधिकतर जमींदारों की तुलना में न अधिक अच्छे और न अधिक बुरे जमींदार थे। लेकिन वे उनमें से अधिकांश के मुकाबले में निश्चय ही अधिक कार्यकुशल जमींदार थे। ब्लेयर क्लिंग के अनुसार, जिसने सरकारी अभिलेखों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था : 'एक जमींदार के रूप में द्वारकानाथ बेरहमी से कार्य-कुशल और व्यावहारिक थे, लेकिन उदार बिलकुल नहीं थे।[1] राममोहन राय की उस नैतिक आदर्शवादिता ने, जो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने रैयत से कमरतोड़ लगान वसूल किये जाने के विरुद्ध इंगलैंड में प्रतिवाद किया था',[2] लगता है कि जमींदार द्वारकानाथ को जरा भी प्रभावित नहीं किया था और वे अपने आसामियों के लिए एक परोपकारी पिता की मूर्ति नहीं बने थे, जिस तरह उनके कनिष्ठ समकालीन लेव तोल्सतोय थे या फिर स्वयं उनके पोते कवि रवीन्द्रनाथ थे, जिन्हें कुछ समय तक उन्हीं जमींदारियों का प्रबंध संभालना पड़ा था।[3] द्वारकानाथ अपनी जमीनों में लगायी पूंजी को किसी अन्य व्यापार या उद्योग में लगायी पूंजी के समान समझते थे और अपने को उससे उचित लाभ पाने का हकदार। वे व्यक्तियों के साथ, उनकी सामाजिक स्थिति के बावजूद उदारता बरत सकते थे, दरअसल बरतते भी थे और खैराती संस्थानों की सहायता भी करते थे, लेकिन खेती-बाड़ी को वे खैराती उद्यम नहीं मानते थे।

इस संबंध में कलकत्ते के एक प्रमुख दैनिक अखबार ने, जो आमतौर पर उनके

प्रति सहानुभूति और दोस्ती का भाव रखता था, एक दिलचस्प और प्रासंगिक टिप्पणी छापी थी। अपनी पहली विदेश यात्रा से लौटने पर द्वारकानाथ का स्वागत करते हुए और उन्होंने उद्यमशीलता, प्रबुद्ध चेतना, सहिष्णुता और लोकहित की भावना की जो मिसाल देशवासियों के सामने रखी थी, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए, सम्पादक ने द्वारकानाथ को स्मरण कराया था कि उनसे और भी बहुत कुछ की अपेक्षा की जाती थी :

'यह निर्विवाद है कि द्वारकानाथ को अपने देश के लिए बहुत कुछ करना है। वे सहिष्णु हैं, उदार हैं, परोपकारी हैं, उन्होंने अधिकतर गरीबों को दिया है, उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण सार्वजनिक संस्थाओं को उदारतापूर्वक दान-चंदा देकर मदद की है और कुछ तो स्वयं भी कायम की हैं। उन्होंने अनेक पुराने पूर्वग्रहों और रूढ़ियों को तोड़ने में अपने देशवासियों के सामने एक मिसाल पेश की है, साहस और कर्मठता दिखायी है, लेकिन इंगलैंड के विद्वान लोग उन्हें प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर जमींदार पुकारते हैं – और एक प्रिंस जैसा व्यक्तित्व उनका है भी, लेकिन हमने यह कभी नहीं सुना कि एक जमींदार के रूप में वे अपने वर्ग के अन्य लोगों से भिन्न हैं। क्या उनकी जमींदारी में बसने वाली रैयत पड़ौसी जमींदारों की रैयत से ज्यादा सुखी और खुशहाल है – क्या उन्होंने मेहनत-मजदूरी करने वाले आसामियों की मुसीबतों को कम करने के लिए काफी कुछ किया है – देसी जमींदारों की रियासतों में सर्वत्र उन पर जो अत्याचार होता है और उनका जिस तरह शोषण किया जाता है, उसे कम करने के लिए – प्रकृति के प्रांगण में जो सबसे मनोरम दृश्य है – यानी सुखी और खुशहाल काश्तकारों का समूह – उसको उत्पन्न करने के लिए क्या उन्होंने कुछ किया है? हम किसी दुर्भावना से ये प्रश्न नहीं पूछ रहे। हम सारे लोगों को उनके गुणों से ही परखते हैं और अपने गुणों के अनुसार द्वारकानाथ ने महान कार्य किये हैं, लेकिन हम उन्हें एक नये क्षेत्र में अपनी परोपकारी भावना का प्रयोग करने का सुझाव देना चाहते हैं, जिसमें माना कि उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होंगी, लेकिन उससे जन-साधारण के लिए कुछ ऐसी बड़ी सफलताएं प्राप्त की जा सकती हैं जो एक दर्जन स्थानीय संस्थाओं की स्थापना से नहीं हासिल की जा सकतीं।'

क्या द्वारकानाथ ने, जो नियमित रूप से **बंगाल हरकारू** पढ़ते थे (जिसके निर्माण में उन्होंने मदद की थी) इस संकेत को ग्रहण किया था? दुर्भाग्य से विदेश से लौटते ही उन्हें अनेक व्यावसायिक अड़चनों का सामना करना पड़ गया और समाचारपत्र ने 'नये क्षेत्र में अपनी परोपकारी भावना' का प्रयोग करने का जो सुझाव दिया था, उस पर अगर अमल भी करना चाहते तो इसके लिए वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सके।

हालांकि वे अपनी जमींदारियों को परोपकार की वस्तु नहीं समझते थे, फिर भी उन्होंने अपनी जमींदारियों के मैनेजरों को जो खत लिखे थे (और जो किसी तरह

सुरक्षित बच गये हैं) उनसे यह प्रमाण तो मिलता है कि वे अपने काश्तकारों के साथ 'न्यायपूर्ण और निष्पक्ष' व्यवहार के प्रति उदासीन नहीं थे। 14 जनवरी, 1836 को जे.सी. मिलर[5] के नाम लिखे अपने एक पत्र में, जिसे उन्होंने हाल में ही शहजादपुर की जमींदारी का मैनेजर नियुक्त किया था, और जहां वे नील की एक फैक्टरी भी कायम करना चाहते थे, उन्होंने विस्तारपूर्वक अपनी हिदायतें लिख कर भेजी थीं कि उसके क्या-क्या कर्तव्य हैं। उनमें एक यह भी था कि वह जमींदारी के विभिन्न प्रकार के खेतों के 'पुराने खातों' की जांच-परख करे ताकि उनका 'पहले की अपेक्षा अधिक निष्पक्षता से और न्यायपूर्वक ढंग से इस तरह समंजन किया जा सके कि मेरे हितों की अवहेलना न हो और साथ ही यह भी ध्यान रहे कि रैयत के साथ कोई अत्याचार न हो,...' और भी हिदायतें हैं कि ऊपर जमीनों को काश्त में लाया जाय और उन पर रैयतों को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, इसकी जांच की जाय कि पड़ौस के जमींदारों ने उनकी किन जमीनों पर अवैध कब्जा कर लिया है, आदि। लेकिन काश्तकार और उनके परिवार सचमुच जिन परिस्थितियों में रहते और मेहनत-मजूरी करते हैं उनके प्रति या उनकी दशा को सुधारने के लिए कुछ करने के प्रश्न पर उनके पत्र में कोई विशेष चिन्ता नहीं व्यक्त की गई। यह उदासीनता अपेक्षया काश्तकारों के प्रति उस हार्दिक चिन्ता और सहानुभूति से बिलकुल विपरीत है जो साठ या इससे भी अधिक वर्षों के बाद लिखे उनके पोते के पत्र में व्यक्त हुई है या जो राममोहन राय के उस स्मरणपत्र में व्यक्त हुई थी जो उन्होंने द्वारकानाथ के पत्र से चार साल पहले हाऊस ऑफ पार्लियामेंट की सेलेक्ट कमेटी के आगे पेश किया था।

दोनों जमींदारियों के लिए, अपनी खरीदी शहजादपुर की जमींदारी के लिए और बरहामपुर की पैतृक जमींदारी के लिए भी द्वारकानाथ ने यूरोपियन मैनेजर नियुक्त किये थे। ऐसा करने के लिए उनके पास कोई कारण रहा होगा। आमतौर पर कहा जा सकता है कि उन्हें अंग्रेजों की कार्य-कुशलता और ईमानदारी पर अपने देशवासियों की अपेक्षा ज्यादा भरोसा था। उन्हें यह भी मालूम था कि रैयत भी बंगाली मैनेजरों की अपेक्षा ब्रिटिश मैनेजरों के अनुशासन और नियंत्रण को अधिक आसानी से स्वीकार करती थी। इसके अलावा आस-पड़ौस के जमींदारों के अनधिकार हस्तक्षेप और नील के बागान के यूरोपिय मालिकों के निरंकुश और दुराग्रही व्यवहार को रोकने में अंग्रेज मैनेजर ज्यादा कारगार सिद्ध होते थे। द्वारकानाथ धीरे-धीरे अपनी जमींदारियों में नील, चीनी और रेश्म के कारखाने भी खड़े कर रहे थे, जिससे उनकी जमींदारियां तेजी से व्यवसाय और उद्योग का क्षेत्र बनती जा रही थीं। इसलिए अधिक सुचारु प्रबंध और निरीक्षण की खातिर यूरोपियन मैनेजरों को अधिक वेतन देना उन्हें अधिक उपयोगी लगा।

अपने काश्तकारों और कर्मचारियों से सख्ती से काम लेने के साथ ही दूसरे जमींदारों और बागानों के अंग्रेज मालिकों के प्रति तो वे जरा भी रियायत नहीं

बरतते थे। वैसे व्यक्तिगत संबंधों में वे बड़े उदार और भद्र थे, लेकिन व्यवसायिक संबंधों में किसी को भी, चाहे वह यूरोपीय हो या भारतीय, अमीर हो या गरीब, मनमानी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। चूंकि वे अत्यंत साधन-सम्पन्न थे और परिश्रम करके पूरे तथ्यों का संग्रह करते थे, इसलिए किसी भी झगड़े में हार मानने की बजाय लड़ाई करना बेहतर समझते थे। जमींदारी और सिविल कानून के बारे में उनकी व्यापक जानकारी हमेशा उनके काम आती थी। उनके आरंभिक जीवनीकारों, मित्रा और क्षितीन्द्रनाथ, दोनों ने उस ब्रिटिश मजिस्ट्रेट के मामले का उल्लेख किया है, जिसने बरहामपुर के काश्तकारों की शिकायतों की अर्जी की जांच-पड़ताल की थी। इस खानदानी जमींदारी के प्रबंध में हमेशा कठिनाई होती थी, क्योंकि काश्तकार प्रायः जिद्दी और अक्खड़ व्यवहार करने लगते थे। मजिस्ट्रेट घटना-स्थल पर गया, काश्तकारों से उसने जमींदार के कारिन्दों द्वारा किये गये 'अत्याचारों' की कहानियां सुनी जो शायद उसे सच लगीं। जब द्वारकानाथ को इसकी खबर लगी तो उन्होंने बड़ी सावधानी से खुद मजिस्ट्रेट की पिछली जिन्दगी के बारे में पूरी छान-बीन करवाई और सरकारी नौकर की हैसियत से किये गये उसके गलत कारनामों का पक्का सबूत जमा करके वे मजिस्ट्रेट के पास गये और उसको यकीन दिलाने की कोशिश की कि काश्तकारों की शिकायतें सही नहीं थीं और वे जानबूझ कर उद्दण्डता पर तुले हुए थे और मजिस्ट्रेट को कोई अधिकार नहीं था कि वह उनकी उद्दण्ड व्यवहार के लिए प्रोत्साहन दे। जब मजिस्ट्रेट ने अपने अधिकारों का रौब छांटा और द्वारकानाथ पर एक अत्याचारी जमींदार होने का दोष मढ़ते हुए उनको भला-बुरा कहा तो द्वारकानाथ ने तुरंत उसके सामने उसके पुराने गलत कारनामों का मय सबूत के कच्चा चिट्ठा पेश करते हुए 'धमकी दी कि वे उसे पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट के हवाले कर देंगे, जिससे उन दिनों सारे मजिस्ट्रेट आतंकित थे।' मजिस्ट्रेट एकदम घबरा गया और विनयपूर्वक उसने द्वारकानाथ से माफी मांग ली। अगर यह बेजा दबाव डाल कर अपना मतलब सिद्ध करने जैसी बात थी, तो द्वारकानाथ निश्चय ही इससे ऊपर नहीं उठ सके। लेकिन शायद ही कोई व्यवसाय में या राजनीति या युद्ध में अपने प्रतिद्वंद्वी के विरुद्ध ऐसा कर पाता है।

1822 में द्वारकानाथ ने चौबीस परगना के कलक्टर और साल्ट एजेन्ट ट्रेवोर प्लाऊडेन के सरिश्तेदार के रूप में कम्पनी की नौकरी स्वीकार कर ली। राममोहन राय अवकाश ग्रहण कर कलकत्ते में आकर बसने से पहले मिस्टर डिग्बी के सरिश्तेदार थे, जो उन दिनों रंगपुर का कलक्टर था। शायद यह सोच कर या साथ ही इस कारण भी कि आम तौर पर सरकारी नौकरी और उसके साथ मिलने वाले संरक्षण का उन दिनों बड़ा महत्व था, द्वारकानाथ ने इस नौकरी के लिए कोशिश की थी (या कहने पर स्वीकार की थी)। इनका पूर्ववर्ती सरिश्तेदार कोई राम तनु राय था, जो राममोहन राय का मित्र था। इसलिए यह भी अनुमान किया जा सकता है

कि अपने दूसरे मित्र और अनुयायी को यह नौकरी दिलाने में और द्वारकानाथ को इसे स्वीकार कराने में राममोहन राय का हाथ रहा हो। वेतन तो नाम-मात्र था, कुल 150/- रू० मासिक और सालाना कमीशन की राशि औसत करीब 300/- रू० थी।[8] अपनी जमींदारियों और दूसरे व्यवसायों से प्राप्त होने वाली द्वारकानाथ की आमदनी के मुकाबले में यह वेतन नगण्य था। मगर वेतन चाहे आकर्षक न रहा हो, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि इस पद के साथ और बहुत से फायदे जुड़े हुए थे, जो इसे आकर्षक बना देते थे। सरकारी नौकरी में जो प्रतिष्ठा और व्यापक संरक्षण निहित था (और जो एक सीमा तक आज भी निहित है) उसके अलावा, द्वारकानाथ ने विशेष रूप से इस बात को अधिक मूल्यवान समझा होगा कि इसके द्वारा उपयोगी लोगों से संपर्क का क्षेत्र बढ़ेगा और सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था अंदर से कैसे कार्य करती है, इसकी उन्हें पूरी जानकारी भी प्राप्त हो जायगी। साथ ही, उन दिनों के नियमों के अनुसार, एक जमींदार, कानूनी सलाहकार, व्यापारी, निर्यातक आदि के रूप में उनकी जो अन्य सरगर्मियां थीं, उनमें से किसी को छोड़ने के लिए वे बाध्य नहीं थे। दरअसल, नौकरी के इस काल में उनके निजी व्यवसायों में काफी अभिवृद्धि हुई थी।[9]

सरिश्तेदार के पद पर उनके छः बरस के कार्य-काल में नमक एजेन्सी की औसत पैदावार तीस प्रतिशत बढ़ गई और इस बीच सारी बकाया रकमें और चुंगी वसूल कर ली गई। ट्रेवर प्लाऊडेन को द्वारकानाथ के रूप में एक मूल्यवान सहयोगी मिला और वे दोनों जीवन भर के लिए गहरे मित्र बन गये। इसी बीच यह पता चला कि एक बेईमान दीवान और उसके गुमाश्तों ने बड़ी भारी रकमों का गबन कर लिया था। भ्रष्टाचार के दूर दूर-दूर तक फैले और लगातार मजबूत होते जाने वाले जाल पर हैरान और एक प्रबंधक के रूप में द्वारकानाथ की महान कार्य-कुशलता, बंगाली चरित्र की जानकारी और उनकी अपनी व्यक्तिगत ईमानदारी से पूरी तरह आश्वस्त हेनरी मेरीडिथ पार्कर ने, जो चुंगी, नमक और अफीम के बोर्ड का अवर सदस्य था, 1828 में उनसे बोर्ड के दीवान का पद स्वीकार करने का आग्रह किया। 1 मार्च, 1834 को उसने अपने विवरण में स्थिति का जायजा लेते हुए नोट किया :

'मुझे पता लगा कि धोखाधड़ी करने वालों का इतना व्यापक गिरोह काम कर रहा था, जिसने नमक-कर के लिए एक खतरा पैदा कर दिया था – कि उसके गिर्द चारों ओर साजिशों का जाल बिछा था। इस षड्यंत्र में दफ्तर का शायद ही कोई कर्मचारी था जो हिस्सेदार नहीं था। मैं निस्संकोच भाव से कह सकता हूं कि इसका पता लगाने में मुझे द्वारकानाथ टैगोर की महान योग्यता, लगन और सबसे अधिक ईमानदारी से मदद मिली, जिसके बगैर मैं शायद उन कठिनाइयों से असफल ही जूझता रहता, जिन्होंने डिपार्टमेन्ट को घेर रखा था।'[10]

द्वारकानाथ सयाने और अनुभवी व्यक्ति थे जो हर किस्म के आदमी से निबट सकते थे, और उन्हें यह जानने में अधिक समय नहीं लगा कि कौन क्या गड़बड़ी

कर रहा था। भ्रष्टाचार का जाल छिन्न-भिन्न करने में वे सफल तो हो गये, लेकिन ऐसा करने में उन्होंने अनिवार्यतः न्यस्त स्वार्थ वाले अनेक लोगों की दुश्मनी मोल ले ली – डिपार्टमेन्ट के कर्मचारियों की भी और **मोलुंघियों** की भी, जो नमक सप्लाई करते थे और जिनकी भ्रष्ट अफ़सरों से सांठ-गांठ थी। राममोहन राय के साथ द्वारकानाथ की मित्रता और सती-प्रथा के विरुद्ध उसके आंदोलन में द्वारकानाथ के हार्दिक समर्थन ने अधिकतर कट्टर हिन्दुओं को तो पहले से ही उनसे नाराज कर रखा था, जो उनके विरुद्ध विद्वेष की आग भड़काने के लिए सदा तत्पर रहते थे। खैर, जो भी कारण हो – और सही कारण का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है – **मोलुंघियों** ने द्वारकानाथ पर गबन का अभियोग लगाते हुए बोर्ड के पास एक दरखास्त भेजी।

इसकी जांच का आदेश दिया गया और बाजाप्ता जांच की गई। जांच-पड़ताल के हर दौर में, पहले पार्कर ने, फिर गर्वनर-जनरल-इन-कौंसिल ने और अंत में इंडिया ऑफिस ने द्वारकानाथ को पूरी तरह निर्दोष घोषित किया और उनके काम का पूरी तरह समर्थन किया। जैसा कि उनके जीवनीकार क्षितीन्द्रनाथ ने लिखा है, 'यह बात कल्पना में भी नहीं सोची जा सकती थी कि द्वारकानाथ जैसा प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यक्ति, जिसकी केवल कानूनी-सलाहकार की हैसियत से ही पन्द्रह हजार रुपये से अधिक की मासिक आमदनी हो, वह चन्द एक हजार रूपयों की खातिर इतना नीचे गिरेगा, जिसका उस पर आरोप लगाया गया था, और अपने शुभनाम को कलंकित करेगा। उन्होंने द्वारकानाथ को लिखा पार्कर का व्यक्तिगत पत्र भी उद्धृत किया है : 'सचमुच, मैं सच्चे अंतःकरण से घोषित करता हूं कि किसी समय अगर मैंने, जहां तक मेरे पद के अनुसार संभव था, आपको अपनी विशेष स्थिति के कारण उन कायर और प्रतिशोधी आक्रमणों से पैदा होने वाली परेशानियों से बचाने में मदद की है, तो मेरे सामने केवल एक ही विचार था कि ऐसा करना न्याय का तकाजा था और लोक-सेवा के हित में था, जिसमें आपकी मदद इतनी कीमती साबित हुई और जिसमें, कोई भी निष्पक्ष मनुष्य मानेगा, आपकी ईमानदारी पर जरा भी संदेह नहीं किया जा सकता था।"[1]

यह पत्र अक्तूबर 1834 में लिखा गया था। इससे करीब दो महीने पहले 1 अगस्त 1834 को द्वारकानाथ ने दीवान के पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने काफी दिन कम्पनी की नौकरी कर ली थी और उनका निजी कारोबार काफी बढ़ गया था और वे अब पूरा समय अपने उद्योग-धंधों में लगाना चाहते थे।

नोट्स

[1] **पार्टनर्स इन ऐम्पायर**, पृ० 32.

[2] **फ्रीडम मूवमेन्ट इन बंगाल**, 1818-1904. सम्पादक – निर्मल सिन्हा, पृ० 25.

[3] पी.सी. राय चौधरी का लेख, 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर एज ए बेनेवोलेन्ट जमींदार', रविवार, 4 जून, 1978 के टाइम्स ऑफ इण्डिया में।

[4] **बंगाल हरकारू**, 6 जनवरी, 1843.

[5] रवीन्द्र सदन अभिलेखागार, शांतिनिकेतन। हवाला – 'डाक 10 – द्वारकानाथ्स करेस्पॉन्डेन्स'.

[6] **मेमायर**, पृ० 16-17, **जीवनी**, पृ० 47-49.

[7] यद्यपि आम तौर पर विश्वास किया जाता है कि द्वारकानाथ ने केवल बारह साल, 1822 से 1834 तक कम्पनी की नौकरी की थी, लेकिन क्षितीन्द्रनाथ का अनुमान है कि उनकी नौकरी 1822 से पहले ही शुरू हो गई थी, कि 'संभवत' 'राममोहन के कलकत्ता आने के बाद दो से चार साल के अंदर ही सरिश्तेदार की जगह खाली हो गई थी' और कि राममोहन ने द्वारकानाथ को यह नौकरी दिलाने में मदद की थी। **जीवनी**, पृ० 55.

[8] क्लिंग, पृ० 37.

[9] नौकरी के इस दौर में ही उन्होंने 1830 में कालीग्राम की जमींदारी और 1834 में शहजादपुर की जमींदारी खरीदी थी। क्षितीन्द्रनाथ टैगोर – **जीवनी**, पृ० 57.

[10] क्लिंग द्वारा उद्धृत, पृ० 37.

[11] क्षितीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा **जीवनी** में उद्धृत, पृ० 62.

छह

उद्यमकार

द्वारकानाथ और जो कुछ भी रहे हों – और वे बहुत कुछ थे भी – लेकिन वे सबसे पहले और सबसे ज्यादा एक उद्यमकार थे। इस मामले में उन्हें एक सृजनशील व्यक्ति कहा जा सकता है। वे साहसी थे और नये क्षेत्रों को खोजते समय जोखिम उठाने से नहीं डरते थे। नये कारोबार या उद्यम को वे बड़ी होशियारी, उपायकुशलता और अथक परिश्रम से चलाते थे, लेकिन उसे सफल बनाने के बाद उसमें उनकी दिलचस्पी खत्म हो जाती थी। और वे कोई नया उद्यम शुरू कर देते थे। उनके स्वभाव की इस विशेषता ने और इस तथ्य ने कि वे एक स्वार्थी व्यक्ति की अपेक्षा एक कल्पनाशील व्यक्ति अधिक थे, अंत में उनके सारे कार्य को चौपट कर दिया। उनके प्रथम जीवनीकार मित्रा ने उन्हें एक 'बहुमुखी प्रतिभा' बताया है, जो एक सर्वथा उपयुक्त विशेषण है, किन्तु जो उनसे भी अधिक उनके विश्वविख्यात पोते के ऊपर लागू होता है, जिसका एक शताब्दी बाद सारे संसार ने एक 'बहुमुखी प्रतिभा' का कवि कह कर अभिनन्दन किया था।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि बालिग होने और कानूनी तौर पर अपनी पैतृक जायदाद के मालिक बनने से पहले ही द्वारकानाथ जमींदारी व्यवस्था और सिविल कानून की पेचीदगियों को जानने-समझने में पूरे मनोयोग से जुट गये थे। दूसरे जमींदार परिवारों के वंशजों की तरह उन्होंने अपनी विरासत को इस रूप में कभी नहीं देखा कि वह शहर में अनर्जित आमदनी पर विलास का जीवन व्यतीत करने का पासपोर्ट है। उन्होंने उसको विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के उद्यमों का आरंभ-बिन्दु या आधार बनाया। वे बचत करते और नये कामों में पूंजी लगाते, ज़मीनों से होने वाली आमदनी को कर्जों से प्राप्त होने वाले सूद से बढ़ाते, कानूनी

सलाहकार के रूप में मिलने वाली आमदनी और अपने यूरोपीय मित्रों के साथ सांझे में निर्यात का व्यापार करके प्राप्त हुई आमदनी से अपनी जमापूंजी बढ़ाते। अपनी कारोबारी ज़िन्दगी के आरंभ से ही वे युरोपीय व्यापारियों और ब्रिटिश अफसरों से निकट सम्पर्क स्थापित करते रहे, कुछ तो राममोहन राय और पथुरियाघाट के अपने चचेरे भाइयों की मार्फत और कुछ स्वयं अपने आप।

इनमें से कुछ व्यापारियों के साथ मिलकर साझेदारी में उन्होंने योरप को रेशम, चीनी और शौरे का निर्यात करना शुरू किया। हालांकि उनके आरंभिक व्यवसायों के, यहां तक कि कुछ बाद के उद्योगों के भी रिकार्ड दुर्भाग्य से लुप्त हो गये हैं,[1] लेकिन जो भी जमा किये जा सके हैं, उनसे जाहिर है कि एक स्थानीय व्यापारी जान लुंड्नि के साथ मिल कर 1821 में द्वारकानाथ ने दक्षिण अमरीका के नगर ब्यूनसआयर्स को एक जहाज भर कर रम, सौंफ और जायफल भेजा था। ब्यूनसं आयर्स में माल उतार कर किराये का यह 260 टन का जहाज वालपरेसो गया, जहां से लौटते फेरे के लिए उस पर तांबा लादा गया।[2] इस समय तक विदेशों से द्वारकानाथ का यह कारोबार कलकत्ते के अन्य हिन्दू व्यापारियों, जैसे रामदूलाल दे की तुलना में, जो फेयरली फर्गूसन एण्ड कम्पनी के लिए **बनिया** एजेन्ट का काम करता था और जिसने न्यूयार्क, बोस्टन, न्यू बेरी पोर्ट और फिलाडेल्फिया आदि के व्यापारियों से व्यावसायिक सम्पर्क स्थापित कर लिए थे, अभी प्रायोगिक और सीमित कोटि का ही था। उनके अमरीकी मित्रों ने उनके नाम पर एक जहाज का नाम रखा था।[3]

तीसरे दशक के आरंभ तक बैंकों का व्यवसाय अपने शैशव-काल में ही था। कुल चार बैंक थे, लेकिन उनमें से एक भी उस अर्थ में पब्लिक बैंक नहीं था, जिस अर्थ में आज उसे समझा जाता है। बैंक ऑफ बंगाल, जो 1809 में स्थापित की गई थी, एक अर्ध-सरकारी संस्था थी और 'एक सरकारी खज़ाने से कुछ ही अधिक थी और 1824 में बर्मा-युद्ध के दौरान उसने अपनी सारी पूंजी युद्ध के खर्च में लगा दी थी, जिससे कलकत्ते के व्यापारियों को रोजमर्रा के लेन-देन की सुविधा से भी वंचित होना पड़ गया।[4] अन्य तीनों बैंकें व्यावसायिक घरानों की गौण संस्थाएं थीं। बैंक ऑफ हिन्दुस्तान, जो 1770 में स्थापित की गई थी, अलैक्जैंडर एण्ड कम्पनी की थी; कलकत्ता बैंक, जो 1824 में कायम हुई थी, जान पामर की थी और कामर्शियल बैंक को मैकिन्टॉश एण्ड कं० ने 1819 में कायम किया था, जिसमें गोपी मोहन टैगोर का भी हिस्सा था। इसका संस्थापक एनीस मैकिन्टॉश राममोहन राय का मित्र था, जिनके पूंजी-निवेष तथा अन्य व्यावसायिक सौदे उसकी एजेन्सी द्वारा किये जाते थे। इस कम्पनी का एक पार्टनर जी.टी. गार्डन था, जो राममोहन राय और द्वारकानाथ दोनों का मित्र था और यूनीटेरियन क्लब का नियमित सदस्य था। इसी कारण शायद इस कम्पनी के साथ धीरे-धीरे द्वारकानाथ के संबंध और गहरे होते गये, यहां तक कि वे कामर्शियल बैंक के मालिकों में से एक हो गये, जो समय के साथ मैकिन्टॉश एण्ड कं० का अभिन्न अंग बन गई थी।

द्वारकानाथ महसूस करते थे कि कोई भी बैंक जो एक व्यावसायिक घराने या एजेन्सी की सहायक शाखामात्र हो या ईस्ट इंडिया कम्पनी की कठपुतली हो, समग्र रूप से व्यापारी वर्ग के हितों का समुचित ध्यान नहीं रख सकती। इसलिए 1828 में उन्होंने तथा कामर्शियल बैंक के अन्य हिस्सेदारों ने अलग से एक नई ज्वायंट-स्टाक बैंक कायम करने का निश्चय किया जो व्यावसायिक कम्पनियों या सरकार से संबंद्ध न हो, यानी आजाद हो। इस प्रकार 1828 के अगस्त-सितम्बर में 500 हिस्सेदारों की बारह लाख रुपये की पूंजी से यूनियन बैंक की स्थापना की गई। यद्यपि सीधे तौर पर या अपने मित्रों, रिश्तेदारों और आश्रितों के जरिये अधिकांश भाग पर द्वारकानाथ का नियंत्रण था, लेकिन वे खुद प्रतिष्ठा में रहे, क्योंकि उन दिनों वे बोर्ड ऑफ कस्टम्स, साल्ट एण्ड ओपियम में कम्पनी की नौकरी करते थे। लेकिन उनका प्रभाव इससे ही जाहिर हो गया था कि उनके भाई रामनाथ को बैंक का खजान्ची चुना गया था और उनके मित्र विलियम कार को उसका सेक्रेटरी, जो उस समय एक स्वतंत्र व्यापारी था किन्तु बाद में कार, टैगौर एण्ड कं० में द्वारकानाथ का साझेदार बन गया था। द्वारकानाथ ही उसके वास्तविक प्रेरक और पथ-प्रदर्शक थे। अगले बीस वर्षों तक, अर्थात 'द्वारकानाथ के जीवन-काल में यूनियन बैंक कलकत्ते के व्यवसायिक ढांचे की आधार-शिला बनी रही।'[5]

उन्नीसवीं सदी के शुरू के दशकों में बीमे का व्यवसाय तो बैंकों के व्यावसाय से भी अधिक प्रारंभिक अवस्था में था। एक कलकत्ता लाडेबल सोसाइटी थी, जिसके साथ द्वारकानाथ और एक पारसी व्यापारी रुस्तमजी कावसजी संबद्ध थे। 1822 में द्वारकानाथ ने ओरियंटल लाइफ एंश्योरेंस सोसाइटी कायम की, जिसके मालिक वे स्वयं और तीन व्यावसायिक प्रतिष्ठान साझेदार के रूप में थे – फर्गूसन एण्ड कं०, क्रटेन्डेन एण्ड कं० और मेकिन्टॉश एण्ड कं०। एजेन्सी के प्रतिष्ठानों के कर्जदारों का जीवन बीमा करने के अपने मुख्य उद्देश्य के अलावा यह कम्पनी विभिन्न कम्पनियों को अल्प-कालिक ऋण भी देती थी।

1828-29 में यूनियन बैंक की स्थापना करने में द्वारकानाथ ने जो पेशकश की थी और दूरन्देशी दिखाई थी, उसका प्रमाण तो यूनियन बैंक के खुलने के कुछ महीनों के अंदर ही प्राप्त हो गया, जब कलकत्ते के प्रमुख व्यावसायिक प्रतिष्ठान जान पामर एण्ड कं० ने अपनी दुकान बंद कर दी। पामर का दिवाला निकल जाने से कलकत्ते के यूरोपीय व्यावसायिक क्षेत्रों में हाहाकार मच गया और 1830-33 का भयंकर आर्थिक-संकट छा गया। ब्लेयर क्लिंग के शब्दों में : 'आत्मविश्वास और व्यापार-विस्तारण का वातावरण रातोंरात उड़न-छू हो गया। दिसम्बर में अलेक्जेन्डर एण्ड कम्पनी का व्यापार ठप हो गया, और मेकिन्टॉश एण्ड कं० का जनवरी 1833 में दिवाला पिट गया। इस दौरान, एक द्वारकानाथ ही थे जो चट्टान की तरह अविचल बने रहे। घटती हुई कामर्शियल बैंक के एकमात्र वे ही मालदार हिस्सेदार थे, और जैसे ही मेकिन्टॉश का दिवाला निकला, उन्होंने नोटिस जारी कर दी कि वे

कामर्शियल बैंक के लेनदारों के दावों का भुगतान करेंगे और जो बैंक का पावना था उसे वसूल करेंगे। यह बात उन्होंने ओरियन्टल लाइफ एश्योरेंस सोसायटी के साथ भी की। ...1834 में उन्होंने पुरानी कम्पनी के कार्यों के जारी रखने के लिए नये हिस्सेदार चुन कर न्यू ओरियन्टल लाइफ एश्योरेंस कम्पनी की स्थापना की।'[6]

1830-33 के आर्थिक-संकट से उत्पन्न तबाही से जो मलबा बचा था, उसके बीच एक ठोस चट्टान के रूप में उभर कर द्वारकानाथ ने महसूस किया कि यही समय था जब उनको चाहिए कि भारतीय कारोबार और उद्यम को एक नई इमारत खड़ी करें जो उस समय के भारत की राजधानी के व्यावसायिक जीवन पर हावी हो सके और उसका नेतृत्व कर सके। इसलिए उन्होंने कम्पनी की नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और विलियम कार के साथ मिल कर अपनी प्रसिद्ध कम्पनी, कार, टैगोर एण्ड कं० स्थापित की। समय अनुकूल था। 1833 के चार्टर ऐक्ट ने ईस्ट इंडिया कम्पनी पर यह आदेश लागू किया था कि वह भारत में अपनी व्यावसायिक सरगर्मियों को खत्म कर दें, जिनका क्षेत्र अब पूरी तरह भारतीय और यूरोपीय निजी उद्यमों के लिए खुल गया था। **स्वच्छन्द व्यापार** का युगारंभ हो रहा था। अब तक बंगाली व्यापारी, जिन्होंने विशाल पूंजी जमा कर ली थी, द्वारकानाथ से भी अधिक, वे यूरोपीय व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के लिए बनिया का काम करके ही सन्तुष्ट रहे थे। द्वारकानाथ पहले बंगाली थे,[7] जिन्होंने एक यूरोपीय साझेदार के साथ मिल कर बराबरी के आधार पर आधुनिक युरोपीय ढंग का एक स्वतंत्र कारोबार शुरू किया था। अमलेश त्रिपाठी के शब्दों में, 'वे सच्चे अर्थों में पहले बंगाली उद्योगपति थे और भारतीय पूंजीपति वर्ग की एक पूर्वतम मिसाल थे जो इस्तेमरारी बन्दोबस्त और सरकारी नौकरी के सेवे में पैदा हुए थे और उसे तोड़ कर बाहर निकले थे।'[8]

इस बात की चेतना से कि वे भारतीय उद्यम के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात कर रहे थे, उन्होंने गर्वनर जनरल विलियम बेंन्टिक को एक पत्र में अपने नये कारोबार के संबंध में सूचित करते हुए दावा किया, "...यह कारोबार बंगाल के व्यावसायिक इतिहास में अब तक अनोखा है, क्योंकि यह पहली मिसाल है जबकि एक यूरोपीय और एक बंगाली व्यापारी के बीच, उसकी पूंजी के आधार पर खुलेआम बाज़ाप्ता साझेदारी कायम की गई है... न कि उन साधनों पर निर्भर किया गया है, जिनका अनुभव (संकेत उन अनेक एजेन्सी प्रतिष्ठानों और बैंकों की ओर है, जिनका दिवाला पिट गया था) अत्यन्त खतरनाक साबित हुआ है।" उन्होंने आगे लिखा कि यह नया प्रतिष्ठान 'कलकत्ते के प्रथम प्रतिष्ठानों से बेहतर न हुआ तो उनके मुकाबले का तो होगा ही... जो यूरोपीय और भारतीय ईमानदारी, दौलत और अनुभव के... लाभों को... एकजुट करेगा' और 'देश की उत्पादक शक्तियों को प्रस्फुटित करेगा।'[9]

बेंन्टिक ने अपने पत्र में द्वारकानाथ को 'कलकत्ता' में यूरोपीय मॉडल का व्यावसायिक प्रतिष्ठान स्थापित करने वाला प्रथम भारतीय होने पर बधाई दी।

बेंन्टिक एक विलक्षण आदमी था, जिसने अपने पूर्ववर्ती लार्ड हेस्टिंग्ज की तरह नये विचारों को प्रोत्साहन देने में काफी योग दिया था। हेस्टिंग्ज ने, जैसा हम पहले बता चुके हैं, वेलेजली द्वारा 1799 में लगाये गये प्रतिबंधों से समाचारपत्रों को मुक्त करने का निर्भीक कदम उठाया था। 'लेकिन वह जिस उदार नीति पर चलना चाहता था वह कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स और स्वयं उसके अपने अफसरों के असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण और स्वयं अपने ढलमुलपने के कारण अधिक कारगर नहीं हो सकी। इसके विपरीत बेंन्टिक का उदारवाद अधिक व्यावहारिक किस्म का था। वह जानता था कि उसे क्या करना है और उसमें वह करने की संकल्प-शक्ति भी थी।... वह पहला गवर्नर जनरल था, जिसने भारतीय मामलों के संबंध में भारतीय जनमत को जानने की कोशिश की थी।'[10]

भारत से वापस लौटने के बाद समुद्री जहाज से उसने कलकत्ते के एक मिस्टर नार्टन के नाम पत्र में अपने इस विश्वास पर ज़ोर दिया कि 'हमारे प्रशासन को वस्तुतः राष्ट्रीय और भारतीय बनना चाहिए। हमें आम लोगों के दिलों में अपनी जड़ें जमाने की कोशिश करनी चाहिए।' इस बात पर खेद प्रकट करते हुए कि 'अब तक सरकार के सारे संबंध केवल अंग्रेजों के साथ ही रहे हैं,' उसने प्रश्न किया, 'आगे इस पर कौन विश्वास करेगा कि अभी कुछ साल पहले तक जो अधिकार निम्नतम यूरोपियन को प्राप्त था कि वह गाड़ी में बैठ कर गवर्नमेंट हाऊस तक आ सकता था, वह अधिकार बिना पहले से इजाजत लिए बगैर ऊंची से ऊंची श्रेणी, दौलत और योग्यता के भारतीय को नहीं प्राप्त था? कौन विश्वास करेगा कि पिछले साल के अंदर ही एक भारतीय सज्जन ने अपना नाम लेकर यह घोषणा करने की आजादी लेने का साहस (इस शब्द का प्रयोग ही उपयुक्त होगा) किया है कि वह कलकत्ता के एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान में साझेदार है, मेरा ख्याल है कि शायद प्रमुख साझेदार, हालांकि यह सभी जानते हैं कि सारी दौलत, वास्तविक और व्यक्तिगत और लगभग सारी उधार की पूंजी जिसके बल पर अब तक कलकत्ता का सारा व्यापार चलता था, वह भारतीयों की थी?'

ड्यूक ऑफ आर्लियन्स, जो 1830 में दूसरी फ्रांसीसी क्रांति के बाद हुई फिलिप के नाम से फ्रांस का पहला नागरिक-बादशाह बना था और बेंन्टिक का मित्र था ने बेंन्टिक को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किये जाने पर उसने अपने पत्र में लिखा : 'मुझे पूरा यकीन है कि तुम भारत और मातृदेश को महत्वपूर्ण सेवा कर सकोगे... तुम शायद औरों की अपेक्षा इस बात को अधिक समझते हो कि खास तौर पर शासितों को खुशहाली बढ़ाने से ही शासकों के हितों को बढ़ावा दिया जा सकता है।'[12]

द्वारकानाथ जब कम्पनी के कर्मचारी थे, उन दिनों भी बेंन्टिक के साथ उनके दोस्ताना संबंध थे। सती-विरोधी आंदोलन में राममोहन राय के साथ उनका गहरा सहयोग, एक उदार दानी पुरुष के रूप में उनकी ख्याति, उनकी योग्यता

और ईमानदारी के प्रति अंग्रेज अफसरों की बहुत ऊंची राय, इन सबने गर्वनर जनरल के हृदय में उनके प्रति स्नेहपूर्ण सम्मान का भाव पैदा कर दिया था। क्षितीन्द्रनाथ के अनुसार, कम्पनी की नौकरी के दिनों में द्वारकानाथ ने एक बार लार्ड और लेडी विलियम बेंन्टिक को अपने बेलगछिया वाली कोठी में मिलने के लिए निमंत्रित किया था। लेडी विलियम बेंन्टिक को निमंत्रण स्वीकार करने की इजाजत देते हुए, गर्वनर जनरल ने यह कह कर अपने लिए माफी मांग ली कि चूंकि वे अपनी कौंसिल के सदस्यों के निमंत्रण तक स्वीकार नहीं करते, इसलिए उनके लिए कस्टम्स, साल्ट और ओपियम (चुंगी, नमक और अफीम) के बोर्ड के दीवान का निमंत्रण स्वीकार कर लेना उचित नहीं लगेगा।[13] 9 जनवरी, 1830 के **समाचार दर्पण** (सिरामपुर के बेप्टिस्ट मिशन का बंगाली मुख-पत्र) ने खबर छापी कि गर्वनर जनरल और लेडी विलियम बेंन्टिक ने ब्रिटेन के सम्राट का जन्म-दिन मनाने के लिए गर्वनमेन्ट हाऊस में डिनर और बाल-नृत्य का आयोजन किया था। इसमें पहली बार कुछ चुनिन्दा भारतीयों को निमंत्रित किया गया था। उनमें द्वारकानाथ भी एक थे, 'यद्यपि वे केवल चुंगी, नमक और अफीम के बोर्ड के दीवान ही थे।'

गर्वनर जनरल के पद से अवकाश-ग्रहण करने के अवसर पर बेंन्टिक अपनी अनेक-विध-व्यवस्तताओं के कारण द्वारकानाथ के पत्र का, जिसमें उन्होंने कार, टैगोर एण्ड कं० के नाम से एक नया कारोबार शुरू करने की सूचना दी थी (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है), उत्तर नहीं दे सके। समुद्र-यात्रा के दौरान ही बेंन्टिक को उत्तर देने का अवकाश मिल सका था। 10 सितम्बर, 1835 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** ने **कूरियर** का हवाला देते हुए लिखा कि, 'लार्ड विलियम बेंन्टिक का समुद्री जहाज से जून की तारीख में लिखा एक पत्र बाबू द्वारकानाथ टैगोर को प्राप्त हुआ है। उसका उद्देश्य लार्डशिप द्वारा प्रस्थान से पहले बाबू के एक पत्र का उत्तर न दे सकने की गलती के लिए माफी मांगता है, और यूरोपीय व्यापारियों के साथ संबंद्ध होकर उन्होंने अपने देशवासियों के लिए जो मिसाल कायम की है, उसके लिए उन्हें बधाई देना है।'

1834 के बाद से, जब वे कम्पनी की नौकरी छोड़ कर प्रमुख इण्डो-यूरोपीय फर्म, कार, टैगोर एण्ड कं० के प्रधान बने (शक्तिशाली यूनियन बैंक के भी वास्तविक प्रधान वे ही थे) तो उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। लेकिन यह औपचारिक प्रतिष्ठा मात्र नहीं थी। तीक्ष्ण व्यावसायिक बुद्धि और साहसिकता, ईमानदारी, मनमोहक व्यवहार और हर वर्ग और हर किस्म के लोगों के साथ सरलतापूर्वक घुल-मिल जाने की अपूर्व क्षमता और सबसे अधिक उनकी दानशीलता और हर संकट-ग्रस्त व्यक्ति की सहायता करने की तत्परता आदि के लिए उनकी ख्याति इतनी व्यापक थी कि वे सबके स्नेह और आदर के पात्र बन गये थे और उन्हें वह प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी, जो ऊंचे से ऊंचा सरकारी पद या बेशुमार

दौलत भी नहीं दिला सकती थी। वे अपने पुराने मित्रों और सहयोगियों के प्रति इतने वफादार थे कि वे अक्सर अपना नफा-नुक्सान सोचे बगैर उनकी मदद करते रहते थे। जब **पामर एण्ड कं०** फेल हुई, जो क़भी इतनी प्रसिद्ध और शक्तिशाली थी, तो बूढ़े पामर हमेशा अपने पुराने मित्र 'द्वारकी' के पास ही अपने साझेदारों की मदद के लिए, जो आर्थिक कठिनाइयों में फंस गये थे, छोटे-मोटे कर्ज मांगने जाते थे। एक विधवा स्त्री को उन्होंने लिखा, "द्वारकानाथ के पास जो कुछ है और जो कुछ वे उधार लेकर जमा कर सकते हैं, उस सबको वे काम में लगा देते हैं, नहीं तो उनकी उदारता की कोई सीमा न होती।" उन्होंने आगे लिखा, 'मेरा अनुमान है कि वे औरों को उधार देने और अपने निजी कार्यों के लिए उधार लेते हैं।'[14] एक बार 1832 में जब पामर ने द्वारकानाथ से कर्ज मांगा तो उस समय द्वारकानाथ के पास भी नकद रकम की तंगी थी, इसलिए उन्होंने चुंगी, नमक और अफीम के बोर्ड से आग्रह किया कि उन्होंने पद ग्रहण करते समय 50,000 रु० की जो समानान्तर जमानत जमा की थी, वह रकम उन्हें वापस कर दी जाय। बोर्ड ने यह आग्रह स्वीकार कर लिया।

बड़ी-बड़ी जमींदारियों के मालिक होने के कारण उनके लिए अच्छी जमानत देकर कर्ज पा लेना बहुत आसान था। दूसरों की मदद करने में सदा तत्पर रहने के कारण जरूरत पड़ने पर दूसरों से भी मदद पाने की संभावना पर वे भरोसा कर सकते थे। और इस प्रकार उन्होंने अपना व्यापार बहुत तेजी से बढ़ा लिया। वे अशर्फियां लुटाने और कोयलों पर मोहर लगाने वाले व्यक्ति नहीं थे, बल्कि उन्हें कोयले लुटाने और अशर्फियों पर मोहर लगाने वाला व्यक्ति कहा जा सकता है। उदारतापूर्वक देकर वे विशाल मात्रा में संग्रह करते थे। उनकी उदारता स्वार्थ-प्रेरित नहीं थी, बल्कि एक सांसारिक व्यक्ति की सहज बुद्धिमत्ता का परिणाम थी। वे केवल चालीस वर्ष के थे जब उन्होंने कार, टैगोर एण्ड कं० की स्थापना की। उस समय उनकी क्षमताएं अपने चरम उत्कर्ष पर थीं, आत्म-विश्वास और अंतः स्फूर्ति से भरपूर। ऐसे में कोई बाधा उनको आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती थी और वे पूरे वेग से आगे बढ़ते गये। यूरोपीय लोग उनकी भावना और ईमानदारी के प्रशंसक थे और उनके अपने देशवासी उनका एक देशभक्त और राष्ट्र-निर्माता के रूप में अभिनन्दन करते थे। उग्र सुधारवादी 'तरुण बंगाल' के मुखपत्र **ज्ञाना-नेशन** ने अपने 9 अगस्त 1834 के संस्करण में लिखा : 'विदेशी आते हैं और कुछ ही दिनों में इतना कमा लेते हैं कि घर वापस जाकर ऐशोआराम की जिन्दगी गुजार सकें, और इस प्रक्रिया में हमारे देश की सारी दौलत बाहर खिंची चली जा रही है। संभव है कि अब स्थिति बदलेगी। पद्दलित हिन्दुस्तान अब अन्य व्यापारी देशों का मुकाबला करेगा। टैगोर परिवार ने जो मार्गदर्शन किया है उसका और अनेक लोग अब अनुसरण करेंगे और इस तरह के उद्यमों में भाग लेंगे, जो हितकारी हैं और साहसिक हैं और इस प्रकार हिन्दुओं के नाम पर आलसी और जाहिल होने का जो

कलंक लगा हुआ है, उसे धो देंगे।'

बाद में **फिशर्स कोलोनियल मेगेजीन** (जिल्द I, 1842, पृ० 388) ने टिप्पणी करते हुए लिखा : 'द्वारकानाथ टैगोर के इतिहास में शायद इससे बड़ी और कोई स्थिति नहीं है, जो इस अद्भुत पुरुष के साहस, उसकी दूरदर्शिता, रचनात्मक क्षमताओं और स्वातंत्रय-प्रिय भावना का इतने स्पष्ट रंग में प्रदर्शन करती है। जब तक द्वारकानाथ ने यह कदम नहीं उठाया, तब तक, जहां तक ज्ञात है, किसी हिन्दू ने कभी समुद्री मार्ग से विदेशों के साथ व्यापार नहीं किया था,[15] और अगर हमारी यह आशा पूरी हुई कि हिन्दू राष्ट्र व्यावसायिक उद्यम से प्राप्त होने वाले लाभों का समुचित मात्रा में उपभोग कर सके, तो इसके लिए हमें द्वारकानाथ टैगोर और अपनी प्रबुद्ध योजनाओं को कार्यान्वित करने में प्रदर्शित उनकी सूझ-बूझ को भारत के जीवन में एक नये युग का सूत्रपात करने का श्रेय देना होगा।'

हालांकि कम्पनी विलियम कार की साझेदारी में कायम की गई थी, जिसका नाम कम्पनी के नाम में सबसे पहले आता था, लेकिन उसमें लगी पूंजी, उसे कायम करने में पेशकश और उसका निर्देशन मुख्यतः द्वारकानाथ का था। अन्य निवेशों के अलावा, साझेदारी के दस्तावेज पर 1 अगस्त, 1834 को दस्तखत करते समय द्वारकानाथ ने कम्पनी को दस लाख रुपये का कर्ज दिया, जिस पर उन्हें कम्पनी से 8 प्रतिशत की दर से ब्याज मिलता था। इस ऋण को लाभांश और मुनाफा संबंधी उनके निजी हिसाब खाते से अलग एक दूसरे हिसाब-खाते में रखा गया। ऋण की यह रकम उनके जीवन-काल में कभी भी वापस नहीं ली गई और विदेश-यात्रा पर जाने से पहले उन्होंने अपने वसीयतनामे में इसका उल्लेख किया है।[16] कम्पनी के अंदर द्वारकानाथ की भूमिका इतनी प्रभुत्वशाली थी कि ब्लेयर क्लिंग के अनुसार 'कार, टैगोर एण्ड कं० वस्तुतः एक साझेदारी की बजाय जैसे एक पितृसत्ताक संस्था थी।'

कार तो केवल सबसे पहला साझेदार था। उसके बाद और भी कई यूरोपीय साझेदार उसमें शामिल किये गये।[17] आरंभ में कम्पनी के दफ्तर रानीमुदी लेन (बाद में ब्रिटिश इण्डियन स्ट्रीट) में ओल्ड कोर्ट हाऊस स्ट्रीट के पास स्थित थे। बाद में वे काल्विन घाट के निकट ले जाये गये। आरंभ में कम्पनी मुख्यतः कच्चे रेशम, रेशमी कपड़े, चीनी, रम, नील, शोरा, खालें, इमारती लकड़ी और चावल का निर्यात करती थी। इनमें से कुछ चीजें तो द्वारकानाथ की जमींदारियों में ही पैदा और वहीं निर्यात के लिए संसाधित की जाती थीं। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी से, जो निर्यात करने योग्य कच्चे रेशम के अधिकांश भाग का उत्पादन करती थी और जिसे 1833 के चार्टर ऐक्ट के अनुसार यह कार्य बंद कर देना पड़ा था, जंगपुर का रेशमी सूत की कताई का केन्द्र और कोमरकोली के रेशम पैदा करने वाले यूनिट, जो उनकी बरहामपुर की पैतृक जमींदारी के भीतर स्थित थे, खरीद लिए। रेशम के कोये आस-पड़ोस के उत्पादकों से खरीदे जाते थे, जो द्वारकानाथ के ही काश्तकार थे।

नील का उत्पादन भी उनकी बरहामपुर, शहजादपुर, बड़ा जुंगीपुर और छोटा जुंगीपुर की जमींदारियों में किया जाता था।[19]

क्षितीन्द्रनाथ के अनुसार, कार, टैगोर एण्ड कं० ने ही सबसे पहले चीन से रेशमी कपड़े का आयात शुरू किया था, और जब द्वारकानाथ पहली बार 1842 में इंगलैंड गये तो वे महारानी विक्टोरिया को भेंट करने के लिए अपने साथ बढ़िया से बढ़िया चुन कर रेशम के थान ले गये। यह कहना कठिन है कि यह तथ्य किसी दस्तावेजी प्रमाण पर आधारित है या परिवार में प्रचलित किंबदन्ती पर, क्योंकि संबंधित विवरण अब उपलब्ध नहीं हैं।

इस कम्पनी का एक कार्य-क्षेत्र और भी था, जमींदारियों का प्रबंध – द्वारकानाथ की व्यक्तिगत जमींदारियों का, परिवार के अन्य सदस्यों की जमींदारियों का या उन जमीनों का जो पूंजी-निवेश के लिए या सट्टेबाजी के लिए खरीदी जाती थीं। इस तरह की तमाम जमींदारियों के लिए कम्पनी हर महीने एक लाख रुपया कर के रूप में सरकार को देती थी। 19 सितम्बर, 1846 के **बंगाल हरकारू** ने लिखा कि, 'इतनी विशाल मात्रा में कर चुकाने से यह दावा सिद्ध हो जाता है कि टैगोर की रियासत का विस्तार केवल बर्दवान के राजा से ही दूसरे स्थान पर है।'[20]

कम्पनी के कार्यक्षेत्र में जहाजरानी का काम भी शामिल था। कम्पनी की स्थापना से बहुत पहले ही द्वारकानाथ के अकेले अपने या साझेदारी में कई जहाज थे, जो समुद्री मार्गों पर चलाये जाते थे। 1831 में खिदरपुर के गोदी बाड़े में उन्होंने क्लिपर वार्क किस्म का 363 टन का एक तेज रफ्तार वाला जहाज बनवाया, जिसका नाम **वाटरविच** (जलमोहनी) था। कप्तान हेन्डरसन और विलियम स्टार्म इसमें उनके साझेदार थे। उनके पास और भी कई क्लिपर जहाज थे, जिनका चीन के साथ अफीम का व्यापार करने में इस्तेमाल किया जाता था।[21] पारसी व्यापारी रुस्तमजी कावसजी के पास भी कुछ जहाज थे और ब्लेयर क्लिंग ने लिखा है कि 'कलकत्ता के लोग शर्तें लगाते थे और बड़ी उत्तेजना और उत्साह से इन्तजार करते थे कि रूस्तमजी और द्वारकानाथ के जहाजों में से कौन कैन्टन में सामान उतार कर जल्दी वापस आयेगा। 1838 में **वाटरविच** ने केवल 25 दिनों के रिकार्ड समय में कैन्टन से कलकत्ता लौट कर अपने तमाम प्रतिस्पर्धियों को पछाड़ कर अपनी 'श्रेष्ठता का सिक्का जमा दिया'। [22] अफीम के व्यापार के लिए क्लिपर जहाजों के अलावा द्वारकानाथ के पास देश के अंदर और भारत-ब्रिटिश व्यापार के लिए भी जहाज थे। कार, टैगोर एण्ड कं० की स्थापना के बाद इन जहाजों को चलाने की एजेन्सी इस नई कम्पनी ने अपने हाथ में ले ली।

एक उद्यमी के रूप में उन्हें अत्यंत कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ रहा था। व्यावसायिक आवश्यकताओं में वृद्धि होने के साथ-साथ कम्पनी-कानून में अनुकूल सुधार नहीं हुए थे, इसलिए अभी तक प्रतिबन्धक देयता भी नहीं थी। एक संयुक्त कम्पनी में हर साझीदार कम्पनी के समस्त ऋण के लिए व्यक्तिगत रूप से

जिम्मेदार था, जिसके भयंकर नतीजे निकलते थे, जैसा कि उस समय स्पष्ट हो गया जब द्वारकानाथ की मृत्यु के बाद यूनियन बैंक फेल हुई। यूरोपीय हिस्सेदारों के पास चूंकि देश के अंदर अपनी जमीन-जायदाद नहीं थी, इसलिए उन्हें कोई खतरा नहीं था। लेकिन कम्पनी के फेल होने पर एक भारतीय हिस्सेदार की जमीन-जायदाद जब्त हो सकती थी। प्रतिबन्धक देयता का कानून 1850 में पास हुआ था, द्वारकानाथ की मृत्यु के बाद। जोखिम की इन परिस्थितियों में ऐसी संयुक्त कम्पनियां स्थापित करने के लिए बड़े साहस की जरूरत होती थी। लेकिन इससे उत्साही और सदा उद्यमशील द्वारकानाथ न तो व्यक्तिगत रूप से और न कार, टैगोर एण्ड कं० के द्वारा विभिन्न प्रकार की कम्पनियों की स्थापना में, जिनमें से हरेक जोखिमों से भरपूर नये मार्गों को काट कर पहले पहल बनायी गई थीं, कभी हिचकिचाये नहीं, न पीछे हटे। ये कम्पनियां थीं, कलकत्ता स्टीम टग असोसिएशन (जिसे उनके बंगाली निन्दक 'ठग असोसिएशन' कह कर बदनाम करते थे), फ्लोटिंग ब्रिज प्रोजेक्ट, बंगाल बांडेड वेयर हाउस असोसिएशन, कलकत्ता डाकिंग कम्पनी, बंगाल साल्ट कम्पनी, स्टीम फेरी ब्रिज कम्पनी, बंगाल टी असोसिएशन, बंगाल कोल कम्पनी, तथा इण्डिया जेनरल स्टीम नेवीगेशन कम्पनी।[24]

द्वारकानाथ को एक बाज जैसी अचूक दृष्टि प्राप्त थी। वे दूर से ही शिकार को भांप लेते थे और झपट कर उसे दबोच लेने में वे एक क्षण की भी देरी नहीं करते थे। वे कल्पनाशील थे और आगे की देख सकते थे। वे जानते थे कि कलकता से हुगली नदी के मुहाने तक जहाजों को खींच कर ले जाने के लिए कर्षनाव-सेवा एक आर्थिक आवश्यकता थी। आम तौर पर एक पाल-जहाज को उथले स्थानों और बालू-भित्तियों से भरे इस सौ मील के खतरनाक जलमार्ग का सफर तय करने में करीब पन्द्रह दिन लग जाते थे, जबकि कर्षनाव उसे खींच कर दो दिन में पार करवा सकती थी। मेकिन्टॉश एण्ड कं० अपनी कर्षनाव फार्बीज के द्वारा ऐसी ही कर्षनाव-सेवा चला रही थी। जब 1830-33 के आर्थिक संकट के दौरान कम्पनी फेल हो गई तो द्वारकानाथ ने नीलामी में से **फार्बीस** को खरीद लिया और कई दूसरे व्यापारियों को मिल कर कलकत्ता स्टीम टग असोसिएशन कायम करने के लिए निमंत्रित किया। आगे चल कर इस कम्पनी के पास और भी अनेक कर्षनावें हो गईं, जिनमें से एक का नाम **द्वारकानाथ** था। ब्लेयर क्लिंग ने टिप्पणी करते हुए लिखा : 'यह नया असोसिएशन भारत में व्यावसायिक संगठन के विकास में एक युगांतरकारी घटना थी। एक ज्वायंट स्टॉक कम्पनी के रूप में, जिसका प्रबंध एक अकेली एजेन्सी के हाथ में था, यह व्यवस्था ऐसी थी, जिसमें मैनेजिंग-एजेन्सी सिस्टम की सभी आवश्यक विशेषताएं मौजूद थीं।'

इसी प्रकार, जब अलैक्जेन्डर एण्ड कं० 1832 के दिसम्बर में फेल हुई, जो बंगाल में ईंधन के सबसे विपुल भंडार, रानीगंज की कोयला खानों की मालिक थी,

तब द्वारकानाथ ने कुछ देर मोल-तोल करने के बाद कुल 70,000 रू० में वह खान खरीद ली। यह खरीद बेहद फायदेमंद साबित हुई और इसने कार, टैगोर एण्ड कं० को अपने व्यावसायिक और प्रबंधकीय कार्यों का विस्तार करने के लिए एक ठोस आधार प्रदान कर दिया। नदी पर अग्नि-बोटों का चलन बढ़ने और फिर बाद में रेलगाड़ियां चलने के साथ-साथ कोयले की मांग भी लगातार बढ़ रही थी। इसलिए द्वारकानाथ और उनकी कम्पनी की यातायात संबंधी इन सेवाओं के विस्तार में भी गहरी दिलचस्पी थी। रानीगंज में इंधन के भंडार और हर स्टेशन पर कोयले के डिपो धन और प्रभाव बढ़ाने के साधन बन गये। कोयले की नई परतें और भंडार खोजे गये और 1843 में पहली विदेश यात्रा से द्वारकानाथ के वापस आने पर बंगाल कोल कम्पनी की स्थापना की गई। यह एक ऐसा उद्योग था, जो द्वारकानाथ और उनकी कम्पनी का अंत होने के काफी दिनों बाद तक भी चलता रहा। 1963 में एण्ड्रयू यूल एण्ड कं० द्वारा प्रकाशित (प्राइवेट वितरण के लिए) एक पुस्तिका में हमें पढ़ने को मिला : 'एण्ड्रयू यूल एण्ड कं० 1908 में बंगाल कोल कं० लि० की मैनेजिंग एजेन्ट बनी थी। यह कंपनी 1843 में बंगाल में खोजी गई कोयले की नई खानों की खुदाई के लिए स्थापित की गई थी, और यह स्मरण करना दिलचस्प होगा कि इसकी स्थापना में जिन लोगों का सहयोग था उनमें से एक द्वारकानाथ टैगोर भी थे जो विश्वविख्यात कवि और दार्शनिक रवीन्द्रनाथ टैगोर के पितामह थे। यह कम्पनी भारत में कोयले के खनन-उद्योग के क्षेत्र में एक अग्रगामी कम्पनी थी और आज तक उसने अपनी इस अग्रगामी भूमिका को सुरक्षित रखा है।'

उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक के आरंभ से ही द्वारकानाथ एक ऐसी डाक-और-माल वाहक सेवा का स्वप्न देखने लगे थे जो कलकत्ते (और भारत के अन्य बंदरगाहों) को गुड होप के अन्तरीप वाले कुल समुद्री मार्ग की अपेक्षा काफी कम समय में इंगलैंड से जोड़ सके। यह बात व्यावहारिक बन सकती थी अगर कलकत्ता, बंबई और मद्रास से स्वेज जाने वाले जहाज-मार्ग को स्वेज की भू-संधि द्वारा स्थल मार्ग से हो कर एक दूसरे, अलैक्जेंड्रिया से ब्रिटिश बंदरगाहों तक जाने वाले जहाज-मार्ग से जोड़ सके। दरअसल, 1869 में स्वेज नहर के चालू होने से पहले, जब भारत और ब्रिटेन के बीच एक सीधा समुद्री मार्ग खुल गया, ऐसा ही हुआ भी। द्वारकानाथ ने स्वेज की भू-संधि से होकर जाने वाले जिस मार्ग की कल्पना की थी, वे 1842 में स्वयं उसी मार्ग से अपने स्टीमर **इण्डिया** पर सवार होकर योरप गये थे।

1833 में अपने अंग्रेज मित्रों, पार्कर, टर्टन, प्रिन्सेप और ग्रीनला की साझीदारी में उन्होंने इंगलैंड में एक सम्पर्क-अधिकारी का खर्च उठाने के लिए बंगाल स्टीम फंड कायम किया। जनवरी 5, 1835 के **इंगलिशमैन** ने 4 जनवरी को टाऊन हॉल में होने वाली एक मीटिंग की रिपोर्ट छापी, जिसमें हाऊस ऑफ कामन्स और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स से प्रार्थना की गई कि वे कलकत्ता और इंगलैंड के बीच जहाजी यातायात कायम करने में जल्दी करें। बाद में दोहरी जहाजी-लाइनें, एक भारतीय

बंदरगाह से स्वेज तक और दूसरी अलैक्जेंड्रिया से ब्रिटिश बंदरगाह तक चलाने के लिए एक व्यापक योजना भी बनायी गयी। दुर्भाग्य से कलकत्ते के (अधिकांशतः अंग्रेज) व्यापारियों और ब्रिटेन की राजधानी के व्यापारियों की प्रतिस्पर्धा इस कार्य के बीच आड़े आ गई और द्वारकानाथ और उनके मित्रों ने जो सोचा था वह उस रूप में कार्यान्वित नहीं हो सका। इस प्रतिस्पर्धा का लाभ उठा कर (जो अंतर्जातीय की बजाय अंतर्महाद्वीपीय अधिक थी) ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एक दूसरी ही ब्रिटिश कम्पनी, पेनिनसुलर स्टीम नेविगेशन कम्पनी से बातचीत शुरु की, जो उन दिनों इंगलैंड और स्पेन के बीच जहाजी सेवा चला रही थी। इस ब्रिटिश कम्पनी ने सरकारी डाक का अनुबंध प्राप्त करते समय अपना नाम बदल कर पेनिनसुलर एण्ड ओरियन्टल रख लिया। इस प्रकार द्वारकानाथ के प्रत्याशित सपने को नाकाम करते हुए प्रसिद्ध पी एण्ड ओ लाइन अस्तित्व में आयी।

एक उद्यमकार के रूप में द्वारकानाथ का अंतिम महान सपना भारत में रेल-सेवाओं के विकास से संबंध रखता था। दुर्भाग्य से वे इसकी पूर्ति होते देखने के लिए जीवित न रह सके। फरवरी, 1846 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** में कलकत्ता को राजमहल से जोड़ने वाली प्रस्तावित ग्रेट वेस्टर्न रेलवे कं० की योजना तैयार करने में कार, टैगोर एण्ड कं० की दिलचस्पी के बारे में एक टिप्पणी छपी थी। सुनील कुमार सेन ने लिखा है : 'इस अवधि में (1830 और 1840 के दशकों में) सबसे उल्लेखनीय बंगाली जिसके मन में एक औद्योगिक कल्पना थी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर थे... उनके कुछ औद्योगिक कारोबार फेल हो गये, और उनकी भावनाएं तो उस समय ही प्रकट हो गईं, जब उन्होंने अंग्रेजों को यह कह कर फटकारा कि 'उन्होंने भारतीयों के पास जो कुछ भी था, वह छीन लिया, उनकी जिन्दगी, आजादी और उनकी सम्पत्ति और अब सारे के सारे सरकार की दया पर निर्भर थे।'[26]

द्वारकानाथ भाप-युग की संतान थे और इस देश में उसका सूत्रपात करने में अग्रगामी। वे और कुछ जो भी रहे हों या न रहे हों, वे एक स्वप्न-द्रष्टा और मार्ग अन्वेषक तो थे ही। उनकी उर्वर कल्पना, उनके उतावले साहस, और अतोषणीय महत्वाकांक्षा ने – जो केवल धन कमाने की ही नहीं थी, बल्कि उतनी ही एक राष्ट्र-निर्माता की भी थी – अनेक उद्योगों की शुरूआत की, जिनमें से कुछ तो एक सीमा तक कामयाब हुए और कुछ नाकाम रहे। लेकिन उन्होंने जिसकी पूर्वकल्पना की थी – एक ऐसे भारत की जो एक ऐसा औद्योगिक और आधुनिक राष्ट्र होगा कि युरोपीय प्रतिस्पर्धा के आगे टिक सके – वह साकार हो गई है, चाहे उसे अच्छा या बुरा जो भी समझा जाय। उनकी सफलताएं और असफलताएं उस तथ्य की बड़े शानदार ढंग से मिसाल पेश करती हैं, जिसके बारे में उनके पोते कवि रवीन्द्रनाथ ने कई दशकों के बाद **गीतांजलि** (बंगाली) में इतने भक्तिभाव से गाया है : 'अधूरी प्रार्थना नष्ट नहीं होती – नदी बालू में अपना जल खोकर भी व्यर्थ नहीं प्रवाहित होती...'

नोट्स

[1] क्षितीन्द्रनाथ के अनुसार द्वारकानाथ के व्यावसायिक कारोबार से संबंधित बहुत से दस्तावेज और कागज-पत्र बाद में, कहा जाता है कि, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आदेशानुसार नष्ट कर दिए गये। **जीवनी**, पृ० 103.

[2] देखिए, प्रलेख 10 – "द्वारकानाथ की चिट्ठी-पत्रियां", रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन। और भी देखिए, क्लिंग, पृ० 41.

[3] एस.एन. मुखर्जी, **कलकत्ता : मिथ एण्ड हिस्ट्री**, पृ० 20-21.

[4] क्लिंग, पृ० 42 और भी देखिए, **द राइज ऑफ बिजिनेस कारपोरेशन्स इन इण्डिया**, 1851-1900. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, साऊथ एशियन स्टडीज।

[5] क्लिंग, पृ० 43. यूनियन बैंक, उसके उत्थान, विकास और अनर्थकारी अन्त के साथ द्वारकानाथ के संबंध का विस्तृत विवरण जानने के लिए पढ़िए ब्लेयर बी. क्लिंग की पुस्तक **पार्टनर इन ऐम्पायर**. क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तक **द्वारकानाथ ठाकुरेर जीवनी**, पृ० 135-161 और अगहन 1369 वि.सं. के समकालीन में प्रकाशित अमृतमोय मुकर्जी का लेख।

[6] क्लिंग, पृ० 43-44.

[7] पहले एक रुस्तमजी कावसजी ने 'रुस्तमजी, टर्नर एण्ड कं०' के नाम से एक कम्पनी स्थापित की थी।

[8] **ट्रेड एण्ड फाइनेन्स इन बंगाल प्रेसिडेन्सी**, 1793-1833 प्रकाशक, ओरियन्ट एण्ड लांगमैन, 1956.

[9] 20 अगस्त 1834 की तारीख का यह पत्र नाटिंघम यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में पोर्टलैण्ड कलेक्शन के अर्न्तगत बेंन्टिक पेपर्स में सुरक्षित है। क्लिंग और अमलेश त्रिपाठी दोनों ने इसको उद्धत किया है।

[10] ए.एफ. सलाउद्दीन : **सोशल आइडियाज एण्ड सोशल चेन्जेज इन बंगाल**, 1818-1835, लीडेन, 1965.

[11] **फ्रंड ऑफ इण्डिया**, सितम्बर 10, 1835 में उद्धत।

[12] वही.

[13] क्षितीन्द्रनाथ टैगोर : **जीवनी**, पृ० 101.

[14] क्लिंग, पृ० 44.

[15] यह वक्तव्य विवादास्पद है। रामदुलाल दे जैसे बनियों के तो द्वारकानाथ से पहले ही विदेशों के साथ व्यापारिक संबंध थे। देखिए दिलीप बसु का लेख, 'द बनियां एण्ड द ब्रिटिश इन कलकत्ता, 1800-1850', **बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट**, दिसम्बर, 1973.

[16] यह वसीयत शांति निकेतन में रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में देखी जा सकती है।

[17] हिस्सेदारों की सूची, उनके बारे में ब्यौरे और हिस्सेदारी की अवधि के बारे में देखिए क्लिंग, पृ० 78-83.

[18] क्षितीन्द्रनाथ टैगोर : **जीवनी**, पृ 103.

[19] क्लिंग, पृ० 83-89.

[20] वही, पृ० 89-90.

[21] द्वारकानाथ के पौत्र, युवा कवि रवीन्द्रनाथ ने चीन पर अफीम लादने के लिए एक लेख में ब्रिटिश सरकार की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। क्या उन्हें मालूम था कि उनके पितामह

इस 'अपराध' में पूरे उत्साह से भागीदार बने थे और उन्होंने तथा कलकत्ते के अन्य व्यापारियों ने इससे बेशुमार मुनाफा कमाया था?

[22] क्लिंग, पृ० 91. 26 सितम्बर 1839 के **फ्रेंड ऑफ इन्डिया** ने यह सूचना प्रकाशित की : '**वाटरविच** जहाज, जो कलकत्ते की डाक अदन तक ले जाता था, उसने सैण्ड हेडस से उस बन्दरगाह तक की शानदार यात्रा **छत्तीस** दिनों में पूरी की। बम्बई से अदन को डाक ले जाने वाले जहाज को एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह तक पहुंचने में इकतालीस दिन लगे।'

[23] 11 जून, 1836 के **समाचर दर्पण** ने लिखा : 'हम चाहते हैं कि बाबू द्वारकानाथ टैगोर कम्पनी का नाम बदल दें। हमने सुना है कि लोग 'ट' का उच्चारण' 'ठ' करते हैं और इस तरह उसे 'ठग असोसिएशन' बना देते हैं। खैर जो भी हो, कम्पनी द्वारा खरीदी अग्नि-बोट **फोर्बीस** को चले अभी 70 दिन ही हुए हैं। इतने दिनों से जब तक यह स्टीमर मेकिन्टॉश एण्ड कं० के पास था, वह कभी अपना खर्च भी नहीं निकाल सका, लेकिन अब अपने नये मालिकों के पास, वह काफी अच्छा मुनाफा दे रहा है।'

[24] इन विभिन्न कारबारों और उनके उतार-चढ़ाव का समुचित विवरण और विश्लेषण जानने में रूचि रखने वाले पाठक को क्लिंग की पुस्तकें **पार्टनर इन ऐम्पायर** पढ़ना चाहिए, जिसमें द्वारकानाथ के आर्थिक साम्राज्य के उत्थान और पतन का सबसे विस्तृत और विश्वसनीय अध्ययन मिलता है। प्रस्तुत लेखक खुशी से क्लिंग की शोधों का आभार स्वीकार करता है। साथ ही देखिए अमृतमोय मुकर्जी के द्वारकानाथ के जहाजी उद्यम के संबंध में बंगाली में लिखा और श्रावण, 1371 वि.सं. के **समकालीन** में प्रकाशित लेख।

[25] क्लिंग, पृ० 125.

[26] अतुलचन्द्र गुप्त द्वारा सम्पादित पुस्तक **स्टडीज इन द बंगाल रिनेसां** में 'इकानॉमिक एन्टरप्राइज' पर परिच्छेद। द नेशनल कौंसिल ऑफ एजुकेशन, बंगाल, 1958.

सात

द्वारकानाथ : सार्वजनिक जीवन में

द्वारकानाथ कैसे थे एक इन्सान की हैसियत से, इन्सानों के बीच एक इन्सान की हैसियत से? वे देखने में कैसे लगते थे? निस्सन्देह वे देखने में सुन्दर थे, जैसे कि टैगोर खानदान के लोग आमतौर पर थे और वे दहेज लेने की बजाय सुन्दर लड़कियों से विवाह करने में बड़ी सतर्कता बरतते थे। इसका एक ही अपवाद मिलता है, वह भी ठाकुरों में सबसे मनमोहक व्यक्ति, कवि रवीन्द्रनाथ के मामले में, जिन्होंने न तो सुंदरता से शादी की और न सम्पत्ति से। द्वारकानाथ देखने में कैसे लगते थे, इसकी काफी सही प्रतिकृति एक रूपचित्र सुरक्षित है, जिसे उस जमाने के एक अंग्रेज कलाकार एफ.आर. से ने टाऊन हॉल में लगाने के लिए कलकत्ते के नागरिकों के आग्रह पर चित्रित किया था और जिसे वहां 1843 में लन्दन की रॉयल अकादमी की नुमायश में प्रदर्शित करने के बाद रखा गया था। आजकल यह रूप-चित्र कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में टंगा हुआ है।[1] एक मझोले कद का सुंदर व्यक्तित्व, शानदार मूंछें (लेकिन अपने पुत्र और पौत्र से भिन्न, दाढ़ी-रहित), उस जमाने की मुस्लिम दरबारों की पोशाक, रेशमी पाजामा और तिल्ले की कढ़ाई वाले सलीपरों के ऊपर बदन पर एक कशीदाकारी किया हुआ चोगा। सलीपर का अग्रभाग ऊपर की ओर मुड़ा हुआ, बायें कंधे से सामने तक ढंकता हुआ कश्मीरी गुलकारी का शॉल, सिर पर एक शामला या पगड़ी, जिसके नीचे से काले घुंघराले बाल गर्दन तक आते हैं। उनका दाहिना हाथ एक छोटी मेज पर रखी खुली किताब पर टिका हुआ है, जिस पर एक बड़ी सूक्ष्म कारीगरी के नमूने का अल्बोला या हुक्का रखा है।

समकालीन टिप्पणियों में उनकी काली आंखों की चमक, उनकी प्रफुल्ल मुद्रा, उनकी तीक्ष्ण बुद्धि और उनके हाथों और उंगलियों की करीब-करीब नारी-सुलभ कोमल सुंदरता का अक्सर जिक्र किया गया था। एक लेखक ने, जिसने उन्हें 1842 में लंदन में देखा था, उनका वर्णन इस प्रकार किया है : 'लम्बाई की दृष्टि से द्वारकानाथ मझोले कद के हैं, उनके अंग जैसे सुंदर सांचे में ढले हुए हैं, उनके जैसे पतले और कोमल हाथ हमने कभी किसी पुरुष के नहीं देखे, उनका चेहरा, विश्राम की अवस्था में, एक अनोखी विचारशीलता की मुद्रा ग्रहण कर लेता है, किन्तु जब जाग्रत होता है तो उसमें एक महान अभिव्यक्ति और असाधारण सौंदर्य उद्-भासित हो उठता है। उनके इंगलैंड-प्रवास के दिनों में हमें उनसे मिलने-जुलने के काफी अवसर मिले। हमने उन्हें एक दर्जन आदमियों से घिरा हुआ देखा है, जिनमें से हरेक भिन्न-भिन्न विषयों पर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहता था और हमने आश्चर्यचकित प्रशंसा के भाव से देखा है कि वे कितनी सरलता से एक के बाद दूसरे विषय की चर्चा में लीन हो सकते हैं, हर विषय पर अपने विचार विलक्षण धाराप्रवाह गति से और उतने ही संक्षेप में और पुरजोर अन्दाज में व्यक्त कर सकते हैं। हमने उन्हें एक ही समय में व्यावसायिक और बधाई के पत्र लिखते हुए, लोगों से मिलने का समय निश्चित करते, पूछताछ का जवाब देते, नये आगन्तुकों का स्वागत करते, पुराने मित्रों को बुलाते, लोगों से हंसी-मजाक करते, व्यापारियों से सौदा पटाते, और अपना हुक्का पीते हुए देखा है। जो उन्हें एक लम्बे अरसे से जानते हैं उनका कहना है कि वे अपनी दोस्ती में पक्के हैं – उनके खिलाफ चुगली खाने वालों की बातों में वे नहीं आते – व्यापार में पैर जमाने के लिए संघर्ष करने वाले शरीफ बन्दों की मदद करने को हमेशा तैयार रहते हैं – और एक व्यवसायी की हैसियत से अपने तमाम सौदों में वे शुद्ध ईमानदारी का परिचय देते हैं।'[2]

सारे समकालीन विवरण, उनकी बहुमुखी प्रतिभा, उनकी सच्ची दोस्तपरस्ती, उनकी उदारता और दूसरों की मदद करने के लिए उनकी निरंतर तत्परता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उनके प्रथम जीवनीकार के शब्दों में, 'वे केवल लाखों में एक ही नहीं थें, वे अनेकमुखी प्रतिभा के इन्सान थे, जो विभिन्न प्रकार की कठिनाइयो से जूझे थे, जिन्होंने विविध विषयों को समझने और उनमें दक्षता प्राप्त करने का संघर्ष किया था और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और स्थितियों में प्रमुखता प्राप्त की थी।'[3] मित्रा ने द्वारकानाथ की असाधारण उदारता और दूसरों की सहायता करने की तत्परता के अनेक उदाहरण दिए हैं। एक उदाहरण बंगाल के एक अंग्रेज जिलाधीश के बारे में है, जो बीमार पड़ने पर छुट्टी लेकर इंगलैंड अपने घर जाते समय कलकत्ता आया था। कलकत्ते में उसके ऋणदाताओं ने, जिनके करीब एक-लाख रुपये उस पर उधार थे, उसका वापस जाना रुकवा कर उसे कर्जदारों की जेल में भिजवा देने की धमकी दी। 'अपनी गिरती हुई सेहत के वक्त आबोहवा बदलने की बजाय, जेल की बंद कोठरी में सड़ना निश्चित रूप से मृत्यु

को बुलाना होता। उसने इस संकट की स्थिति से उबरने के लिए अनेक तात्कालिक उपाय सोचे। अन्त में उसको द्वारकानाथ का ख्याल आया, जिनके बारे में उसने काफी सुना था कि वे जरूरतमन्द की हमेशा मदद करते हैं, लेकिन जिनसे कभी उसका व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ था। आखिरकार उसने उनकी उदारता को अपील करने का निश्चय किया। उसने पत्र लिख कर द्वारकानाथ को अपनी मुसीबतों का ब्यौरा बताते हुए उनकी सहायता की मांग की। यह सहायता उसे इतनी जल्दी प्राप्त हुई, जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। उसका पत्र पाते ही द्वारकानाथ ने उसमें दिए तथ्यों की तुरंत जांच करवाई और उनकी सच्चाई के बारे में आश्वस्त होते ही उन्होंने उस जिलाधीश के ऋणदाताओं के एक लाख रुपये देकर उनसे ऋण-पत्र और प्रोनोट वापस ले लिए। इन कागजात को लेकर वे स्वयं भूतपूर्व जिलाधीश के यहां गये। भूतपूर्व जिलाधीश ने उनकी सहानुभूति जगाने के लिए अपनी मुसीबतों की दास्तान सुनानी शुरू की, लेकिन द्वारकानाथ ने बीच में ही बात काट कर कागज उनके हाथ में पकड़ाये और कहा कि अब वह योरप लौटने के लिए स्वतंत्र है। भूतपूर्व जिलाधीश कृतज्ञता से अभिभूत हो गया और उससे धन्यवाद के रूप में कुछ कहते न बना, बस वह रो पड़ा। उसने द्वारकानाथ को ऋण-पत्र लिख कर देना चाहा, लेकिन उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि ऋण-पत्र का उनके लिए कोई उपयोग नहीं होगा, क्योंकि यदि बीमारी के दौरान उसकी मृत्यु हो गई तो उसकी कीमत कागज के एक रद्दी टुकड़े से अधिक नहीं रहेगी, और अगर स्वास्थ्य-लाभ करके वह वापस हिन्दोस्तान आया तो इस ऋण-पत्र की जरुरत ही नहीं पड़ेगी, क्योंकि तब तो निश्चित है कि वह यह रकम चुका ही देगा।"[4]

दूसरे उदाहरण का संबंध ऑक्टरलोनी नामक एक नौजवान फौजी अफसर से है, जो हाल में ही इंगलैंड से कम्पनी की नौकरी करने आया था। यह ज्ञात नहीं है कि उसका प्रसिद्ध सैनिक सर डेविड आक्टरलोनी (1758-1825) से, जिन्होंने हैदर अली के समय से लेकर अब तक के हर भारतीय युद्ध में भाग लिया था और जिनके सम्मान में कलकत्ता में एक प्रसिद्ध स्मारक बनाया गया था (जिसका अब शहीद-मीनार नाम रख दिया गया है), कोई रिश्ता था और कौन-सा रिश्ता था। लेकिन यह स्पष्ट था कि वह एक शरीफ खानदान का था। उसके सहयोगी अफसरों और दोस्तों ने पाया कि उसका मन निराशाग्रस्त था और वह अपने किसी अज्ञात दुख को भूलने के लिए बेतहाशा शराब पीता था। उसने कबूल किया कि वह अपनी वाग्दत्ता से पागलपन की हद तक प्यार करता था और जिसे वह इस उम्मीद में इंगलैंड छोड़ आया था कि कम्पनी की नौकरी में खूब धन कमाने के बाद उसे जल्द बुलवा भेजेगा। लेकिन भाग्य चमकने की ऐसी कोई संभावना नहीं नजर आती, इसलिए वह निराशा के गर्त में डूबता जा रहा था। उसके मित्रों ने, कुछ तो सहानुभूति से प्रेरित होकर और कुछ उसका मजाक उड़ाने के लिए कहा कि कलकत्ते में मन की मुराद

पाने के केवल दो ही रास्ते उसके सामने थे। पहला तो यह कि वह जाकर कालीघाट की अर्धनग्न काली देवी की पूजा करे और उस पर भेंट चढ़ाये, जिस पर कम्पनी तक नियमित रूप से भेंट चढ़ाती है, और दूसरा रास्ता यह है कि वह हाड़मांस के एक जिन्दा-जावेद देवता, पूरी पोशाक धारण करने वाले द्वारकानाथ टैगोर का कृपा-पात्र बनने की कोशिश करे, जिनसे यूनियन बैंक के दफ्तर में आसानी से मिला जा सकता था। इनमें से दूसरे विकल्प को आजमाना ज्यादा अच्छा होगा। नौजवान ऑक्टरलोनी को संदेह हुआ कि उसके मित्र शायद उसका मजाक उड़ा रहे थे, लेकिन वह इतना हताश था कि वह डूबने से पहले हर तिनके का सहारा लेने को तैयार था। वह यूनियन बैंक गया और वहां उसने द्वारकानाथ को डायरेक्टर के दफ्तर में एक बेंच पर बैठा पाया (वह गद्दीदार कुरसी पर बैठने की बजाय हमेशा लकड़ी की बैंच पर बैठना पसन्द करते थे)। वे दैनिक '**हरकारू**' पढ़ रहे थे। एक अजनबी को कमरे में घुसते देख कर उन्होंने उसे गौर से देखा और पूछा कि वे उसकी क्या सेवा कर सकते थे। आक्टरलोनी ने अपना परिचय दिया और एक देसी आदमी के आगे अपनी परेशानी कबूल करने में संकोच अनुभव करने के कारण जल्दी से सारी कहानी उगल दी। द्वारकानाथ अपनी पैनी दृष्टि से तत्काल आदमी को पहचान लेते थे कि वह सच बोल रहा है या नहीं। एक भी प्रश्न पूछे बगैर उन्होंने अखबार का एक कोरा कोना फाड़ कर उस पर अंग्रेजी में लिखा, 'इन्हें 10,000/- रु० दे दो,' डी.टी. और अफसर के हाथ में थमाते हुए कहा कि नीचे जाकर कागज का यह टुकड़ा कैशियर को दे दे। यह कहते हुए वे पुनः अखबार पढ़ने में व्यस्त हो गये। नौजवान अफसर के कान लाल हो गये और वह यह अनुमान करके कि शायद उसके साथ मजाक किया जा रहा था, उत्तेजित हो उठा। वह हकलाने लगा। द्वारकानाथ ने उसकी ओर देख कर उससे पूछा कि वह नीचे कैशियर के पास क्यों नहीं जा रहा। शायद उसे रास्ता नहीं मालूम था। इसलिए एक चपरासी को बुला कर उन्होंने आदेश दिया कि वह अफसर को कैशियर के पास ले जाये। हिचकिचाते हुए आक्टरलोनी उस चपरासी के पीछे-पीछे नीचे गया और कैशियर को कागज की वह चिन्दी दी, जिसने एक नजर से उसे पढ़ कर केवल इतना ही पूछा, 'नोट चाहिए या सिक्के?' हक्का-बक्का अफसर बड़बड़ाया, 'करेंसी नोट ठीक रहेंगे।' उसे अपनी आखों पर विश्वास नहीं हुआ जब नोटों की एक मोटी गड्डी उसके हाथ में थमा दी गई। बाहर निकलते समय उसने अचानक महसूस किया कि उसने अपने उपकारी का धन्यवाद तक नहीं किया था। इसलिए वह फिर ऊपर गया, जहां द्वारकानाथ अभी तक अखबार पढ़ने में तल्लीन थे। हार्दिक धन्यवाद देते हुए उसने विनयपूर्वक कहा कि वह इस कर्ज के लिए प्रोनोट लिखना चाहेगा। द्वारकानाथ ने उसकी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा, "अगर तुम एक शरीफ आदमी हो, और मुझे इसमें जरा भी संदेह नहीं कि तुम एक शरीफ आदमी हो, तो एक प्रोनोट की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम अपना कर्ज चुकाओगे ही। लेकिन अगर तुम

ईमानदार आदमी नहीं हो तो एक प्रोनोट की कोई कीमत नहीं होगी।' कहने की जरूरत नहीं कि अफसर ने धीरे-धीरे सारी रकम चुकता कर दी। दरअसल, इसके बाद वह आजीवन अपनी बचत की रकमें यूनियन बैंक में ही जमा करवाता रहा और अपने दोस्तों से कहता रहा कि उसके पास जो भी था, वह उस उदार हृदय हिन्दोस्तानी की ही बदौलत था।[5]

यद्यपि इन किस्सों का संबंध अंग्रेजों से है, लेकिन ऐसे उदाहरण भी बेशुमार हैं, जहां द्वारकानाथ की उदारता की परख हर प्रजाति, धर्म, रंग या जातपांत के किसी भी आदमी को हुई थी। उनके जीवनीकार मित्रा ने ऐसे अनेक उदाहरण देते हुए लिखा है, 'हम ऐसे बेशुमार उदाहरण गिना सकते हैं। हम ऐसे सैकड़ों सरकारी कर्मचारियों तथा गैर-सरकारी यूरोपियनों और भारतीयों का हवाला दे सकते हैं, जिनकी उन्होंने मदद की और जिनको बरबाद होने से बचा कर फिर से जिन्दगी में प्रतिष्ठित किया। जिन्होंने उनकी सिफारिश और कोशिशों से सरकारी दफ्तरों, बैंकों और व्यापार-संस्थानों में नौकरियां प्राप्त कीं, उनके नामों की सूची अनगिनत है। दूसरे कई एक ऐसे भी थे जिनको हाथ थाम कर उन्होंने व्यवसायियों, व्यापारियों, पैदावार और यातायात, बिलों और हिस्सों के दलालों के रूप में स्थापित किया था। इनमें से अनेक व्यक्ति आज भी जिन्दा हैं (जून, 1870), और वे एक पिता और संरक्षक देवता के रूप में उनको कृतज्ञता से याद करते हैं।'[6]

लंदन के **दी टाइम्स** ने 3 अगस्त, 1846 को द्वारकानाथ की मृत्यु पर पूरे एक कालम का लेख प्रकाशित किया। उसमें भी उनकी इस खूबी को रेखांकित किया गया : 'शायद आज हिन्दोस्तान में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, उसका पद और प्रतिष्ठा चाहे जो हो, जिसने अपने गिर्द दूसरे लोगों की तरक्की और सम्पन्नता को इतना प्रोत्साहन और संरक्षण दिया हो, और हमारा विश्वास है कि हिन्दोस्तान और इंगलैंड में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है, जिनकी वर्तमान सफलता और स्वतंत्र हैसियत पूरी तरह द्वारकानाथ टैगोर की कृपा की बदौलत है।'

लोग कल्पना करेंगे कि एक ऐसा व्यक्ति जिसके समकालीन व्यक्तिगत गुणों के कारण उसकी प्रशंसा करते थे और जिसने अनेक नये व्यावसायिक और औद्योगिक कारोबार शुरू करके कलकत्ते के व्यापारिक जीवन पर यूरोपियनों की इजारेदारी को सफलतापूर्वक चुनौती दी थी और जिसका बड़ा बेटा एक धार्मिक सुधारक और संत-महात्मा की तरह पूजा जाता था और जिसके पोते ने भक्ति-गीतों की पुस्तक पर विश्व का सबसे बड़ा साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त किया था, वह अवश्य ही अत्यन्त गंभीर और उदात्त स्वभाव का रहा होगा, जो जीवन और समाज के साधारण हास्य-विनोद के प्रति उदासीन था। लेकिन द्वारकानाथ की दिलचस्पियों का क्षेत्र असाधारण रूप से इतना विशाल था और उनका दिमाग इतना लचीला था कि कभी-कभी तो वे अत्यन्त हल्के-फुलके और विनोदी स्वभाव के आदमी नजर आते थे। यह बात उनके एक पत्र से अच्छी तरह जाहिर होती है,

जो उन्होंने 20 नवंबर, 1835 को कलकत्ते से गाजीपुर के एक लेफ्टीनेंट जे. केमेरान को लिखा था। आधे पत्र में काम-काज की बातों की चर्चा करने के बाद उन्होंने लिखा :

'...इस साल सरदी का मौसम काफी जल्दी शुरू हो गया था, करीब-करीब अक्तूबर के शुरू में जैसे ही भारी वर्षा समाप्त हुई, और अब मौसम बहुत सुहावना है। हालांकि मेरे बगीचे में मरम्मत का काम चलने के कारण,[7] ऐसे सुंदर मौसम में मैं दिन की पार्टियों और परियों के साथ चहलकदमी करने के संतोष से वंचित हो गया हूं, फिर भी मैंने शहर के मकान की तीसरी मंजिल उन रंगरेलियों के लिए रख छोड़ी है, जिनकी इस सीमित स्थिति में अपेक्षा की जा सकती है। निकल्सन कुमारियां अक्सर अपने सत्संग से मेरे ऊपर अनुग्रह करती हैं। सब से बड़ी दो बहनें पिजोनी से गाना सीख रही हैं और अपनी स्वर-साधना में तेजी से प्रगति कर रही हैं। मैंने तुम्हारे पत्र का वह हिस्सा उनको पढ़ कर सुनाया, जिसमें तुमने उनका जिक्र किया है, और वे सुन कर कम प्रसन्न नहीं हुईं। उन्होंने आग्रह किया कि मैं अपने पत्र में तुम्हें उनकी याद दिलाऊं। बेचारा हन्टर अभी भी सड़कों पर चक्कर काटता फिरता है, लेकिन उसकी पत्नी हर रोज शाम को गाड़ी में बैठ कर स्टैंड पर आती है और हमें अपना मुखड़ा दिखा जाती है। दरअसल वह अपना सौन्दर्य अनन्त काल तक सुरक्षित रखेगी। उन औरतों के लिए यह बड़े फायदे की बात है, जिनके पति उन्हें केवल **दूर से ही** देखते हैं। यह बात उस नव-दम्पत्ति पर भी लागू होती है, जिसकी ओर तुमने संकेत किया है और अगर तुम्हें 95 साल की बेगम अपनी सारी दौलत के साथ मिल जाय, तो तुम भी इन जवान लड़कियों की तरह, जिनके पति हैं, अपनी सेहत और गुलाबी गाल हमेशा के लिए सुरक्षित रख सकोगे। तुम्हारी बर्दवान वाली दोस्त अपने पिता के साथ है। शायद वह सारे सिविल रेग्युलेशन्स उनसे सीख रही है, क्योंकि खाने के वक्त वह उनसे सिर्फ इनकी ही चर्चा सुनती है। ओह! ओह! उसे ब्रिफ्स के बीच ले जाना तुम्हें कितना अच्छा लगता और उसे उछलने-कूदने में मजा आता है और इसमें शक नहीं कि उसे गाजीपुर से मेरठ तक का अभियान बेहद पसन्द आता। हाल में आने वालों ने इंगलैंड से कुछ नई सुंदरियों का आयात किया है और उनमें एक मिसेज शॉ हैं, जो एक कप्तान की विधवा हैं, वे अपने साथ अपनी जुड़वां बेटियों को भी लायी हैं। ये तन्वंगियां हर कला में पारंगत हैं, चित्रकला, गायन, नृत्य, खेल, संक्षेप में हर काम में। जहां तक उनके आचरण-व्यवहार का संबंध है, उनका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा गंभीर, नीरस इंगलैंड में नहीं, बल्कि फ्रांस जैसे जिन्दादिल देश में हुई है, और वे पूरा योरप घूम चुकी हैं। उनकी आकृति एक दूसरे से इतनी मिलती है कि उनमें फरक करना और यह पहचानना असंभव है कि कल जिससे बात की थी, क्या यह वही है जिससे आज बात कर रहे हैं। इंगलैंड में स्थित हमारे समानान्तर संस्थान ने हमें उनको अपने संरक्षण में रखने की सिफारिश की है और उनका एजेन्ट होने की हैसियत से उनकी

देखभाल करना मेरा कर्तव्य है। चूंकि वे उत्तर भारत के केन्द्रों का भ्रमण करने की बात सोच रही हैं, इसलिए तुम निस्संदेह उनसे मिल सकोगे, अगर तुम मेरठ तक जाने का सौभाग्य प्राप्त कर सको। और अधिक बकवास इस समय नहीं, किसी और छुट्टी के दिन मैं तुम्हें इस प्रसंग में कुछ अधिक मसाला भेजूंगा..."[8]

पिजोनी, जिसका पत्र में उल्लेख हुआ है, एक इतालवी संगीतज्ञ था, जो उन दिनों कलकत्ते में आयी हुई एक इतालवी ऑपेरा कम्पनी से संबद्ध था। द्वारकानाथ उसके संरक्षकों में से एक थे। दरअसल वे स्वयं पाश्चात्य संगीत में शिक्षा ले रहे थे और इतालवी गीत अच्छी तरह गा सकते थे, जिसकी तसदीक बाद में प्रसिद्ध भारतविज्ञ मैक्स मूलर ने की थी, जिनको द्वारकानाथ ने पेरिस में कुछ गीत गाकर सुनाये थे। जाहिर है कि उन्होंने पिजानी और उसकी वाग्दत्ता शारलोट की, जो उन्हें संगीत की शिक्षा देती थी और जिनके साथ उनकी गहरी मित्रता थी, आर्थिक सहायता की थी, जैसा कि 25 अक्तूबर 1837 को लिखे शारलोट के निम्न पत्र से अनुमान किया जा सकता है:

प्रिय द्वारकानाथ,

आपने कल रात वायदा किया था कि मैं अगर आज आपको वह चीज भेज दूं तो आप वह रसीद मुझे दे दोगे, जिस पर श्री पिजोनी और मैंने उस रकम की बाबत दस्तखत किए थे जो आपने मुझे उधार दी थी। आपने मुझे इस परेशानी से मुक्त करने के लिए, जो मेरे मन पर छायी रहती थी, और जिसे मैंने ही पैदा किया था, जो ऐहसान किया है उसके लिए अपनी कृतज्ञता और शुक्रिया अदा करने को मेरे पास शब्द नहीं हैं। फिर भी मुझे आशा है कि जब मेरी शादी हो जायगी और मैं अपने घर में रहूंगी, तब मैं आपको जितने भी संभव हैं, गाने के सबक दूंगी। मुझे आशा है कि आप मुझे अपना बजरा देना न भूलेंगे। मेरा विश्वास है कि निश्चित रूप से 16 नवंबर को मेरी शादी होगी और मुझे आशा है कि मेरे प्रणय-बंधन के समय गिरजाघर में आपसे भेंट होगी। लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि अपनी शादी से पहले मैं एक बार आपके साथ शाम का भोजन कर सकूंगी। विश्वास करें, सदा, और चिरकाल के लिए आपकी सच्ची और इससे अधिक कहने का मैं साहस नहीं कर सकती

'शारलोट ई हार्वे'

द्वारकानाथ कलकत्ते में थियेटर के प्रेमी और संरक्षक थे। यह जानना दिलचस्प होगा कि कलकत्ते में रंगमंच पर जो सबसे पहला नाटक खेला गया था, उसको एक साहसिक रूसी भारतविद् लेबेदेव ने काफी पहले 1795 में पेश किया था। यह रिचर्ड जोर्डल के एक अल्प-ज्ञात अंग्रेजी का मुख्यत: बंगाली रूपान्तर था, जिसमें मिश्रित सर्वदेशीय दर्शकों की जरूरत के मुताबिक यत्र-तत्र अंग्रेजी और हिन्दोस्तानी संवाद भी छितरा दिए गये थे। तब से कलकत्ते की थियेटर परम्परा विकास करके

उसके सर्वदेशीय सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख अंग बन गई और आज भी प्रमुख अंग बनी हुई है, यद्यपि एक बदले हुए रूप में। नगर के सांस्कृतिक जीवन के अनेक दूसरे पहलुओं की तरह, इसे प्रथम प्रेरणा और प्रोत्साहन यूरोपीय लोगों, मुख्यतः अंग्रेजों की ओर से मिला और यह पुराने चौरंगी थियेटर (जो प्राइवेट सब्स्क्रिप्शन थियेटर के नाम से भी प्रसिद्ध था) में केन्द्रित थी, जो काफी अरसे तक मशहूर थियेटर रोड पर स्थित था, जिसका नाम हाल में ही बदल कर शेक्सपियर सरणि कर दिया गया है। 1833 में यह थियेटर एक इताल्वी कम्पनी को पट्टे पर दिया गया था, बाद में फिर एक फ्रांसीसी कम्पनी को। बढ़ते हुए कर्जों को चुकाने में असमर्थ मालिकों ने 15 अगस्त 1835 को नीलामी द्वारा इस थियेटर को बेचना चाहा। उस समय द्वारकानाथ ने मय साजो-सामान और पोशाकों के यह थियेटर ख़रीद लिया।[10]

जे.एच. स्टाक्वेलर ने अपनी पुस्तक **हैण्डबुक ऑफ इण्डिया** (1844) में लिखा : 'प्रिंस ने स्वयं अपने लाभ के लिए नहीं बल्कि पुराने मालिकों के नाम पर इसके हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ही यह थियेटर खरीदा था, इसके हिस्सों की कीमत से दुगने दाम चुकाये थे और उनके साथ साझेदारी की थी। एक 'देसी' व्यक्ति के इस आर्थिक त्याग के बिना इस थियेटर की अकाल-मृत्यु निश्चित थी।' यह बात कि पुराने मालिकों का (जो सारे के सारे यूरोपीय लोग थे) हिस्सा इसमें नाम-मात्र को ही रखा गया था, द्वारकानाथ के एक पत्र से प्रमाणित होती है, जो उन्होंने अपने मित्र, चिटगांव के डब्ल्यू. डेम्पियर्स को लिखा था :

'मेरी इच्छा थी कि आप कलकत्ते में होते और **हमारे थियेटर** में अपनी उपस्थिति से हमें गौरवान्वित करते। यह अब करीब-करीब पूरी तरह मेरी मिल्कियत है, इसलिए अब इसमें एक सौ हिस्सेदारों के होने की धोखाधड़ी नहीं रही, जिससे प्रति नाटक 200 मुफ्त की टिकटों का नुक्सान होता था। पार्कर, पामर और कुछ दूसरों ने नियमित रूप से प्रति पखवारे वहां जाने का निश्चय किया है और अगली मार्च में वे बड़े पैमाने पर मरम्मत का काम शुरू कर देंगे। इस आबोहवा में इस थियेटर को जितना भी आरामदेह बनाया जा सकता है, हम बनायेंगे। जब अगली बार आप कलकत्ते आयेंगे, तब आप इसे देख कर बेहद खुश होंगे...'[11]

थियेटर को अत्यन्त प्रतिष्ठित लोगों का संरक्षण प्राप्त था और उसकी प्रस्तुतियों के साथ हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल कप्तान डी.एल. रिकार्डसन, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान डा. एच.एच. विल्सन, जिन्होंने विख्यात अभिनेत्री श्रीमति सिडॉन्स की पोती से शादी की थी, बंगाल सिविल सर्विस के हेनरी मेरीडिथ पार्कर, जो स्वयं एक कुशल अभिनेता और द्वारकानाथ के मित्र थे और जे.एच. स्टाक्वेलर, जो एक उच्च कोटि के अभिनेता थे और जिन्हें मोलियर के नाटक तार्तुफ़ में सर जॉन फाल्स्टॉफ़ की भूमिका दी गई थी और अन्य जिन्होंने अन्य क्लासिक भूमिकाएं भी अदा की थीं, आदि सक्रिय रूप से संबद्ध थे। लेकिन जिस अभिनेत्री ने इस थियेटर

को सर्वोपरि ख्याति प्रदान की, वह थी ईस्थर लीच, जो एक साधारण अंग्रेज सैनिक की बेटी थी और जिसने बिना किसी की सहायता के खुद ही अभिनय-कला सीखी थी। वह अत्यंत प्रतिभाशाली शेक्सपीरियन अभिनेत्री थी, जो भारत की श्रीमती सिडॉन्स के नाम से विख्यात है। स्टॉक्वेलर के शब्दों में वह 'प्रतिभा और व्यक्तिगत आकर्षण में इंगलैंड भर में अपना सानी नहीं रखती थी। अत्यधिक सुंदर, बेहद अक्लमंद, सरल और मृदु-स्वभाव वाली और गाने में मधुर कंठी और सुरूचि वाली इस महिला ने रंगमंच और नाट्य-कला की सभी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढाल लिया था।'[12]

द्वारकानाथ असाधारण रूप से संतुलित और स्वस्थ मन के व्यक्ति थे। उनके सहधर्मियों और समकालीनों में यह विशेषता विरल ही देखने को मिलती थी। वह जिस काम में भी हाथ डालते, उसे पूरे मनोयोग से करते, चाहे एक व्यावसायिक साम्राज्य बनाने और बेशुमार दौलत पैदा करने की महत्वाकांक्षा हो, चाहे व्यापारिक समझौते हों या परिवार और मित्रों के प्रति अपने दायित्वों और वायदों का निर्वाह करना हो, या चाहे राममोहन राय के धार्मिक, सामाजिक और शैक्षिक अभियानों का मुक्त हृदय से समर्थन करना हो। पर साथ ही जीवन के उल्लास और आनंद का भरपूर उपभोग करने के प्रति भी वे कम उत्साही नहीं थे। वे नैतिक और सामाजिक आदर्शों के पाबन्द तो थे, लेकिन व्यक्तिगत रूप से वर्जनाओं से मुक्त थे। वे हर जाति, सम्प्रदाय और वर्ग के लोगों से खुल कर मिलते-जुलते थे और यद्यपि उनके परिवार के कट्टरपंथी सदस्य उनके इस रूढ़ि-विरोधी स्वच्छन्द आचरण को बुरा मनाते थे और उन्हें जाति-बहिष्कार की धमकी देते थे, लेकिन इसकी ज़रा भी परवाह न करके वे स्वच्छन्द रूप से और खुलेआम यूरोपीय मर्दों और औरतों से, उन **म्लेच्छों** से जो वर्जित मांस और शराब पीते थे, दोस्ती और भाईचारे के संबंध कायम करते थे।

बैप्टिस्ट मिशन द्वारा प्रकाशित बंगाली साप्ताहिक **समाचार दर्पण** ने अपने 20 दिसम्बर 1823 के अंक में रिपोर्ट छापी कि द्वारकानाथ ने गृह-प्रवेश के उपलक्ष में एक विशाल भोज दिया, जिसमें वाद्य-संगीत और नृत्य का भी प्रबंध था और जिसमें अनेक प्रमुख और विख्यात भारतीय और यूरोपीय मेहमान शामिल हुए। पत्र ने आगे सूचना दी कि पार्टी इतनी उल्लासपूर्ण हो गई कि मेहमान तरह-तरह के मुखौटे लगा कर रंगरेलियां मनाने लगे, उनमें से एक ने 'गाय का मुखौटा लगा कर घास चरना शुरू कर दिया।' और साथ ही सार्वजनिक स्तर पर इन रंगरेलियों का आयोजन करने वाले व्यक्ति ने पहले इसी साल मार्च के महीने में रूढ़िवादी हिन्दू सम्प्रदाय के नेताओं के साथ मिल कर बंगाली भाषा और संस्कृति के विकास के निमित्त एक संस्थान गौड़ीय समाज की स्थापना की थी। इससे भी छः साल पहले उन्होंने हिन्दू कालेज की स्थापना में सक्रिय भाग लिया था, जो अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र बन गया और बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय। और छः साल बाद, मार्च,

1829 में **समाचार दर्पण** ने फिर रिपोर्ट दी कि द्वारकानाथ को एशियाटिक सोसाइटी का सदस्य चुना गया था, जिसकी स्थापना सर विलियम जोन्स ने भारत-विद्या संबंधी शोध-कार्य के अग्रणी संस्थान के रूप में की थी। बाद में उसी साल दिसंबर में उन्होंने टाऊन हाल की उस सार्वजनिक सभा में भाग लिया था, जो ब्रिटिश पार्लियामेंट से हिन्दोस्तान और चीन के बीच मुक्त व्यापार की छूट और यूरोपियनों को भारत में अपने उपनिवेश बसाने की इजाजत देने की दरखास्त करने के लिए बुलाई गई थी।[14] और इन सारे वर्षों में वे किसी न किसी पद पर ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी भी करते रहे थे और साथ ही लाभकारी निजी उद्यमों और कारोबार में, जमींदारियों की खरीद और फरोख्त और दूसरे अमीर जमींदारों को कानूनी सलाह देने के काम में, विदेशों में भारतीय वस्तुओं के निर्यात के लिए जहाज किराये पर लेने में और यूरोपियन एजेन्सी संस्थानों और व्यावसायिक बैंकों के साथ साझेदारी कायम करने में व्यस्त रहे। ये विभिन्न प्रकार की सरगरमियां उनकी बहुमुखी प्रतिभा, उनकी दिलचस्पियों के व्यापक क्षेत्र और जीवन के प्रति उनके उत्साह की मिसाल हैं।

यद्यपि वे व्यक्तिगत रूप से वर्जनाओं से मुक्त थे, द्वारकानाथ में सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों का पूरा अहसास था और वे सदा अपनी दत्तक मां अलका सुंदरी की भावनाओं का, जिनके वे भक्त थे, आदर करने की खातिर स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर नियंत्रण रखने के लिए तत्पर रहते थे। वे कट्टर वैष्णव थीं और उन्हें अपने बेटे द्वारा पूर्वजों के तौर-तरीकों की पूर्ण अवहेलना करने की बात जरा भी पसंद नहीं थी। लेकिन वे बड़ी बुद्धिमान महिला थीं और द्वारकानाथ की पत्नी दिगम्बरी की अपेक्षा कहीं ज्यादा सहिष्णु और समझदार थीं। वे उनके लिए अपने यूरोपियन मित्रों के साथ खुल कर मिलते-जुलते और उनको दावतें देने की जरूरत महसूस करती थीं, लेकिन उन्होंने द्वारकानाथ से आग्रह किया था कि वे उनके साथ एक ही मेज पर बैठ कर न खायें और न गौ-मांस को हाथ लगाएं। उनकी इच्छा का आदर करके द्वारकानाथ ने, जब तक वे जीवित रहीं, यूरोपियन मित्रों के साथ कभी एक ही मेज पर खाना नहीं खाया। मेहमानों के जाने के बाद गंगा के पवित्र जल से स्नान करके और कपड़े बदल कर वे अकेले भोजन करते थे। कहते हैं कि इस पाबन्दी का वे मार्च, 1838 में मां की मृत्यु के समय तक सच्चाई से पालन करते रहे। द्वारकानाथ उस समय उत्तर भारत के दौरे पर थे, जब आगरे में उन्हें मां की बीमारी का समाचार मिला। वे तुरंत घर को लौट पड़े, लेकिन उन दिनों यात्रा में समय लगता था, चाहे घोड़ा-गाड़ी से की जाय या नाव से। इसलिए जब तक उनकी नाव कलकत्ते पहुंची, मां का देहान्त हो चुका था।[16]

यह वापसी उनके लिए अत्यंत दुखदायी थी और वे शोक से विह्वल थे कि मां के अंतिम क्षणों में वे उनके निकट नहीं थे। यह शोक, जिसमें क्रोध भी मिला था, और भी असह्य हो उठा जब उन्होंने सुना मृत्यु से तीन दिन पहले ही, जब मां घोर पीड़ा

से तड़प रही थीं, उनकी इच्छा के विरूध उन्हें घर से बाहर ले जाकर, गंगा के तट पर एक फूस के छप्पर के नीचे खुले में रखा गया था, ताकि वे पवित्र जलधारा के समक्ष अपने प्राणान्त की प्रतिक्षा कर सकें, जैसा कि उन दिनों की परम्परागत रीति थी। उन्होंने अपने प्रिय पोते देवेन्द्रनाथ से, जो उस समय इक्कीस वर्ष के थे, याचना की थी कि वे उन्हें समय आने से पहले ही जबरन घसीट कर इतनी पीड़ाभरी मृत्यु के मुंह में न झोंकने दें। 'मैं इतनी जल्दी नहीं मरूंगी,' उन्होंने प्रतिवाद किया था और कहा था, 'अगर द्वारकानाथ यहां होते तो वह कभी ऐसा न होने देते।'[17] और सच है कि अगले साल के शुरू में ही जब उनकी पत्नी दिगम्बरी का देहान्त हुआ तो उस समय "द्वारकानाथ ने इस बर्बरता की पुनरावृत्ति नहीं होने दी। उन्हें न सिर्फ 'गंगायात्रा' से द्वारकानाथ ने बचाया, बल्कि अंतिम सांस तक उन्हें कलकत्ते में उपलब्ध श्रेष्ठतम चिकित्सा साधन जुटा कर उनकी सेवा-सुश्रूषा में कोई कसर नहीं रखी।

द्वारकानाथ ने जो कुछ भी करना संभव था, अपनी मां की स्मृति में किया। 1838 में **एशियाटिक जर्नल** ने विवरण प्रकाशित किया : '23 मार्च को बाबू द्वारकानाथ ने अपनी मां के **श्राद्ध** के अगले दिन पचास-साठ हजार भिखारियों को भीख दी, ब्राह्मणों को आठ-आठ आने की दक्षिणा दी और जात-पांत, धर्म और आयु का लिहाज न करके दूसरे लोगों को चार-चार आने बांटे।' इससे पहले ही उन्होंने कलकत्ते की डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसाइटी को मां के नाम पर अंधों की देखभाल करने के लिए एक लाख रूपया दान किया। उन दिनों, आज से करीब डेढ़ सौ साल पहले, एक लाख रुपया अपने आप में एक बहुत बड़ी रकम होती थी और अनेक समाचारपत्रों ने द्वारकानाथ की उदारता और बुद्धिमानी की भूरि-भूरि सराहना की कि उन्होंने धार्मिक आयोजनों और तमाशों पर पैसा बर्बाद न करके जरूरतमंदों और दुखियारों की मदद के लिए इस रकम का सदुपयोग किया था। यह दान एक आकस्मिकतानिधि के रूप में, जिसका नाम 'द्वारकानाथ फंड' था, अलग रखा गया था और उनकी मां की मृत्यु की संभावना के अधीन था, अर्थात् उपरोक्त संभाव्य स्थिति पैदा होने तक दाता स्वयं अपने कोश से सोसाइटी को एक लाख पर आठ प्रतिशत के हिसाब से लगातार ब्याज देता रहेगा।'[18] इस पर टिप्पणी करते हुए 6 फरवरी 1838 के **इंगलिशमैन** ने लिखा :

'हम सोचते थे कि द्वारकानाथ के लिए और ऐसा कोई काम करना संभव नहीं होगा जो उनके चरित्र के प्रति हमारी श्रद्धा में और वृद्धि कर देगा – उनकी असीम उदारता में हमारी आस्था को और भी बढ़ा देगा। उन्होंने एक नागरिक के कर्तव्यों का पालन इतनी ईमानदारी से किया था – जो एकमद बेमिसाल है – कि अगर हमसे पूछा जाता कि उन्हें सारे नेक लोगों के आदर और प्रेम का पूरा हकदार होने के लिए और क्या कुछ करना शेष रह गया है तो हम जोर देकर यही कहते कि **कुछ नहीं**। लेकिन नहीं, द्वारकानाथ ने ऐसा नहीं सोचा। **उन्होंने** महसूस किया कि उनके

सारे नेक काम क्षणस्थायी महत्व के थे – कि उन्होंने ऐसे थोड़े काम ही किये थे, जो स्थायी रूप से लोगों के उपयोग में आ सकें – या यह कि जो उनके नाम को उन महान उद्देश्यों के साथ जोड़ सकें, जिनके लिए वे इतने बरसों से जिये और प्रयत्न करते रहे थे। इसलिए – क्या पाठक विश्वास करेंगे ? (जो द्वारकानाथ को जानते हैं वे तो खुशी से तत्काल विश्वास कर लेंगे) – उन्होंने कल डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसाइटी को **एक लाख रुपये** की विशाल रकम प्रदान की है ताकि वह सोसाइटी इस पूंजी को लगा कर इसके सूद से उन अनगिनत गरीबों को सहारा दे सके जिनका प्रबंध यह शानदार संस्था अपने फंड से करती है... इस पर कोई टिप्पणी करना अनावश्यक है। परोपकारिता की यह सर्वोच्च मिसाल उस अविच्छिन्न उदारशीलता की ही एक कड़ी है, जिसकी कल हमने सहर्ष प्रशंसा की थी, और द्वारकानाथ का नाम सैकड़ों के दिलों में जिंदा रहेगा, "जबकि मंजिलों ऊचे मकबरे और विशाल आवक्ष मूर्तियां" ध्वस्त होकर धूल में मिल जायेंगी और विस्मृत हो जायेंगी।'

मां के प्रति द्वारकानाथ के मन में कितना आदर था, इसकी एक और मार्मिक किंबदंती परिवार की श्रुति परम्परा में सुरक्षित है। मां ने उनसे कहा था कि जो ब्राह्मण रोज सवेरे तड़के अपने भक्तिगान से उन्हें जगाने के लिए आता था, उसे किसी प्रकार का अभाव न झेलना पड़े। मां की मृत्यु के बाद द्वारकानाथ ने उस ब्राह्मण को बुलवाया और उससे पूछा कि अपनी बाकी जिंदगी आराम से गुजारने के लिए उसे कितने रूपयों की जरूरत पड़ेगी। ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे जैसे गरीब ब्राह्मण को चाहिए ही कितना? आप जितना एक दिन में कमाते हैं, उतना ही मेरी जिंदगी भर के लिए पर्याप्त है।" 'बहुत अच्छा, तो आज दिन भर में मैं जो भी कमाऊंगा, वह तुमको दे दूंगा।' ब्राह्मण के भाग्य से, द्वारकानाथ को उसी दिन दफ्तर की एक इमारत बेचनी पड़ गई, जिससे उन्हें लाभ के रूप में एक बड़ी रकम प्राप्त हुई। अपने वचन के अनुसार उन्होंने उसमें से अपने लिए एक पैसा भी नहीं रखा और वह सारी रकम श्री चैतन्य महाप्रभु का मंदिर बनवाने पर खर्च कर दी। (जिनकी वैष्णव लोग पूजा करते हैं) और उनकी मूर्ति की पूजा और ब्राह्मण के लिए उसके पुजारी के रूप में स्वाभिमान और आराम से जीवन-यापन करने का पूरा प्रबंध कर दिया।[19]

द्वारकानाथ एक स्नेही और उदार पति के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उनकी पत्नी दिगम्बरी उनके घर नौ वर्ष की आयु में आयी थीं, एक असाधारण सुंदर बालिका, जिसे देख कर परिवार की स्त्रियों को लगा जैसे एक देवी ने मानवी के रूप में जन्म लिया हो। आरंभ के कुछ वर्षों तक, जब तक वे बालिग नहीं हुई, द्वारकानाथ का उनसे कम ही सम्पर्क रहा होगा। पहली बेटी के अलावा, जिसकी शैशव काल में ही मृत्यु हो गई थी, दिगम्बरी ने उन्हें पांच पुत्र दिये – देवेन्द्रनाथ (1817-1905), नरेन्द्रनाथ (1818-1858), गिरीन्द्रनाथ (1820-1858), भूपेन्द्रनाथ (1826-1839), और नगेन्द्रनाथ (1829-1858)। यद्यपि दिगम्बरी ने उनको इतने बेटे दिये थे –

ओर जैसे आज वैसे तब भी भारतीय परिवारों में बेटों की बड़ी कद्र थी – लेकिन द्वारकानाथ को घर में परिवारिक सुख और अनुकूल साहचर्य शायद ही कुछ मिला हो। दिगम्बरी का सौंदर्य उनके लिए व्यर्थ ही गया, क्योंकि वे गंभीर और कठोर स्वभाव की थीं और अपने पति के अ-रूढ़िवादी स्वच्छंद आचरण को नापसंद करती थीं। वे अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ में या धर्म-पुस्तकों के पढ़ने में या वैष्णव पुजारिनों से पढ़वा कर सुनने में लगाती थीं। और अपने पति के स्पर्श से कतराती थीं। और अगर कभी पति के शारीरिक सम्पर्क में आती थीं तो उसके कलुष को धोने के लिए, जो उनके पति को युरोपियन **म्लेच्छों** के साथ स्वच्छंद रूप से मिलने-जुलने से लग गया था, तुरंत पवित्र जल से स्नान करती थीं।

यद्यपि वे अपनी पत्नी की धर्म-भीरूता को सहिष्णु-भाव से बर्दाश्त करते थे, लेकिन दिगम्बरी उनके 'अधर्मी' आचरण-व्यवहार पर नुक्ताचीनी करती रहती थीं और कहा जाता है कि एक बार तो उन्होंने द्वारकानाथ से उनके म्लेच्छ तौर-तरीके छुड़वाने के लिए तीन दिन तक भूख-हड़ताल भी की थी। जब वे इसमें असफल रहीं तो उन्होंने द्वारकानाथ को दाम्पतिक संबंधों से वंचित कर दिया, संभवतः 1829 में अपने अंतिम बेटे के जन्म के फौरन बाद ही। लेकिन वे अपने पतिव्रता धर्म के अनुसार नित्य सुबह तड़के, जब वे सोये पड़े होते थे, उनके चरण छूकर उनको प्रणाम करती थीं, और अपने पास आये अनेक याचकों की सहायता के लिए उनके पास जाकर आग्रह करने में संकोच नहीं करती थीं। वे हमेशा उनका आग्रह स्वीकार कर लेते, यद्यपि उन्हें यह सोच कर जरूर हंसी आती होगी कि उनसे जो लेना था लेकर लौटते ही बेचारी को स्नाान करके पवित्र होना पड़ेगा। सरदी के मौसम में भी बार-बार ऐसे स्नानों और वो भी पूरे कपड़े पहन कर नहाने की आदत के कारण दिगम्बरी ने अपनी सेहत खराब कर ली और 1839 में, जब वे अपनी आयु के चौथे दशक में ही थीं, उनकी मृत्यु हो गई। इससे एक दिन पहले उनके चौथे पुत्र भूपेन्द्रनाथ की तेरह वर्ष की आयु में अकाल मृत्यु ने भी जल्द ही उनकी जीवनलीला समाप्त करने में मदद की होगी। 24 जनवरी, 1839 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** ने रिपोर्ट प्रकाशित की : 'द्वारकानाथ टैगोर के परिवार में एक दुखद घटना घटित हुई है, जिसने उन्हें अपार शोक में डुबो दिया है। उनके तेरह वर्षीय पुत्र की, जो अत्यंत मृदुल स्वभाव का और होनहार बालक था, शनिवार को अचानक मृत्यु हो गई और उसके दूसरे ही दिन पिता को इससे भी अधिक गहरा आघात झेलना पड़ा जब उनकी पत्नी भी चल बसीं।'

अपने दाम्पत्य जीवन के अंतिम दशक में आपस में आंशिक विलगाव होने के बावजूद, द्वारकानाथ को अपनी पत्नी के बिछोह से गहरी पीड़ा हुई होगी, विशेषकर जबकि साथ ही उन्हें एक बेटे से भी हाथ धोना पड़ा था। वे उनके उस अद्वितीय सौंदर्य की याद किए बिना न रह सके होंगे, जब वे आरंभ में उनके जीवन

में आई थीं और उन्होंने अपने विवाहित जीवन के शुरू के सालों में जो सुख और आनंद भोगे थे। उन्होंने फिर दौबारा शादी नहीं की, यद्यपि उनकी उम्र चालिस से कुछ ही ऊपर थी, और उनकी दौलत और प्रतिष्ठा को देखते हुए, निश्चय ही उनके पीछे पड़ने वालों की कमी नहीं रही होगी। उन्होंने शायद महसूस किया हो कि उन दिनों का हिन्दू समाज जैसा था, उसको देखते कोई भी पत्नी उनके मन की जीवन-संगिनी नहीं बन सकती थी। वे जैसा जीवन व्यतीत करते थे और जिस समाज में उठते-बैठते थे, उसमें भारतीय या यूरोपीय दोनों प्रकार की महिलाओं की कमी नहीं थी, जिनका संग-साथ उन्हें उपलब्ध था। भारतीय औरतें उनकी अपनी जाति या वर्ग की नहीं हो सकती थीं, लेकिन पेशेवर नाचने और गाने वाली हिन्दोस्तानी, विशेष कर मुसलमान लड़कियां, जिन्हें बाईजी पुकारते थे, अनेक थीं, जिनमें से कुछ तो बड़ी सुंदर और प्रतिभाशाली थीं, जिन्हें रसिकों का मनोरंजन करने की विशेष तालीम दी जाती थी। मुर्शिदाबाद में मुसलमान नवाब के दरबार का ह्रास होते ही उनमें से अनेक नये संरक्षकों की तलाश में कलकत्ते आ गई थीं और उन्होंने चितपुर रोड के आस-पड़ोस में अपने कोठे जमा लिए थे। यह तो नहीं मालूम कि द्वारकानाथ को उनके सम्पर्क में रहने की लत लगी थी या नहीं, लेकिन यह निश्चित है कि वे पार्टियों में अपने मित्रों का मनोरंजन करने के लिए उन्हें बुलाते थे। उन दिनों अपने मित्रों के मनोरंजन की खातिर बाईयों को मुजरे के लिए बुलाने का रिवाज धनी वर्ग के लोगों में आम प्रचलित था। राममोहन राय भी ऐसा करते थे। उस ज़माने में यह भी एक आम रिवाज था कि अमीर जमींदार अपनी पारिवारिक कोठी से दूर अपनी रखैलों के लिए उद्यान-गृह रखते थे और इसमें शर्मिन्दा होने की कोई बात नहीं समझी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक और समाज-सुधारक राजनरायन बोस ने अपनी पुस्तक **सेकल ओ एकल** में लिखा है कि 'उन दिनों गणिकाओं को रखना एक आम बात थी। यह सामाजिक प्रतिष्ठा का एक अंग था।'[20]

जर्मन यात्री, कप्तान लियोपोड वॉन ओर्लिव को, जो बेल गछिया स्थित द्वारकानाथ के बंगले पर गया था और जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, चित्र-दीर्घा में टंगी 'मसनद पर झुक कर लेटी एक अत्यंत सुंदर हिन्दोस्तानी महिला की बेहद दिलचस्प तस्वीर' पसंद आयी थी। द्वारकानाथ ने इस सुसंस्कृत सुंदरी की तस्वीर गर्व से इशारा करके दिखायी थी, और ऐसा लगा कि वे ज़रूर उस पर दिलोजान से फ़िदा थे।[21] यह सुसंस्कृत सुंदरी कौन थी, किसने उसकी तस्वीर बनायी थी और वह तस्वीर आज कहां है, यह सब अज्ञात है। संभव है कि वह उच्च कोटि की कोई बाईजी हो और द्वारकानाथ को प्रिय रही हो। वह द्वारकानाथ के अपने परिवार की या किसी भी 'भद्र' हिन्दू या मुसलमान परिवार की नहीं हो सकती थी। ऐसी महिलाएं उन दिनों सार्वजनिक स्थानों पर कभी नहीं जाती थीं, अपनी तस्वीर बनवाने की बात तो और भी असंभव थी। यूरोपीय महिलाओं में भी

द्वारकानाथ की कई मित्र रही होंगी, विशेषकर ऑपेरा गायिका शारलोट ई हार्वे या अभिनेत्री ईस्थर लीच जैसी कलाकारों में।

रूढ़िवादी हिन्दू नैतिकता की एक असंगति तो यह थी कि एक ज़मींदार या सम्पन्न हिन्दू परिवार इस बात को सहर्ष स्वीकार करता था, दरअसल इस बात को एक अनिवार्यता मानता था कि वह एक या ज्यादा मुसलमान रखेलें रखेगा, लेकिन अगर कभी इस बात का पता चलता था कि उसने अपनी रखेलों के हाथ का छुआ हुआ खाना खाया है, तो हंगामा मच जाता था और उसे प्रायश्चित करने के लिए मजबूर होना पड़ता था। इसलिए अगर द्वारकानाथ पर यह संदेह किया जाता कि उन्होंने एक सुंदर गणिका रख छोड़ी है या किसी यूरोपियन औरत से उनका प्रणय चल रहा है तो इसमें लोकनिन्दा की कोई बात नहीं होती, सिवाय इसके कि परिवार की गपशप में उसे चोरी-छिपे मज़ाक का विषय बनाया जा सकता था।

ऐशो-इशरत की जिंदगी से प्यार और रूढ़िवादी वर्जनाओं से मुक्त होने के बावजूद द्वारकानाथ में उच्चकोटि की नैतिक संवेदना थी और वे दूसरों की भावनाओं का पूरा आदर करते थे, यह जानते हुए भी कि वे असंगत और विवेक रहित थीं। इसलिए अपनी आज़ादी सुरक्षित करने के लिए और अपनी पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों की भावनाओं को ठेस न पहुंचाने की खातिर उन्होंने तीसरे दशक के मध्य कलकत्ते के उत्तर में और डमडम की सड़क पर कुछ मील दूर बेलगछिया में एक विशाल बंगला खरीदा जिसमें लंबी-चौड़ी खुली जमीन थी। और चूंकि शहर में अपनी व्यावसायिक व्यस्तताओं के कारण वे खुद इतनी दूर जाकर नहीं रह सकते थे, इसलिए उन्होंने जोरासेन्को में स्थित खानदानी कोठी की खाली जमीन पर एक शानदार तिमंजिला भवन बनवाया, बाद में **बैठकखाना** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बेलगछिया का बंगला और बैठकखाना, इन दोनों का रूपांकन अंग्रेज वास्तुकारों ने किया था। उन्होंने जब महसूस किया कि उनके परिवार के सदस्यों को उनका शारीरिक नैकट्य पसंद नहीं था, तो उन्होंने अपना व्यक्ति निवास खानदानी कोठी से बदल कर नये भवन में कर लिया।

बाद में अपनी वसीयत में द्वारकानाथ इस शानदार भवन को अपने दूसरे बेटे गिरीन्द्रनाथ के नाम छोड़ गये जो नं० 5 द्वारकानाथ टैगोर लेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनेक वर्षों तक यह भवन गिरीन्द्रनाथ के पोतों का निवास-स्थान था, जिनमें दो विख्यात कलाकार बंधु थे, अबनीन्द्रनाथ और गगनेन्द्रनाथ, और वह भारतीय कला में एक नये आंदोलन का केन्द्र बना रहा। आधुनिक भारतीय संस्कृति के एक स्मरणीय ऐतिहासिक विकास-केन्द्र इस भवन का परवर्ती इतिहास हमारी इतिहास-चेतना की शून्यता और कलाकृति-ध्वंसक प्रवृत्ति पर एक दुखदायी टिप्पणी है। इस भवन के औपचारिक इतिहास के अनुसार (**दी हाउज़ ऑफ टैगोर्स** : ले० हिरण्ययी बनर्जी, रवीन्द्रभारती, 1965) : 'वर्तमान शती के पांचवें दशक के आरंभ में एक बंधक-पत्र के निष्पादन के फलस्वरूप यह सम्पत्ति बाहर

वालों के हाथ में चली गई। इसके कुछ दिनों बाद ही ब्रिटिश सरकार ने भारत-रक्षा कानून के अंदर इसका अधिग्रहण कर लिया और दो साल तक विदेशी सैनिकों को टिकाने के लिए इसका इस्तेमाल किया गया। बाद में इसे अनाज का गोदाम बना दिया गया। इसी बीच यह सम्पत्ति रवीन्द्रनाथ मेमोरियल कमेटी ने प्राप्त कर ली थी और जब सरकार ने अधि-ग्रहण समाप्त किया तो कमेटी ने इस भवन को ढा देने का निश्चय किया, जिसके लिए उसकी दृष्टि में संतोषजनक कारण थे। इस प्रकार आज इस भवन का अस्तित्व नहीं रहा।' सौभाग्य से, विचारहीन कलाकृति-ध्वंसक कार्य के बावजूद इस भवन की स्मृति ज़िंदा रह गई है।

ख़ैर, हम फिर धर्म के प्रति द्वारकानाथ के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे, जो एक प्रकार की द्वैत भावना से मुक्त नहीं था, और यह एक ऐसे व्यक्ति के मामले में अनिवार्य भी था, जिसका लालन-पालन तो रूढ़िवादी वैष्णव परंपरा में हुआ था किन्तु जो बाद में राममोहन राय के रूढ़िभंजक प्रभाव में आ गया था। मित्रा ने अपने **संस्मरण** में इस संबंध में द्वारकानाथ के छोटे भाई रामनाथ के विचार उद्धृत किए हैं, जो उन्होंने एक लिखित प्रश्न के उत्तर में भेजे थे : 'मेरे भाई अपने आरंभिक जीवन में एक वैष्णव थे। लेकिन जहां तक धर्म का प्रश्न है, वे आरंभ से ही उदार विचारों के थे। राजा राममोहन राय से परिचय होने के बाद, उनके धर्म में एक परिवर्तन आया, और जहां तक मैं देख-समझ पाया हूं, वे शुद्ध प्राचीन हिन्दू धर्म के अर्थों में एकेश्वरवादी बन गये थे। वे एक ईश्वर और भावी जीवन में विश्वास करने लगे थे।' मित्रा ने आगे कहा है कि 'वे प्रार्थनाशील व्यक्ति थे और प्रार्थना की क्षमता में विश्वास करते थे। प्रतिदिन सुबह स्नान के बाद वे प्रार्थना करते थे और मरते समय भी उनके ओंठों पर प्रार्थना के ही शब्द थे।'[22]

राममोहन राय का प्रभाव यद्यपि बहुत गहरा था, लेकिन सीमित था। द्वारकानाथ ने कभी भी देवी और देवताओं की पारिवारिक पूजा का बहिष्कार नहीं किया। वे लगातार परम्परागत ढंग से पूजा-पाठ करते रहे और उसका आयोजन भी करते रहे। रूढ़िवादी धर्म-सभा के मुख-पत्र एक बंगाली समाचारपत्र ने उनका एक ऐसे ज्वलंत उदाहरण के रूप में उल्लेख किया था जो एक अच्छा हिन्दू भी था और साथ ही इतना आधुनिक भी था, जितना कोई हो सकता है। उनके घर में विभिन्न देवियों की पूजा नियमित रूप से खानदान की प्रतिष्ठा के अनुकूल पूरी साज-सज्जा और धूम-धाम से संपन्न की जाती थी। लेकिन वे स्वयं, यह जानते हुए कि उनका स्पर्श अपवित्र माना जाता है, इन अवसरों पर अपने हाथों से आरती-पूजा नहीं करते थे। वे मंदिर में भी प्रवेश नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने अठारह ब्राह्मण नियुक्त कर रखे थे, जो उनकी ओर से विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करते थे।

बेलगछिया का बंगला उन्होंने बड़े पैमाने पर आतिथ्य-सत्कार और मनोरंजन के आयोजनों के लिए एक ग्राम्य-निवास के रूप में सुरक्षित रख छोड़ा था। अनेक

समकालीन विवरणों में इसके बड़े भावुकतापूर्ण वर्णन मिलते हैं। गवर्नर जनरल, लार्ड ऑकलैण्ड (1836-1842) की बहन एमिली ईडेन ने अपने घर को लिखे पत्रों में भाई के साथ वहां की अनेक यात्राओं और मुलाक़ातों का जिक्र किया है।[23] 8 अगस्त, 1836 के पत्र में उसने पहली मुलाकात का वर्णन करते हुए लिखा : 'द्वारकानाथ टैगोर ने, जो अत्यंत धनी देसी व्यक्ति हैं, हमसे कहा कि हम जाकर उनका बंगला देखें। वे राममोहन राय के अनुयायी हैं, बढ़िया अंग्रेजी बोलते हैं, उन्होंने ठेठ अंग्रेजी बंगला निर्मित किया है, जिसमें बिलियर्ड खेलने का कमरा आदि सब कुछ है और जिसे कला-मूर्तियों, कला-चित्रों, और कोप्ले फोल्डिंग्स, और प्राउट्स और चीनी के फ्रांसीसी फूलदानों से सजाया है। उन्होंने मुझसे आने का दिन निश्चित करने के लिए कहा है। जार्ज (लार्ड ऑकलैण्ड) सुन कर बताया। इस ख़बर से सारा कलकत्ता उत्तेजित हो उठा, क्योंकि गर्वनर जनरल एक देसी के साथ दावत खाने जा रहा था। यह तथ्य कि एक देसी आदमी गर्वनर जनरल के साथ बैठ कर खायेगा, कहीं ज्यादा असाधारण बात थी, और द्वारकानाथ उन बहुत थोड़े से लोगों में से एक हैं जो पास बैठ सकेंगे जब हम भोजन कर रहे होंगे – द्वारकानाथ बहुत अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं और हमारे सम्मान के लिए मिस्टर पार्कर भी उनके साथ थे, जो यहां पर सबसे बुद्धिमान लोगों में से एक है। और यहां के उद्यान में हाथी थे, सरोवर में नौकाएं थीं और ग्रीष्म-सदन में किस्म-किस्म की बतखें थीं और सुंदर चित्रों और पुस्तकों की एक विपुल राशि थी और अन्य दिनों की अपेक्षा कम तपाने वाली शाम थी और इसलिए कोई कठिनाई नहीं हुई और हम जितना कुछ शोर मचा सकते थे, मचाते हुए उनके घर भोजन करने पहुंचे। लेकिन हमने सुना है कि इतनी शानदार दावतें सभी लोगों को देते हैं।'

इसके बाद लार्ड ऑकलैण्ड और उनकी बहन बेलगछिया की अनेक पार्टियों और दावतों में सम्मिलित हुए, जिनका विवरण समकालीन समाचारपत्रों में सुरक्षित है। बढ़िया से बढ़िया भारतीय और यूरोपीय व्यंजनों और शराबों के अलावा द्वारकानाथ की पार्टियां शानदार आतिशबाजियों, नृत्यों, संगीत, मूकाभिनय तथा मनो-विनोद के ऐसे ही अनेक कलात्मक प्रदर्शनों के लिए प्रसिद्ध थीं।

'मैंने ऐसे सुंदर उत्सव कम ही देखें हैं,' एमिली ईडेन ने 30 नवंबर, 1836 के पत्र में लिखा। 'यह लार्ड हर्टफोर्ड के यहां आयोजित उत्सव के समान था – सुंदर आतिशबाजियां, और फिर एक कमरे में सारे फ्रांसीसी अभिनेता और गायक बैठे थे और नृत्य का प्रोग्राम दूसरे कमरे में चल रहा था और जैसे ही एक जगह मनोरंजन का कार्यक्रम समाप्त होता, दूसरी जगह दूसरा कार्यक्रम शुरु हो जाता। वहां स्वयं द्वारकानाथ के रिश्तेदार काफी बड़ी तादाद में और एक से एक बढ़िया पोशाक में मौजूद थे, अन्यथा और देसी लोग अधिक नहीं थे।' इससे पहले 3 सितंबर ने पत्र में उसने लिखा था: 'केप्टन – एक दिन गुज़ारने के लिए द्वारकानाथ

टैगोर के बंगले पर गया था, एक ऐसा देसी जिससे हम मुलाकात करना चाहते हैं और जो इस देश में अकेला आदमी है, जो खुशगवार पार्टियां देता है। वह अपने मेहमानों से आग्रह करता है कि वे अपने साथ या तो चित्रकारी का सामान लेकर आयें या संगीत का और वह अपने घर के श्रेष्ठ चित्रों को नकल करने के लिए सामने लगा देता है; और वहां संगीत के अनेक वाद्य थे, जिन्हें एक ही व्यक्ति बारी-बारी से बजाता रहता था। कुछ व्यक्तियों ने गाने गाये, कुछ ने बांसुरी या वायलिन आदि बजाई। केप्टन ने प्राऊट की शानदार प्रतिकृति तैयार की। वहां कुल्फियां और मिठाइयां भी थीं और जब वे लौट रहे थे, महिलाएं भी भोज में अपने पतियों के साथ शामिल होने के लिए पहुंचने लगीं। इस देश में जहां कोई भी खुली हवा में नहीं निकल सकता, घर के अंदर ही दिन गुजारने के नये तरीके तलाश करने का औचित्य है।'

जार्ज डब्ल्यू. जान्सन ने अपनी पुस्तक, **दी स्ट्रेन्जर इन इंडिया**[24] में 1840 की एक दावत का जिक्र किया है : 'जब से देसी समाज के नेताओं को हमारे अपने देशवासियों के नेताओं से मिलने-जुलने की इजाजत दे दी गई है, तब से उन्होंने एक बड़ी सीमा तक हमारी फैशनेबल आदतें और तौर-तरीके अपना लिए हैं, और उनकी पार्टियां – बॉल डांस और दावतें – जिनमें उनके इष्ट-मित्र जमा होते हैं, हिन्दोस्तान में बड़े शानदार ढंग से आयोजित की जाती हैं। हिन्दुओं में बाबू द्वारकानाथ, पारसियों में रुस्तमजी कावसजी, और मुसलमानों में टीपू साहब के पौते प्रिंस गुलाम की दावतें सब से ज्यादा मशहूर हैं। 1840 के शुरू में लार्ड ऑकलैण्ड के कलकत्ता वापस आने पर उनके सम्मान में द्वारकानाथ ने अपने कॉसीपुर के निकट वाले घर में जो पार्टी दी थी, वह इन सज्जनों द्वारा दी गई तमाम पार्टियों से बढ़-चढ़ कर थी, जो ऐसे **तमाशों** पर कितना खर्च होता है इसको कोई सीमा नहीं जानते।... जो लोग द्वारकानाथ के संगमरमर वाले बरामदे में से (गुलाबी और सफेद पर्दों के बीच खुले भाग से) बगीचे की ओर बाहर को देख रहे थे, उन्होंने जीवन में इतने सौंदर्य का दृश्य कभी नहीं देखा था। विभिन्न मेहराबी द्वार दीपमालाओं से आच्छादित थे और पानी के हौज इन रोशनियों से जगमगा रहे थे; दीपमालाओं से 'जगमगाता मंदिर', दूर ऊंचे ताड़ वृक्षों और घने कुंजों के बीच रोशनियों से जगमगाते और बागीचे के लॉन में जैसे 'तैरते फिरते श्वेत वस्त्रधारी देसी लोगों को जगमगाते हुए 'गॉड सेव दी क्वीन' (खुदा मलिका-ए-आजम को सलामत रखे) का मंजर बेहद खूबसूरत था। ..."और यह एक नई 'अरब की हजार रातें' का दृश्य था। इस "राजसी सौदागर" के घर के अंदर की सजावट शानदार थी, बेशकीमती और ठोस–सस्ती तड़क-भड़क से रहित और मात्र अलंकरण के लिए आरामदेही का त्याग किए बिना। मैंने "थी" कहा है, क्योंकि अपनी इंगलैंड यात्रा से पहले कलकत्ते से चलते वक्त वे अपना सारा फर्नीचर और तस्वीरें बेच गये थे।'

इस सारी देसी शान-शौकत की विडम्बना यह थी कि भारत में ब्रिटिश इतिहास

के इस दौर में, यानी इसके पूर्व कि 1857 का महान विद्रोह प्रजातीय संबंधों को और भी कटु बनाता, द्वारकानाथ की दावतों द्वारा पेश की गई तस्वीर अंग्रेजों के प्रजातीय दंभ और प्रशासनिक अन्याय की काली पृष्ठभूमि में केवल एक नन्हें चमकदार चप्पे के समान थी। यहां तक कि एमिली ईडेन ने भी, जिसने खुले शब्दों में स्वीकारा था कि वह देसी अण्ड-बण्ड बोली सीखने की ज़रा भी जहमत नहीं गवारा कर सकती और न 'हिन्दोस्तान में रहना' पसन्द करती है, और जिसे यह सोच कर भयानक दौरे पड़ने लगते थे (विशेषकर जब मैं गाड़ी में बैठ कर बाहर निकलती हूं) कि हम पूरी तरह से असभ्य जंगली अवस्था को लौट गये हैं और यह कि हम बाकी दुनिया से 3000 साल पिछड़ गये हैं, 21 जून 1841 के एक पत्र में लिखा था :

'जार्ज प्रतिदिन आश्चर्य करता है कि हमें इस देश को एक सप्ताह के लिए भी अपने कब्जे में रखने दिया जाता है। सूर्योदय के समय बरामदे में बैठे हुए मैंने अक्सर एक विशाल बुलडॉग को देसी लोगों पर झपटते देखा है, जो नंगे पांव और नंगी टांगें होने के कारण विशेषकर कुत्तों से बहुत खौफ खाते हैं। डा० – ने एक दिन मुझे बताया कि एक रोज सुबह उन्होंने देखा कि यह कुत्ता एक भिश्ती को तंग कर रहा था और उसने उसे डांट कर भगा दिया। थोड़ी देर के अंदर ही घोड़े पर सवार एक नौजवान वहां आ पहुंचा। कुत्ता उसके पीछे-पीछे था। वह उसे नहीं पहचानता था, लेकिन उसने नौजवान को रोक कर कहा कि कुत्ता एक आदमी को तंग कर रहा था इसलिए उसने भगा दिया था। "ओह, तुमने भगाया था?" नौजवान ने कहा, "मैंने इसको और एक दूसरे कुत्ते को इन काले लोगों का शिकार करने के लिए ही तो पाल रखा है। आज सुबह रेस कोर्स में मुझे एक काले आदमी का घोड़े से पीछा करने और उसे पछाड़ देने में बड़ा मजा आया।" ...मुझे आश्चर्य होता है कि देसी लोग ईसाई धर्म के बारे में, यहां उसके परिणामों से आंक कर, क्या सोचते होंगे? नील के बागान वाले एक अंग्रेज ने उस दिन अपनी पत्नी – एक सोल्ह साल की लड़की – की बड़े भयानक ढंग से हत्या कर दी–पिटाई करके मार डाला – और चूंकि वह वर्णसंकर जाति की थी, इसलिए पड़ोसी नील के बागान के मालिकों ने उसको भाग जाने में मदद की, और जब तक अखबारों ने यह मामला नहीं उठाया, मजिस्ट्रेट ने भी इसकी कोई नोटिस नहीं ली। तब सरकार ने हस्तक्षेप किया, लेकिन तब तक हत्यारा फ्रांस जा चुका था।'

मन-बहलाव के अनेक सुखद आयोजनों में अपना ध्यान बंटाने के बावजूद, द्वारकानाथ ने न तो कभी अपने व्यावसायिक उद्यमों की उपेक्षा की और न अपनी सार्वजनिक जिम्मिदारियों से किनाराकशी की, जो दोनों समय के साथ बढ़ती ही गई।' और न वे अपने पुत्रों और अन्य सगे-संबंधियों की शिक्षा-दीक्षा और समुचित देख-भाल के प्रति ही कभी उदासीन रहे। वे अपनी दोनों विदेश-यात्राओं में, पहली में अपने एक भान्जे (बहन का बेटा) को और दूसरी यात्रा में अपने सबसे

छोटे बेटे नगेन्द्र नाथ को साथ ले गये, जहां उसकी शिक्षा के लिए उन्होंने बहुत बड़ा और कीमती इन्तजाम किया। अगर वे अपने सबसे बड़े बेटे देवेन्द्रनाथ को साथ नहीं ले गये तो इसका कारण यह था कि इस बेटे को न तो जीवन के आमोद-प्रमोद में दिलचस्पी थी, न सांसारिक कैरियर बनाने में। वह धर्म-सुधार के अभियानों में पूरी तरह व्यस्त था और एक संत, एक महर्षि बनने के मार्ग में था। लेकिन इस बेटे की पारलौकिक सत्य की यह खोज भी, जिसे पिता ने कभी पसंद नहीं किया था, द्वारकानाथ की सहिष्णुता और उदारता के कारण ही संभव हो सकी थी।

देवेन्द्रनाथ जब बालक थे, तब पिता ने उनको एंग्लो-हिन्दू स्कूल में, जिसकी स्थापना राममोहन राय ने की थी और जहां कभी-कभी स्वयं राममोहन राय क्लास लिया करते थे, दाखिल करवा दिया। लड़का समय के साथ राममोहन राय का प्रशंसक और भक्त बन गया और दरअसल उनका सच्चा धार्मिक और नैतिकउत्तराधिकारी बन गया। बाद में द्वारकानाथ ने उन्हें हिन्दू कालेज में दाखिला दिलवा दिया, जो उस समय का सबसे प्रमुख शिक्षा-संस्थान था। द्वारकानाथ ने अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा और लालन-पालन पर पूरी तवज्जोह दी थी और दिल खोल कर खर्च किया था, लेकिन वे उसे अपना निजी साहचर्य शायद अधिक नहीं दे सकते थे। अत्यधिक व्यस्त और उनके समय की मांग करने वाले अनेक कार्यों के अलावा, उन दिनों बच्चों और परिवार के मुखिया पुरुष के बीच अधिक घनिष्ठता का रिवाज नहीं था। बच्चे अपना अधिक समय परिवार की स्त्रियों के बीच गुजारते थे और बालक देवेन्द्र तो विशेष रूप से दादी मां अलका सुंदरी का लाड़ला था। उसे अपने पिता से मिलने का अधिक अवसर ही नहीं मिलता था, क्योंकि पिता या तो अक्सर घर से बाहर रहते थे या जब घर पर होते थे तब या तो मेहमानों की खातिरदारी करने या जरूरतमंद लोगों की फरियादें सुनने में व्यस्त रहते थे। कहते हैं कि अपने बुढ़ापे में महर्षि ने बात-चीत के दौरान अपने बचपन के दिनों की याद करते हुए कहा था कि वे अपने पिता का बैठकखाना अंदर से देखने को लालायित रहते थे, लेकिन भीतर घुसने का साहस नहीं कर पाते थे। एक दिन तीसरे पहर स्कूल से लौट कर वे बैठकखाने के बाहर चक्कर काट रहे थे, झांक कर अंदर देखने की बड़ी उत्सुकता थी, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि इतने में उनके पिता ने उन्हें देख लिया। उन्होंने पूछा कि वह दरवाजे के बाहर क्यों भटक रहे थे और उन्हें अंदर ले गये। बालक अंदर के सौंदर्य और ठाठ-बाट से अभिभूत हो गया और उस दिन के बाद से वे उसके एक कोने में बैठ कर चुपचाप अपना सबक याद करते रहते थे और साथ ही वहां की गतिविधियों को भी देखते रहते थे।[25]

बहरहाल, जो भी कारण हो, चाहे जन्मजात स्वभाव और प्रवृत्ति की भिन्नता के कारण, या आरंभिक जीवन पर पड़े अंत:पुर के प्रभावों के कारण, जहां दादी और मां दोनों ही अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ और रूढ़िवादी किस्म के अन्य धार्मिक कार्यों में बिताती थीं और जहां घर के स्वामी के 'अधर्मी' तौर-तरीकों के

विरूद्ध होने वाली कानाफूसी कभी-कभी सुनाई दे जाती होगी, बालक ने कभी अपने पिता के व्यक्तित्व और विचारों का प्रभाव महसूस नहीं किया। पंडित शिवनाथ शास्त्री ने लिखा है कि 'धर्म संबंधी अपने आरंभिक विचारों के निर्माण में वे अपने पिता के व्यापक और उदार विचारों से उतना प्रभावित नहीं हुए थे, जितना बच्चों की उन कथाओं और परंपराओं से, जिन्हें उनके पिता के घर की स्वामिनी महिलाएं पवित्र मानती थीं।'[26]

द्वारकानाथ ने बालक के संवेदनशील मन पर अपने विचारों और तौर-तरीकों को आरोपित करने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। वे जेब -खर्च देने में बहुत उदार थे और बालक को उन्होंने अपने ढंग से विकास करने की छूट दे रखी थी। आरंभ में तो युवा बालक ने वैसा ही आचरण किया, जैसा अमीर घरों के युवक करते हैं। वह भोग-विलास के जीवन में लिप्त रहा। पिता को, जिन्होंने अपनी युवावस्था आत्म-शिक्षा की कठोर पाठशाला में गुज़ारी थी, अपने बेटे की आल्सी और विलासी जिदंगी पसंद नहीं थी, लेकिन उन्होंने कोई रोक-टोक नहीं की। उन्हें आशा थी कि बड़ा होकर उनका बेटा समझदार और गंभीर हो जाएगा और व्यावसायिक जिम्मेदारियों में उनका हाथ बंटायेगा। और इस बात को दृष्टि में रख कर उन्होंने युवा देवेन्द्रनाथ को यूनियन बैंक और कार, टैगोर एण्ड कं० दोनों जगह नौकरी दिला दी। लेकिन देवेन्द्रनाथ किसी भिन्न मिट्टी के बने हुए थे, और इस बात का उद्घाटन तब हुआ जब गंगा तट पर उनकी दादी मां की मृत्यु हुई और हठात् उनकी आत्मा एक आध्यात्मिक संकट में ग्रस्त हो गई जिसने उनकी कायापल्ट ही कर दी। एक छोर से कूद कर वे दूसरे छोर पर पहुंच गये। सांसारिक सुखों और धन-वैभव के प्रति उन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई और वे उपनिषदों और दर्शनशास्त्र में जीवन के अर्थ की खोज में लग गये और समय के साथ एक उत्साही धर्म-सुधारक बन गये। उन्होंने अपने गिर्द धार्मिक आकांक्षाएं रखने वाले उत्साही कार्यकर्ताओं का दल एकत्र कर लिया और तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की, जो बाद में आदि ब्रह्मोसमाज के रूप में परिवर्तित हो गई और इस प्रकार उन्होंने वह कार्य जारी रखा जो राममोहन राय ने शुरू किया था। उन्होंने एक तत्वबोधिनी पत्रिका और एक तत्वबोधिनी पाठशाला की भी स्थापना की।

पिता ने, अपनी नापसंदी के बावजूद, कोई बाधा नहीं डाली और यह आशा करके कि बेटे का यह धार्मिक उन्माद क्षण-स्थायी सिद्ध होगा, उन्हें इस दिशा में बढ़ने की पूरी आजादी दे दी। संभव है कि अपने हृदय के किसी अंतरंग कोने में उन्हें यह देख कर प्रसन्नता हो रही हो और गर्व भी कि उनका पुत्र उनके प्रिय मित्र और गुरू राममोहन राय के उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ रहा था और उनका कार्य पूरा कर रहा था। किन्तु साथ ही उन्हें इस बात से निराशा भी कम नहीं रही होगी कि जब उनके विभिन्न व्यवसाय और उद्योग, उत्तरदायित्व और व्यापारिक समझौते तेजी से बढ़ते जा रहे थे, उनका बड़ा बेटा, जिसे उनका दाहिनां हाथ बनना चाहिए

था, वह उनका भार बंटाने के लिए उपलब्ध नहीं था। केवल इतना ही नहीं था कि देवेन्द्रनाथ भौतिक महत्वाकांक्षाओं के प्रति उदासीन थे, बल्कि उनमें अपने पिता की व्यवसाय-बुद्धि, गहरी समझ और सक्रियता की भी कमी थी और उनमें इतने बड़े व्यावसायिक साम्राज्य का प्रबंध संभालने की क्षमता नजर नहीं आती थी। उनके अंदर लोगों के साथ स्वच्छन्द और मैत्रीपूर्ण भाव से मिलने-जुलने, व्यापारी-वर्ग और सरकारी क्षेत्रों की सद्‌भावना और विश्वास प्राप्त करने की न तो क्षमता थी और न प्रवृत्ति ही, जो संसार में सफलता पाने के लिए अनिवार्य गुण हैं। एक बार जब द्वारकानाथ ने लार्ड ऑकलैण्ड और उनकी बहन को एक शानदार पार्टी में दावत दी थी और जब कलकत्ते का लगभग सारा भद्र-लोक वहां उपस्थित था, उन्होंने देवेन्द्रनाथ को विशेष रूप से आदेश दिया था कि वे मेहमानों की देखभाल करें। लेकिन देवेन्द्रनाथ वहां से गायब हो गये थे। जब द्वारकानाथ ने पूछा कि उनका पुत्र कहां है, तो उन्हें सूचित किया गया कि वे तत्वबोधिनी सभा की बैठक में होने वाले विचार-विमर्श का संचालन कर रहे थे। द्वारकानाथ ने कुछ नहीं कहा और न बाद में ही अपने पुत्र को डांटा-फटकारा, लेकिन कहा जाता है कि उन्होंने पंडित रामचन्द्र विद्यावागीश के प्रति अपनी नाराजगी जाहिर की थी, जिन्हें आरंभ में राममोहन राय ने ब्रह्मोसमाज का मुख्य पुजारी नियुक्त किया था और जिन्हें द्वारकानाथ ने राजा की मृत्यु के बाद अपने यहां रख छोड़ा था और जिन्हें देवेन्द्रनाथ ने तत्वबोधिनी सभा और पुर्नगठित ब्रह्मोसमाज में अपना सहयोगी बना लिया था। द्वारकानाथ ने कहा था (जैसा कि महर्षि ने अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है) : 'मैं हमेशा यही सोचता था कि विद्यावागीश एक भला आदमी है, लेकिन अब देखता हूं कि वह देवेन्द्र को ब्रह्मो-मंत्र सिखा कर खराब कर रहा है। वैसे भी उसमें व्यवसाय-बुद्धि बहुत कम है; और अब वह बिज़नेस की बिल्कुल ही उपेक्षा करने लगा है; सारे दिन ब्रह्म, ब्रह्म करने के अलावा और कुछ करता ही नहीं।'

द्वारकानाथ की पार्टियों में फ्रांसीसी और यूरोपियन शराबों का उपभोग, जो पानी की तरह बहती थीं, आजकल की अपेक्षा कहीं ज्यादा मात्रा में होता था। इस बात का अनुमान उन दिनों के दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में विभिन्न जहाजों द्वारा पहुंचने वाले शराब के ताजे क्रेटों (टोकरों) के बारे में मुखपृष्ठ पर प्रकाशित खबरों से लगाया जा सकता है। शराब की सब से बड़ी आयातक कार, टैगोर एण्ड कं० थी। लेकिन द्वारकानाथ अपनी ज़रूरत की शराब (जिसकी मात्रा उनकी शानदार पार्टियों को देखते बहुत अधिक थी) सीधे अपनी कम्पनी से कटौती पर नहीं ख़रीदते थे। इसकी बजाय शराब के व्यापार में यूरोपियनों की इजारेदारी समाप्त करने और अपने देशवासियों को इस लाभदायक व्यापार में प्रोत्साहन देने के उद्‌देश्य से उन्होंने अपने एक बंगाली आश्रित को धर्मतल्ला स्ट्रीट में शराब की एक दुकान खुलवा दी थी और अपनी जरूरत की सारी शराब वहां से ही खरीदते थे।

इसकी एक दिलचस्प उत्तरकथा प्रसिद्ध है। द्वारकानाथ के 'लम्पट' और 'दुराचारी' जीवन और बेलगछिया की पार्टियों में होने वाली मद्यपान की उच्छृंखलताओं और दूसरे किस्म की विधर्मी रंगरलियों के बारे में अश्लील और फुहड़ अफवाहें कलकत्ते में फैलने लगी थीं। क्षितीन्द्रनाथ ने लिखा है कि एक बार मैंने यह मामला श्रेद्धय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सामने उठाया था। उन्होंने तुरंत कहा : "मैं द्वारकानाथ को भली भांति जानता हूं। उनके विरूद्ध जो कुछ कहा जाता है, वह बिल्कुल झूठी निन्दा है। सच तो यह है कि यह देख कर कि कलकत्ते में शराब की खरीद उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और इसका सारा मुनाफा यूरोपियन व्यापारियों को जाता है, वह चाहते थे कि इसमें उनके देशवासियों का भी हिस्सा हो। इसलिए उन्होंने अपने आश्रित विश्वनाथ लाहा को फुटकर शराब की दुकान के मालिक के रूप में स्थापित कर दिया।"

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उन्नीसवीं सदी के बंगाल के सबसे ऊंची कोटि के बौद्धिक और नैतिक महापुरूषों में से एक थे, जिनके बारे में बाद में कहा गया कि वे केवल विद्यासागर ही नहीं थे, बल्कि दयासागर भी थे। द्वारकानाथ अपने 'चरित्रहीन आचरण' के बारे में ईर्ष्यावश अफवाहें फैलाने वाले निन्दकों के बावजूद, विद्यासागर और अपने वरिष्ठ साथी राममोहन राय का – जो दोनों अपने युग के महानतम नैतिक पुरूष थे – आदर और स्नेह प्राप्त कर सके थे – यह बात ही द्वारकानाथ के शालीन और उदात्त चरित्र का प्रमाण है। कहा जाता है कि विद्यासागर ने एक बार द्वारकानाथ की जीवनी लिखने की इच्छा प्रकट की थी।[28] खेद है कि वे ऐसा नहीं कर सके।

इस बात को सभी जानते थे और समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में इसका रिकार्ड भी सुरक्षित है कि उस समय के अनेक धनी-मानी रूढ़िवादी हिन्दू दुर्गा-पूजा के अपने उत्सवों में यूरोपियनों को निमंत्रित करने में एक-दूसरे की होड़ लगाते थे और इन मौकों पर उन्हें मांस और शराब दोनों पेश किए जाते थे। लेकिन उनके बारे में गंदे गीत या तुक्तक प्रचारित नहीं किए जाते थे। अगर द्वारकानाथ को ही इनका निशाना बनाया जाता था तो अनुमानतः इसका कारण यह है कि वे सभी उदार सामाजिक उद्देश्यों का खुल कर समर्थन करते थे और हर प्रकार की धार्मिक कट्टरता का मजाक उड़ाते थे, जिससे कुछ लोग उनसे चिढ़ते थे। उनकी और भी कठोर निन्दा की जाती अगर वे नारी-शिक्षा को प्रोत्साहन देने में सफल होते, जैसा कि अपनी पहली विदेश-यात्रा से लौटने के बाद करने का उनका इरादा था। उन्होंने दरअसल कैथोलिक आर्कबिशप फादर कैग्यू को पत्र भी लिखा था कि वे अपने खर्च पर और यूरोपियन महिला शिक्षकों की देख-रेख में लड़कियों का एक स्कूल खोलना चाहते हैं, और उन्होंने आर्कबिशप से प्रार्थना की थी कि वे उपयुक्त महिला शिक्षकों को चुनने में उनकी मदद करें। लेकिन किसी कारण से यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हो सका।

यद्यपि उनकी अपनी शिक्षा प्रारंभिक स्तर तक ही थी, द्वारकानाथ जीवनपर्यन्त लोगों की शिक्षा के मामले में सक्रिय दिलचस्पी लेते रहे। चेक भाषा के एक समाचारपत्र, **चेस्का व्सेला** ने 1845 में राममोहन राय और द्वारकानाथ द्वारा चलाये भारत में शिक्षा संबंधी सुधार आंदोलन की रिपोर्ट प्रकाशित की थी : 'एक राष्ट्र की सुख-समृद्धि शिक्षा के विकास पर निर्भर करती है। चाहे हमारी अपनी शिक्षा ऊंचे स्तर की हो, लेकिन हमें उस देश के इन सपूतों से अपने पड़ोसियों और अपनी मातृभूमि के प्रति उदात्त प्रेम के बारे में सीखना चाहिए। वह देश सुखी है, जिसके यहां अपने द्वारकानाथ हैं।'[29]

द्वारकानाथ ने 1835 में कलकत्ता मेडिकल कालेज की स्थापना में सक्रिय दिलचस्पी ली, जो भारत में अपने किस्म का पहला कालेज था। बंगाल में प्रसिडेन्सी ऑफ फोर्ट विलियम की जनरल कमेटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन ने 1835 की सालाना रिपोर्ट में लिखा : 'बाबू द्वारकानाथ टैगोर ने नये स्थापित मेडिकल कालेज के योग्य विद्यार्थियों को कीमती पुरस्कार प्रदान किए।'[30] द्वारकानाथ जानते थे कि रूढ़िवादी हिन्दू परिवारों के नौजवान अपनी जात से च्युत होने के डर से, क्योंकि उन्हें वहां मुर्दा लाशों की चीरफाड़ करनी पड़ेगी, मेडिकल कालेज में भरती होने से हिचकिचायेंगे। उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने विद्यार्थियों को वजीफा देने के लिए 2000 रु० की रकम प्रतिवर्ष चन्दे के रूप में देने की घोषणा की और निश्चय किया कि आरंभ में वे स्वयं मुर्दों के विच्छेदन-गृह में मौजूद रहेंगे ताकि विद्यार्थी विच्छेदन के प्रति हिन्दुओं की जुगुप्सा पर काबू पा सकें।[31]

1844 में अपनी दूसरी यूरोप-यात्रा पर जाने से पहले द्वारकानाथ ने कालेज के दो विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए लंदन ले जाने और उनकी यात्रा और वहां रहने का पूरा खर्च उठाने का प्रस्ताव किया। सरकार और जनता ने इस वदान्य प्रस्ताव का हार्दिक स्वागत किया और रूढ़िवादी पुजारी-पुरोहितों के आक्रोश की परवाह न करके तीन प्रखर विद्यार्थियों – भोलानाथ बोस, सूर्यकान्त चक्रवर्ती और द्वारकानाथ बोस ने जाने के लिए अपने को पेश किया। उनके शिक्षक, प्रो० गूडेव ने, जो स्वयं इंगलैंड जा रहे थे, उनमें से एक का खर्च उठाने का वायदा किया। एक चौथा विद्यार्थी, गोपालचन्द्र सील भी जाने के लिए उत्सुक था, इसलिए लोगों से चन्दा करके उसके लिए रुपया जमा किया गया। बंगाल के नवाब निजाम ने इसमें 4000/- रु० दिये। चारों विद्यार्थी द्वारकानाथ और गूडेव के साथ गये और लंदन विश्वविद्यालय में उन्हें दाखिला मिल गया। दो साल बाद उन्हें कालेज ऑफ सर्जन्स का डिप्लोमा दिया गया। उनमें से तीन को लन्दन विश्वविद्यालय की एम०डी० की डिग्री भी प्रदान की गई।

24 मार्च, 1846 के **लंदन मेल** से उद्धरण देते हुए 7 मई के **फ्रेंड ऑफ इण्डिया** ने लिखा : 'हिन्दोस्तान में शिक्षा प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि कुछ महीने पहले लंदन यूनिवर्सिटी में डा० गूडेव की आम देखरेख में मेडिकल शिक्षा

प्राप्त करने के लिए जो चार देसी विद्यार्थी आये थे वे अपने अध्ययन में संतोषजनक प्रगति कर रहे हैं। उन सबने अपनी योग्यता और लगन के लिए विभिन्न प्रोफेसरों से सर्वोच्च प्रशंसा और साक्षी प्राप्त की है और उनमें से दो को विशिष्ट पुरस्कार के योग्य समझा गया है। पिछले अगस्त में भोलानाथ बोस ने वनस्पति-शास्त्र में तीसरा पुरस्कार प्राप्त किया, और हाल में तुलनात्मक शरीर-रचना विज्ञान की परीक्षा में सोने का पदक सोजी कोमर चकरबट्टी (अलग-अलग रिपोर्टें इन नामों के भिन्न-भिन्न हिज्जे करती हैं) को दिया गया, जो अपने क्लास का सबसे बड़ा पुरस्कार है।'

लंदन में द्वारकानाथ की अकल मृत्यु के सात सप्ताह बाद **हरकारू** ने 23 सितंबर, 1846 के सम्पादकीय में लिखा : 'हमारा विश्वास है कि द्वारकानाथ यह देखने के लिए ही जिन्दा रहे कि जिस महान प्रयोग के वे मुख्य प्रेरक और समर्थक थे, और जिसे उनके परोपकारी और सच्ची देशभक्ति से ओतप्रोत महान जीवन का समापन करने वाला सर्वोच्च कार्य कह सकते हैं, उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई थी। अंतिम डाक से हमें सूचना प्राप्त हुई है कि कलकत्ते के चार मेडिकल विद्यार्थियों में से तीन को, जिन्हें द्वारकानाथ के सुझाव पर इंगलैंड भेजा गया था और उनमें से जिन दो का पूरा खर्च उन्होंने खुद दिया था, रॉयल कालेज ऑफ सर्जन्स की सदस्यता का डिप्लोमा दिया गया है। ये तीनों जौजवान, भोलानाथ बोस, द्वारकानाथ बोस और गोपाल चन्दर सील अपनी परीक्षा में इतने अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुए हैं कि परीक्षकों के बोर्ड ने विशेष रूप से उनकी सराहना की है। चौथा विद्यार्थी, सूरजकुमार चक्करबट्टी, अपनी किशोरावस्था के कारण, अभी डिप्लोमा पाने का हकदार नहीं बन पाया, लेकिन उसने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करके दिखा दिया है कि वह किसी से कम नहीं है। याद रहे कि प्राणि-विज्ञान में अपनी प्रवीणता के लिए वह एक पदक प्राप्त कर चुका है, विज्ञान की इस शाखा में उसकी उपलब्धि इतनी महान थी कि आम तौर पर दिये जाने वाले रजत पदक की जगह उसे सोने का पदक दिया गया। ये तथ्य उन लोगों की विवेक-बुद्धि का परिचय देते हैं, जिन्होंने अनेक विद्यार्थियों में से इन चार नौजवानों को इंगलैंड में शिक्षा पाने के लिए चुना था और साथ ही खुद उन नौजवानों की क्षमताओं और उनके शिक्षकों की सफलता का भी सबूत हैं।' सम्पादकीय ने विद्यार्थियों की ओर से वकालत करते हुए आगे लिखा कि आशा है कि 'लौटने पर उन्हें उपयुक्त दरजे की नौकरी में काम दिया जायगा।' ये चार नौजवान भारत के प्रथम एफ०आर०सी०एस० और एम०डी०कोटी के डाक्टर थे।

1835 में ही, जिस साल सरकार ने मेडिकल कालेज की स्थापना की थी, 18 जून को कलकत्ते के टाऊन हॉल में एक सभा हुई थी, जिसमें द्वारकानाथ तथा अन्य प्रमुख यूरोपियन और भारतीय व्यक्तियों ने एक अस्पताल खोलने के लिए, जिसे आरंभ में फीवर हॉस्पिटल (बुखार का अस्पताल) का नाम दिया गया, चन्दा जमा

किया। दलदली भूमि पर निर्मित कलकत्ता शहर बहुत-सी बीमारियों, विशेषकर मलेरिया बुखार का शिकार था। उस समय तक शहर में गरीबों की देखभाल के लिए एक भी अस्पताल नहीं था। 19 जून 1835 के **बंगाल हरकारू** ने रिपोर्ट छापी कि पिछले दिन तीसरे पहर टाऊन हॉल की मीटिंग में द्वारकानाथ ने एक फीवर हॉस्पिटल कायम करने की जोरदार अपील की और सम्पन्न वर्ग के लोगों से ज्यादा से ज्यादा चन्दा देने का आग्रह किया। 'अगर यूरोपियन लोग चन्दा देते हैं तो यह मानवता की भावना का कार्य है – लेकिन हिन्दोस्तानियों के लिए तो यह उनके फर्ज का सवाल है।' तत्काल वहीं पर चन्दे की एक बड़ी राशि जमा की गई जिसमें द्वारकानाथ ने उदारतापूर्वक योगदान किया। यह फीवर हॉस्पिटल जो पल्टडंगा अस्पताल के नाम से भी जाना जाता था, आज के मेडिकल कालेज हॉस्पिटल का नाभि-केन्द्र था। यह मेडिकल कालेज से सटी जमीन के प्लॉट पर बना है, जो मोती लाल सील ने दान की थी। वर्तमान अस्पताल की आधार-शिला जब लार्ड डलहौजी ने सितंबर 1848 में रखी, उस समय द्वारकानाथ जिन्दा नहीं थे।[32] केवल यही एक सपना नहीं था, जिसकी पूर्ति वे अपनी आंखों से नहीं देख सके थे।

द्वारकानाथ कोढ़ियों के अस्पताल से भी संबंधित थे और उसका प्रबंध कमेटी के एक सदस्य थे, जैसे कि 2 जुलाई 1835 के **फ्रेंड ऑफ इण्डिया** में प्रकाशित एक रिपोर्ट से ज्ञात होता है।

1835 दर असल द्वारकानाथ के सार्वजनिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण साल था। 31 अगस्त को टाऊन हाल की एक मीटिंग में (जैसा कि 3 सितंबर 1835 के **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने रिपोर्ट किया है) एक प्रस्ताव द्वारा कलकत्ते में एक पब्लिक लाइब्रेरी ऑफ रिफरेंस एण्ड सर्क्युलेशन स्थापित करने का निर्णय किया गया। इस पुस्तकालय को, जो इससे अगले वर्ष स्थापित हुई थी, अधिकांशतः द्वारकानाथ से ही धन और पुस्तकों के रूप में अनुदान प्राप्त हुआ था। कलकत्ते की वर्तमान नेशनल लाइब्रेरी (राष्ट्रीय पुस्तकालय) के औपचारिक इतिहास में कहा गया है :

'प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर कलकत्ता पब्लिक लाइब्रेरी के प्रथम स्वामी बने थे। उनके संरक्षण की कृतज्ञतापूर्ण स्मृति में कलकत्ता के नागरिकों ने उनकी एक संगमरमरी आवक्ष-मूर्ति, जिसे मूर्तिकार वोकीज ने तराशा था, कलकत्ता पब्लिक लाइब्रेरी के प्रांगण में स्थापित की गई, जो आज भी बल्वेडियर में स्थित नेशनल लाइब्रेरी के द्वार मंडप को सुशोभित कर रहा है।[33]

उसी साल द्वारकानाथ को जस्टिस ऑफ दी पीस (शांति के न्यायमूर्ति) के रूप में नियुक्त किया गया। प्रसिद्ध बैरिस्टर राबर्ट कटलर फरगूसन के तत्वावधान में ब्रिटिश कानून और प्रेक्टिस का अध्ययन करने और अनेक अमीर जमींदारों के कानूनी सलाहकार का काम करते रहने के कारण द्वारकानाथ देश में न्याय की वास्तविक स्थिति से बखूबी परिचित थे। हालांकि उन्होंने अनेक अवसरों पर ब्रिटिश लोगों की न्याय भावना और पूर्ववर्ती हुकूमतों में सरकार के निरंकुश

आचरण को तुलना में अब साधारण भारतीय द्वारा अधिक सुरक्षा का अनुभव करने को भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, लेकिन वे इतने चतुर और पैनी दृष्टि वाले प्रेक्षक थे कि यह संभव ही नहीं कि वे इस बात से बेखबर रहे हों कि वास्तव में हर जगह, यहां तक कि कलकत्ता में भी अक्सर क्या-क्या नहीं होता। वे लार्ड ऑक्लैण्ड के व्यक्तिगत मित्र थे, जिनकी बहन एमिली ईडन ने उनसे ज़रूर वह बात कही होगी, जो उन्होंने एक पत्र में घर को लिखी थी :

'एक हिंस्र जंतु जैसा आदमी था, सड़कों का एक सुपरिन्टेन्डेंट। उसका घर लूट लिया गया था और उसको संदेह था कि जो सड़क बना रहे थे, उनमें से हो कुछ लोगों ने डाका डाला था। इसलिए उसने बांस का एक ढांचा खड़ा करवाया और उस पर इनमें से सोलह आदमियों को हाथ बांध कर लटका दिया। उनके पांव जमोन से उठे हुए थे। फिर उसने उनको कोड़े मारे, उनके पांवों के नीचे भूसा रख कर उसमें आग जला दी, तपती लोहे को सलाखों से उन्हें दागा और जलाया और उन्हें सोलह घंटों तक और कुछ को अठारह घंटों तक लटकता रहने दिया। एक आदमी की मुर्दा लाश नीचे उतारो गई, बाको बेहोश थे। यह प्रमाणित हो गया कि यह सारा कांड मि० — के हाते में हुआ था और उसने अपनो खाने की मेज़ बाहर मंगा ली थी और इन अभागों के सामने छै गज़ दूर बैठ कर उसने खाना खाया। उसने अपनी सफाई में सिर्फ इतना ही कहा कि उसने खुद अपने हाथों से उनको छुआ भी नहीं था। वह सिर्फ अपने ओवरसियर को आदेश देता रहा था। सर हेनरी सीटन ने कहा कि उसने जूरी के सामने अभियोग लगाते हुए केवल हत्या की संभावना की ओर संकेत किया था, क्योंकि फांसी की सज़ा इस देश में, इतनो भयंकर समझी जाती है कि उन्होंने सोचा कि इस आदमी को कम से कम हमेशा के लिए देश निकाला तो दिया ही जाय, लेकिन उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब जूरी ने 'अपराधी नहीं' का फैसला सुनाया। सर ई. रियान का, जो यहां कई वर्षों से हैं, कहना है कि निरपवाद रूप से यहां पर यह होता है कि निम्न वर्ग के यूरोपियन जूरी बनते हैं और वे हर ऐसे आदमो को रिहा कर देते हैं, जिस पर एक देसी आदमी की हत्या के लिए मुकदमा चलता है।'[34]

अगर कलकत्ता में न्याय और व्यवस्था के प्रशासन की यह दशा थो, जहां खुद गर्वनर जनरल रहता था, तो मुफस्सिल इलाकों में उसका क्या हाल रहा होगा, जहां कोई भी गोरा आदमी या छोटे से छोटा देसी अफ़सर भी कुछ भी करके बच सक़ता था, इसको कल्पना हो की जा सकती है। अपराध को जांच-पड़ताल के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार व्यक्ति दरोगा होता था, जाहिल, थोड़ी तनखाह पाने वाला और धौंसिया, जिसकी आमदनी का मुख्य जरिया था लोगों को डरा-धमका कर रिश्वत वसूल करना। अपराध को शिकायत मिलने पर उसको खुशी का ठिकाना नहीं रहता था। वह फौरन अपने सिपाहियों को लेकर अपराध के मौके पर जा धमकता था और संदिग्ध व्यक्तियों के घर और उनको औरतों तक की तलाशी लेने की

धमकी देता था। घर की औरतों को तंग करने की धमकी इतनी गंभीर समझी जाती थी कि बेचारा संदिग्ध व्यक्ति इस बेइज्ज़ती से बचने के लिए कितनी भी रिश्वत देने के लिए राजी हो जाता था। द्वारकानाथ कुछ दिनों से इस बात की मांग कर रहे थे कि भद्र-परिवारों के शिक्षित नौजवानों को भरती करके उन्हें डिप्टी मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त किया जाय। 1837 में सरकार ने मुफस्सिल पुलिस में सुधार करने के उद्देश्य से एक कमेटी नियुक्त की, जिसके चेयरमैन डब्ल्यू. बर्ड थे। अपनी गवाही में द्वारकानाथ ने तत्कालीन व्यवस्था की कठोर आलोचना की और मांग की कि मुफस्सिल ज़िलों में डिप्टी मजिस्ट्रेट का पद रखा जाय और शिक्षित व्यक्तियों को, चाहे वे यूरोपियन हों या भारतीय, किन्तु जो सर्वसाधारण की भाषा भली भांति जानते हों ताकि वे सीधे लोगों की शिकायतें सुन सकें और उनकी अर्ज़ियां स्थानीय भाषा में पढ़ सकें, इन पदों पर नियुक्त किया जाय। उनका सुझाव सरकार ने मंजूर कर लिया और जिन्हें इस पद पर नियुक्त किया गया उनमें से कई हिन्दू कालेज के प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। यह प्रयोग अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ और न केवल अपराधों में कमी हो गई, बल्कि न्याय-प्रशासन के अंदर भी एक स्वस्थ वातावरण पैदा हो गया। इन शिक्षित नौजवान मजिस्ट्रेटों की सरपरस्ती और अगुआई में अनेक स्कूल, डिस्पेन्सरियां, और लाइब्रेरियां भी मुफस्सिल नगरों में खोली गयीं।

लेकिन तथाकथित 'काले कानून' की निन्दा करने में यूरोपियन नागरिक सम्प्रदाय का साथ देकर द्वारकानाथ ने जो भूमिका अदा की थी, वह उनके गौरव के अनुकूल न थी। यह 'काला कानून' लेजिस्लेटिव कौंसिल द्वारा पास अधिनियम XI था, जिसने मुफस्सिल न्यायालयों द्वारा किए गये फैसलों के विरूद्ध अंग्रेजी न्यायालयों में अपील करने का जो विशेषाधिकार अंग्रेजों को प्राप्त था, उसे रद्द कर दिया था। दूसरे शब्दों में, इस अधिनियम ने अंग्रेजों और भारतीयों को कानून की नजर में बराबर बना दिया था। स्वाभाविक था कि सारे यूरोपियन एक ऐसे अधिनियम के विरुद्ध उठ खड़े होते जो उनके साथ पक्षपात करने वाले विशेषाधिकार से उन्हें वंचित करता हो, और इसलिए कलकत्ता के शैरिफ ने 18 जून 1836 को टाऊन हाल में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स और बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल से इस अधिनियम को अस्वीकार करने की मांग करने के लिए' एक सार्वजनिक सभा बुलाई।[35] बेरिस्टर टर्टन द्वारा पेश किए गये प्रस्ताव का समर्थन करते हुए द्वारकानाथ ने एक जोरदार भाषण में मुफ़स्सिल की कचहरियों में न्याय की भ्रष्ट और अयोग्य व्यवस्था की तुलना में कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट की ईमानदारी और निष्पक्षता की सराहना की और फिर अपनी वाक्-पटुता के जोश में बहते हुए उन्होंने कहा :

'हमसे कहा गया है कि सरकार अंग्रेजों को देसी लोगों के बराबर लाना चाहती है। लेकिन व्यवहार में वह बराबरी का कौन-सा रूप लागू करना चाहती है? देसी लोग अब तक गुलाम थे, तो क्या अब अंग्रेजों को भी गुलाम बनाया जायेगा?

सरकार कुछ ऐसी ही बराबरी स्थापित करना चाहती है। देसी लोगों के पास जो भी था, वह तो उसने पहले ही छीन लिया, उनकी ज़िंदगी, आज़ादी, दौलत, जायदाद और आज सब लोग सरकार के रहमोकरम पर निर्भर हैं, और अब सरकार देश के अंग्रेज बाशिंदों को भी उसी बदतर हालत में ले आना चाहती है। सरकार देसी लोगों को तो यूरोपियन लोगों के स्तर तक नहीं उठाना चाहती, बल्कि वह यूरोपियनों को देसी लोगों की हालत में लाने के लिए उन्हें नीचे गिराना चाहती है।' (हियर! हियर!)

किशोरी चन्द मित्रा की टिप्पणी, जो वैसे तो द्वारकानाथ के प्रशंसक जीवनीकार थे, उल्लेखनीय है : 'इस भाषण पर जोर की तालियां पिटीं। इसमें संदेह नहीं कि मुफस्सिल अदालतों और उनके कामकाज के तरीकों की इस भाषण में सही-सही तस्वीर पेश की गई थी। उनके जमाने में अदालतें इतनी खराब थीं, जितनी हो सकती हैं। वे न्याय के समदर्शी मंदिरों की बजाय अन्याय और पक्षपात का अड्डा बनी हुई थीं। व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने वाले शरण-स्थानों की बजाय वे एक ऐसी नीलामी हाट बन गयी थीं, जहां अदालती फैसले सबसे ऊंची बोली बोलने वाले को बेचे जाते थे। अदालतों के कामकाज के ढंगों की अंतरंग जानकारी और जजों की जहालत और अमले के भ्रष्टाचार के कारण उठाये नुकसानों की कटुता से क्षुब्ध द्वारकानाथ ने खुले आम निर्भीकतापूर्वक उनकी निन्दा की। लेकिन हमें आश्चर्य इस बात पर है कि इतने बुद्धिमान और विवेकशील होने के बावजूद उन्होंने जिस कानून का विरोध किया उसके अंदर निहित न्याय और विवेक के सिद्धांत को वे क्यों नहीं समझ पाये। वह सिद्धांत यह है कि हर अपराधी व्यक्ति के लिए कानून पूर्णतः समान होगा, सजाएं भी समान होंगी, प्रशासन की व्यवस्था भी समान होगी, और न्यायालय भी समान होंगे। अंग्रेजों को साधारण मुफ़स्सिल अदालतों की अधिकार-सीमा से छूट देने की बात अपने आप में असंवैधानिक है, सिद्धांततः अन्यायपूर्ण है और व्यवहार में अक्सर अत्याचारपूर्ण है।' (संस्मरण, पृ० 58)

गवर्नर जनरल की सुप्रीम कौंसिल के विधि-सदस्य और तथाकथित 'काले कानून' के जनक, टामस बेबिंग्टन मैकाले ने जो खुला पत्र लिखा था, (और जो 17 नवंबर 1838 के **हरकारू** में प्रकाशित हुआ था) उसके कुछ अंश भी यहां पर उद्धृत करना कम प्रासंगिक नहीं होगा : 'सबसे पहले, मेरा विचार है कि इससे ज़्यादा खतरनाक और बेहूदा बात कोई नहीं हो सकती कि चूंकि एक प्रकार के कर्मचारी भ्रष्ट हैं, इसलिए उनकी अधिकार-सीमा से एक छोटे-से वर्ग के लोगों को मुक्त कर दिया जाय, जो अपनी निर्भीकता के लिए और अत्याचार और धोखाधड़ी से नफ़रत करने के लिए मशहूर हैं और जो न्याय का शुद्ध रूप में पालन करने के आदी हैं और जो सत्ता की नाराज़गी की जरा भी परवाह नहीं करते और जो यह महसूस करते ही कि उनके साथ ज्यादती की गई है, फौरन शिकायत करते हैं और यह

निश्चित है कि जिनकी शिकायतें फौरन सुनी भी जाती हैं। ऐसा छोटा-सा वर्ग तो मुफस्सिल में बसे अंग्रेज़ों का वर्ग है। उन्हें स्थानीय अदालतों की अधिकार-सीमा से छूट देना और उस अधिकार-सीमा के अंतर्गत एक विशाल आबादी को रखना, ऐसी आबादी को जो कमजोर और डरपोक है, हर लुटेरे और आततायी के जुल्मों की असहाय शिकार है, हर निरंकुश अत्याचारी की गुलाम है। ...कम्पनी की अदालतों में निस्संदेह अनेक बुराईयां और भ्रष्टताएं हैं; इसलिए, मैं अंग्रेज उपनिवेशकों के अंदर देसी लोगों के साथ मिल कर इन बुराइयों का भंडाफोड़ करने में एक सामान्य हित का अहसास पैदा करना चाहता हूं।'

द्वारकानाथ को मिदनापुर और हिद्‌जली की मुफस्सिल अदालत के जज अबरक्राम्बी डिक से भी एक सही फटकार सुननी पड़ी, जिसने 1 दिसंबर 1838 के **इंगलिशमैन** में एक लंबा पत्र लिखा था : 'बाबू द्वारकानाथ ने अपने भाषण में उन भावनाओं को अभिव्यक्ति दी, जिन्होंने उन्हें बंगाल के यूरोपियन सम्प्रदाय का समर्थन करने की प्रेरणा दी। यह बात अत्यंत प्रशंसनीय और उदारतापूर्ण थी। लेकिन क्या अपने देशवासियों की हद से ज्यादा निन्दा करना भी, जिसके लिए उन्होंने एक भी सबूत नहीं पेश किया, उतनी ही उदारतापूर्ण बात थी?'

इस आरोप का तीर निशाने पर बैठा और द्वारकानाथ ने 6 दिसंबर 1838 के एक पत्र में, जो **इंगलिशमैन** में ही प्रकाशित हुआ, इसका उत्तर दिया। उन्होंने सफाई दी कि मुफस्सिल में रहने वाले अपने देशवासियों की निन्दा उन्होंने सत्य के प्रति अपने प्रेम और सार्वजनिक कर्तव्य के प्रति अपनी लगन से प्रेरित होकर की थी। 'अपने देशवासियों की जो पीढ़ी मेरी दृष्टि में मेरा महान उद्‌देश्य है, उसका उत्थान, मैं निश्चित रूप से जानता हूं, तभी संभव है, जब गंभीरतापूर्वक, और निडर भाव से उसकी खामियों का पर्दाफाश किया जाय, उन स्रोतों को उघाड़ कर सामने रखा जाय जहां से उन खामियों की शुरूआत हुई है और उन उपायों की ओर संकेत किया जाय जो इन खामियों को दूर करने में सबसे ज्यादा कारगर हो सकते हैं। टाऊन हाल में मैंने जो कुछ कहा था, और जिसे मैं इससे पहले पुलिस कमेटी के सामने और भी विस्तार से कह चुका था, और जिसे मैं अपनी सुचिन्तित और निश्चित धारणा के रूप में फिर भी दुहरा सकता हूं, और अगर मि० डिक चाहते हैं कि मैं स्पष्ट शब्दों में बताऊं कि मेरी दृष्टि में देसी लोगों में कौन-सी खास कमजोरियां हैं, तो मेरा उत्तर है कि ये कमजोरियां हैं—सत्य की कमी, ईमानदारी की कमी और स्वच्छंदता की कमी।' उन्होंने आगे कहा कि ये खामियां भारतीय चरित्र में अंतर्निहित नहीं हैं, बल्कि मुस्लिम विजय और सदियों से चले आने वाले 'जाहिल, असहिष्णु, और स्वेच्छाचारी सैन्य शक्ति के कुशासन का अनिवार्य परिणाम हैं... पराधीन लोग अपने शस्त्रों और स्वतंत्रता के बल पर अपनी जीवन-रक्षा करने में असमर्थ हो जाने के बाद दयनीय परवशता, धोखेबाजी और छल-कपट के गर्त में जा गिरे।' इस प्रकार भारत की दुर्दशा और चारित्रिक ह्रास का सारा दोष मुस्लिम शासन की

अधीनता के मत्थे मढ़ कर उन्होंने आशा प्रकट की कि अंग्रेजी शासन की अधीनता, और नयी शिक्षा और अन्य प्रगतिशील कानूनों का सूत्रपात होने से भिन्न और लाभकारी परिणाम निकलेंगे।

यह आस्था, जो आज के दिन एक भोली दास्य-भावना जैसी लगती है, वह उन्नीसवीं सदी में केवल भद्र-वर्ग के शिक्षित लोगों में ही नहीं, बल्कि साधारण जनों के अधिकांश लोगों में भी पायी जाती थी, जो अंग्रेज शासकों को **माई-बाप** समझते थे।

प्रसिद्ध इतिहासकार आर०सी० मजूमदार के शब्दों में : 'राजनीतिक नेताओं की पुरानी पीढ़ी के अंदर, जो अधिकतर राजा राममोहन राय के सहयोगी थे, ब्रिटिश सरकार में अटूट आस्था थी। प्रसन्नकुमार टैगोर ने इस संबंध में लिखा है, "अगर हमसे पूछा जाता कि आप कौन-सी सरकार पसंद करेंगे, ब्रिटिश या कोई और, तो हम सभी यही उत्तर देते कि निश्चय ही ब्रिटिश सरकार, हां, हिन्दू सरकार की तुलना में भी।" द्वारकानाथ टैगोर ने भी अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा था कि "इंगलैंड के साथ संबंध जुड़ा रहने में ही भारत के हितों की सर्वोत्तम रक्षा हो सकती है।" **हिन्दू पैट्रियट** और '**बंगाली**' के संस्थापक और सम्पादक गिरीशचन्द्र घोष का मत था कि शिक्षित भारतीय अभी इस योग्य नहीं बने कि देश के शासन का भार अपने कंधों पर उठा सकें। "ब्रिटिश शासन का तख्ता उलटने के बाद – अगर उनमें ऐसा करने की शक्ति हो – वे किसी दूसरे, और शायद अधिक भारी, विदेशी जूए में अपनी गर्दन फंसाने की ही तैयारी करेंगे।"[36] यही भावना दादाभाई नौरोजी ने 26 अगस्त 1852 को बंबई में एल्फिंस्टन इंस्टीट्यूशन में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में दोहराई थी। दादाभाई नौरोजी उन दिनों एल्फिंस्टन कालेज में प्राध्यापक थे और 'बंबई की युवा पार्टी के उदीयमान सितारे थे।' उन्होंने कहा : 'ब्रिटिश सरकार के तहत हम जुल्म के बहुत ज्यादा शिकार नहीं हैं। हम इस रहमदिल सरकार के अधीन अपेक्षया कहीं ज्यादा सुखी हैं, जितने कि हम किसी और सरकार के अधीन हो सकते हैं।'[37]

यह आस्था कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक साझीदार बन सकता है, द्वारकानाथ के उस महान उत्साह और उल्लास का भी कारण थी, जिसे लेकर उन्होंने व्यावसायिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अनेक उद्यम और संस्थाएं स्थापित करने में पेशकश की थी। वे आधुनिक भारत में यद्यपि नये उद्योगों के युग के हरकारे थे और स्वयं भी प्रमुख उद्योगपतियों में से थे, लेकिन जिस समाज में उनका पोषण हुआ था, उसकी रीढ़ ज़मीन के मालिकों का अभिजातवर्ग था। उस समय दूसरा और कोई वर्ग नहीं था, जिसका शासकों और सर्वसाधारण दोनों पर इतना अधिक प्रभाव रहा हो, और जो सार्वजनिक संगठन का रूप ग्रहण कर सकता हो। मित्रा ने लिखा है कि 'द्वारकानाथ उन पहले लोगों में से थे जिन्होंने अभिजात वर्ग के प्रभाव को और उस प्रभाव को देश में अच्छी सरकारी व्यवस्था

कायम करने के लिए इस्तेमाल करने का महत्व आंका था। इस उद्देश्य को सामने रख कर अप्रैल 1838 में लैण्ड होल्डर्स सोसाइटी (ज़मींदार समिति) की स्थापना की, जिसकी बैठकें उनकी कोठी से लगे घर में होती थीं।'[38] 22 मार्च 1838 के अंक में **फ्रंड ऑफ इण्डिया** ने रिपोर्ट प्रकाशित की कि 'एक सोसाइटी की स्थापना करने के उद्देश्य से जो उनके हितों की रक्षा के लिए कारगर कदम उठा सके, कल तीसरे पहर टाऊन हॉल में देसी तथा यूरोपीय जमींदारों की एक मीटिंग हुई। राजा राधाकान्त देव ने उसका सभापतित्व किया। (किसी कारण से उपस्थिति सज्जनों की सूची में द्वारकानाथ का नाम नहीं था।) इस सोसाइटी की स्थापना का स्वागत करते हुए 20 मार्च, 1838 के **इंगलिशमैन** ने टिप्पणी की : 'आखिरकार **हिन्दुओं** ने इस रहस्य का पता लगा लिया है कि **संगठन ही शक्ति है**। इस संगठन को हम एक राजनीतिक संगठन के रूप में देखते हैं, जिसे एक व्यापक और उदार आधार पर कायम किया गया है, इसमें हर कौम के ज़मींदार शामिल होंगे, अंग्रेज, मुसलमान, ईसाई और हिन्दू।'

वास्तव में यह भारत का सबसे पहला राजनीतिक संगठन था, जो संवेधानिक ढंग से लोगों या उनके एक वर्ग की, जो अधिक मुखर था, शिकायतें पेश करने के उद्देश्य से बनाया गया था। बाद में चल कर इसमें से ही ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन का विकास हुआ जो इण्डियन नेशनल कांग्रेस का पूर्वगामी था।

द्वारकानाथ को राजनीतिक शिक्षा सबसे पहले राममोहन राय से प्राप्त हुई थी, जब वे प्रेस सेंसरशिप के विरुद्ध और पूरी व्यवस्था लागू करने के समर्थन में राममोहन राय द्वारा चलाये अभियान में शामिल हुए थे। उन्होंने मिल कर इस चीज की नींव डाली, जो बाद में 'वफादार प्रतिपक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसकी परंपरा भारतीय राजनीतिक आंदोलन पर कई दशकों तक हावी रही। ज़मींदार-सोसाइटी उस समय के समाज के सबसे प्रबल वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसमें जाति और धर्म के भेद का कोई विचार नहीं था। इसके नेताओं में रूढ़िवादी हिन्दू सम्प्रदाय के राजा राधाकान्त देब और विद्रोही हिन्दू द्वारकानाथ और प्रसन्नकुमार टैगोर और गैर-सरकारी यूरोपियन सम्प्रदाय के थियोडोर डिकेन्स, जार्ज प्रिन्सेप आदि लोग थे।

ज़मींदार सोसाइटी का मुख्य उद्देश्य चूंकि जमींदारों के हितों की रक्षा करना था, इसलिए उसका मुख्य कार्यक्रम कर-मुक्त जमीनों या काश्त को वापस लेने की सरकारी नीति के विरूद्ध आंदोलन करना था। 22 मार्च 1838 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** को यह उद्देश्य अत्यंत स्वार्थपरक नज़र आया और उसने लिखा : 'बहुत दिनों से देश की प्रचलित धारणा यह है कि रैयत के पास जमींदारों के विरूद्ध शिकायत करने के बहुत ज्यादा कारण हैं, जितने कारण ज़मींदारों के पास सरकार के विरूद्ध शिकायत के नहीं हैं। आशा की जाती है कि चूंकि अब जमींदार अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिए संगठित हो गये हैं, वे ईमानदारी से उन शिकायतों को भी दूर

करने की कोशिश करेंगे जिनसे उनके काश्तकार पीड़ित हैं।'

यह आरोप द्वारकानाथ के मन में खटकता रहा। जब 30 नवंबर, 1839 को बैरिस्टर डिकेंस के सभापतित्व में कर-मुक्त जमीनों को वापस लेने के विरूद्ध इंगलैंड में सरकार को आवेदन-पत्र भेजने के लिए टाऊन हाल में एक विशाल सभा हुई तो द्वारकानाथ ने बड़े जोशोखरोश से स्वार्थपरकता के आरोप का खंडन करते हुए बताया कि न तो उनके पास और न डिकेन्स या सोसाइटी के अधिकांश सदस्यों के पास ज़रा भी कर-मुक्त जमीन थी। उन्होंने कहा : 'तो फ़िर मैं पूछता हूं कि जमीनें वापस लेने के सवाल पर आंदोलन करने में हम स्वार्थी क्योंकर कहे जा सकते हैं? क्या हम अपने लिए आंदोलन कर रहे हैं या आम लोगों की खातिर इस सवाल पर आवाज उठा रहे हैं?'[39] उन्होंने ब्यौरेवार बताया कि सरकार इस नीति को जिस ढंग से लागू कर रही है, उससे कितना गंभीर अन्याय हो रहा है। इसके अलावा सोसाइटी मात्र ज़मीनों की वापसी के सवाल में ही तो दिलचस्पी नहीं रखती। उसने अदालतों में स्थानीय भाषाओं के इस्तेमाल का सवाल, मुकदमें के दौरान ग़रीब गवाहों को भत्ता देने का सवाल, सरकारी दस्तावेजों पर लगने वाली टिकट-ड्यूटी में कमी करने का सवाल आदि भी तो उठाये हैं।

फ्रंड ऑफ इण्डिया के 19 दिसम्बर 1839 के सम्पादकीय ने द्वारकानाथ के व्यक्तिगत गुणों को सराहते हुए और साथ ही कर-मुक्त ज़मीनों की वापसी के विरूद्ध सोसाइटी द्वारा चलाये अभियान के प्रति अपने विरोध को दोहराते हुए लिखा : 'हम खुशी से द्वारकानाथ टैगोर की सद्भावना से वंचित नहीं होना चाहते, कम से कम वे जो कार्य कर रहे हैं उस पर स्वार्थपरता का आरोप लगा कर तो नहीं ही। हम उस श्रेष्ठ अवसर को नहीं भूले जब उनका नाम दया-करूणा के उस महान कार्य के साथ संबद्ध हुआ था, जिसने ब्रिटिश शासन को गौरव प्रदान किया है। और न वे ही इस बात को भूलेंगे कि जब सती-प्रथा बंद करने का वे समर्थन कर रहे थे, उस समय रूढ़िवादी पार्टी ने उनके विरूद्ध कितनी हाय-तोबा मचाई थी, और हमने आगे बढ़ कर निर्भीकतापूर्वक उनका साथ दिया था। और न ही कलकत्ता के 'गरीब जनों के लिए किए गये उनके राजसी उपकारों और उनकी दरियादिली को आम जनता भूल सकती है।' यह स्वीकार करते हुए कि 'ऐसी स्वार्थपरता भी हो सकती है, जिसमें नीचता न हो,' सम्पादकीय ने फिर दोहराया कि 'हर ऐसी मांग, जिसमें विशिष्ट लाभ हों, जिनमें अन्य सहभागी न हों, वह चाहे आर्थिक दृष्टि से न हो, लेकिन नैतिक दृष्टि से अवश्य ही स्वार्थपरक होती है।'

इस बीच, 1835 के आरंभ में ही लार्ड विलियम बेन्टिंक गर्वनर जनरल के पद से अवकाश प्राप्त कर वापस इंगलैंड चले गये। यद्यपि उनका नाम अधिकतर सतीप्रथा बंद करने के साथ जुड़ा हुआ है, लेकिन उनका शासन-काल आधुनिक भारत के सामाजिक और आर्थिक विकास की अनेक उल्लेखनीय घटनाओं के लिए भी प्रसिद्ध है। वे पक्के उदारपंथी विचारों के थे और भारत-ब्रिटिश संबंधों के

भविष्य में विश्वास करते थे। उन्होंने यूरोपियनों की साझेदारी में द्वारकानाथ के उद्यमों के विकास का स्वागत किया था और उन्हें प्रोत्साहन भी दिया था। **फिशर्स कोलोनियल मैगजीन** (जिल्द 1, 1842) के अनुसार बेन्टिंक ने द्वारकानाथ पर 'जोर डाला था' कि वे राजा की उपाधि स्वीकार कर लें, किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। बेन्टिंक के बाद गवर्नर जनरल के पद पर मेटकॉफ आया, फिर ऑकलैण्ड। दोनों ने भारतीय आकांक्षाओं के प्रति बेन्टिंक की मित्रतापूर्ण नीति का अनुसरण किया। इस मित्रतापूर्ण नीति ने ही द्वारकानाथ के मन में ब्रिटिश उदारता के दावों के प्रति उनकी आस्था को पुष्ट किया था और भारत-ब्रिटेन की साझेदारी में एक कार्मनवेल्थ (संयुक्त राष्ट्रमण्डल) के निर्माण का स्वप्न जगाया था। मेटकॉफ के समय में ही प्रेस पर पाबंदियां लगाने वाला 1823 का घृणित अधिनियम, जिसके विरूद्ध द्वारकानाथ लगातार आंदोलन करते आये थे, संशोधित किया गया और प्रेस की स्वतंत्रता बहाल की गई। इस प्रत्याशित घटना की खुशी मनाने के लिए 9 फरवरी 1838 को टाऊन हॉल में एक स्वतंत्र प्रेस वार्षिकी प्रीति-भोज का आयोजन किया गया। चूंकि उस समय द्वारकानाथ पश्चिमी प्रान्तों के दौरे पर गये हुए थे, इसलिए वे इस भोज में शामिल नहीं हो सके। लेकिन उनका पत्र, जिसमें उन्होंने अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा मांगी थी, वहां पढ़ा गया था। द्वारकानाथ की सलामती का जाम पीते हुए, एच०एम० पार्कर ने एक स्मरणीय भाषण में कहा :

खुदा का शुक्र है कि मैं जिस नाम की सलामती का जाम पेश कर रहा हूं, वह जिस सम्मान का अधिकारी है, उसका आधार मेरे इन कमजोर शब्दों से कहीं अधिक ठोस है! वह नाम उन लोगों की सूची में जो व्यापारिक उदारता और व्यावसायिक उद्यमशीलता के क्षेत्र में सबसे अधिक विख्यात हैं, सबसे अग्रणी श्रेणी के सबसे अग्रणी व्यक्ति का है। यह नाम उन सक्रिय, योग्य और दानवीर नागरिकों की सूची में अगर सबसे पहला नहीं तो क़रीब-क़रीब सबसे पहला है, सारा समाज जिनका ऋणी है। अनेक व्यक्ति, जिनको उन्होंने अपनी क़ानूनी सलाह या उदार सहायता द्वारा बरबाद होने से बचाया है या जीवन में उठा कर खड़ा किया है, मेरे मित्र का नाम श्रद्धा और भक्ति से लेते हैं। यह नाम उन हजारों लोगों के दिलों में लिखा हुआ है, जिन्होंने उनकी दानशीलता के अक्षय भंडार से जीने का सहारा पाया है, जिनके पास उनकी सीमाहीन परोपकारिता को, जो किसी जात, रंग या धर्म का भेद नहीं मानती, असीसें देने का कारण मौजूद है। सामाजिक मेहमानदारी की पट्टियों पर, जो कुछ भी सौम्य, शिष्ट, सभ्य और सुशील है, उसकी आभा से मंडित यह नाम सितारे की तरह चमक रहा है। यह नाम हमारे कालेजों के हालों में, साहित्यिक और वैज्ञानिक संस्थाओं के मण्डपों में सुनायी देता है, जिनकी उन्होंने सहायता की है और समृद्ध बनाया है। यह नाम एक कार्य के मध्य से चमकता है, हाल में ही किया हुआ परोपकार का एक ऐसा शानदार, राजसी कार्य, जिसके बराबर की मिसाल मैं अपने अनुभव और ज्ञान क़ी परिधि में नहीं खोज

पाया। और सबसे बड़ी बात यह है कि यह प्रशंसनीय व्यक्ति उस आंदोलन से निरंतर जुड़ा रहा है, जिसकी विजय का उत्सव मनाने के लिए आज रात हम यहां जमा हुए हैं। सज्जनों, इसके बाद क्या यह बताने की जरूरत है कि यह नाम द्वारकानाथ टैगोर है!' (जोर की तालियां और वाह! वाह!)[10]

इसमें संदेह नहीं कि द्वारकानाथ एक राजभक्त आदमी थे, और वह भी ईमानदार राजभक्त, क्योंकि वे सच्चे दिल से विश्वास करते थे कि उनके देश का अच्छा शासन-प्रबंध ही नहीं, बल्कि एक औद्योगिक, प्रगतिशील, आधुनिक राष्ट्र के रूप में उसका भविष्य भी भारत-ब्रिटिश सहयोग पर निर्भर करता है। लेकिन वे एक टोडी, **जो-हुकुम**, पिछलग्गू नहीं थे। जी-हजूरी उनके स्वभाव के उतनी ही विपरीत थी, जितनी अनुदारता। अपने सार्वजनिक जीवन और राममोहन राय के साथ सहयोग के आरंभ से ही वे उन कार्यों और उद्देश्यों का समर्थन करते आये थे, जिन्हें वे अपने देशवासियों के हित में समझते थे, और निर्भीकतापूर्वक उन सरकारी नीतियों और अधिकारियों का विरोध करते रहे थे, जिन्हें वे गलत समझते थे। उनके अनेक यूरोपियन मित्र थे, जो उनके 'नैतिक साहस, ईमानदारी, उदारता, आत्म-निर्भरता, सत्य-प्रेम, सही के प्रति सहज मोह और गलत के प्रति तिरस्कार का भाव और द्वेष और पूर्वग्रहों से मुक्त आचरण' के बड़े प्रशंसक थे, जैसे कि एच०एम० पार्कर के अनूद्दत भाषण से जाहिर है, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है।

वे यूरोपियनों के भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध अपने सम्प्रदाय के हितों और भावनाओं की रक्षा करने में भी पूरी दृढ़ता दिखाते थे। 1833 में जब यूरोपियन व्यवसायियों ने सार्वजनिक दफ्तरों की हिन्दू-छुट्टियां कम करने के लिए सरकार से अपील की तो द्वारकानाथ ने इस धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध प्रतिवाद करने में अपने सम्प्रदाय का साथ दिया। अगले वर्ष जब कलकत्ता के चीफ मजिस्ट्रेट ने नगर की सड़कों पर धार्मिक संगीत के जुलूस निकालने पर पाबंदी लगा दी तो द्वारकानाथ ने राधाकान्त देब के साथ मिल कर इसका विरोध किया और इस आदेश को खारिज करवा दिया।

जैसा कि उनके प्रथम जीवनीकार ने लिखा है, 'द्वारकानाथ को यूरोपियनों और भारतीयों के उच्च वर्गों के आवेशों और भेदभावों से टकराना पड़ा और उन्होंने दोनों जातियों के बीच अपने आप को एक प्रतिरोधक और तरंगरोधक शक्ति के रूप में खड़ा कर लिया।' 'यूरोपियनों और अपने देशवासियों, इन दोनों के बीच उनके जबर्दस्त प्रभाव' का जिक्र करते हुए मित्रा ने इस बात पर जोर दिया कि 'यह प्रभाव एक बड़े व्यापारी और जमींदार की हैसियत पर आधारित नहीं था, क्योंकि ऐसे तो अनेक व्यापारी और जमींदार थे, लेकिन वे कभी इतने प्रभावशाली नहीं बन सके।... उनके प्रभाव का कारण था कि उनके स्वभाव में एक चाटुकार और पिछलग्गू का माद्दा कतई नहीं था, बल्कि वे बड़े रौबीले व्यक्ति थे, उनमें जबर्दस्त

आत्मसम्मान का भाव, नैतिक साहस और विचारों की आजादी थी, जिससे वे दूसरों पर प्रभाव डाल सकते थे और उस प्रभाव को कायम रख सकते थे – इस प्रभाव का उन्होंने कभी दुरुपयोग नहीं किया, न उसे गलत रास्ते पर डाला, बल्कि हमेशा अपने देश की भलाई के काम में ही लगाया। अपने स्वभाव की समस्त सौम्यता और आचरण-व्यवहार की शिष्टता के बावजूद, उन्होंने कभी अपने यूरोपियन मित्रों को दो-टूक शब्दों में अपनी सही राय बताने में संकोच नहीं किया और न उनकी कड़ी आलोचना करने में ही, अगर उन्हें लगा कि ऐसा करना उनका कर्तव्य है। एक नौजवान सरकारी अफसर ने जब उनसे शिकायत की कि मि० (बाद में सर) फ्रेडरिक हैलीडे उसके साथ कठोर बर्ताव करते हैं, तो उन्होंने उसके पक्ष में डंडा उठा लिया। मिस्टर हैलीडे को उनके उपनाम से संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा : 'खैर, किंग फ्रेडरिक मुझे यह सुन कर दुख हुआ कि आप अपने अधीन एक नौजवान कर्मचारी को सताते रहे हैं।' मि० हैलीडे ने अपनी सफाई में नौकरी की कठोर आवश्यकताओं का ज़िक्र किया, लेकिन द्वारकानाथ द्वारा सख्त प्रतिवाद करने पर उन्होंने वायदा किया कि आगे से वे उस नौजवान को तंग नहीं करेंगे। एक अन्य मामले में उन्होंने अपनी कम्पनी के एक संपन्न अंग्रेज सहकारी की ताड़ना की क्योंकि वह इंगलैंड में अपनी मां की कोई सहायता नहीं करता था। सहकारी ने अपना आचरण सुधारने का वायदा किया, और इसके बाद वह नियमित रूप से अपनी मां को पैसे भेजता रहा।'[11]

आखिर बात क्या थी कि एक ऐसे व्यक्ति का, जो इतना स्वतंत्र-विचारक और निर्भीक आलोचक था, सरकार और आम यूरोपियन संप्रदाय दोनों ही इतना आदर और सम्मान करते थे, जबकि दोनों पर साधारणतया सरकारी दंभ और स्वेच्छाचार और जातीय अहंकार का दोषारोपण किया जाता था? दरअसल आज इस बात का स्मरण दिलाते हुए कुछ अजब-सा लगता है कि उस समय के लोग अपनी आशाएं लेकर सत्ता और प्रतिष्ठा के दो केन्द्रों की ओर देखते थे, गवर्नमेन्ट हाऊस और बेलगछिया की ओर।

फैनी पार्क ने, जिसने जनवरी 1837 में कलकत्ते की रेसें (घुड़दौड़ के मुकाबले) देखी थीं, चांदी के उन दो कपों का वर्णन किया है, जो पुरस्कार के रूप में दिये जाने वाले थे। ऑकलैण्ड कप 'चांदी का था, शानदार डिज़ाइन का और अत्यंत सुंदर, जिस पर रेखांकन मिस ईडन ने किया था।' इसके अलावा 'एक अमीर बंगाली, द्वारकानाथ टैगोर के दिये चांदी के एक कप के लिए भी दौड़ के मुकाबले हुए; इस कप पर खूब नक्काशी की हुई थी और कारीगरी भी अच्छी थी, लेकिन इसकी डिज़ाइन कुरुचि की अधिकता की मिसाल थी, जो सिर्फ एक बाबू ही की पसंद हो सकता था।[12]

समाचार दर्पण (बेप्टिस्ट मिशन का बंगाली मुखपत्र) का मूल्यांकन इससे भिन्न था। उसने लिखा : 'गत मंगलवार की शाम को यूरोपियन और हिन्दोस्तानी एक

बड़ी संख्या में हिज़ ऐक्सीलेंसी लार्ड ऑकलैण्ड के निवास पर तीसरी रात्रि-गोष्ठी के लिए एकत्र हुए थे। वहां अनेक सुंदर वस्तुएं नुमाइश के लिए रखी गई थीं। उनमें दो अत्यंत अलंकृत चांदी के कप थे। एक को हेमिल्टन कम्पनी ने श्रीयुत बाबू द्वारकानाथ टैगोर के खर्च पर बनाया था। यह कप एक हजार तोले से कम वजन का नहीं था। इसकी कारीगरी सचमुच आश्चर्यजनक थी। इसके लिए देसी कारीगरों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। ये दोनों क़ीमती कप अगली घुड़दौड़ के मौके पर पुरस्कार के रूप में दिये जायेंगे।"[43]

चालीस वर्ष के बाद द्वारकानाथ को शायद ब्रिटिश नौकरशाही पास भी न फटकने देती और गर्वनर जनरल उन्हें अपनी औकात से बाहर न निकलने देने की भरसक कोशिश करता। जिस ज़माने में वे ज़िन्दा थे, तब ऐसा क्यों नहीं हुआ, इसका उत्तर उनके सबसे हाल के जीवनीकार ने इस प्रकार दिया है :

"पहला कारण तो यह है कि इस समूचे उप-महाद्वीप पर तब तक अंग्रेजी शासन अधूरा ही था। मराठों को हाल में ही पराजित किया गया था, सिख अभी तक शक्तिशाली और स्वतंत्र थे और रूसी उत्तर-पश्चिम सीमा को चुनौती दे रहे थे। राजभक्त और विश्वसनीय ज़मींदारों के नेतृत्व में बंगाल ही उस ज़माने में अंग्रेजी राज का स्तंभ था। ज़मींदारों के प्रतिनिधि द्वारकानाथ भले ही सरकार की आलोचना करते हों, लेकिन वे यह आलोचना एक ऐसे अंतरंग व्यक्ति की हैसियत से करते थे जो गर्वनर जनरल का विश्वासपात्र था और जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्पन्नता अंग्रेजों की सदिच्छा पर निर्भर करती थी। साथ ही उनकी सद्-भावना ईस्ट इण्डिया कंपनी और भारत सरकार के लिए महत्वपूर्ण थी। सुसमाचारी लोकोपकारवाद के उस युग में यह जरूरी था कि उपनिवेशवादी सरगरमियों को नैतिकता के लबादे में ढका जाय और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सभ्यता के एजेन्ट के रूप में औचित्य प्रदान किया जाय। द्वारकानाथ कम्पनी की सरकार की सफलता के प्रतीक थे। वे एक "देसी" थे जो अंधविश्वासों के अंधकार में डूबे वातावरण से उठे थे, फर्राटे की अंग्रेजी लिखते और बोलते थे, ब्रिटिश रीति-रिवाजों और संस्थाओं के प्रशंसक थे और जिन्होंने अपने देश और साम्राज्य की भलाई के लिए अपने को समर्पित कर दिया था। उन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन देना चाहिए; एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उन्हें अनुकरण के लिए सामने करना चाहिए, जो अपने देशवासियों को पश्चिमीकरण और राजभक्ति के मार्गों में अग्रसर कर सके। कुछ कहते थे कि द्वारकानाथ को 'सर' का खिताब देना चाहिए, दूसरों का विचार था कि रोमन मॉडल के अनुसार जाति-च्युत हो जाने की एवज में उन्हें और उनके सुधारक मित्रों को "पूर्ण ब्रिटिश नागरिकता" प्रदान की जानी चाहिए। यद्यपि इनमें से कोई भी सम्मान नहीं दिया गया, लेकिन जल्द ही अंग्रेजों द्वारा द्वारकानाथ का इतना भव्य स्वागत किया गया और उन्हें इतना सम्मान दिया गया... जितना किसी भी भारतीय को इससे पहले या तब से अब तक नहीं दिया गया।"[44]

1834 में जब द्वारकानाथ ने अपने बलबूते पर एक उद्यमशील व्यक्ति का कारोबार शुरू किया और कार, टैगोर एण्ड कंपनी की स्थापना की, तब से अपने विभिन्न व्यावसायिक उद्यमों के, जो धीरे-धीरे एक-दूसरे से जुड़ते गये थे, संचालन का भार इतना बढ़ गया था और सार्वजनिक कार्यों में उनकी सक्रियता इतनी बढ़ गई थी, कि उनका स्वास्थ्य क्षीण होने लगा। हालांकि देखने में लगता था कि उनमें परिश्रम करने की अथक शक्ति है, लेकिन उनका स्वास्थ्य तगड़ा होने की बजाय नाजुक अधिक था। मौसम और वातावरण बदलने की जरूरत महसूस करने पर उन्होंने 1835 में पश्चिमी भारत की यात्रा पर निकलने का निश्चय किया। वहां की जलवायु बंगाल की अपेक्षा अधिक खुश्क और स्वास्थ्यकर थी और उस क्षेत्र में हिन्दुओं के अनेक पवित्र तीर्थ-स्थान और विगत साम्राज्यों के वैभव के प्रतीक अनेक ऐतिहासिक स्मारक भी थे। उन्होंने इससे पहले अपनी मां को भी इस क्षेत्र की यात्रा पर भेजा था।

द्वारकानाथ जब स्वयं पश्चिम की यात्रा पर गये, उस समय उनका कुछ मिलाजुला मंतव्य रहा होगा। उन्हें अपना स्वास्थ्य-लाभ करना था, क्योंकि उन्होंने हाल में ही जो काम उठा लिए थे, वे बहुत बड़े थे, वे चाहे रूढ़िवादी नहीं थे, लेकिन एक निष्ठावान हिन्दू अवश्य थे, इसलिए पवित्र तीर्थों की यात्रा का आकर्षण भी उनके मन में कम नहीं रहा होगा; इसके अलावा उन्हें पूंजी लगाने के नये क्षेत्रों का पता लगाना था। रेलगाड़ी चलने से पहले के उन दिनों में यात्रा धीमी गति से ही होती थी और उसमें खतरे भी बहुत थे, सड़क जंगलों के बीच से गुजरती थी, जहां जंगली जानवर और उनसे भी अधिक जंगली डकैतों का होना असाधारण बात नहीं थी। एक नदी मार्ग भी था जिस पर यात्रा और भी धीमी रफ्तार से होती थी और तब तक कठिन भी कम नहीं थी, जब तक बेन्टिंक ने स्टीमर-सेवा नहीं शुरू करवाई। द्वारकानाथ ने घोड़ागाड़ी के जरिये यात्रा की, साथ में हथियारबंद अंगरक्षकों, नौकर-चाकरों, रसोइयों तथा अन्य कार्यकर्ताओं का एक बड़ा दल था, जिनमें एक अंग्रेज डाक्टर और द्वारकानाथ गुप्त नामक एक वैद्य भी था, जो नये स्थापित मेडिकल कालेज का भी स्नातक था और जो पाश्चात्य चिकित्सा के सबसे पहले डॉक्टरों में से था। उसने बाद में एक लोकप्रिय ज्वर-मिक्सचर पेटेंट करवाया, जिसे चितपुर में स्थित उसकी कम्पनी, गुप्तू एण्ड कं०, बहुत दिनों तक बेचती रही।[45]

द्वारकानाथ रानीगंज जाना चाहते थे, जहां एक स्वतंत्र अंग्रेज उद्यमी, विलियम जोन्स ने 1815 से एक कोयले की खान चालू कर रखी थी, जिसे कालान्तर में 'भारत की सबसे पुरानी, सबसे बड़ी और सबसे सम्पन्न खान होने का गौरव प्राप्त हुआ। फिर जोन्स की मृत्यु के बाद अलैक्जेन्डर एण्ड कम्पनी खान की मालिक बनी और उसे चलाती रही। 1832 में कम्पनी फेल हो जाने के कारण खान बिक्री के लिए 1834 से बाजार में थी। द्वारकानाथ खरीदने से पहले खान को जाकर देख लेना चाहते थे।

अंततः जनवरी, 1836 में उन्होंने यह खान केवल 70,000/-रु० में खरीद ली, जैसा कि 9 जनवरी, 1836 के **समाचार दर्पण** में प्रकाशित खबर से ज्ञात होता है। ब्लेयर क्लिंग के अनुसार : 'रानीगंज की खरीद द्वारकानाथ के व्यावसायिक जीवन का सबसे बड़ा एक-अकेला सौदा था।' साथ ही यह उन इने-गिने सौदों में से था, जिसकी उपयोगिता और महत्व आज तक बढ़ता आया है, यद्यपि मालिक बदल गये हैं। कलकत्ते के एक दैनिक पत्र **युगान्तर** के 18 दिसंबर, 1976 के अंक में उस बंगले का एक दिलचस्प फोटो छपा था, द्वारकानाथ ने जिसका निर्माण रानीगंज में नुनिया नदी के तट पर, कलकत्ते से 130 मील दूर नरानकुरी में किया था, और जिसके भग्नावशेष अभी तक मौजूद हैं। 'बंगले के बाहर **अश्वथ** वृक्ष के नीचे का पक्का चबूतरा अभी भी बना हुआ है, जहां द्वारकानाथ शाम को बैठा करते थे और गाते थे।'

उस समय तक भारत में रेलगाड़ी नहीं चली थी, इसलिए कोयले की खपत मुख्यतः उन स्टीमर-बोटों में ही होती थी जो गंगा पर चलते थे। इसके लिए नदी की लम्बाई में सुगम स्थानों को खोज कर वहां कोयले के डिपो की श्रृंखला बनाने की जरूरत थी। द्वारकानाथ की कल्पना केवल कोयले की खान और डिपो हासिल करने में ही नहीं बल्कि अपनी ही स्टीमर-सर्विस चालू करने के स्वप्न में रमने लगी थी। बर्दवान के रानीगंज क्षेत्र से वे काशी गये, जो सारे धर्मनिष्ठ हिन्दुओं का पवित्रतम तीर्थ-स्थान है, भारत का शाश्वत नगर, जैसे रोम ईसाइयों का शाश्वत नगर है। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने गंगा-स्नान करके अपने पाप धोये होंगे, मंदिरों में जाकर देवताओं की स्तुति की होगी, ब्राह्मणों और साधुओं को दान-दक्षिणा दी होगी और अविश्वासभरी मुस्कान से उनके प्रचुर आशीर्वाद सुने होंगे। लेकिन काशी आज की तरह उस समय भी केवल पाप धोने वाले पवित्र जल के लिए ही नहीं बल्कि अपने जरी और कमखाब के काम के लिए भी प्रसिद्ध थी। कार, टैगोर एण्ड कंपनी चीन से रेशम का आयात करती थी और द्वारकानाथ जरी और कमखाब के कपड़े कलकत्ता भेजे जाने के लिए काशी में कई इकरारनामे करना न भूले, ताकि साज-सज्जा की इन वस्तुओं का कलकत्ते से निर्यात किया जा सके। बाद में जब वे इंगलैंड गये तो वहां की साम्राज्ञी और अन्य मित्रों को उपहार देने के लिए वे बनारसी कमखाब के थान और काश्मीरी शाल लेकर गये। काशी से द्वारकानाथ प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद) गये, जहां तीन पवित्र नदियों का, जिनमें दो दृष्य हैं और एक अदृश्य संगम है। यह स्थल इतना पवित्र माना जाता है कि इसमें दिवंगत हिन्दुओं के फूल प्रवाहित किए जाते हैं। इसमें संदेह नहीं कि द्वारकानाथ ने मंत्रोच्चार करते हुए संगम में स्नान किया होगा और सदा भूखे ब्राह्मणों को भोजन कराया होगा। अपने पाश्चात्य बाह्याडम्बर और धार्मिक रीतियों के ढकोसलों के प्रति अपने व्यंग्यपूर्ण भाव के बावजूद, वे थे तो आखिर अलकासुंदरी के पुत्र ही, चाहे उनके गर्भ से न जन्में हों लेकिन उनकी पुनीत धार्मिक भावना ने तो द्वारकानाथ

के मन में गहरा स्थान बना लिया था।

दुर्भाग्य से, इस दौर में द्वारकानाथ ने अपनी कोई डायरी नहीं रखी, और अगर रखी थी तो वह उनके अनेक दूसरे कागज-पत्रों की तरह खो चुकी है। वे बड़े मुस्तैद और कुशल पत्र-लेखक थे और उन्होंने अपने मित्रों, रिश्तेदारों और व्यावसायिक सहयोगियों को इस यात्रा के बारे में अनेक दिलचस्प पत्र लिखे होंगे, लेकिन उनकी एक चिन्दी भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए इस यात्रा में या भारत के अंदर इसके बाद की अन्य यात्राओं में वे कहां-कहां गये और उन्होंने क्या-क्या किया, इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित छिट-पुट सूचनाओं को जोड़-जाड़ कर इतना ही ज्ञात होता है कि उन्होंने 1835, 1838, 1841 और 1843 में पश्चिमोत्तर भारत की चार यात्राएं की थीं। उनके आरंभिक जीवनीकारों ने अपने विवरणों में, दुर्भाग्य से, इन यात्राओं को एक-दूसरे से अलग-अलग कर दिया है, विशेषकर 1835 और 1838 के यात्रा-वृतान्तों को। उदाहरण के लिए मित्रा और उनके बाद क्षितीन्द्रनाथ दोनों ही ने, बल्कि क्षितीन्द्रनाथ के पोते अमृतमोय मुकर्जी ने भी (जिनके **समकालीन** में प्रकाशित बंगाली लेख, आशा की जाती है कि एक संपूर्ण जीवनी का रूप ले लेंगे) लिखा है कि इलाहाबाद से द्वारकानाथ आगरा, मथुरा और वृन्दावन गये। अगर, जैसा कि क्षितिन्द्रनाथ ने लिखा है कि द्वारकानाथ जब प्रयाग से आगरा जा रहे थे, उस समय कलकत्ते में उनकी मां की मृत्यु हुई थी, तो यह घटना 1838 में उनकी दूसरी यात्रा से ही संबद्ध हो सकती है, क्योंकि अलकासुंदरी का देहान्त मार्च 1838 में हुआ था। 17 मार्च, 1838 में **समाचार दर्पण** ने सूचना दी कि अपनी मां की मृत्यु की खबर पाकर द्वारकानाथ स्टीम-बोट के जरिए जल्द से जल्द कलकत्ता लौट रहे हैं और यह बोट अब किसी दिन भी कलकत्ते पहुंचने वाली है। 21 मार्च के **इंगलिशमैन** ने सूचना दी: 'द्वारकानाथ टैगोर कल कलकत्ता पहुंच गये, जो कि उनके लिए अच्छा ही हुआ। ऐसा लगता है कि हमारे सम्मानित सह-नागरिक जब स्टीमर की कैद से छुटकारा पाकर अपनी स्थल-यात्रा पर चलने ही वाले थे कि उन्हें अपनी मां की सख्त बीमारी की सूचना पहुंची। उन्हें पत्र से सूचना देने वाले डाक्टर ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह उन्हें चंगा करने में कोई कसर नहीं रखेगा और उसने द्वारकानाथ से अनुरोध भी किया कि उन्हें किसी प्रकार की आशंका से विचलित नहीं होना चाहिए। लेकिन उनकी पुत्रवत् भावनाएं उनकी यायावरी इच्छाओं पर हावी हो गईं और अनेक सुविधाओं का त्याग करके वे तुरंत कलकत्ता लौटने के लिए तैयार हो गये। जैसा कि हमारे पाठक जानते हैं, वे अपनी दिवंगत मां के अंतिम दर्शन करने के लिए समय पर नहीं लौट सके हैं। ...'

बहरहाल जो भी हो, वे चाहे जिस साल आगरे गये हों, मुगल वास्तुकला का सौंदर्य और वैभव जैसे उनके लिए एक महान रहस्य का उद्घाटन था। उस समय तक पुरातत्व-विभाग की स्थापना नहीं हुई थी, जो ऐतिहासिक मूल्य के स्मारकों

की, जो उपेक्षित पड़े थे और बार-बार लुटेरों की तबाहकारियों के शिकार हो रहे थे, सुरक्षा का प्रबंध कर सके। फिर भी, उन्होंने जो कुछ देखा, उसने उन्हें मुग्ध कर लिया। शुद्ध, श्वेत संगमरमर से बना और सूक्ष्म और सुंदर नक्काशी से अलंकृत ताजमहल उन्हें 'वास्तुकला का कोहेनूर' जैसा लगा। वे आगरे का किला देखने गये जहां कुछ दशक पहले 1803, में अंग्रेजी फौजों – जो जेनरल लेक की कमान में थीं – और सिंधिया की मराठा फौजों के बीच, जो फ्रांसीसी जेनरल पैरा की कमान में थी, घमासान युद्ध हुआ था। अंग्रेजी रक्षक-सेना उस समय भी किले के अंदर तैनात थी और उसके सैनिकों को कुतूहल हो रहा था कि यह आगन्तुक कौन था, जो एक आलीशान दरबारी पोशाक में था और जिसके साथ अनुरक्षकों का इतना बड़ा अमला था। उन्होंने जब इस शालीन व्यक्ति को अंग्रेजी में बातचीत करते सुना और जब उन्हें मालूम हुआ कि वह एक 'बंगाली बाबू' हैं और कलकत्ते में गर्वनर जनरल का मित्र है, तो वे उनसे सहायता के लिए आग्रह करने लगे। किले के अंदर दो कमरों को गिरजाघरों में तब्दील कर दिया गया था, एक एंग्लीकन धर्मोपासना के लिए और दूसरा रोमन कैथोलिक उपासना के लिए। दोनों में से किसी गिरजे की हालत अच्छी नहीं थी, लेकिन रोमन कैथोलिक गिरजा विशेष कर बड़ी फूहड़ अवस्था में था। उसकी टूटी-फूटी हालत देख कर और अधिकारियों की उपेक्षा के बारे में सैनिकों की शिकायतें सुनते हुए, द्वारकानाथ ने उसी समय वहीं अपनी जेब से बटुआ निकाला और उन्हें गिरजे की जरूरी मरम्मत के लिए पांच सौ रुपये दे दिए।

क्षितीन्द्रनाथ ने एक चुटकला बयान किया है जो ठाकुर-परिवार की वार्ता में सुरक्षित है कि द्वारकानाथ किस तरह भौंचक्के पहरेदारों की परवाह न करके धड़धड़ाते हुए डिप्टी गर्वनर जनरल थाम्पसन के कमरे में घुस गये, जिसे वे कलकत्ता से जानते थे। थाम्पसन दरवाजे की ओर पीठ किए मेज पर कुछ लिखने में व्यस्त था। द्वारकानाथ ने जब पीछे से उसकी गर्दन पर उंगली से गुदगुदाया तो उसने क्रोध से तमतमाते हुए मुड़ कर देखा, लेकिन यह देखते ही कि घुसपैठिया कौन था, वह कुर्सी से उछल खड़ा हुआ और चिल्लाया, "अरे, द्वारकी, तुम हो!" आश्चर्यचकित पहरेदार मुंह बाये देखते रह गये।

आगरे से द्वारकानाथ मथुरा और वृन्दावन गये, जो क्रमशः भगवान कृष्ण के जन्म और बाल्यकाल के लीला-स्थल हैं। एक निष्ठावान् वैष्णव के लिए (और द्वारकानाथ का लालन-पालन एक वैष्णव के रूप में ही हुआ था) पृथ्वी पर ये दोनों स्थान सबसे पवित्र और आनन्दातिरेक के स्थान हैं। वहां जाकर द्वारकानाथ को क्या और कैसा महसूस हुआ, यह जानने का कोई साधन नहीं है, क्योंकि न तो वे कोई डायरी छोड़ गये हैं और न वे पत्र ही सुरक्षित हैं, जो उन्होंने वहां से लिखे थे। उन्होंने अपने साथ के लोगों को निश्चय ही अपने मनोभाव बताये होंगे, लेकिन उनमें से भी किसी ने कोई विवरण नहीं छोड़ा। जो भी विवरण उपलब्ध है, वह मित्रा का दिया हुआ उस बड़े भोज के बारे में है, जो द्वारकानाथ ने दस हज़ार रुपये

खर्च करके वृन्दावन के मंदिरों से संबद्ध चौबों और ब्राह्मणों को दिया था, जो बहुत ज्यादा पेटू होने के लिए तब भी मशहूर थे, जैसे आज हैं। यह भोज एक तमाल कुंज में दिया गया था, जो राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं के लिए प्रसिद्ध है। हरेक अपने साथ एक-एक लोटा भर कर भांग लाया था, उसे छान कर, कहते हैं कि, हरेक चौबे ने कम से कम तीन-तीन चार-चार किलो मिठाइयां और पूरियां खायीं, जिसके बाद उनके अंदर सिर्फ 'राधा माई की जै' और 'द्वारका बाबू की जै' का जयनाद करने की सांस बची थी। बृन्दावन से चलते समय द्वारकानाथ ने केशी घाट पर प्रतिदिन साधुओं और गरीबों को मुफ्त भोजन कराने की खातिर एक **अन्न सत्र** खोलने के लिए अपने दान से एक निधि स्थापित की।[47] इस निधि का बाद में क्या हुआ, यह ज्ञात नहीं है।

अपनी दोनों, 1835 और 1838 की यात्राओं में द्वारकानाथ पश्चिमी क्षेत्रों में भूमि-व्यवस्था की सही-सही स्थिति की जांच-पड़ताल करना नहीं भूले। जमींदारों की सोसाइटी के संस्थापक सदस्य होने के नाते वे बंगाल से बाहर रहने वाले अपने वर्ग के लोगों के हितों में दिलचस्पी लिए बगैर नहीं रह सकते थे। कार्नवालिस द्वारा लागू किए इस्तमरारी बन्दोबस्त के लाभभोगी होने के कारण, उन्होंने अन्य प्रदेशों के जमींदारों को भी ऐसे ही विशेषाधिकार देने का समर्थन किया। राममोहन राय के विपरीत, जिन्होंने गरीब रैयत के अधिकारों की वकालत की थी, द्वारकानाथ की सहानुभूतियां अधिकतर एकतरफा थीं और झुकाव अपने वर्ग के पक्ष में था।

अपने स्वास्थ्य की खातिर तीसरी बार 1840-41 की सर्दियों में यात्रा पर जाने से पहले द्वारकानाथ के सामने यूनियन बैंक को एक भयंकर बदनामी से बचाने का काम आ पड़ा, नहीं तो जमा-कर्ता घबरा कर बैंक से पैसे निकालने शुरू कर देते और बैंक फेल हो जाता। 27 अगस्त 1840 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** ने रिपोर्ट प्रकाशित की कि 'पिछले दिन यूनियन बैंक की मीटिंग में यह बात जाहिर की गई है कि खजांची ए.एच. सिम ने बैंक से 1,20,000 रुपयों का गबन किया है। अपनी स्वाभाविक उदारता से द्वारकानाथ ने प्रस्ताव किया कि अगर इस मामले को गुप्त रखा जाय तो यह सारी रकम वे अपनी जेब से पूरी कर देंगे। यद्यपि यह मामला जाहिर हो गया है, फिर भी द्वारकानाथ ने अपना वचन निभाया है और सारा घाटा पूरा कर दिया है।' एक प्रसिद्ध बैरिस्टर और द्वारकानाथ के मित्र और सहयोगी लांगुईविल क्लार्क ने 25 अगस्त 1840 के **इंगलिशमैन** में प्रकाशित अपने पत्र में इस मामले पर प्रकाश डालते हुए लिखा : "जितना भी घाटा हो उसे पूरा करने का वायदा इस शर्त पर किया गया था कि इस मामले को सार्वजनिक न बनाया जाये। **लेकिन इसे सार्वजनिक बना दिया गया है**, और दोनों पार्टियां अपने वायदों से मुक्त हो गई हैं। लेकिन उद्देश्य फिर भी पूरा हो गया है। घबराहट नहीं फैली और लोग अपने पैसे निकालने को नहीं दौड़े। बैंक की साख ज्यों की त्यों बरकरार है, उसे जरा

भी बट्टा नहीं लगा, और शेयरों की कीमत नहीं गिरी, बल्कि रोज-ब-रोज बढ़ती जा रही है। मिस्टर सिम के ऋण-पत्रों और ऋणों का सारा भार द्वारकानाथ टैगोर ने ले लिया है और बैंक हर प्रकार के घाटे से बच गई है, क्योंकि **उन्होंने स्वेच्छापूर्वक एक ऐसे बा-शर्त वायदे को पूरा किया है, जिससे वे पूरी तरह मुक्त हो चुके थे।'**

'बाबू द्वारकानाथ टैगोर,' 2 फरवरी 1841 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** के वीकली एपीटोम ऑफ न्यूज में समाचार छपा, 'उत्तरी प्रान्तों के दौरे से वापस लौट आये हैं, और उन्हें आबोहवा और स्थान बदलने से बहुत लाभ हुआ है।' इससे पहले 28 जनवरी, 1841 के **फ्रंड ऑफ इण्डिया** में प्रकाशित 'एक देसी संवाददाता' की रिपोर्ट अधिक दिलचस्प है : '**प्रभाकर** में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तरी प्रान्तों के दौरे पर बाबू द्वारकानाथ ने हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बनारस और गया में पाप-मोचन क्रियाएं सम्पन्न कीं और अपनी उदार-हृदयता के अनुसार इन स्थानों के स्थानापन्न पुजारियों को चांदी और सोने के कीमती उपहार दिये। रूढ़िवादी पार्टी पर इस बात का अनुकूल प्रभाव पड़ा है और उसे पक्का विश्वास हो गया है कि बाबू को अपने पापों और हिन्दू-धर्म का अतिक्रमण करने वाले विधर्मी कार्यों का बौध हो गया है और उन्होंने आखिरकार अपनी गिरती अवस्था में समुचित प्रायश्चित कर लिया है, जो अंततः उनके बैकुण्ठ जाने के मार्ग को सरल बना देगा। इस समय धर्म-सभा के सदस्य शायद इस बात पर उल्लसित हो रहे हैं कि एक कट्टर वेदान्ती का, जो लगातार हिन्दू-धर्म के सिद्धांतों का विरोध करता आया था, देव-कृपा से पुनरोद्धार हो गया है। अनेक लोगों का कहना है कि बाबू की धमनियों में नये रक्त का संचार हुआ है और हिन्दुओं के तमाम सामाजिक क्षेत्रों में यह माना जाने लगा है कि अब से आगे वे हिन्दू-धर्म द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही आचरण करेंगे। बाबू द्वारकानाथ का यह कार्य किसी धार्मिक भावना से प्रेरित था या पुजारियों को प्रसन्न करने के विचार से, इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। लेकिन हमें स्वीकार करना होगा कि धर्म-सुधार के काम पर, जो कलकत्ते में तेजी से आगे बढ़ रहा है, इसका नैतिक प्रभाव प्रतिकूल होगा, क्योंकि बहुत से लोग यह सोचने लगेंगे कि अपनी तमाम बेहूदगियों के बावजूद हिन्दू-धर्म ही सारे भारतीयों का एकमात्र अवलंब (अंतिम आश्रय) है, चाहे वे रौशन ख्याल हों या दकियानूसी विचारों के। हमने यह भी सुना है कि बाबू ने मिर्जापुर में अपने यूरोपियन मित्रों के सम्मान में एक बॉल-डान्स और भोज का आयोजन किया था। अगर यह सच है तो बनारस और गया में उन्होंने जो पाप-मोचन क्रियाएं सम्पन्न की थीं, उनसे यह बात बिल्कुल उल्टी थी।' (**कलकत्ता कूरियर,** 22 जनवरी) दरअसल द्वारकानाथ जितना ब्राहमणों के संतोष पर उतना ही ईसाई पादरियों के क्षोभ पर विनोद से चटखाने ले कर हंसे होंगे।

यद्यपि उन दिनों यात्रा श्रमसाध्य होती थी और खतरनाक भी काफी थी और इतने अंगरक्षकों और कर्मचारियों के साथ उस पर खर्च भी बहुत आता था, लेकिन

द्वारकानाथ को यात्रा में आनन्द आता था, जिस तरह बाद में उनके बड़े बेटे महर्षि को (शायद दोनों में केवल यह उत्साह ही समान था) या उनके पोते रवीन्द्रनाथ ठाकुर को आनन्द आता था (जिनकी अनेक रुचियां अपने दादा से मिलती थीं, चाहे वे इसके बारे में सचेत न रहे हों)। दुर्भाग्य से द्वारकानाथ के पश्चिमी प्रदेशों के तीसरे और चौथे दौरे के बारे में शायद ही कोई ब्यौरा उपलब्ध है। एक ऐसे व्यक्ति के जीवन और कार्य के बारे में, जो उन्नीसवीं सदी के चौथे और पांचवें दशक का सबसे उल्लेखनीय भारतीय माना जाता था, कालक्रमानुसार लिपिबद्ध प्रमाणों का इस कदर अभाव होगा, यह बात विस्मयकारी लगती है और इस पर आसानी से यकीन नहीं होता।

इससे कहीं ज्यादा विस्तार के साथ उन आश्चर्यजनक तमाशों के विवरण लिपिबद्ध किए गये हैं, जिनका आयोजन वे अपनी बेलगछिया वाली कोठी में भद्रवर्ग के मनोरंजन के लिए किया करते थे। तीसरे दौरे से उनके लौटने के कुछ दिन बाद ही 26 फरवरी के **कलकत्ता कूरियर** ने रिपोर्ट छापी : 'कल रात द्वारकानाथ टैगोर के यहां लोगों का एक शानदार जमावड़ा हुआ। इसमें माननीय मिस ईडन, सर ई. रियन और कलकत्ता समाज के अधिकांश अग्रणी नेता उपस्थित थे। कोठी (जिसे नये सिरे से अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया है) और हाते में शानदार चिरागां किया गया था। आतिशबाजी इतनी बढ़िया थी, जितनी हमने हिन्दोस्तान में और कहीं नहीं देखी। मेज़बान् स्वयं हमेशा की तरह अत्यंत शिष्ट और विनम्र थे और सारे मेहमानों की सुविधा का ध्यान रख रहे थे। और मेहमान इस पार्टी में खूब आनंद ले रहे थे, इसका प्रमाण उनका इतनी देर रात तक वहां रुकना है।' आश्चर्य नहीं कि बंगाली मसखरों ने, जो इस आनंद से वंचित रहे थे, अपने मन को संतोष देने के लिए लोगों में तुक्तक प्रचारित किए हैं : 'ओह, बेलगछिया के बाग में छुरी-कांटों की खटर-पटर! दावत की मौज-बहारों का, **हमें** क्या पता? टैगोर कम्पनी ही जानती है।'

जल्द ही एक और भोज का आयोजन हुआ जिसमें मुख्यतः द्वारकानाथ के देशवासी ही निमंत्रित थे। अब उन्होंने अपने देशवासियों को भी उतनी ही बार दावतों पर बुलाने का चलन शुरू किया था, जितनी बार वे यूरोपियनों को बुलाते थे, हालांकि वे इस बात का ध्यान रखते थे कि दोनों का अविवेकपूर्ण और अनुपयुक्त मिश्रण न हो।

नोट्स

[1] एच.ई.ए. कॉटन : **कलकत्ता ओल्ड एण्ड न्यू**। डब्ल्यू. न्यू मैन एण्ड कम्पनी, कलकत्ता,

1907। सर मार्टिन शी, बारों द श्वीतेर और काउंट डी ओरसे द्वारा बनाये उनके और भी चित्र हैं। इनके अलावा कुछ रेखाचित्र और कार्टून भी उपलब्ध हैं।

2 **फिशर्स कॉलोनियल मैगेजीन**, जिल्द 1, 1842.

3 किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण,** पृ० 122.

4 वही, पृ० 18-19.

5 यह कहानी क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के कागजों से ली गयी है जो कलकत्ते के रवीन्द्र भारती म्यूजियम के अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। ऑक्टरलोनी उस समय जीवित नही था, जब द्वारकानाथ की मृत्यु के बाद यूनियन बैंक फेल हुई थी, लेकिन दुर्भाग्य से उसकी पत्नी को उसकी बचत की जमा-पूंजी से हाथ धोना पड़ गया।

6 किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण,** पृ० 20.

7 बैलगछिया स्थित उनकी उद्यान-कोठी का हवाला।

8 रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के अभिलेखागार में सुरक्षित 'आँवर फेमिली कॉरस्पॉन्डेन्स: 1835-57' से। संजिल्द प्रति में प्रायः टाइप की हुई प्रतियां ही हैं, जिनकी मूल प्रतियां उपलब्ध नहीं हैं।

9 वही।

10 **दी इण्डियन स्टेज** : हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त, कलकत्ता, 1934, चार भाग।

11 'आँवर फेमिली कॉरेस्पोन्डेन्स : 1835-57', रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन।

12 **दी इण्डियन स्टेज**, भाग - 1.

13 स्टॉक्वीलर : **दी हैण्डबुक ऑफ इण्डिया**। क्लिंग ने जेनेट हैयर के नाम राजा राममोहन राय के एक पत्र का उद्धरण दिया है (पृ० 182, जिसे 1371 के **बहाला** के शरद-अंक से लिया गया है) जिसमें उन्होंने द्वारकानाथ पर ईस्थर लीच और उनकी बेटी को फंसाने के लिए अशोभन साधनों का इस्तेमाल करने का आरोप लगाया है। यह कहानी जरा भी विश्वसनीय नहीं है, पत्र का स्वर दुर्भावनापूर्ण है, लगता है कि कलकत्ते के बाजार की अफवाहो को दोहराया गया है। कोई विश्वसनीय प्रमाण भी नहीं पेश किया गया।

14 **संवाद पत्रे सेकालेर कथा**, भाग - 1.

15 द्वारकानाथ के ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्रनाथ ने, जो उनके अंतिम समय में दादी मां साथ थे, अपनी **आत्म-जीवनी** में गलती से 1835 का साल लिखा है।

16 **इंगलिशमैन**, मार्च 21, 1838.

17 **दी रिफार्मर** नामक पत्र ने, जिसके संस्थापक और सम्पादक द्वारकानाथ के चचेरे भाई प्रसन्नकुमार टैगोर थे, इस क्रूर प्रथा की, जिसके अनुसार मरणशील व्यक्ति को नदी के तट पर खुले में डाल दिया जाता है, कठोर शब्दों में निन्दा की और इसके कारण किस प्रकार व्यक्ति समय से पहले ही मौत का शिकार हो जाता है, इसका दर्दनाक विवरण दिया था, जिसे **फ्रंड ऑफ इण्डिया** ने अप्रैल 30, 1835 के अंक मे ज्यो का त्यों उद्वृत किया था।

18 **कलकत्ता कूरियर**, मार्च 12, 1838.

19 अमृतमोय मुकर्जी का **समकालीन** पोष, 1365 वि.सं. में लेख।

20 क्षितीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा **जीवनी** में उद्वृत। पृ० 33.

21 **ट्रैवेल्स इन इंडिया** : लियोपोल्ड वान ओर्लिच।

22 किशोरी चंद मित्रा : **संस्मरण**, पृ० 124.

23 **लेटर्स फ्राम इण्डिया** : ले. माननीया ऐमिली ईडन, लंदन, रिचर्ड बेन्टले एण्ड सन, 1872, 2 भाग।

[24] **दी स्ट्रेन्जर इन इंडिया** : जार्ज डब्ल्यू. जॉन्सन। लंदन, हेनरी कोलबर्न, 1843, भाग - 1.

[25] अमृतमोय मुकर्जी : **समकालीन**, ज्येष्ठ, 1373 वि.सं.

[26] राम तनु लाहिड़ी, **ब्राह्मन एण्ड रिफार्मर** अंग्रेजी संस्करण, रोपर लेथब्रिज, लंदन, 1907.

[27] द्वारकानाथ पर व्यंग्य करने वाले अनेक दोहे, तुक्तक और गीत प्रचलित थे। इनमें से कुछ क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर ने **जीवनी** में उद्वृत किये हैं, पृ० 119-120, बाकी कुछ रवीन्द्र भारती म्यूजियम के अभिलेखागार में सुरक्षित क्षितीन्द्रमोहन ठाकुर के कागज-पत्रों में मिल सकते हैं।

[28] कल्यान कुमार दास गुप्त : 'द्वारकानाथ ठाकुर : उन्नीसवीं सदी के एक हरकारे', **इण्डो-एशियन कल्चर**, भाग, नं० 3 जुलाई 1971.

[29] दिसंबर 20, 1973 के **मेनस्ट्रीम** में उद्वृत।

[30] मेडिकल शिक्षा का पहला संस्थान सरकार ने 1822 में स्थापित किया था और उसका नाम था स्कूल फॉर नेटिव डाक्टर्स (बाद में यह डाक्टर टिटलर्स स्कूल के नाम से मशहूर हुआ)। 1827 में यूनानी चिकित्सा की शिक्षा देने वाले कलकत्ता मदरसा और आयुर्वेदिक चिकित्सा की शिक्षा देने वाले संस्कृत कालेज में भी पाश्चात्य पद्धति की मेडिकल शिक्षा की कक्षाएं जोड़ दी गईं। 1833 में लार्ड बेन्टिंक ने देश में उपलब्ध मेडिकल शिक्षा की स्थिति के बारे में रिपोर्ट करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। कमेटी की सिफारिशों के अनुसार 1 फरवरी 1835 को डाक्टर टिटलर का स्कूल और मदरसा और संस्कृत कालेज में दी जाने वाली मेडिकल शिक्षा को बंद कर दिया गया, और उनकी जगह 'मेडिकल साइंस (चिकित्सा-विज्ञान) की विभिन्न शाखाओं में सर्वाधिक स्वीकृत यूरोपियन पद्धति के अनुसार शिक्षा देने के लिए' एक नया मेडिकल कालेज स्थापित किया। संस्थापक विद्यार्थियों के रूप में 35 शिक्षार्थी 1835 में पहली बार चुने गये जिन्हें मासिक वजीफा दिया जाता था, जिसके लिए द्वारकानाथ तीन साल तक उदारतापूर्वक चंदा देते रहे। डाक्टर ब्रेम्ले कालेज के अध्यक्ष नियुक्त किए गये और डाक्टर गूदेव और डाक्टर ओ शांघनूसी उनके सहयोगी। देखिए – **हन्डरेड ईयर्स ऑफ दी युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता** – 1857-1956। कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 1957 में प्रकाशित।

[31] एक मौखिक परंपरा के अनुसार मधुसूदन गुप्त ने, जो पहले संस्कृत कालेज की मेडिकल कक्षाओं के विद्यार्थी और बाद में जिन्हें मेडिकल कालेज में दाखिला मिला था, सबसे पहले मानव-शरीर का विच्छेदन किया था। लेकिन विच्छेदन-क्रिया करने के बारे में प्रोफेसर ब्रेम्ले की रिपोर्ट इससे भिन्न है: '28 अक्तूबर को चार सब से योग्य और सम्मानित विद्यार्थियों ने स्वयं आग्रह करके सारे प्रोफेसरों और अपने चौदह सहपाठियों के सामने मानव-शरीर का विच्छेदन किया और बड़ी परिशुद्धता और सूक्ष्मता के साथ शरीर के अनेक दिलचस्प अंगों को चीर कर दिखाया।' ब्रेम्ले की रिपोर्ट में इस मौके पर द्वारकानाथ टैगोर की उपस्थिति का कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन चूंकि मित्रा और दूसरे जीवनी लेखकों ने और लोक-प्रचलित परम्परा ने इस बात का लगातार दावा किया है कि आरंभ में द्वारकानाथ हिन्दू विद्यार्थियों को इस बात के लिए राजी करने के लिए विच्छेदन-कक्ष में मौजूद रहते थे कि मानव-शरीर की विच्छेदन-क्रिया से प्राप्त ज्ञान मानव-जीवन की रक्षा के हित में है और इससे उच्च जाति का ब्राह्मण कतई भ्रष्ट नहीं होता, इसलिए लगता है कि आरंभ के दिनों में जब भारतीय विद्यार्थी केवल अपने प्रोफेसरों को विच्छेदन-क्रिया

सम्पन्न करते देखते थे, वे वहां मौजूद रहते होंगे।

32 देखिए किशोरी चन्द मित्रा के **संस्मरण** के बंगाली संस्करण में कल्याण कुमार दास का नोट। कलकत्ते से 1926 में प्रकाशित; पृ० 284-286.

33 **इण्डियाज नेशनल लाइब्रेरी,** बी.एस. केशवन द्वारा सम्पादित और नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता द्वारा 1961 में प्रकाशित।

34 रविवार, 26 अप्रैल 1840 की तारीख में लिखा पत्र माननीय तथा श्रद्धेय राबर्ट ईडन के नाम सम्बोधित है। **लेटर्स फ्राम इण्डिया** : ऐमिली ईडन।

35 **बंगाल हरकारू,** जून 21, 1836.

36 आर.सी. मजूमदार द्वारा **ग्लिम्पसेज ऑफ बंगाल इन दी नाइन्टीन्थ सेंचरी** में उद्धृत। फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1960.

37 **दी इमर्जेन्स ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस** में एस.आर. मेहरोत्रा द्वारा उद्धृत। विकास पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1971, पृ० 60.

38 किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण,** पृ० 29.

39 वही, जिसके परिशिष्ट में पूरा पाठ दिया गया है।

40 **इंगलिशमैन** : 12 फरवरी, 1838.

41 किशोरी चन्द मित्रा : **संस्मरण,** पृ० 66-68.

42 फैनी पाकर्स : **वाण्डरिंग्स ऑफ ए पिलग्रिम इन सर्च ऑफ दी पिक्चरेस्क ड्यूरिंग फोर-एण्ड-ट्वेन्टी ईयर्स इन दी ईस्ट** 2 भाग। लंदन, पेल्हम रिकार्डसन, 1850, भाग-2, पृ० 104.

43 **समाचार दर्पण,** 7 जनवरी, 1837.

44 ब्लेयर क्लिंग : **पार्टनर इन ऐम्पायर,** पृ० 167.

45 अमृतमोय मुकर्जी : **समकालीन,** आश्विन, 1369, वि.सं.

46 **संस्मरण,** पृ० 37.

47 वही, पृ० 36; **जीवनी,** पृ० 186.

आठ

पहली विदेश यात्रा

द्वारकानाथ एक अरसे से यूरोप और ब्रिटेन की यात्रा करने की सोच रहे थे। लंदन पहुंच कर उन्होंने एक पत्र में लिखा, यह यात्रा 'बीस वर्ष से मेरे मन की साध रही है।' उनकी भारत में की गई यात्राओं के कारण कई थे, सदृश इसके भी थे, अर्थात्, स्वास्थ्य की खातिर जल-वायु और देश-परिवर्तन, सैर-सपाटा और तीर्थ-यात्रा (पाश्चात्य सभ्यता के आश्चर्यलोक की यात्रा भी उनकी दृष्टि में एक तीर्थ-यात्रा थी), और व्यावसायिक हितों और सम्पर्कों में इजाफा करना, आदि। लेकिन 'काले पानियों' के पार की यात्रा में मात्र जंगली जानवरों और डकैतों के खतरे से भी कहीं बड़े खतरे थे। जाति-च्युत होने की कीमत शायद पैसों का बटुआ या कोई अंग भी खो देने से कहीं ज़्यादा हो सकती थी। उनके सगे-संबंधियों, मित्रों और उनके घर से सम्बद्ध पंडित-पुरोहितों ने उनसे बार-बार आग्रह किया कि वे 'नरक-दण्ड' पाने की जोखिम न उठायें। कुछ ने उनके मित्र और अग्रणी राममोहन राय के दुर्भाग्य की ओर संकेत किया कि धार्मिक प्रतिबंध को तोड़ने के अपराध में दैव ने उन्हें यह 'सजा' दी कि आज उनका शव विदेश की मिट्टी में दफन पड़ा है, एक मामूली और अप्रतिष्ठित भूमि के अंदर, जो दुर्भाग्य किसी म्लेच्छ को भी नहीं प्राप्त होता। वह क्यों इस तरह नरक-दण्ड पाना चाहते हैं? लेकिन द्वारकानाथ इन बातों पर केवल हँस देते। वे यह जोखिम उठाने के लिए कृत-संकल्प थे, चाहे इसका कुछ भी परिणाम निकले।

यद्यपि वे इन बातों से डरते नहीं थे और वे अंधविश्वासों की उपेक्षा करते थे, लेकिन उनमें इतना समझने की बुद्धिमत्ता तो थी ही कि किसी व्यक्ति के जीवन में

किसी समय भी कुछ न कुछ हो सकता है और जो भी हो कम से कम वे निश्चित रूप से तो नहीं कह सकते थे कि उनकी अनुपस्थिति में उनके दूर-दूर तक फैले व्यावसायिक साम्राज्य का उनके बेटों और साझीदारों के हाथ में पड़ कर क्या हश्र होगा। उन दिनों व्यावसायिक साझीदारों के बीच देयता की सीमा निश्चित करने का कोई कानून नहीं था और पूरे का पूरा घाटा चुकाने के लिए हर साझीदार को उत्तरदायी ठहराया जा सकता था, जैसा कि पहले कामर्शियल बैंक के फेल होने पर स्वयं द्वारकानाथ को पूरा घाटा चुकाने के लिए राजी होना पड़ा था। अपने बेटों को (जिनमें उनके जैसी व्यवसाय-बुद्धि और उपायकुशलता का अभाव था) कम्पनी के फेल होने पर एक हठात् और सर्वग्रही आपत्ति से बचने के लिए उन्होंने 20 अगस्त 1840 को एक अमानती दस्तावेज तैयार किया, जिसके अनुसार उनकी चार पैतृक जमींदारियां, दो तो वे जो उन्हें विरसे में मिली थीं और दो जो उन्होंने बाद में खरीदी थीं, उनके बेटों और पोतों के लिए सुरक्षित रखी गईं।[1] महर्षि ने अपनी **जीवनी** में स्वीकार किया है कि 'उनकी तीक्ष्ण-बुद्धि ने उनके आगे यह बात स्पष्ट कर दी थी कि इन विशाल मामलों के प्रबंध का दायित्व अगर भविष्य में हमारे कंधों पर आ पड़ा तो हम यह सारा भार नहीं उठा पायेंगे।'[2]

2 अक्तूबर 1841 के **बॉम्बे टाइम्स** और 21 अक्तूबर 1841 के **फ्रेंड ऑफ इंडिया** दोनों ने ही सूचना प्रकाशित की कि अब यह निश्चित हो गया है कि द्वारकानाथ शीघ्र ही 'इंगलैंड की यात्रा करने वाले प्रथम भारतीय राजा राममोहन राय के पुत्र राधाप्रसाद राय को साथ लेकर' ब्रिटेन के लिए जहाज से यात्रा करेंगे। अगले वर्ष जनवरी में जब यह यात्रा सचमुच सम्पन्न हुई, उस समय राधाप्रसाद राय उन्हें जहाज पर चढ़ाने के लिए तो गये, लेकिन वे उनके सहयात्रियों में से एक नहीं थे।

ऐसा लग सकता था कि इंगलैंड जाने से पहले द्वारकानाथ के मन में बेलगछिया की कोठी और उसके साजो-सामान को बेच देने का विचार आया था, क्योंकि 25 दिसम्बर 1841 के **इंगलिशमैन** ने दुख प्रकट किया था : 'सम्पत्ति की बिक्री के बारे में जो अनेक सूचनाएं प्रकाशित हुई हैं, उनमें से एक ऐसी है, जिसे कलकत्ते के अधिकांश निवासी और मुफस्सिलों के भी अनेक लोग, जो उसकी मेहमाननवाजी में हिस्सा बंटाने के लिए अक्सर यहां आते हैं, बड़े दुःख के साथ पढ़ेंगे। हमारा संकेत डम डम रोड पर स्थित द्वारकानाथ के शानदार बंगले को बेचने की घोषणा की ओर है। कितने नव-दम्पत्तियों ने इस मनोरम एकान्तिका में अपने हनीमून के आनन्द-भरे दिन बिताये हैं, और उन्होंने वहां के कला-चित्रों और मूर्तियों में... और **दलालों की मण्डली** में उस सुखद उन्माद की तलाश की है, जो लोगों को यह अहसास कराता है कि यह दुनिया सुंदर और हसीन है और उसके अंदर केवल वे ही सबसे सुंदर और हसीन हैं?... कितने लोग, विवाहित हों या अकेले, अदालतों के जजों और गण्य-मान्य नागरिकों से लेकर वकीलों के साधारण क्लर्कों या व्यापारियों के गुमाश्तों तक, हर शनिवार को उसके दरियादिल मेजबान की शानदार

मेहमाननवाजी का लुत्फ उठाते रहे हैं?... और अब ये सारे आमोद-प्रमोद बीते जमाने की याद बन कर रह जायेंगे और नेक और उदारहृदय द्वारकानाथ ने शान शौकत का जो साजो-सामान संग्रह करके इस परीलोक में केन्द्रित कर दिया था, वह सारा का सारा नीलाम की बोली बोलने वाले का हथौड़ा गिरते ही निर्ममतापूर्वक छिन्न-भिन्न हो जायगा...।'

इंगलिशमैन के सम्पादक को लगता है कि यह आशंका हुई थी कि द्वारकानाथ शायद अपने विदेश प्रवास से वापस नहीं लौटेंगे और भारत में उनके सार्वजनिक जीवन की भूमिका समाप्त होने वाली थी। तभी तो उसने इसके आगे जो लिखा, वह पढ़ने में लगता है, जैसे उनकी मृत्यु का समाचार पाने के बाद श्रद्धांजली पेश की गई है:

'हमें द्वारकानाथ टैगोर की शानदार सम्पत्ति की बिक्री का विज्ञापन देख कर केवल इस कारण दु:ख नहीं है कि कलकत्ते के बहुत से नागरिक उस कलात्मक आमोद-प्रमोद से वंचित हो जायेंगे, जिसमें वे अक्सर खुशी-खुशी भाग लेते थे। इस घोषणा में हम शायद उस व्यक्ति के इतिहास का अंतिम पृष्ठ भी पढ़ रहे हैं, जो अपने देश का सबसे बड़ा उपकारक था, जो एक चौथाई सदी तक अपनी बेमिसाल पेशकश से और विवेकपूर्ण ढंग से अपनी दौलत का प्रसार करके, सत्ता की मुस्कानों और तिरस्कारों से अविचलित अपनी आजादी पर डटे रह कर और अपनी जात के क्रुद्ध राग-द्वेषों के प्रति अपनी उपेक्षा दिखाकर अपने देशवासियों को महानता और सुख-प्राप्ति का मार्ग दिखाने के लिए अथक परिश्रम करता रहा। द्वारकानाथ टैगोर ने सारे समाज की – नहीं, सारे देश की – अपनी निर्भीकता और आजादख्याली से, जो उनके समूचे सार्वजनिक जीवन की विशिष्टताएं हैं, जो सेवाएं की हैं, उनको गिनाने मात्र से इस पत्र के कई कॉलम भर जायेंगे। दरअसल, देश की वर्तमान दशा को देखते हुए, और इसकी अगर उस दशा से तुलना करें, जब राममोहन राय ने द्वारकानाथ की मदद लेकर पहली बार भारत के लोगों को रोशनी दिखायी थी – तो हमें संदेह है कि क्या यह संभव होगा कि हम किसी माकूल कसौटी पर जांच करके दिखा सकें कि अपने प्रभाव, अपनी सीधी-सादी किन्तु प्रभावशाली वाक्-पटुता, अपने आत्म-त्यागों, अपने उदार खर्चों से उस सुधार-आंदोलन को पैदा करने में द्वारकानाथ टैगोर का कितना बड़ा योगदान था, जो इतने आश्चर्यजनक रूप में आज मौजूद है। शिक्षा, दान-अनुदान, कृषि, वाष्प-चालित जहाजरानी, व्यापार, प्रेस के माध्यम से विचारों की स्वतंत्रता, कानूनों में सुधार, देश में उदार प्रशासन की स्थापना, सिविल जूरी की व्यवस्था, लोक-निर्माण कार्य, नाटक, जमींदारों के हितों की रक्षा, मेडिकल-ज्ञान की व्यवस्था आदि कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए जो महान प्रयत्न किए गये हैं, उन सबके साथ द्वारकानाथ टैगोर का व्यक्तित्व अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। व्यक्तिगत जीवन में तो उनकी उदार दानशीलता की कोई सीमा नहीं रही और उनकी दयालुता की मिसालें असंख्य हैं। उनकी दानशीलता से

सैकड़ों विधवाओं और अनाथों की बरबादी और दरिद्रता से रक्षा हुई है, बीसियों निर्धन किन्तु साहसी व्यक्तियों को उनकी सामयिक और उदार सहायता से जिन्दगी में पैर जमा कर आगे बढ़ने का मौका मिला है, और उनके दोस्ताना हस्तक्षेप के कारण सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित कितने एक लोग, जिनका नाम गिनाने की जरूरत नहीं है, अपनी गुस्ताखियों, लापरवाहियों, फजूलखर्चियों और उच्छृंखलताओं के उन गंभीर दुष्परिणामों, या कहें, बदनामियों से बचे हैं, जो अन्यथा उन्हें भुगतने पड़ते। लेकिन यह सब उन्होंने बिना कोई दिखावा किए या आडम्बर रचे, और बिना किसी ऐसे लाभ की आकांक्षा के, जिसमें आम लोग साझीदार नहीं हो सकते, सहज और मुक्त भाव से किए हैं।

'अनेक पाठक सोचेंगे कि यह एक अतिशयोक्ति है, कि हम जो भी लिख रहे हैं, वह उन उपकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति है, जिनके लिए सारे समाज के साथ इन पंक्तियों का लेखक भी आभारी है। संभव है कि इस विषय की चर्चा करते समय हम अपनी हार्दिक भावनाओं से भी प्रभावित हों, लेकिन हम इस बात से साफ इन्कार करते हैं कि द्वारकानाथ टैगोर को बड़ी से बड़ी श्रद्धांजलि अर्पित करते समय हम या हमसे अधिक योग्य व्यक्ति भी कह सकें कि उस श्रद्धांजलि में एक अक्षर भी, एक शब्द भी ऐसा हो सकता है, जिसे सैकड़ों-हजारों ज्ञात तथ्यों द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता और जिनका साक्ष्य कलकत्ते का कोई भी व्यक्ति आसानी से नहीं दे सकता।'

उनकी विदेश-यात्रा से ऐन पहले, बैप्टिस्ट मिशन के साप्ताहिक **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने, जिसने अक्सर उनकी सरगरमियों की आलोचना की थी, 6 जनवरी 1842 के सम्पादकीय में लिखा :

'द्वारकानाथ ने अपने देश की ओर से सार्वजनिक उत्थान के लिए जो प्रयत्न किये हैं, उनके लिए विनयपूर्वक अपना धन्यवाद दिये बगैर हम उनको देश से बाहर नहीं जाने दे सकते। सार्वजनिक प्रशासन संबंधी कुछ बुनियादी प्रश्नों पर हमारा उनसे काफी मतभेद रहा है, और चूंकि कहा जाता है कि उन्हें इंगलैंड में जाकर कुछ मामलों की वकालत करने का काम सौंपा गया है, इसलिए संभव है कि हमें आगे भी उनकी भावनाओं का विरोध करने का मौका मिलेगा। लेकिन हम खुद ही अपनी भावनाओं के साथ अन्याय करेंगे, अगर एक सार्वजनिक व्यक्ति के रूप में उनके प्रति हमारे मन में जो आदर है, उसको अभिव्यक्त न करें। चूंकि हम राजधानी से कुछ दूर पर रहते हैं (बेप्टिस्ट मिशन सिरामपुर में स्थित था), इसलिए हमने उनके चरित्र के बारे में अपनी धारणा मुख्यतः उनके उन सार्वजनिक कार्यों के आधार पर बनायी है, जिनके लिए समाज को उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने का समुचित कारण है...

'राममोहन राय के साथ उनका जुड़ना, उस समय जब वह महान सुधारक अपने देश के प्रचलित अंधविश्वासों का विरोध करने के लिए उठा था, सार्वजनिक

जीवन में उनका पहला कदम था, और उस अवसर पर उनके साहस और विचारों की उदारता ने उनके बारे में जो आशा जागायी थी, उसकी पिछले बीस वर्षों में, जब से वे लगातार पब्लिक की नजरों के आगे रहे हैं, प्रचुर मात्रा में पूर्ति हो गई है। इन कार्यों में से, हमारी दृष्टि में, सर्वोपरि है, उनका उस महान मानवीय उद्देश्य, अर्थात सती-प्रथा को खत्म करने की मांग का साहसपूर्ण और उदार समर्थन, जिसके लिए भारत में उनका नाम सदा कृतज्ञतापूर्वक लिया जायगा। जब रूढ़िवादी देसी समाज के शक्तिशाली, विद्वान और धनी लोग इस कानून का घोर विरोध करने के लिए पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गये थे और जो उनका साथ देने से इन्कार करते थे, उन्हें अपनी नफरत का शिकार बनाते थे, उस समय द्वारकानाथ ने अपना पूरा जोर और प्रभाव करुणा के पल्ड़े में डाला था और विरोधियों की गालियों और भर्त्सनाओं का अविचलित रह कर सामना किया था।

'द्वारकानाथ के सार्वजनिक परोपकारों का वर्णन करने का अर्थ होगा, कलकत्ते की प्रत्येक परोपकारी संस्था का नाम गिनाना, क्योंकि उनमें से ऐसी कौन-सी संस्था है, जिसे उन्होंने खुले हाथों दान-चन्दा नहीं दिया है? उनकी दानशीलता निरंतर इतनी सार्वभौमिक और उदार रही है कि उन्होंने जब कलकत्ते की डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसाइटी को एक लाख रुपया, अर्थात दस हजार पौण्ड का दान दिया तो उसकी विशालता के अनुपात में लोग आश्चर्यचकित नहीं हुए, केवल इसीलिए न कि लोग सोचते हैं कि द्वारकानाथ के लिए दान देना, और वह भी बड़ी मात्रा में, एक स्वाभाविक बात है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हर संस्था के निर्माण में – ईसाई मिशनों को शायद छोड़ कर – जो देश की दशा को सुधारने के लिए स्थापित की गई हैं, उन्होंने अगुआई की है, कि शिक्षा का प्रसार करने में वे सबसे आगे रहे हैं, विशेष कर सबसे सफल विद्यार्थियों को वजीफे देकर मेडिकल कालेज की सरपरस्ती करने में उन्होंने उदारतापूर्वक ही धन से मदद नहीं कि, बल्कि बुद्धिमानी से भी...'

उसी दिन, अर्थात् 6 जनवरी 1842 को कलकत्ते के गण्यमान्य नागरिक, यूरोपियन और भारतीय दोनों ही, टाऊन हॉल में राजधानी के सबसे प्रतिष्ठित नागरिक को **सुखद यात्रा** की शुभकामनाएं देने के लिए एकत्र हुए। उनकी ओर से कलकत्ते के उच्च शासनाधिकारी[3] ने एक मान-पत्र भेंट किया। सार्वजनिक कार्यों के लिए दिये गये उनके अनेकानेक चंदों और अनुदानों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए, शिक्षा-प्रसार के लिए उनके सतत प्रयत्नों और इंगलैंड और भारत के बीच वाष्प-चालित जहाज़रानी की शुरूआत के वास्ते उनकी व्यक्तिगत कोशिशों की सराहना करते हुए मान-पत्र में आशा प्रकट की गई कि "आपके अथक परोपकारों, एक व्यक्ति के नाते जीवन के सारे रिश्तों और क्षेत्रों में आपके खरे और ईमानदार आचरण-व्यवहार के प्रति सार्वजनिक प्रशंसा का जो स्वर आज कलकत्ते में गूंजा है, वह इंगलैंड में भी प्रतिध्वनित होगा।" इस मीटिंग और मान-पत्र के उत्तर में द्वारकानाथ के शालीन भाषण की रिपोर्ट[4] प्रकाशित करते हुए **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने

13 जनवरी 1842 के सम्पादकीय में लिखा : "पिछले बृहस्पतिवार को टाऊन हॉल के अंदर द्वारकानाथ टैगोर के सम्मान में जो मीटिंग हुई थी, वह एक लम्बे अरसे तक याद की जायेगी, सिर्फ इसलिए नहीं कि उसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी, बल्कि लोगों के अपार उत्साह के कारण, जो उस मीटिंग को अनुप्राणित कर रहा था। इसमें समाज के सभी वर्गों के लोग शामिल थे, राज के अफसर और कर्मचारी जो सरकार के खास विश्वासपात्र हैं, अदालतों के वकील, व्यापारी और व्यवसायी, यूरोपियन और देशी, अमीर बाबू और हमारे शिक्षालयों के गरीब विद्यार्थी। निश्चित रूप से सारे समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली और एक स्वर से सब लोगों की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने वाली, ऐसी कोई भी मीटिंग अब तक हमारे टाऊन हॉल में नहीं हुई।"

मीटिंग में सम्मानित मेहमान से दो खास अनुरोध किए गये : एक तो यह कि अपने इंगलैंड प्रवास के दिनों में वे राममोहन राय की समाधि की उस उपेक्षा से रक्षा करें, जिसकी ओर उस दिन सुबह को ही **फ्रेंड ऑफ इंडिया** के सम्पादकीय ने ध्यान दिलाया है। और दूसरी यह कि आने वाली पीढ़ियों की खातिर वे किसी योग्य कलाकार से स्वयं अपना आदम-कद चित्र पेन्ट करायें और संगमरमर की एक आवक्ष-मूर्ति बनवायें।[5]

9 जनवरी 1842 को द्वारकानाथ अपने ही स्टीमर, **इंडिया** में अपने भतीजे चन्दर मोहन चटर्जी,[6] अपने निजी चिकित्सक डा० मैक्गोवन, अपने परिसहायक परमानंद मोयत्रा, तीन हिन्दू नौकरों और एक मुसलमान बावर्ची समेत इंगलैण्ड के लिए रवाना हुए। मित्रा का कहना है कि मुसलमान बावर्ची उच्च कोटि का रसोईया था और उसके पुलाव और शोरबे लंदन के चटोरों को बेहद पसंद थे, जो उनको 'द्वारकानाथ पुलाव' या 'शोरबा' कह कर पुकारते थे। इतना ही नहीं, कहा जाता है कि इस बावर्ची ने अनेक प्रतिष्ठित अंग्रेज घरानों के मुख्य **सूपकारों** को किस्म-किस्म के लजीज शोरबे तैयार करने की कला सिखायी थी।[7] इस स्टीमर पर द्वारकानाथ के अन्य सहयात्रियों में कलकत्ते के चीफ जस्टिस सर एडवर्ड रियान, द्वारकानाथ के मित्र एच.एम. पार्कर, रोमन कैथोलिक आर्कबिशप फादर कैरयू आदि भी थे। द्वारकानाथ के भाई रामनाथ और राममोहन राय के पुत्र राधाप्रसाद, जो शुरू के प्रोग्राम के अनुसार उनके साथ इंगलैण्ड जाने वाले थे, तथा अनेक दूसरे यूरोपीय और भारतीय मित्र भी सैण्डहेड्स तक उनके साथ गये, जहां से वे एक दूसरे स्टीमर **द्वारकानाथ** में बैठ कर घर लौट आये।

सौभाग्य से द्वारकानाथ ने अपनी यात्रा की डायरी रखी थी, जो उनके प्रथम जीवनीकार मित्रा को उपलब्ध हो गई थी और उन्होंने उसमें से खूब उद्धरण दिये हैं, बाद में उस डायरी का क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता। यह अनुमान किया जा सकता है कि डायरी खो गई है, जिस तरह द्वारकानाथ से संबंधित अन्य अनेक दस्तावेज खुद उनके ही वंशजों की अपने परिवार की प्रतिष्ठा के संस्थापक के प्रति

लापरवाही के कारण खो गये हैं। सौभाग्य से वे अपने बड़े बेटे और अपने मित्रों और साझीदारों को वहां से पत्र लिखते रहे थे, जिनमें से कुछ **फ्रंड ऑफ इंडिया** ने प्रकाशित किए थे। उन्होंने यात्रा के दौरान मार्ग में कौन-कौन से स्थान देखे और वे उन्हें कैसे लगे, यह जानने के लिए हमारे पास सिर्फ यही दो स्रोत हैं। वे सूक्ष्म-दृष्टा थे, जो नये दृश्यों और अनुभवों में भरपूर आनंद लेते थे और उन्हें पूरे उत्साह से बयान करने में सक्षम थे। उन दिनों पत्रों के पहुंचने में लंबा समय लगता था और उनके पत्रों के अवतरण पहली बार 1 सितंबर 1842 को ही प्रकाशित हो सके! उन्हें पेश करते हुए, सम्पादक ने लिखा :

'हमें द्वारकानाथ टैगोर के कुछ पत्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो उन्होंने मिश्र और यूरोप से गुजरते हुए लिखे थे और हमें उनमें से ऐसे अंश प्रकाशित करने की अनुमति भी प्राप्त हुई है जो पाठकों के लिए मनोरंजक सिद्ध हो सकते हैं। हम इस सुविधा का भरपूर लाभ उठा कर उनमें से कुछ अंश संकलित करके पहली किश्त प्रस्तुत अंक में छाप रहे हैं। वे पहले अक्लमंद हिन्दोस्तानी हैं जिन्होंने इन दृश्यों को देखा है, जो उनके अपने देश के दृश्यों से सर्वथा भिन्न हैं। और उन्होंने उनके मन पर जो प्रभाव डाला है और इस बारे में उन्होंने जो विचार कलम-बद्ध किए हैं, वे हमारे अधिकांश पाठकों को मनोरंजक लगे बिना नहीं रह सकते। इसलिए हम अपने पत्र में थोड़ा-सा स्थान देकर उन्हें प्रकाशित करने के लिए किसी क्षमा-याचना की जरूरत नहीं समझते।'

पहला पत्र (या उस का एक अंश) जो पायंट द गाल से 19 जनवरी, 1842 को लिखा था, इस प्रकार है : 'हम अभी अभी यहां पहुंचे हैं और चूंकि यहां पर हम बहुत थोड़े अरसे के लिए ही रुकेंगे और मैं इस बीच तट पर जाकर इस रमणीक द्वीप का अधिक से अधिक नजारा लेना चाहता हूं, इसलिए मेरा पत्र आवश्यकतावश संक्षिप्त ही होगा। जब से मैंने मद्रास छोड़ा है, मौसम प्रायः वैसा ही रहा है, जैसा पहले था, और चूंकि मैंने अब तक जहाजी मतली नहीं महसूस की, इसलिए सोचता हूं कि मैं इस अलामत से बचा रहूंगा। कल सुबह 10 बजे हमने पहली बार श्रीलंका को देखा, तब से हमारा जहाज उसके समुद्री तट के निकट से चल रहा है, जो पानी की सीमारेखा से लगा हुआ है और जहां नारियल के सघन वन हैं, और जहां वृक्षों से ढंकी पहाड़ियों, पर्वत-श्रृंखलाओं और उपत्यकाओं के सुंदर बदलते हुए मंजर दिखाई देते हैं। इतना सुंदर दृश्य मैंने पहले नहीं देखा। ......से कहना कि पुस्तकों से हर देश का ज्ञान प्राप्त करने का विचार कारगर साबित नहीं हो सकता, क्योंकि इस सुंदर द्वीप को देख कर मुझे जिस आनंद का अनुभव हुआ है, वह पांच सौ पुस्तकों में इसका सुंदर से सुंदर और वैविध्यपूर्ण विवरण पढ़ कर भी मुझे नहीं प्राप्त होता। इस बात को गांठ बांध लो कि कैसा भी वर्णन उतना सही अनुमान नहीं दे सकता, जितना प्रकृति की अपनी पुस्तक देती है। मुझे पूरा विश्वास होने लगा है कि **रामायण** में लंका के बारे में जो कहा गया है कि वह सोने की थी, वह बिल्कुल सच है।

हालांकि धरती सोने की बनी हुई नहीं है, लेकिन वह देखने में इतनी अधिक उपजाऊ है कि इस ज़मीन का हर बीघा ज़रूर सोने की छोटी खान होगा।'

उन दिनों वाष्प-चालित होने के बावजूद जहाज कितनी धीमी रफ्तार से चलते थे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 9 तारीख को रवाना होने वाली पार्टी को सैण्डहेड्स तक पहुंचने में एक दिन से अधिक लग गया और 15 तारीख को मद्रास तक पहुंचने में छः दिन, कोयला भरने में एक दिन से अधिक लगा, इसलिए 18 तारीख को जाकर लंका का समुद्र-तट नजर आया। लंका के बारे में अपनी टिप्पणी जारी रखते हुए अगले पत्र में जिस पर '**इण्डिया**, समुद्र से, जनवरी 27, 1842' की तारीख है, उन्होंने लिखा :

'जैसा कि मैंने लंका से लिखे पत्र में वादा किया था कि मैं अपनी यात्रा के बारे में अधिक विस्तार से लिखूंगा, वह मैं अब कर रहा हूं और अदन पहुंचने से पहले उसे समाप्त कर दूंगा, जहां मुझे आशा है कि हम बंबई के लिए जाने वाले स्टीमर के छूटने से पहले पहुंच जायेंगे। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं, हमें लंका का समुद्र-तट पहली बार 18 तारीख की सुबह 10 बजे दिखाई दिया था, और उसके किनारे-किनारे जहाज खेते हुए, हम वहां की सुंदर पर्वत-श्रृंखलाओं और उपत्यकाओं को देख कर आनंदित हुए थे, जो हरे-भरे सघन जंगलों और नारियल के बागानों से ऐन समुद्र-तट तक ढंकी हुई हैं। और इस प्रकार हम 19 तारीख को 1 बजे दोपहर प्वायंट द गाल पहुंचे। हमने एक पर्वत देखा, जिसे ऐडम्स पीक (आदम का शिखर) पुकारते हैं। कहा जाता है कि वह समुद्र-तल से 10 हजार फुट ऊँचा है, और लौकोक्ति के अनुसार उसकी चोटी पर आदम के पैर का निशान है जो बीस फुट लम्बा है। हमारे हिन्दू इतिहास के अनुसार तो, मेरा विचार है कि यह वही स्थान है, जहां **लंका** आने पर हनुमान ने पहली बार अपना कदम रखा था। किले का अग्रभाग समुद्र का सामना करने वाली चट्टान पर निर्मित हुआ है, और बंदरगाह की, जो बेहद खूबसूरत है, समुद्र में दूर तक आगे बढ़ी हुई तरंगरोधी कुदरती चट्टानें रक्षा करती हैं। उन पर पछाड़ खाती हुई लहरों का दृश्य काफी खौफ़नाक लगता है। मजबूत से मजबूत जहाज भी अगर तरंग-रोधी चट्टानों के बीच आ जाय तो एक क्षण में टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, लेकिन बंदरगाह तक पहुंचने का एक साफ और सुगम मार्ग भी है, हमने जैसे ही लंगर डाला, वैसे ही द्वीप के फलों और दूसरी वस्तुओं से लदी नौकाओं ने हमारे जहाज को घेर लिया। इन नौकाओं की आकृति विचित्र है और शायद मैं लिख कर तुम्हें यह बात साफ-साफ समझा भी नही सकूंगा।

'लेकिन तट पर उतर कर जिस बात ने सबसे पहले मेरा ध्यान आकर्षित किया वह था, कलकत्ते के घाटों के मुकाबले में कहीं ज्यादा साफ-सुथरा और आरामदेह घाट, और बढ़िया सड़कें भी। यहां के होटल और लोगों के रिहायशी मकान सभी एक-मंजिले हैं और हालांकि बड़े और शानदार नहीं हैं, फिर भी देखने में बड़े

स्वच्छ और साफ-सुथरे लगते हैं। किले के सिंहद्वार पर 1668 की तारीख खुदी हुई है, लेकिन वह इतनी अच्छी हालत में है कि लगता है अभी हाल में ही उसका निर्माण हुआ है। सारे नगर के गिर्द एक चारदिवारी है। गाल से लेकर कोलम्बो तक घोड़ागाड़ी की सड़क है। वह उनका सदर मुकाम है और करीब सत्तर मील की दूरी पर स्थित है। पूरे मार्ग के दोनों ओर नारियल के सघन बागान हैं। उनके यहां भी वही फल बहुतायत से होता है, जो हमारे यहां बंगाल में, अर्थात् आम, लेकिन वह मुझे कच्चे ही देखने को मिले, क्योंकि अभी उनके पकने में एक महीने की देर है। यहां के केले, पनस और अनन्नास, ये सभी फल बहुत उम्दा किस्म के हैं। मैंने पहली बार ब्रेडफ्रूट का पेड़ भी देखा, लेकिन चूंकि अभी मौसम नहीं है, इसलिए इन दिनों उस पर फल नहीं लगे। फूल तो तकरीबन उनसे मिलते-जुलते हैं, जो हमारे यहां बंगाल में होते हैं, लेकिन इनके रंग इतने चटक और बढ़िया हैं कि मैं तुम्हें उनके सौंदर्य का पूरा अहसास नहीं करा सकता, विशेष कर उस फूल का जिसे हम बंगाल में **जुब्बा** पुकारते हैं। बाजार भीतरी बंदरगाह की बगल में है और खूब साफ-सुथरा और समभुजकोणीय है।

'कुछ धर्म-परिवर्तन करके बने मुसलमानों और ईसाईयों के अलावा ये सब लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। कुछ डच लोगों के सम्मानित परिवार भी हैं। लड़कों और लड़कियों के लिए यहां दो स्कूल हैं, जो सुचारु ढंग से चल रहे हैं और हमारे कुछ यात्रियों ने उनकी मदद के लिए चन्दे के रूप में छोटी-छोटी रकमें भी दीं। यहां के निवासी आमतौर पर सुंदर, फुर्तीले और साफ-सुथरे हैं और उनकी आकृति में कुछ-कुछ मलय लोगों की छवि मिलती है। घर के नौकर (मर्द) अपने बालों के पिछले भाग में अंग्रेज औरतों की तरह कर्पर की बनी बड़ी-बड़ी कंघियां लगाते हैं। मैं लिख कर बयान नहीं कर सकता कि इस स्थान की यात्रा करके मुझे कितनी खुशी हासिल हुई है।'

मित्रा ने उनकी डायरी से उद्धृत करते हुए बताया है कि द्वारकानाथ ने लंका की लाल मछली का जिक्र करते हुए लिखा है कि वह '**कुठला** जैसी बड़ी होती है और समुद्र में छोटे हाथियों जितने बड़े सैंकड़ों कछुए' देखने को मिलते हैं।

11 फरवरी को **इण्डिया** स्वेज के बंदरगाह के घाट पर जाकर लगा। द्वारकानाथ और उनके साथियों ने स्टीमर से विदा ली, जो वापस कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। सारी पार्टी हिल्स होटल में ठहरी, जिसका वर्णन करते हुए द्वारकानाथ ने अपनी डायरी में लिखा कि वह 'अत्यंत बुरी जगह है।' अगले दिन उन्होंने बंद घोड़ा-गाड़ियों में रेगिस्तान पार करने की यात्रा शुरू की। यह यात्रा द्वारकानाथ को 'सड़क मार्ग से गया जाने की मेरी यात्राओं से ज्यादा आसान और मेरे बागीचे तक आने वाली डम-डम रोड से कहीं ज्यादा आरामदेह' लगी। रेगिस्तान के बीच से गुजरते हुए उन्हें पहली बार एक मरीचिका देखने का अनुभव प्राप्त हुआ, जिसका उन्होंने 'सबसे सुंदर दृश्य' कह कर वर्णन किया है। 14 फरवरी को वे काहिरा पहुंचे।

अपने पत्रों की तीसरी किश्त में उन्होनें बयान किया कि :

'हम 11 तारीख की सुबह को ही स्वेज पहुंच गये थे, लेकिन मैं वहां अपना सामान बंधवाने और उतरवाने में इतना व्यस्त रहा कि मुझे लिखने का समय ही नहीं मिला। 12 तारीख को हम लोग एक बंद गाड़ी में बैठ कर, जिसमें चार अरबी घोड़े जुते थे, स्वेज से चल पड़े और उस दिन हमने करीब चालीस मील का सफर तै किया। यह सफर कुछ ज़्यादा ही लम्बा था और हम थोड़ी-सी थकान महसूस कर रहे थे। इसलिए अगले दो दिनों तक हमने सफर की मंजिलें छोटी कर दीं, जो बहुत खुशगवार साबित हुआ, और हमें रेगिस्तान के बीच सफ़र करने में कोई दिक्कत नहीं हुई, हालांकि इस बारे में क्या-क्या नहीं सुनने को मिला था। जिन बंगलों में हम ठहरते थे, वे बहुत अच्छे थे और हमारे यहां के डाक बंगलों से कहीं बेहतर थे।

'सुबह के नाश्ते के बाद हम बाहर सैर करने के लिए निकल जाते हैं और फिर सारे दिन गाड़ी में सफ़र करते हैं, और जो अद्‌भुत और आश्चर्यजनक दृश्य मैं देख चुका हूं, उनका लिख कर वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। बाजारों, किलों, मस्जिदों, महलों, बागों, हम्मामों, पिरामिड़ों और सैंकड़ों दूसरी चीजों का कहना ही क्या है। देख कर मैं चकित हो गया हूं। जब मैंने **सूब्रा** में पाशा का बाग देखा और उसके अंदर बनी इमारतें, रौस-पट्टियां, संगतरों के कुंज, फूलों की क्यारियां और फव्वारे देखे और उनकी पूर्ण सुंदरता और भव्यता का अहसास किया तो मैंने काहिरा के बारे में 'अरब की हजार रातें' में जो कुछ भी पढ़ा था, वह मेरी आंखों के आगे प्रत्यक्ष था। मैं इस समय हर मंजर और हर चीज का निरीक्षण करने में इतना व्यस्त हूं कि मैं इस समय तुम्हें उनका वर्णन करके नहीं बता सकूंगा, और यह काम माल्टा पहुंचने तक के लिए टालना पड़ेगा, क्योंकि वहां मेरे पास काफी वक्त होगा और कोशिश करूंगा कि मैंने जो विभिन्न दृश्य देखे हैं, उनकी एक रूपरेखा ही तुम्हें दे सकूं।'

24 फरवरी को उनकी पार्टी ने सिकन्द्रिया के लिए स्टीमर पकड़ा। नील दरिया का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा कि वह 'एक सुंदर नदी है, विस्तार में गंगा से आधी' और 'उसका जल अत्यंत निर्मल है।' अगले दिन वे सिकंद्रिया पहुंच गये, जहां से उन्होंने 28 फरवरी को लिखा :

'होटल बड़ा आरामदेह है और यूरोपीय ढंग का है, एक ही चीज जिसकी कमी हमें अखरी, वह थी कमरों में आग की बुखारी। जिस चौक में सारे यूरोपियन लोग रहते हैं, उसके तिमंजिले मकान बड़े सुंदर हैं और काहिरा की तंग गलियों के अनुभव के बाद बेहद साफ-सुथरे नजर आते हैं। लेकिन पुराना शहर औरों जैसा ही है।

'मैं अभी-अभी पाशा के नये महल से लौटा हूं, जो दोनों दिशाओं से समुद्र से घिरे दीप्त स्तंभ पर स्थित है। महल बड़ा शानदार है, जिसे फ्रांसीसी कलाकारों ने सजाया

है और काहिरा में मैंने जो कुछ भी देखा है उससे कहीं बेहतर है। उसके नज़दीक ही सागर-तट पर एक सुरुचिपूर्ण हम्माम है। जिस इमारत में यह हम्माम है वह समुद्र में साठ फुट अंदर तक प्रक्षेपित है और उसमें तीन तरफ से एक चौकोर हौज में पानी आता है जो करीब चालीस फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा है और चार फुट गहरा है। मैं जितना ही आगे जाता हूं, हर चीज और भी ज्यादा आश्चर्यजनक और मनोरम होती जाती है, हर नई चीज, पहली चीज से अधिक सुंदर।'

'छत्तीस साल बाद, 1878 में, द्वारकानाथ के सबसे छोटे पोते रवीन्द्रनाथ ने, जो उस समय सत्रह वर्ष के थे, अपने बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ, या उनके अनुरक्षण में सिकन्द्रिया तक लगभग इसी मार्ग का अनुसरण किया, फर्क सिर्फ इतना था कि वे बम्बई से जहाज पर सवार हुए थे, अपेक्षया एक बहुत बड़ा पी. एण्ड ओ. जहाज जो उनके दादा के जहाज **इण्डिया** के मुकाबले बहुत जल्दी ही स्वेज पहुंच गया था। उन्हें घोड़ों द्वारा खींची जाने वाली बंदगाड़ी में बैठ कर रेगिस्तान नहीं पार करना पड़ा, उस समय स्वेज से काहिरा तक की रेलवे लाइन बन चुकी थी। यह उनके दादा ही थे, जिन्होंने 1845 में अपनी दूसरी इंगलैण्ड-यात्रा के दौरान मोहम्मद अली पाशा को बार बार समझाकर राजी करने की कोशिश की थी कि स्वेज से काहिरा को जोड़ती हुई एक रेलवे लाइन का निर्माण करें। बारह बरस बाद एक बार फिर 1890 में दोनों पोते इंगलैण्ड जाने के लिए बंबई से जहाज में बैठ कर स्वेज के लिए रवाना हुए। लेकिन तब स्वेज नहर खुल गई थी। पहली यात्रा में तरुण कवि ने कई पत्र अपने घर को लिखे थे, जो बाद में प्रकाशित हुए, यद्यपि वे प्रकाशनार्थ नहीं लिखे गये थे। अपनी दूसरी यात्रा के दौरान उन्होंने अपनी डायरी रखी। वह भी बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। दादा के अनुभवों और टिप्पणियों की, जो एक दुनियादार और सफल व्यापारी थे और जो केवल व्यापार, या सामाजिक आवश्यकतावश ही क़लम का इस्तेमाल करते थे, उनके पोते के अनुभवों और टिप्पणियों से, जो एक साहित्यिक जीनियस के रूप में विश्वविख्यात होने वाला था, तुलना करना दिलचस्प भी होगा और उनके व्यक्तित्वों को उद्‌घाटित करने वाला भी। लेकिन यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है कि सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति और नवीन और अपरिचित के गुणों की गरमजोशी से तारीफ करने की क्षमता में पूर्वज अपने वंशज के मुकाबले में हेठा नहीं सिद्ध होता।'

बहरहाल, फिर पूर्वज की यात्रा का विवरण शुरू करें। उनका चौथा पत्र, जो **फ्रेंड ऑफ इंडिया** में प्रकाशित हुआ, माल्टा से 19 मार्च को लिखा गया था :

'काहिरा और सिकन्द्रिया में जो कुछ भी देखने लायक था, देखने के बाद अब मैं माल्टा में क्वारेन्टाइन कर दिया गया हूँ। हमारे ठहरने के कमरे (वे डन्सफोर्ड के रॉयल होटल में ठहरे थे) खूब आरामदेह हैं; यहां से सामने नगर और समुद्र का दृश्य बड़ा मनोहर है और घूमने के लिए एक बड़ा सुहावना स्थान है। हमारे कमरे अच्छी तरह सजे हुए हैं और बुखारी में दिन-रात आग जलती रहती है, और यहां

हर प्रकार का वह आराम उपलब्ध है जो अपने घर में मिल सकता है। दो महीनों तक समुद्र और ज़मीन पर यात्रा के कष्ट उठाने के बाद मुझे ज़रा भी मलाल नहीं कि यहां कुछ दिन विश्राम करना पड़ेगा, क्योंकि मैं अपने पत्रों को पूरा कर सकूँगा और जिन देशों की यात्रा करनी है उनके बारे में पढ़ कर अपनी जानकारी बढ़ा सकूंगा। जहां तक हमें नजर आता है, यह स्थान अपराजेय है। शहर बड़ा साफ-सुथरा नजर आता है, और एक पहाड़ी पर बसा है, जिसके गिर्द बहुत मजबूत और मोटी दीवार से किलेबंदी की गई है। लगता है जैसे बंदरगाह कृत्रिम रूप से बनाया गया है, जो द्वीप को विभिन्न दिशाओं में जैसे नहरों की तरह काटता है। अब हम बहुत कुछ यूरोपीय मौसम में पहुंच गये हैं, और हालांकि शयन का समय है, लेकिन मौसम बेहद परिवर्तनशील है, दो घंटों तक भो एक जैसा नहीं रहता। लोगों का कहना है कि मुझे इससे ज्यादा सरदी का आगे सामना नहीं करना पड़ेगा। ऐसी सूरत में मुझे सरदी-जुकाम से पीड़ित होने का कोई डर नहीं रहा, हालांकि कलकत्ते में लोगों ने मुझे काफी डराया था। हम 9 बजे नाश्ता करते हैं, फिर सैर के लिए निकल जाते हैं और धूप का आनंद लेते हैं, 12 बजे हल्का-सा जलपान करते हैं और फिर कुछ देर सैर करते हैं, 4 बजे डिनर खाते हैं और फिर देर तक शहर की फसील पर टहलते हैं और चाय के वक्त डेरे पर लौटते हैं। इन कामों के बीच का समय पढ़ने और लिखने में व्यतीत होता है और शाम को करीब एक दर्जन लोगों की पार्टी मेरे बड़े कमरे में एकत्र होती है और हम गिटार, प्यानो और गायन के साथ बड़े मजे से शाम गुजारते हैं। इस तरह तुम देखते हो कि इस क्वारेंटाइन में रह कर भी, जिससे मुझे डरना सिखाया गया था, हमारा वक्त आनन्द से कट रहा है। हम यहां से शायद पहली तारीख को बाहर निकलेंगे और नेपल्स जायेंगे। वहां कुछ दिन ठहर कर रोम जायेंगे और इस तरह फ्लोरेंस, वेनिस वगैरह होते हुए काले पहुंचेंगे और फिर डोवर और लंदन।'

अगला पत्र माल्टा में वेलेट्टा से उन्होंने 3 अप्रैल को लिखा :

'अच्छा है कि मैं तुम्हें यह भी बता दूं कि क्वारेन्टाइन से रिहाई पाने के बाद से घूमता-घामता रहा हूं। पहली अप्रैल को हम लोग मैनुअल के लिए एक पुल को पार करके रवाना हुए, जो उसको मुख्य द्वीप से जोड़ता है, और वेलेट्टा के मार्ग में उस देश के सुरम्य दृश्यों का आनन्द लेता रहा। यहां के गर्वनर सर एच. बोवेरी के नाम लार्ड ऑकलैण्ड के पत्र ने मुझे हर प्रकार का आदर-सम्मान प्राप्त करा दिया है और यहां पर जो कुछ भी देखने योग्य है, उसको देखने का अवसर दिया है। यह जगह बड़ी नहीं है, लेकिन अपार सौंदर्य की वस्तुओं से भरी हुई है। सुंदर गिरजाघर और सामंतों और परमाधिकारियों के शानदार मकान, उनमें टंगे कला-चित्र, उनके मकबरे और उन पर की गई पच्चीकारी के नमूने, उनके शास्त्रागार आदि सभी मुझे बेहद दिलचस्प लगे हैं और मुझे सिर्फ एक बात का ही मलाल है कि यहां मेरे ठहरने की इतनी कम अवधि मुझे अपनी उत्सुकता को सन्तुष्ट करने से वंचित कर देगी। मैं

सुबह से लेकर रात तक घूमता रहता हूं और हर मोड़ पर मुझे कोई न कोई चीज तारीफ के काबिल मिल जाती है। अगर ऐसी छोटी-सी जगह में इतनी दिलचस्प वस्तुएं हैं तो मुझे डर है कि अपने सीमित समय में योरप में देखने योग्य जितने स्थान और वस्तुएं हैं, उनमें से बहुत कम ही को देख पाऊंगा। सेन्ट जॉन के गिरजाघर को देख कर मुझे कैथोलिकों के उपासना-गृहों की भव्यता और वैभव का कुछ-कुछ अनुमान हो गया है। सामन्तों ने इसका निर्माण किया था और यह सोना, चांदी और संगमरमर के अलंकारों, कलाचित्रों, पच्चीकारी और कीमती हीरे-जवाहरातों से भरा पड़ा है, और इस पर विशाल धन खर्च हुआ होगा। सारी इमारत का प्रभाव अत्यंत भव्य और शानदार है, लेकिन मैं विस्तार से इसका वर्णन करने की कोशिश नहीं करूंगा, क्योंकि मैं इसके बारे में जो कल्पना कर सकता था उससे यह कहीं ज्यादा सुंदर है। फिर भी लोगों का कहना है कि रोम के सेंट पीटर गिरजाघर से इसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। वह कैसा होगा, मैं इसका अनुमान तक नहीं कर सकता, क्योंकि कल का अधिकांश दिन मैंने सेंट जॉन के गिरजाघर में ही बिताया, फिर भी लगा कि मैं उसे जी भर कर नहीं देख सका। हम अपने देश में ठाकुरबाड़ियों (मंदिरों) के सौंदर्य और उनके निर्माण में खर्च हुई विशाल राशि का जिक्र करते हैं, मुसलमान अपनी मस्जिदों और तुम अपने गिरजाघरों का, लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि उनमें से कोई भी कैथोलिकों के उपासना-गृहों की तुलना में एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकते।

'कल रात मैं ऑपिरा (गीत-नाट्य) देखने गया। मेरे लिए यह एक और नवीनता थी, और थियेटर की साज-सज्जा देख कर मुझे बड़ा संतोष हुआ। एक के ऊपर दूसरे सुंदर कक्षों की पंक्तियां इतनी आरामदेह और सुविधाजनक हैं कि मुझे यह सोच कर दुख हो रहा है कि हमारे देश में भयंकर गर्मी के कारण ऐसी व्यवस्था संभव नहीं है। खैर, याद आया, कल मैंने नौसेनाध्यक्ष समेत **क्वीन** (जहाज) को यहां पहुंचते देखा। ब्रिटिश नौसेना का यह सबसे बड़ा जहाज है, जिसमें 120 तोपें हैं। देखने में बहुत शानदार है और कल मुझे दिखाने के लिए उस पर ले जाया जायेगा, जिससे प्राप्त होने वाले आनंद की मैं पूर्वकल्पना कर रहा हूं।'

8 अप्रैल को आगे लिखते हुए : 'मैं **क्वीन** देखने के लिए गया और इस जहाज की शानदार साज-सज्जा को देखकर केवल संतुष्ट ही नहीं हुआ, बल्कि वहां मुझे अपने पुराने मित्र नौसेनाध्यक्ष सर एडवर्ड ओवर और उनकी पत्नी से मिलने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। और चूंकि मैं गर्वनर के साथ गया था, इसलिए मैंने वह हर चीज जो एक प्रथम कोटि के युद्ध-पोत में देखने योग्य हो सकती है, देखी । यहां पर हमें लार्ड, ड्यूक और बारों, नौसेना और फौज के ऊंचे अफसर जैसे लोग ही मिले, और वे लोग शहरी लोगों के साथ बड़ी नम्रता और भद्रता से पेश आते हैं। अपनी सेहत सुधारने की गरज से बहुत से अंग्रेज यहां आते रहते हैं। दरअसल यह जगह अंग्रेजों के लिए वैसी ही है, जैसी केप ऑफ गुड होप अन्य यूरोपियनों के लिए है।

क्वीन को देखने के बाद अब मैं शायद ही किसी और युद्ध-पोत को देखने जाऊंगा, क्योंकि यह नौसेना का सबसे बड़ा जहाज है। मैंने पिछले पत्र में माननीय मिस्टर फ्रेयर से अपनी मुलाकात के बारे में लिखा था (लगता है कि **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने इस पत्र को प्रकाशित नहीं किया)। उन्होंने मेरी बड़ी देखभाल की। जब मैं उनके देहाती बंगले पर गया तो वे बड़े प्रसन्न हुए। वहां उनका सुंदर बाग है, जो एक पहाड़ी पर है और नीचे से ऊपर की चोटी तक सीढ़ीदार जमीन पर बड़े करीने से लगाया गया है जहां से शहर और देहात का मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। मैं जहाजी मालघाट और शस्त्रागार भी देख आया हूं। और वहां की सुव्यवस्था देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। काश हमारे मित्र रुस्तमजी भी यहां होते और कुछ सीख सकते। मेरा ख्याल है कि यह घाट उसी शैली का है जिस शैली के इंगलैण्ड के विशाल जहाजी घाट हैं, यह सिर्फ उनसे छोटे पैमाने पर बनाया गया है। आज सुबह इन्फेन्ट स्कूल (शिशु-विद्यालय) देख कर आश्चर्यचकित रह गया और खुश भी हुआ। इसकी स्थापना हुए अभी छः महीने ही हुए हैं, लेकिन इस छोटी-सी अवधि में बच्चों ने जितनी तरक्की की है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है, और यह स्कूल इस ढंग से चलाया जाता है कि सारे बच्चों को वहां रहना प्रिय लगता है, न कि एक बंधन। कल मैं **सिट्टा वीचिया** गया था, जो प्राचीन फिनीशियन काल में इस द्वीप की राजधानी था। यह स्थान यहां से करीब छः मील की दूरी पर है। चूंकि उस पर सामंतों का कब्जा था, इसलिए उन्होंने यहां बहुत सुंदर गिरजाघर बनाया है, जिसमें कुछ घंटे शांति और सकून से गुजारे जा सकते हैं। चित्र और अलंकार मुख्यतः संत पॉल के जीवन का चित्रण करते हैं, जिनको यह गिरजा समर्पित है, लेकिन यह उतना बड़ा नहीं है जितना संत जॉन का गिरजाघर। यहां पर कैथोलिक पादरियों का कालेज, कब्रों के तहखानों और संत पॉल की गुफा भी है। नगर इस द्वीप की सबसे ऊंची पहाड़ी पर है और यहां से चारों ओर का दृश्य अत्यंत भव्य दिखाई देता है। यहां का मौसम इतना सुहावना और स्वच्छ है कि हम यहां से सिसली के एटना पर्वत को स्पष्ट देख सकते हैं, हालांकि वह 100 मील की दूरी पर है। यहां पर मैंने अपना समय इतनी खुशी और आनन्द में गुजारा है और हरेक ने मेरी सुख-सुविधा का इतना ध्यान रखा है कि मुझे यह स्थान छोड़कर जाने का विचार करके अफसोस-सा हो रहा है, लेकिन मुझे जाना तो होगा ही, एक-दो दिन में।'

11 अप्रेल को वे एक ब्रिटिश स्टीमर **पोलीफेमस** द्वारा माल्टा से इटली के लिए रवाना हुए। मार्ग में उन्हें तूफानी मौसम का अनुभव करना पड़ा और वे 14 अप्रैल को नेपल्स पहुंचे, जहां से उन्होंने 20 अप्रैल को अगला पत्र लिखा :

'सिसली द्वीप, जिसका सब से ऊंचा पर्वत एटना है, और मेसीना का सुंदर नगर, एओलीन का टापू और जलते हुए स्ट्रॉम्बोली देखने के बाद मैं अब सही-सलामत इस पॉम्पीआई के खंडहरों और नगर के सुंदर स्थानों को देखने में व्यस्त हूं। पहाड़ी

के ऊपर से नजर आने वाला दृश्य, राजप्रासाद, जल-प्रपात, गिरजाघर, म्युजियम, मूर्तियां, कला-चित्र, पुस्तकालय, अनाथालय, अस्पताल, बाग-बगीचे, कान्वेन्ट और धार्मिक मठ – दरअसल, इतनी चीजें थोड़े से समय में देखनी हैं कि मैं उन्हें जल्दी में सरसरी निगाह से ही देख रहा हूं। अब तक मैंने योरप के जितने शहर देखे हैं, उनमें नेपल्स निश्चय ही सबसे सुंदर है। कहते हैं कि अनिन्द्य सौंदर्य से परिपूर्ण इतनी वस्तुएं समूचे महाद्वीप के किसी भाग में एक ही स्थान पर नहीं हैं। तापमान कुल 64 डिग्री है, और हम जिस होटल (विक्टोरिया) में ठहरे हैं उसकी साज-सज्जा इतनी बढ़िया है कि कलकत्ता की सारी सज्जा उसके आगे हेच है। जहां तक लोगों की चहल-पहल का संबंध है, मैं तुम्हें केवल इतना ही बता सकता हूं कि दिन और रात सड़क से सैंकड़ों गाड़ियां हर समय गुजरती रहती हैं। यहां की मुख्य सड़कें हमारे कलकत्ता की सड़कों से तीन गुना चौड़ी हैं, धूल का नामोनिशान नहीं है, सारी सड़कें पक्की हैं और सड़क के दोनों ओर पैदल यात्रियों के लिए पक्की रौस-पट्टियां हैं। प्रायः हर दुकान गैस की रोशनी से जगमगाती हैं, शाम के वक्त यह दृश्य कितना सुंदर लगता है। कुछ कॉफी हाऊसों में तो रोशनी का इतना अच्छा प्रबंध है कि मैं एक शाम वहां पर गुजारना चाहता हूं। सैन कार्लो का थियेटर योरप का सबसे बड़ा थियेटर है, जहां तक उसकी इमारत और उसके अंदर की अन्य कलात्मक चीजों का संबंध है, उनका वर्णन करने की जरूरत नहीं है। वहां का संगीत और फ्रांसीसी बैले-नृत्य की सैंकड़ों सुंदर नर्तकियों और शानदार नर्तकों का रंग-मंच पर होना ही एक अजनबी व्यक्ति को पागल बनाने के लिए काफी है, इसलिए इसके बाद कलकत्ते के थियेटरों को अलविदा! मैंने यहां पर एक रेलगाड़ी देखी; ख्याल करो कि मेरे मन में क्या-क्या भाव उठे होंगे, जब एक ट्रेन मेरी गाड़ी के करीब से ही गुजर कर गई। इस चर्चा को अभी स्थगित करके रोम के लिए रख रहा हूं। चूंकि मैं अपनी ही चार घोड़ो की गाड़ी में यात्रा कर रहा हूं, जिन्हें हर दस मील पर बदलना पड़ता है, इसलिए मैं अनुमान करता हूं कि मैं कल सुबह, 23 अप्रैल को, रोम पहुंच जाऊंगा। हम दिन में ही कुछ समय तक यात्रा करते हैं और रात को विश्राम करते हैं।'[10]

नेपल्स ने अपनी सुंदर खाड़ी और विसूवियस पर्वत के कारण, जो नगर के हर भाग से देखने पर 'एक परदेसी के लिए सुंदर दृश्य' पेश करता है, और थियेटरों, महलों और जगमगाती दुकानों से भरपूर मुख्य सड़क तोलेदो ने उनको प्रभावित किया था। लेकिन रोम ने उनको आश्चर्यचकित कर दिया। 23 अप्रैल को पहुंच कर उन्होंने 26 अप्रैल को अगला पत्र लिखा :

'दो दिन के अच्छे सफर के बाद, हम 23 अप्रैल की सुबह यहां पहुंचे। एक दिन में हमने घोड़ागाड़ी से 70 मील का सफर तय किया, बिना जरा भी थकान महसूस किए, इससे तुम अनुमान कर सकते हो कि मेरा स्वास्थ्य कितना अच्छा हो गया है, क्योंकि भारत में तो बैरकपुर तक जाने में ही थकान से चूर हो जाता था। सारे रास्ते में

देखा कि ज़मीन अत्यंत उपजाऊ और हरी-भरी है, खूब मेहनत से जोती-बोई गई है, और सच तो यह है कि लगता था हम एक बागीचे के बीच से गुजर रहे थे। सड़क बहुत बढ़िया थी, सारे रास्ते, खूब चौड़ी, सख्त और सपाट, और जब वह घाटियों में से या पहाड़ों के गिर्द वर्तुलाकार घूमती हुई उनके ऊपर से गुजरती तो बड़ा ही मनोरम और शानदार दृश्य देखने को मिलता। चूंकि इतनी ऊंचाइयों पर होकर यात्रा करने का यह मेरा पहला अनुभव था, इसलिए कभी-कभी नीचे की ओर देख कर घबराहट होती और मेरा सिर चकरा जाता, लेकिन गाड़ी बिना हचकोले खाये इतनी आसानी से चल रही थी जितनी हमारे स्ट्रैण्ड या चौरंगी रोड पर भी नहीं चलती। इस नगर के बारे में मैं अधिक नहीं कह सकता, क्योंकि इसके सौंदर्य का सही अनुमान करने के लिए इसे देखना जरूरी है। विवरणों द्वारा इसके सौंदर्य की एक धुंधली-सी तस्वीर ही खींची जा सकती है। यहां पर हर चीज एक विशाल पैमाने पर है, और माल्टा में संत जॉन के गिरजाघर को, और नेपल्स के गिरजाघरों को भी देख कर मैं जो इतना खुश हुआ था, वे सब संत पीटर के गिरजाघर की तुलना में नगण्य हैं, और जो आकार में उनसे करीब बीस गुना बड़ा है और भव्यता और अलंकरण में भी उनसे कहीं ज्यादा शानदार और श्रेष्ठ है। एक आदमी इसे रोज जाकर देख सकता है, और उसे हर रोज इसमें नयी-नयी खूबियां नजर आ सकती हैं। ऐसे ही यहां के म्यूजियम, यहां की लाइब्रेरी, यहां के महल, यहां की नदियां, यहां की मूर्तियां, यहां के कलाचित्र, यहां के फव्वारे, दरअसल हर चीज या अन्य सभी चीजें हैं और मैं तो कहूंगा कि सौंदर्य और भव्य विशालता की दृष्टि से रोम अद्वितीय है। यहां का मौसम अत्यंत सुहावना है, आकाश मेघहीन है और स्वच्छ है और तापमान केवल इतना शीतल है कि पंखे की जरूरत नहीं पड़ती और शाम का मजा हम खुले में बैठ कर लेते हैं। अस्वस्थ भारतीयों के लिए ऐसी ही जलवायु चाहिए, न बहुत गर्म, न बहुत सर्द। अब मैं निश्चित रूप से सोचने लगा हूं कि मुझे रोम से अधिक सुंदर जगह देखने को नहीं मिलेगी। मैं जो भी खास चीज देखता हूं उसके बारे में नोट करता जाता हूं, और जब हम सब मिलेंगे, तब हम उनको पढ़ने का आनन्द लेंगे, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यह वर्णन वास्तविकता के मुकाबले में अपर्याप्त और तुच्छ होगा। कल मैं यहां पर अपने एजेन्ट (प्रिंस तॉरलोनिया) से मिलने गया, जिसकी सालाना आमदनी, उसकी बैंक के अलावा 95,000/- पौण्ड है, और उसका गिनती का दफ्तर एक शानदार महल में है, जो मूर्तियों और पच्चीकारी के भित्ति-चित्रों से खूब सजाया गया है। हम जिस किसी मूर्तिकार या कलाकार की दुकान पर भी गये, वहां मालुम हुआ कि वह तॉरलोनिया के लिए काम कर रहा है। वह अपने शहर और देहात के घरों पर अपार राशि खर्च करता है, मगर साथ ही वह बड़ा कर्मठ भी है। और रोज नियमपूर्वक 10 बजे से 4 बजे तक अपने गिनती के दफ्तर का काम-काज देखता है, विनम्रतापूर्वक अपने निर्वाचकों से मिलता है और उनकी शिकायतों पर पूरा ध्यान देता है। वह और उसके पार्टनर मुझे

दो बार मिलने आये हैं, और उन्होंने हमारा आदर-सत्कार करने में कोई कमी नहीं रखी। आदमी के पास अगर पैसा है तो उससे छुटकारा पाने की यह सबसे माकूल जगह है – ललित कलाओं, मूर्तिओं और पच्चीकारी की सुंदरतम वस्तुओं को खरीद कर। लेकिन मैं... की सलाह की बहुत कद्र करता हूं और चीजें खरीदने से हाथ रोक लेता हूं, हालांकि प्रलोभन काफी प्रबल है। आज तीसरे पहर मुझे पोप से मिलाया गया, जो एक अच्छे, आदरणीय किस्म के बुर्जुग हैं। उन्होंने बड़ी शालीनता से हमारा स्वागत किया और लगता था कि अपने जीवन-काल में रोम की यात्रा करने वाले प्रथम भारतीय से मिल कर वे काफी प्रसन्न थे। उन्होंने अपने महल के पुस्तकालय में हमारा स्वागत किया था। इस पुस्तकालय का हॉल इतना बड़ा है कि आप एक सिरे से दूसरे सिरे तक मुश्किल से ही देख सकते हैं और यह सारा पुस्तकों और पाण्डुलिपियों से भरा हुआ है। कहते हैं कि इस महल में 12,000 कमरे हैं, जिसमें पुराने महान कलाकारों की बनायी मूर्तियां और चित्र भरे हुए हैं।'

मित्रा ने निस्संदेह द्वारकानाथ की डायरी के आधार पर ही लिखा है कि उन्हें पोप से रोम के इंग्लिश कालेज के प्रिंसिपल ने मिलाया था। द्वारकानाथ ने पवित्र पिता (पोप) से अपनी पगड़ी न उतारने पर क्षमायाचना करते हुए बताया कि हमारे देश की प्रथा के अनुसार महामान्यों से मिलते समय पगड़ी पहने रहना आदर की निशानी है, जिस तरह ईसाई देशों में टोपी उतार कर मिलना। शाम को द्वारकानाथ कर्नल कॉल्डवेल की पार्टी में ले जाये गये, जहां उनकी मुलाकात प्रशा के प्रिंस फ्रेडरिक और ज्योतिर्विद श्रीमती सोमरवील से हुई। कोलोसियम देख कर वे प्रभावित तो काफी हुए, लेकिन यह याद किए बगैर न रह सके कि 'किसी जमाने में यह हजारों लोगों की कराहों और चीखों से गूंजता रहता था।'[11]

29 अप्रैल को उन्होंने रोम से ही फिर लिखा : 'कल के दिन मैं बहुत व्यस्त रहा, पोप के क्विरीनॉल वाले महल, कला-चित्रों की डोरियन गैलरी, सबसे अधिक सम्मानित मूर्तिकारों और चित्रकारों के कुछ स्टूडियो और प्रिंस तॉरलोनिया की शानदार कोठी देखने गया। यह एक छोटी-सी सुंदर इमारत है, जिसे बेशकीमती चीजों से सजाया गया है, ताकि वह पोम्पीआई के प्राचीन घरों जैसी लगे। कमरे छोटे हैं, लेकिन उनकी भीतों पर टंगी कलाकृतियां और फर्नीचर आदि, उन सब से बेहतर हैं, जो हमने काहिरा से लेकर यहां तक देखे हैं और चित्रों और पच्चीकारी की सुंदरता इस जगह को इतनी खूबसूरती और पूर्णता प्रदान करती है, जितनी कल्पना की जा सकती है। इर्द-गिर्द की जमीनों को ध्वंसावशेषों और मिश्र के सूच्याकार स्तंभों का प्रतिरूप बनाया गया है, जहां एक साफ-सुथरा छोटा-सा गोथिक शैली का गिरजाघर है, टूनामिन्ट की सूचियां हैं जिन पर सौंदर्य की रानी का मण्डप खड़ा है, एक अलहम्ब्रा है, जिसके केन्द्र में एक फलक है, जो गायब हो जाता है और फिर खाद्य-पदार्थों से लद कर लौट आता है। यह नकली चट्टानों पर स्थित है, जो मिल कर एक सुंदर कृत्रिम गुफा बनाती है। बगीचे का थियेटर, जो अभी बन

कर पूरा नहीं हुआ, लगता है, काफी सुंदर होगा। एक बहुत साफ-सुथरा अखाड़ा भी है और उसकी बगल में एक ग्रीष्म-सदन भी है, जिसे कीमती साजो-सामान से सजाया गया है। इस स्थान पर कितना धन व्यय किया गया है, इसका पूरा अंदाज लगाना मेरे लिए संभव नहीं है, क्योंकि इसकी घुड़सालें भी महल जैसी हैं, जिनकी चरनियां भी संगमरमर की हैं। इसको कहते हैं व्यापारी! मैं कल सुबह तड़के ही यहां से चल दूंगा और चूंकि अब मार्ग में देखने को कुछ ज्यादा नहीं है, इसलिए मैं जल्दी से जल्दी लंदन पहुंचने की कोशिश करूंगा, और अपना अगला पत्र वहां से ही लिखूंगा।'

लेकिन उन्होंने बीच में एक पत्र लिखा, 20 मई को इन्सब्रुक से, इन जिसमें उन्होंने केवल उन नगरों का जिक्र मात्र किया है जो उन्होंने मार्ग में देखे थे, फलोरेंस, बोलोग्ना, पदुआ और वेनिस। खेद की बात है कि वे फ्लोरेंस में अधिक नहीं घूमे-फिरे, जो इतालवी पुनर्जागरण का मूल गढ़ था। अपनी डायरी में उन्होंने जिक्र किया है कि उन्होंने वीनस द मेडिसी की मौलिक प्रतिमा को जी भर कर देखा था, जिसके मुकाबले की सुंदर प्रतिमा कहीं नहीं मिलती। एक व्यापारी की पैनी दृष्टि से उन्होंने कुछ 'पच्चीकारी की मेजें देखीं जिनकी कीमत डेढ़-डेढ़ लाख थी।' यह नोट करने की बात है कि इस पत्र में उन्होंने पहली बार साधारण लोगों की हालत के बारे में लिखा। 'टस्केनी में कालेज तक साफ सुथरे और अलंकृत हैं, और किसानों की पोशाक और आकृति से लगता है कि वे सुख-सुविधाओं के आदी हैं, जो उस जगह कभी नहीं लग सकता जहां किसान बंधकों की अवस्था में हैं।' क्या इस बात ने उन्हें स्वयं अपने देश के किसानों की अवस्था पर सोचने के लिए बाध्य किया? लेकिन द्वारकानाथ राममोहन राय नहीं थे। वे तो रोम से बाहर प्रिंस तॉरलोनिया की कोठी के वैभव से अभिभूत थे, न कि आम लोगों की अवस्था जानने के इच्छुक। लेकिन दृश्यों के सौंदर्य पर, चाहे वे कुदरती हों या मनुष्य-निर्मित, उनकी दृष्टि रमने से नहीं रहती थी।

'वेनिस एक दिलचस्प और विचित्र जगह है। इसकी सारी सड़कें दरअसल नहरें हैं। मकान और इमारतें लगता है जैसे पानी में से उगी हों और आप एक घर से दूसरे घर तक गोंडोलों (छोटी, सजी-सजाई नौकाएं) में बैठ कर जाते हैं। उन स्थानों के शोरगुल और चहल-पहल के बाद जहां मैं अब तक गया हूं, एक ऐसे स्थान में होना जहां न घोड़े हैं, न गाड़ियां और न चलने-फिरने के लिए सड़कें, मन पर एक विचित्र प्रभाव डालता है।' गैलरी में उन्होंने टिशियन-कृत डोजेज के वे पोर्टरेट चित्र देखे, जिनमें उसने वेनिस की रिपब्लिक की सफलताओं से उत्पन्न जनोल्लास का चित्रण किया है।

बंगाल की समतल नीची भूमि से आने वाले द्वारकानाथ के लिए, जिन्होंने कभी हिमालय की यात्रा नहीं की थी, आल्पस पर्वतमाला का दृश्य एक उल्लासपूर्ण अनुभव था। 'आल्पस का दृश्य देख कर जो आनन्द मिला उसका मैं वर्णन नहीं कर

सकता। हर बार चंद कदमों के बाद एक नया ही मंजर देखने को मिलता था, और हर मंजर खूबसूरत था। सड़क बहुत अच्छी थी और मैंने ज़रा भी तकलीफ़ नहीं महसूस की, हालांकि हम चार या पांच हजार फुट की ऊंचाई तक गये। कभी-कभी नीचे खड्डों और घाटियों की ओर देखना बड़ा भयावह लगता था। मैं बरफ से ढंकी जगहों पर भी गया और जीवन में पहली बार हाथ से बरफ को छूने का आनन्द उठाया। लोगों ने डराया था कि पर्वत पार करने में मुझे बेहद ठंड का सामना करना पड़ेगा, लेकिन मूझे यह ठंड बहुत सुख कर लगी और मुझे रोजमर्रा की जरूरत के कपड़ों में कुछ जोड़ने की जरूरत नहीं महसूस हुई। जरा सोचो कि मई के महीने में दिन-रात पंखे के नीचे रहने की बजाय हम पूरे कपड़े पहने शीतल, सुहावने वातावरण का आनन्द ले रहे थे। हम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं, कभी-कभी छः या आठ घोड़ों के साथ हम दिन में बिना थकान महसूस किए सत्तर या अस्सी मील का सफर तय कर लेते हैं, इसलिए अब मैं जल्द ही लंदन पहुंच जाऊंगा।'

लेकिन इतनी जल्दी नहीं। अभी उन्हें कई दिन का सफर करना था, स्टूटगार्ट, हीडलबर्ग तथा अन्य जर्मन नगरों से होकर गुजरना था। लगता है कि वे किसी स्थान पर अधिक नहीं रुके, क्योंकि 9 जनवरी को जब वे कलकत्ते से रवाना हुए थे, तब से वे एक लंबी और कठिन यात्रा पूरी कर चुके थे और अब जल्दी ही लंदन पहुंचने के लिए उत्सुक थे। फिर भी वे चाहे जितनी तेज रफ्तार से सफर कर रहे थे, उनकी आंखें जर्मनी के देहाती इलाकों का सौंदर्य, उसके करीने से कटेऔर जोते-बोये खेतों और फार्मों के हृदय-ग्राही दृश्य, उसकी समतल सड़कों और साफ-सुथरे चित्रवत् सुंदर नगरों का जायजा लेने से नहीं चूकीं। विशेष कर वे जर्मन लोगों के शैक्षिक स्तर से काफी प्रभावित हुए। 'जर्मनी में' उन्होंने अपनी डायरी में नोट किया, 'शिक्षा की प्रगति बहुत अधिक है, जो इटली से कितनी भिन्न है, जहां कोई भी इतालवी भाषा के अलावा और दूसरी भाषा नहीं बोल सकता। यहां उच्च वर्ग के सभी लोग फ्रेंच बोलते हैं और उन में से काफी अंग्रेजी भी! हमें एक भी ऐसा लड़का या लड़की नहीं मिली जिसके हाथ में पुस्तक न हो, और किसी भी नगर में कोई भिखारी नजर नहीं आया। बावेरिया का राजा बड़ा विद्वान आदमी है और उसके राज में एक गांव ऐसा नहीं जहां स्कूल न हो, जिसमें गरीब और अमीर सभी बच्चों का पढ़ना लाजिमी न हो, जो गरीब हैं, उन्हें कोई फीस नहीं देनी पड़ती और जो अमीर हैं, उन्हें थोड़ी-सी फीस देनी पड़ती है। देश-भर में हर जगह चश्मे हैं और पीने का स्वच्छ जल उपलब्ध है।'[12]

फ्रैन्कफर्ट पहुंच कर उन्होंने मेनीज के लिए रेल पकड़ी, जहां उन्होंने नौकाओं पर बना पुल पार किया और फिर स्टीमर के जरिये कोलोन की यात्रा की। कोलोन के कैथीड्रल (बड़ा गिरजाघर) ने उन्हें काफी प्रभावित किया। लेकिन उन्हें मौसम बहुत गरम लगा और उन्होंने इच्छा प्रकट की कि काश जर्मनों के पास भी हिन्दुस्तानी पंखे होते। कोलोन में वे फिर एक्स-ला-चैपेल के लिए रेलगाड़ी पर सवार हुए, जो उनके

शब्दों में 'चार्लमैन का जन्म-स्थान और समाधि-स्थल भी है।' ब्रसेल्स और ऑस्टैंड में ठहर कर वे डाकगाड़ी से काले के लिए रवाना हुए, जहां पर उनके पुराने मित्र और व्यावसायिक साझेदार जॉन कार अपने साथी ब्राऊन रॉबर्ट के साथ उनका इन्तजार कर रहे थे। **एस.एस.रेनबो** में बैठकर इंग्लिश चैनेल पार करने के दौरान उनका परिचय मूर्तिकार एच. वीक्स से हुआ, आगे चल कर जिनको उन्होंने कलकत्ते के टाऊन हाल के लिए अपनी आवक्ष मूर्ति बनाने का काम सौंपा था। लगता है कि वीक्स चित्रकार भी था, क्योंकि स्टीमर में बैठे-बैठे उसने द्वारकानाथ का पानी के रंगों से एक चित्र बनाया, जिसमें उनके साथ चंदरमोहन चटर्जी भी हैं। वीक्स ने एक चित्र 'डोवर कासल' का भी बनाया, जैसा वह स्टीमर से नजर आता था।

9 जून को पार्टी डोवर पहुंची। केन्टरबरी में रात गुजार कर द्वारकानाथ वहां का प्रसिद्ध कैथीड्रल देखने गये, जो उन्हें अत्यंत 'भव्य' लगा। उन्होंने वहां ब्लैक प्रिंस और टामस अेबैकेट के स्मारक भी देखे। यद्यपि वे किसी स्कूल में बाजाप्ता नहीं पढ़े थे, सिवाय एक प्राथमिक स्कूल के, लेकिन द्वारकानाथ बड़े स्वाध्यायी व्यक्ति थे और उन्हें इतिहास का अच्छा ज्ञान था। वहां से गाड़ी में यात्रा करते हुए वे चैथम और रॉचेस्टर से होकर गुजरे और 10 जून को, पांच महीने और दो दिन की लम्बी यात्रा के बाद लंदन पहुंचे।

फ्रंड ऑफ इंडिया में प्रकाशित द्वारकानाथ का अंतिम पत्र लंदन से 29 जून 1842 को लिखा गया था। ऐसा लगेगा कि उन्होंने यह पत्र उस संवाददाता को ही नहीं लिखे थे, जिसे वे पहले पत्र लिखते आये थे, और जो ऐंग्लिकन संप्रदाय का यूरोपियन था, क्योंकि उन्होंने माल्टा के वेलेट्टा नगर से लिखे पत्र में कैथोलिक गिरजाघरों की भव्यता से 'तुम्हारे गिरजों' की तुलना की थी। यह अंतिम पत्र शायद उन्होंने अपने पुत्र देवेन्द्रनाथ के नाम भेजा था, जैसा कि मित्रा का अनुमान है (**संस्मरण**, पृ० 88):

'मैं आखिरकार यहां इस स्थल पर पहुंच गया हूं बीस साल की आकांक्षा का उद्देश्य पूरा करके। 10 जनवरी[13] को कलकत्ता से चला था (देखो न इन चंद महीनों में मैंने कितने आश्चर्यजनक काम कर डाले हैं), 11 फरवरी को स्वेज पहुँचा, मिस्र देखा, माल्टा, नेपल्स, रोम, फ्लोरेंस, वेनिस, जर्मनी, बेल्जियम, आल्पस पर्वतों के दृश्य और रहाइन नदी देखी और 8 तारीख को काले पहुंचा। अगले दिन ब्रिटिश चैनेल पार करके डोवर पहुंचा। रात केन्टरबरी में गुजारी, अगले दिन 16 जून[14] की सुबह इस मशहूर शहर लंदन में दाखिल हुआ। योरप महाद्वीप पर हर चीज देख लेने के बाद मुझे आशा नहीं थी कि इस छोटे से द्वीप पर इतना मोहित हो जाऊंगा, लेकिन दरअसल, लंदन सचमुच में एक **आश्चर्यजनक नगर है**।[15] शहर की चहल-पहल, गाड़ियां, दूकानें और लोगों को देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया। सुबह के 8 बजे से रात के 12 बजे तक मैं आने वालों से मिलने और लोगों के निमंत्रण

पर उनके यहां जाने में व्यस्त रहता हूं। यहां पहुंचने के दो दिन बाद ही मुझे हर मैजेस्टी महारानी विक्टोरिया के भव्य स्वागत-समारोह में बुलाया गया।[16] शाही परिवार के सारे सदस्यों और अभिजात सामन्त वर्ग के प्रमुख व्यक्तियों ने मेरा परिचय प्राप्त कर लिया है और वर्तमान तथा पुराने मंत्रियों ने भी मेरे प्रति पूरा आदर-सत्कार दिखाया है।

'मैंने अभी तक हाऊस ऑफ लार्डस और कामन्स और इंडिया हाऊस के अलावा लंदन का और कोई स्थान नहीं देखा है, और जुलाई के अंत तक अधिक कुछ देखने की आशा भी नहीं करता। जहां तक मौसम का संबंध है, तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि सूरज बंगाल से ही मेरा पीछा करता आ रहा है। दरअसल मुझे तो यहां पर हाथ के पंखे का इस्तेमाल करना पड़ गया है। जहां तक बारिशों और मौसम बदलने की बात है, मुझे एक सुखद निराशा का अनुभव हुआ है। अगर यहां का मौसम ऐसा ही रहता है, तो मैं नहीं सोचता कि कोई इससे बेहतर जलवायु में अपना जीवन-काल व्यतीत कर सकता है। ऑपेरा और थियेटरों के होते हुए, मैं बयान नहीं कर सकता कि मैं कितना सन्तुष्ट हूं। इंगलैण्ड की महिलाओं का सौंदर्य मुझे परियों की कहानियों का स्मरण दिलाता है। मैंने बचपन में फारसी की कहानियों में जो पढ़ा था, उसे मैं अब लंदन में साकार रूप में देख रहा हूं। आदमी के पास अगर दौलत हो तो उसका भरपूर आनन्द उठाने का देश यही है। आज तीसरे पहर मैं वेस्टमिन्स्टर ऐबे में था। उपदेश और प्रार्थना, साथ ही धार्मिक गान और आर्गन, सभी अत्यंत प्रभावशाली थे। मैंने यहां के सामन्त-वर्ग के कुछ लोगों के बाग देखे हैं, और अब तुम जो मन में आये मेरे बाग के बारे में लिख सकते हो, मैंने उसकी चर्चा ही छोड़ दी है। इस डाक से तो मैं तुम्हें और अधिक लिख कर नहीं भेज सकता, लेकिन आशा है कि अगली बार ज्यादा फुरसत से लिख सकूंगा और तब शायद लंदन के साथ कुछ न्याय कर सकूं।'

लंदन में द्वारकानाथ सेन्ट जार्ज होटल में ठहरे थे जो 32, अल्ब मार्ले स्ट्रीट पर था।[17] पहुंचने के अगले दिन ही उन्हें चिस्विक गार्डन हार्टीकल्चर के समारोह में ले जाया गया, जहां वे फूलों और फलों के प्रदर्शन से जितने प्रभावित हुए, उतने ही 'शानदार पोशाकें धारण किए अठारह सौ लोगों' से। अगले कुछ दिनों तक वे प्रधानमंत्री सर रॉबर्ट पील, उग्रदली नेता लार्ड ब्रॉघम, जो ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी के संस्थापकों में से एक थे, लैन्सडाऊन के मारक्विस और बोर्ड ऑफ ट्रेड के प्रसीडेंट लार्ड फिट्जगेराल्ड आदि से भेंट करने में व्यस्त रहे। यह लार्ड फिट्जगेराल्ड ही थे, जिन्होंने द्वारकानाथ को महारानी के सामने 16 जून को पेश किया था। शनिवार 18 जून के **कोर्ट जर्नल** के क्रोड-पत्र में 'हर मैजेस्टी'ज ड्राइंग रूम' के अंतर्गत इसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई : 'विदेशी राजदूतों के बाद, अन्य उपस्थित लोगों का परिचय कराया गया, जब निम्नलिखित व्यक्तियों को हर मैजेस्टी के सामने पेश किया गया : (सूची में सबसे पहला नाम) द्वारकानाथ टैगोर

जमींदार को लार्ड फिट्जगेराल्ड और वेस्सी ने पेश किया...' द्वारकानाथ का परिचय प्रिंस अलबर्ट, केन्ट की डचेज और वेलिंग्टन के ड्यूक से भी कराया गया। महारानी बड़े स्नेह-सौजन्य से द्वारकानाथ के साथ बातें करती रहीं और उन्होंने अपनी डायरी में नोट किया : 'ब्राह्मण अंग्रेजी उल्लेखनीय रूप से अच्छी तरह बोलता है और बहुत तीव्र-बुद्धि का दिलचस्प आदमी है।'[18]

एक सप्ताह बाद, 23 जून को महारानी ने उन्हें विशाल फौजी परेड का मुआयना देखने के लिए निमंत्रित किया, जहां वे एक विशिष्ट दायरे में महारानी, प्रिंस अलबर्ट, विलिंग्टंन के ड्यूक और महारानी के चाचा केम्ब्रिज के ड्यूक के साथ बैठे। इसके तुरंत बाद ही उन्हें बकिंघम पैलेस में भोजन पर निमंत्रित किया गया (नयाचार के अनुसार, आने का आदेश दिया गया), जहां पर महारानी और उनके पति के अलावा सेक्से-कोबर्ग गोथा के प्रिंस और प्रिंसेस, लार्ड फिट्जगेराल्ड, लिवरपूल के अर्ल और दूसरे उच्चाधिकारी मौजूद थे। 'हर मैजेस्टी और उनके पति की द्वारकानाथ के साथ एक दिलचस्प बातचीत हुई, जिसका मुख्य विषय भारत था। द्वारकानाथ ने फिर केन्ट की डचेज के साथ विस्ट का खेल खेला। हर मैजेस्टी ने उनको तीन सोने के सिक्के भेंट किए जो उसी रोज टकसाल से ढल कर आये थे। इसके बाद एक दूसरे मौके पर द्वारकानाथ को रॉयल नर्सरी देखने के लिए महारानी का निमंत्रण मिला। वहां लेडी लिटल्टन अपने साथ राजकुमारी और युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) को लेकर आयीं। उन दोनों ने श्वेत मलमल के कपड़े पहने थे, जिनमें मोती जड़े थे।'[19]

द्वारकानाथ की साहित्यिक रुचि का प्रमाण डायरी में दर्ज इस बात से मिलता है कि रॉयल नर्सरी देखने के बाद वे जॉन गिब्सन लॉकहार्ट से मिलने गये, जिनकी लिखी अपने श्वसुर सर वाल्टर स्कॉट की प्रसिद्ध जीवनी संभवतः उन्होंने पढ़ी थी। लॉकहार्ट उन दिनों **क्वार्टरली रिव्यू** का सम्पादन कर रहे थे। उनका जिक्र करते हुए द्वारकानाथ ने डायरी में नोट किया : 'वे स्वयं एक दिलचस्प आदमी हैं। वे अपनी महत्वपूर्ण सूचनाएं बिना किसी आडम्बर या दम्भ के प्रदान करते हैं। उन्होंने मुझे पुस्तकों के बारे में कई कीमती सुझाव दिए और अपनी लिखी पुस्तकें 'लाइफ ऑफ बर्न्स' और अपने श्वसुर, सर वाल्टर स्कॉट की जीवनी की प्रतियाँ भेंट कीं। कुल मिला कर मैं इस परिचय से बेहद खुश हुआ।'[20]

यह सभी जानते हैं कि उस पीढ़ी के अंग्रेजीदां भारतीयों के लिए स्कॉट के उपन्यास सबसे प्रिय पाठ्य-सामग्री थे, और भारतीय भाषाओं के आरंभिक उपन्यासकारों पर उनका गहरा प्रभाव था। उस समय तक चार्ल्स डिकेन्स की कृतियों से भारतीय पाठक इतने अधिक परिचित नहीं थे। लेकिन द्वारकानाथ ने लगता है कि उनको भी पढ़ा था और वे उनके प्रशंसक थे। संगीत और थियेटर में उनकी गहरी रुचि को देखते हुए, और यह जानते हुए कि अंग्रेजी शिक्षा और बंगाली भाषा को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने कितना काम किया था, यह

आश्चर्यजनक नहीं है कि द्वारकानाथ को तत्कालीन अंग्रेजी साहित्य की गहरी जानकारी थी। आश्चर्य की बात अगर है तो सिर्फ यह कि अपने व्यवसाय और कारोबार और सामाजिक कार्यों के वातचक्र में फंसे होने के बावजूद वे अपने अध्ययन को अद्यतन बनाये रखने का समय निकाल लेते थे। उनके जीवनीकार मित्रा ने, जिनके पास द्वारकानाथ की डायरियां थीं, लिखा है कि वे अपने लंदन प्रवास के दौरान चार्ल्स डिकेन्स से अनेक बार मिले थे और उन्होंने अपने यहां दावत पर बुलाकर उनका सत्कार किया था। अपने दूसरे इंगलैंड प्रवास के दौरान, जब वे अधिक दिनों तक वहां ठहरे थे, वे साहित्यिक दावतें दिया करते थे, जिनमें से एक में निम्न विख्यात लेखक उपस्थित थे: कोंत डी ओरसे, चार्ल्स डिकेंस, विलियम थैकरे, डगलस जेरॉल्ड, मार्क लेमन, और जे. मेह्यू। मूलतः यह दावत **पंच** पत्रिका में लिखने वाले साहित्यकारों के निमित्त थी, लेकिन कोंत डी ओरसे स्वयं आग्रह करके इसमें शामिल हो गए। लार्ड ऑकलैण्ड ने भी (जो उस समय वापस घर आ गये थे) पत्र लिख कर दावत में शामिल होने की इजाजत मांगी थी, लेकिन निमंत्रण केवल उपरोक्त लोगों तक ही सीमित रखे गये। डिनर के दौरान वार्तालाप उच्चतम कोटि की हाज़िरजवाबी के स्फुलिंगों से वाग्विदग्धता और ज़िंदादिली का एक सिलसिला बन गया। कोंत डी ओरसे का, फ्रांसीसी होने के बावजूद, अंग्रेज़ी भाषा पर पूरा अधिकार था, जिससे वे उतने ही हाज़िरजवाब थे, जितने डगल्स जेरॉल्ड। डिकेन्स मेज़ के दूसरे सिरे पर मि० साफे (द्वारकानाथ के प्राइवेट सेक्रेटरी) के बाद बैठे थे। और इतने खामोश थे कि उनके साथी लेखकों ने उनका मज़ाक बनाना शुरू कर दिया। डगल्स जेरॉल्ड ने उनकी हंसी उड़ाते हुए कहा कि वे जरूर इसलिए ख़ामोश हैं क्योंकि उनकी कुछ कृतियों की कटु आलोचना की गई है। इस बात ने डिकेन्स को हठात् अनुप्राणित कर दिया और वे बड़े उत्साह से वार्तालाप में भाग लेने लगे। इतने वाग्विदग्धों की यह मुलाक़ात एक असामान्य रूप से शानदार घटना थी। मेहमान अपने मेज़बान की हार्दिकता से उतने ही उल्लसित थे, जितना मेज़बान अपने मेहमानों के साथ होने वाले बौद्धिक समागम से।'[21]

यह अनुमान लगाना दिलचस्प होगा कि आख़िर द्वारकानाथ ने साहित्यकारों की दुनिया में कैसे प्रवेश पा लिया, जबकि उनकी अपनी दुनिया तो अंग्रेज़ अभिजात-वर्ग के ड्यूकों और डचेज़ों, लार्डों और सत्ता और दौलत के शक्तिमानों की दुनियां थी। जैसा कि प्रोफ़ेसर अमलेन्द बोस[22] ने सुझाया है, लगता है कि साहित्यकारों की दुनिया में प्रवेश पाने में मिसेज़ कैरोलीन एलिज़ाबेथ सारा नॉर्टन से उनकी मित्रता मददगार साबित हुई होगी। वे प्रसिद्ध नाटककार और पार्लियामेंट के वक्ता रिचर्ड ब्रिंस्ले शेरिडन की तीन सुंदर पोतियों में से एक थीं। वे स्वयं अच्छी कवि थीं, और अपनी सुंदरता, प्रतिभा और वाग्विदग्धता के लिए प्रसिद्ध थीं। 'अठारह सौ तीस के दशक के लंदन के उच्च मध्यवर्गीय समाज' में वे एक लोकप्रिय हस्ती थीं। उनके दुखद और विच्छिन्न विवाह ने उन्हें 'कानोंकान

फैलने वाली अफ़वाहों' का दिलचस्प विषय बना दिया था, और उनके रूप में 'जार्ज मैरिडिथ को अपने उपन्यास **डियना ऑफ क्रॉसवेज़** की हीरोइन का मॉडल मिला था।' द्वारकानाथ अवश्य ही उनसे किसी पार्टी में मिले होंगे और इसमें संदेह नहीं कि उनके सौंदर्य, उनकी शालीनता और हाज़िरजवाबी पर रीझे होंगे और उनसे मित्रता पैदा करना उन्हें श्लाघ्य लगा हो। प्रॉ० बोस ने मिसेज़ चार्ल्स डिकेन्स के नाम लिखा उनका एक पत्र उद्धृत किया है:

'एक **हिन्दू** सज्जन हैं, जो अपने **द्वारकानाथ टैगोर** नाम से बहुत प्रसन्न हैं, वे आजकल इंगलैंड में हैं और वे महारानी के साथ विन्डसर पैलेस में ठहरते रहे हैं[23] या फिर वहां काफ़ी दावतें खाते रहे हैं। कुछ दिन पहले एक शाम को वे मेरे घर आये और उन्होंने पूछा कि उपस्थित लोगों में (**कुछ** थोड़े से मित्र और रिश्तेदार उस समय मेरे यहां थे) मिस्टर टी०मूर कौन से हैं.... मिस्टर रोजर्स कौन से हैं.... मिस्टर डिकेन्स कौन से हैं? तुम अंदाज़ लगा सकती हो कि यह जान कर मैं कितनी शर्मिन्दा हुई कि वे मेरे घर यह आशा लेकर आये थे कि यहां उनकी मुलाक़ात उन सब लोगों से होगी जो अपनी प्रतिभा के कारण विख्यात हैं या साहित्य में जिनका उल्लेखनीय स्थान है। मैंने कहा, 'मुझे एक मौक़ा और दीजिए जनाब, और मैं उनमें से कुछ लोगों को जमा कर लूंगी, जिनसे आप मिलना चाहते हैं।'

'तुमसे मैंने जो बहाना बनाया था, उसका यही इतिहास है। उन्होंने फ़ौरन कहा कि वे रिश्मॉन्ड में डिनर का प्रबंध करेंगे और इन लोगों को जुटाने का वायदा पूरा करने का काम मुझ पर छोड़ते हैं। वे डिकेन्स की प्रशंसा करते नहीं थकते, कहते हैं, अंग्रेज़ी का और कोई लेखक इतना अधिक लोकप्रिय नहीं है। मेहरबानी करके मिस्टर डिकेन्स को आने के लिए राज़ी कीजिए और अगर पसंद हो तो अपनी सुंदर बहन को, और किसी अन्य को भी लायें, जिसका आना आप ज़रूरी समझें। अगर सोमवार, 15 तारीख आपको सुविधाजनक लगे और सौभाग्य से उस दिन आप खाली हों तो मैं फौरन इस आयोजन की सूचना भेज दूंगी। हमारे पास नदी मार्ग से जाने के लिए एक छोटा-सा स्टीमर भी है।'....[24]

'सोमवार, 15 तारीख, प्रो० बोस के हिसाब से 15 जुलाई 1842 की तारीख थी। इस निमंत्रण का क्या परिणाम निकला, यह अज्ञात है, क्योंकि इसका कोई विवरण कहीं रिकार्ड नहीं किया गया। प्रो० बोस ने, जो अंग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध प्राध्यापक हैं, कई संगत प्रश्न उठाये हैं: 'कई सूत्रों से यह तो हमें मालूम है कि पश्चिम योरप और अमरीकी उपनिवेश में डिकेन्स के अनेक प्रशंसक उस समय थे। लेकिन क्या भारतीय (जो अंग्रेज़ी की पुस्तकें पढ़ते थे), और विशेष कर कलकत्ते के भारतीय भी डिकेन्स को पढ़ते थे और उन पर विचार-विमर्श करते थे? इन भारतीयों की, विशेष कर द्वारकानाथ की, जिनकी भाषा में उस समय तक उपन्यास की विधा बिल्कुल थी ही नहीं (**अलालेर घरेर दुलाल**[25] धारावाहिक रूप से एक पत्रिका में 1855-57 में प्रकाशित हुआ था और 1858 में पुस्तक के रूप में) इस सर्वथा नई साहित्यिक विधा

के प्रति क्या और कैसी प्रतिक्रिया थी? मुझे ऐसा कोई दस्तावेज़ नहीं प्राप्त हुआ जिससे इन प्रश्नों का उत्तर खोजा जा सके। फिर भी मुझे यह सूचना काफ़ी महत्वपूर्ण लगी कि उन दिनों के एक बंगाली सज्जन मूर और रोजर्स की कविता से परिचित थे (इन दो कवियों का उल्लेख शायद इसलिए किया गया है, क्योंकि रोमांटिक धारा के युवा कवि बहुत पहले ही इस दुनिया से सिधार चुके थे, साऊदे उन दिनों बीमार थे और वर्ड्सवर्थ कम्बरलैण्ड में एकांतवास कर रहे थे); मुझे यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण लगती है कि इन्हीं सज्जन की दृष्टि इतनी सूक्ष्म थी कि वे डिकेन्स की कृतियों की क़दर कर सके जबकि उनकी कृतियों में और सुप्रसिद्ध स्कॉट की कृतियों और महिला लेखिकाओं के अधिक धीर और शांत उपन्यासों में कुछ भी सामान्य नहीं था। जहां तक मैं जानता हूं, द्वारकानाथ पहले भारतीय थे, जिन्होंने सम-सामयिक अंग्रेज़ी साहित्य के प्रति रुचि दिखायी थी। केवल धनी और उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा के व्यक्ति ही नहीं, केवल एक 'प्रिंस' ही नहीं, रवीन्द्र नाथ के दादा उच्चकोटि की साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति भी थे।'

साहित्यकारों और लेखकों के अलावा द्वारकानाथ उन ब्रिटिश उग्र पंथियों और सामाजिक सुसमाचारकों से भी मिलने के लिए उत्सुक थे, जिनमें से अनेक क्वैकर सम्प्रदाय के थे, जो गुलामी के विरुद्ध प्रचार करते थे और पक्के मानववादी और भारत के मित्र समझे जाते थे। उन्होंने ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी की स्थापना की थी, जिसके साथ लैण्डहोल्डर्स सोसाइटी की ओर से द्वारकानाथ ने भारत में रह कर ही सम्पर्क बना लिया था। लंदन पहुंच कर उन्होंने जिस व्यक्ति से सबसे पहले भेंट की, वह थे लार्ड ब्राउघम, जो ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी के संस्थापकों में से एक थे, और जिनसे उनके मित्र कर्नल जेम्स यंग ने द्वारकानाथ का यह कह कर परिचय कराया था कि 'ये मेरे अत्यंत विशिष्ट और पुराने मित्र हैं, जो भारत में हर उदार आंदोलन और प्रवृत्ति के सिरमौर हैं.... और इन्होंने राममोहन राय के स्थान की पूर्ति की है.... लेकिन ये उनकी तरह एक प्रकाण्ड विद्वान नहीं हैं—दुनियादार हस्ती हैं, कुदरत ने इन्हें हर रूप से एक शानदार व्यक्ति बनाया है और अंग्रेज़ी भाषा पर तो इनका असाधारण अधिकार है। ये **ज़ात पात** और खान-पान संबंधी सारे बेहूदा प्रतिबंधों को तोड़ने और त्यागने की मिसाल बहुत पहले ही क़ायम कर चुके हैं – कुल मिला कर आज के भारत के सबसे उल्लेखनीय और शानदार पुरुष हैं।'[2]

ब्राउघम के ज़रिए द्वारकानाथ जार्ज थाम्सन से मिले, जो ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी के सेक्रेटरी थे और गुलामी के विरुद्ध और मानव-अधिकारों के पक्ष में अपने पुरजोश भाषणों के लिए मशहूर थे। थाम्सन और द्वारकानाथ तुरंत एक-दूसरे के मुरीद हो गये और द्वारकानाथ ने थाम्सन को उनके साथ भारत आने के लिए राज़ी कर लिया। एक और क्वैकर जिससे द्वारकानाथ मिले थे और जिसे अपनी ओर कर लिया था, वह थे जोसेफ़ पीज, जो वैसे तो जार्ज थाम्सन के मित्र और सहयोगी थे, लेकिन जब थाम्सन ने डायरेक्टरों की अदालत के सामने सतारा

के राजा को पैरवी की तो उस समय दोनों के संबंध टूटने की नौबत आ गई। (थाम्सन को एक पेशेवर वकील की हैसियत से इस मामले की पैरवी करने में कोई अपमान नहीं लगा था)। शायद द्वारकानाथ के साथ भी किसी प्रकार का संपर्क क़ायम करने से बचने की कोशिश होती अगर उनके बारे में पहले से ज्ञात न होता कि जैसे ही ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी बनी थी, द्वारकानाथ ने पत्र लिख कर उसकी सफलता की हार्दिक कामना की थी। दरअसल, जोसेफ़ पीज़ ने उनको साफ़-साफ़ लिखा था कि उनसे और उनके साथियों से मिलना तभी उपयोगी होगा, 'अगर हम आपके प्रौढ़ अनुभव और सम्मति से' जो कुछ जानते हैं उससे अधिक जानकारी हासिल कर सकें कि 'आपके देश के निवासियों की अफ़सोसनाक हालत को सुधारने का कौन-सा सबसे अच्छा तरीका हो सकता है।' उन्होंने दो टूक शब्दों में स्पष्ट कर दिया था कि 'उनके दिलों में ऊंचे वर्गों के और दौलतमंद हिन्दोस्तानियो के लिए ज़रा भी आदर नहीं है, जो इस देश के व्यावसायिक या दरबारी क्षेत्रों में उठते-बैठते हैं और अपने ग़रीब और मुफ़लिस देशवासियों की उन मुसीबतों को या तो भूल जाते हैं या जान-बूझ कर छिपाते हैं, जिन्हें सबको बताना और यदि संभव हो तो उनमें सुधार करवाना, जिनका कर्तव्य था।'

22 जून को द्वारकानाथ टैगोर को ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों की कोर्ट की मीटिंग में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया गया, जहां उन्होंने मारिशस में भेजे गये प्रतिज्ञाबद्ध मज़दूरों के सवाल पर होने वाली बहस सुनी। उसी दिन शाम को डायरेक्टरों ने लंदन टैवर्न में उन्हें दावत दी। कुछ सप्ताह बाद, 29 जुलाई को मेन्शन हाऊस में लार्ड मेयर की दावत थी, जहां इतने गण्य-मान्य लोगों की उपस्थिति के बीच उनके अभिनंदन में कहे गये प्रशंसा के शब्दों से उल्लमित होकर द्वारकानाथ दुर्भाग्य से अपने भाषण में कुछ ऐसी गलत बातें कह गये, जिनके कारण उन्हें बाद मे कम लज्जित नहीं होना पड़ा। 4 अगस्त 1842 के **लंदन मेल** में प्रकाशित सूचना के अनुसार:

"फिर द्वारकानाथ टैगोर धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा कि उपस्थित सज्जन उनसे यह आशा नहीं कर सकते कि वे एक ऐसी भाषा में जो उनके लिए विदेशी है, अच्छी तरह बोल सकेंगे। कम से कम उस भाषा में वे अपनी कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकते। दरअसल, वे एक भी ऐसी भाषा नहीं जानते जिसमें इस भावना को व्यक्त किया जा सके। (तालियां) इतना ही नहीं है कि उस रात उनकी इतनी हार्दिकता से आवभगत की गई थी, और इतने प्रतिष्ठित लोगों द्वारा, बल्कि जब से उन्होंने इंगलैंड की ज़मीन पर कदम रखा था, तब से वे लोगों के स्नेह और आदर का आशातीत अनुभव करते आये थे। वे अपने आप को एक अजनबी कह कर ऐसा महसूस कर रहे थे। लेकिन अगर जिस विशिष्टता और मित्रता का व्यवहार उन्हें मिला था, उसके कारण वे ऐसा महसूस कर रहे थे, और यह उन्हें चाहिए भी था, तो फिर उनका देश, जिसे इंगलैंड की राष्ट्रीय मित्रता और मानवता

ने निकट बरबादी से बचा लिया था, इस शानदार परिणाम को देख कर कैसा महसूस करता होगा। (तालियां) यह इंगलैंड ही था जिसने भारत को अपने परामर्शों और हथियारों से फायदा पहुंचाने के लिए क्लाइव और कार्नवालिस को भेजा था। यह इंगलैंड ही था, जिसने उस सुदूर देश में उस महान व्यक्ति को भेजा था, जो विश्व में शांति स्थापित करने में सफल हुआ था और जो पहला व्यक्ति था, जिसने पूरब के देशों में एक उचित और स्थायी व्यवस्था कायम की थी। यही वह देश था, जिसका प्रतिनिधित्व उपस्थित सज्जन करते थे, जिसने मानव-प्रकृति का गौरव बढ़ाते हुए, उनके देशवासियों को एक ओर मुसलमानों की निरंकुशता से तो दूसरी ओर उतने ही भयानक रूसियों के अत्याचारों से बचाया था। (जोर की तालियां) और उसने यह सब किया था – किसी पुरस्कार की आशा से नहीं – किसी भी प्रकार के प्रतिदान की आशा से नहीं, बल्कि नेकी करने की अपनी एकमात्र इच्छा से.... यह संभव ही नहीं कि उनके देशवासी अंग्रेजों के प्रति कृतघ्नता का व्यवहार करेंगे....."

इस भाषण की रिपोर्ट पढ़ कर द्वारकानाथ के मित्रों और हितैषियों को, भारत में भी और ब्रिटेन में भी, काफी परेशानी हुई। जोसेफ पीज़ ने कड़ा प्रतिवाद किया। सौम्य स्वभाव के द्वारकानाथ ने 31 अगस्त 1842 के एक पत्र में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा: 'मुझे खुशी है कि अपने देश के एक जाने-माने हितैषी के आगे मुझे उस बात पर अपना खेद प्रकट करने का अवसर मिला है, जो आपको गलत और नुकसानदेह लगी मेरे कहने का मंतव्य – चाहे जितने अटपटे शब्दों में उसे व्यक्त कर सका था – यह बताना था, कि कुल मिला कर, हमारे देश को मुसलमानों की गुलामी से मुक्ति पाने से लाभ ही हुआ था.....' क्वेकर इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ।[5]

उनके अपने देश में भी, अनेक 'देशभक्तों', को यह कह कर द्वारकानाथ को बदनाम करने का एक बढ़िया तर्क मिल गया कि वे एक चाटुकार टोडी (खुशामदी टट्टू) हैं। लेकिन जो उन्हें करीब से जानते थे और जिन्होंने उनको अंग्रेज़ी राज की अनेक बुराइयों का पर्दाफ़ाश करते सुना था, उन्होंने उनके भाषण में कुशल व्यंग्य की एक प्रच्छन्न तीखी धार देखी, जैसा कि **बंगाल हरकारू** के सम्पादक की टिप्पणी से ज़ाहिर है, जो 21 सितम्बर 1842 के अंक में प्रकाशित हुई थी:

'द्वारकानाथ टैगोर, निश्चय ही एक साहसी व्यक्ति हैं। उनकी इंगलैंड यात्रा भी अपने आप में एक साहसिक कदम थी; लेकिन इंगलैंड पहुंचने के बाद उनकी सरगरमियां कुछ ऐसी रही हैं कि उनका यह **प्रमुख गुण** अंधेरे में पड़ गया है। ज़रा सोचिए कि हमारे इस शानदार दोस्त ने, मैन्शन हाऊस की एक विशाल दावत में, शाही खानदान के एक राजकुमार के सामने, जहां उस देश के और भी अनेक 'अमीर-उमरा और व्यापारी' दोनों धनी-मानी वर्गों के लोग और कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के सदस्य मौजूद थे, ग्रेट ब्रिटेन की साम्राज्य लिप्सा का उन शब्दों में मज़ाक उड़ाया, जिनमें सत्य अधिक, सुरुचि कम थी! द्वारकानाथ का व्यंग्य मधुर

और ललित शब्दावली में पिरोसा गया था। यह वाक्य कितने सुखद शब्दों में है – "यही (इंगलैंड) वह देश था, जिसका प्रतिनिधित्व उपस्थित सज्जन करते थे, जिसने मानव-प्रकृति का गौरव बढ़ाते हुए, उनके देशवासियों को एक ओर मुसलमानों की निरंकुशता से तो दूसरी ओर उतने ही भयानक रूसियों के अत्याचारों से बचाया था – (जोर की तालियां) और उसने यह सब किया था – **किसी पुरस्कार की आशा से नहीं – किसी भी प्रकार के प्रतिदान की आशा से नहीं, बल्कि नेकी करने की अपनी एकमात्र इच्छा से।**" शाबास द्वारकी! उपस्थित सज्जन इस व्यंग्य से तिलमिला गये होंगे। हिन्दू व्यापारी का कहना है कि इंगलैंड ने भारत और उसके साधनों पर कब्जा किया – उससे कुछ पाने की गरज़ से नहीं – ओह, हरगिज़ नहीं – ओह! – नहीं – बल्कि शुद्ध और सच्चे परोपकार की भावना से। यह कब्ज़ा करके हमारे देशवासियों ने सबसे बड़ा निस्वार्थपूर्ण कार्य किया था; वे इससे कोई लाभ नहीं उठाना चाहते थे, मुनाफे का तो नाम सुनते ही वे भौंचक्के रह जाते; वे इंगलैंड से भरे-पूरे निकले थे, लेकिन खाली हाथ लौटे; अपने स्व के प्रति उदासीन और लापरवाह; उन्होंने भारत के लोगों की दशा सुधारने पर विशाल खजाने लुटा दिए और इसके बदले में उन्हें कुछ भी तो नहीं मिला – ओह! – नहीं – हरगिज़ नहीं! वे हिन्दोस्तान से कुछ भी नहीं ले गये – ओह! नहीं – एक पैसा भी नहीं। – एक कौड़ी तक नहीं – वे आये और उन्होंने मात्र नेकी करने के इरादे से देश पर कब्ज़ा जमा लिया। – कितनी सुखद टिप्पणी है, हमारे द्वारा हिन्दोस्तान का मुल्क़ हथ्यिा लेने के काम पर। एक हिन्दू के मुंह से निकले इस व्यंग्य ने लोगों को भयानक रूप से झकझोर दिया होगा।

'हमें इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं है कि दावत में कछुए का गोश्त और कोल्ड पंच पीने वालों में से अनेक ने सोचा होगा कि द्वारकानाथ अपने हृदय के सच्चे उद्‌गार व्यक्त कर रहे थे, जब उन्होंने कहा कि ब्रिटिश सत्ता ने हिन्दुओं को "एक ओर मुसलमानों की निरंकुशता से बचाया था तो दूसरी ओर रूसियों के भयानक अत्याचारों से।" दरअसल, जिस तरह जोरदार तालियों से इस उद्‌गार का स्वागत किया गया, उससे तो यही जाहिर होता है कि वे उन्हें सच समझ बैठे थे। जॉन बुल अपने भोलेपन के लिए मशहूर हैं, और निश्चय ही उन्होंने ज़रा ठहर कर यह नहीं सोचा कि हिन्दुओं को रूसियों के भयंकर अत्याचारों की जानकारी संभव ही कैसे हो सकती थी। हमें इस बात की कोई जानकारी ही नहीं कि रूसियों ने कभी भी हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार किए हों। मैन्शन हाऊस में एकत्र मेहमान इतिहास के इस नुक्ते को बिल्कुल ही भूल गये, और, हमारा विश्वास है कि लंदन के संजीदा नागरिकों पर अपनी मिथ्या बकवास का इतना प्रभाव पड़ते देख कर द्वारकानाथ अपनी मूंछों में खूब हंसे होंगे। वे जानते थे कि रूस को तमाचा जड़ते ही "जोर की तालियां" बजेंगी। वे सच निकले – लेकिन जॉन बुल को अगर मालूम होता कि आगे क्या आने वाला है तो यह तालियां न बजतीं। द्वारकानाथ ने सोचा, "अब **इन**

पर प्रहार करूंगा" – और तब उन्होंने उस शानदार व्यंग्य का तीर फेंका, जिस पर हम ऊपर टिप्पणी कर चुके हैं। इससे द्वारकानाथ का गौरव बढ़ा है – किन्तु, शायद, यह व्यंग्य कुछ अधिक तीखा था, विशेष कर कछुए और सायन और हिरन के गोश्त और शैम्पेन और कोल्ड पंच शराबों के बाद।'

इंगलैंड में द्वारकानाथ को वही सम्मान दिया गया जो विदेशी राजनयिकों को दिया जाता है और वे जहां भी जाते या जिससे भी मिलते या जो भी कहते वह प्रेस में अनुकूल टिप्पणियों के साथ प्रकाशित होता। **मंथली टाइम्स** ने लिखाः 'द्वारकानाथ टैगोर का हमारे बीच आगमन एक ऐसी घटना है, जिसे हम खामोशी से अनदेखा नहीं कर सकते। उनके चरित्र, कलकत्ते में उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव के कारण उनके आगमन का सहर्ष स्वागत किया गया है – और हर संभव प्रयत्न किया जा रहा है कि उन्हें "इंगलैंड और अंग्रेजों से बखूबी परिचित होने का वांछित अवसर दिया जाय।" इसी पत्रिका ने, 6 जुलाई 1842 के इसी अंक में लिखाः 'द्वारकानाथ टैगोर, जब से इस देश में पधारे हैं, तब से उन्हें इतनी दावतें दी गई हैं और जिज्ञासु तथा अनौपचारिक दोनों किस्म के मिलने वाले उन्हें इस तरह घेरे रहते हैं कि उनका कहना है कि वे स्वतंत्रता के इस देश में एक गुलाम कैदी बन गये हैं। उनका होटल, सुबह, दोपहर और रात हर समय विभिन्न किस्म और विभिन्न चरित्रों के आगंतुकों से भरा रहता है, व्यावसायिक मामलों पर उनसे शांत वातावरण में आधे घंटे तक बात करना भी अत्यंत कठिन हो गया है, जबकि तत्काल बहुत जरूरी मामलों पर बात करने के लिए कई लोग उत्सुक हैं। उनकी चार घोड़ों वाली गाड़ी गत रविवार को उन्हें लार्ड लिन्टर्स्ट के निमंत्रण पर अधिष्ठापन समारोह में शामिल होने के लिए केम्ब्रिज ले जाने के वास्ते होटल के दरवाज़े पर खड़ी रही, लेकिन तीसरे पहर चार बजे से पहले वे निकल ही नहीं सके। उनका आचरण, उनका व्यवहार-कौशल, और उनका कथन ऐसा है कि हरेक को अपना दोस्त बना लेता है। अगले महीने हम उनकी गतिविधियों का विस्तृत विवरण पेश करेंगे, और इस समय हम महारानी और उनके बीच हर मैजेस्टी के ड्राइंगरूम में होने वाले संक्षिप्त वार्तालाप का उल्लेख करके समाप्त करते हैं।' "आप इस देश में कितने दिनों से हैं?" हर मैजेस्टी ने पूछा। द्वारकानाथ ने उत्तर दिया, "केवल कुछ दिनों से। मैंने खुद अपने, और अपने सारे दोस्तों और रिश्तेदारों के पूर्वग्रहों पर काबू पा लिया है। मैंने कठिन और अभावपूर्ण परिस्थितियों में यात्रा की है ताकि योर मैजेस्टी आपके दर्शन कर सकूं – इस महान राष्ट्र की महारानी के – और अब अगर कल ही वापस लौट जाऊं, तो भी मैं समझूंगा कि मुझे पूरा मुआवज़ा मिल गया है।" महारानी मुस्करा दीं, उन्होंने महारानी का हाथ चूमा और आगे बढ़ गये।

इसमें सन्देह नहीं कि महारानी द्वारा स्वागत किया जाना, या वैसे भी महत्व दिया जाना द्वारकानाथ को सुखद लगता था, लेकिन वे अपना समय व्यर्थ कार्यों में नहीं गंवाते थे। उनकी जिज्ञासा अतोषणीय थी। जैसा कि मित्रा ने उनकी डायरी के

आधार पर लिखा है, वे यह देखने के लिए प्रिंटिंग हाऊस स्क्वॉयर गये कि लंदन **टाइम्स** की 20,000 प्रतियां दो घंटों के अंदर ही किस तरह छप जाती थीं; वे पोस्ट ऑफिस में यह देखने के लिए गये कि दो घंटों के अंदर ही दो लाख पत्र और अखबार किस तरह बाहर भेजे जाने के लिए छांटे और तरतीबवार थैलों में बंद किए जाते थे; वे बैंक ऑफ इंगलैंड में उसकी कार्य-विधि को जानने-समझने के लिए गये; भाप द्वारा नोट छापने की क्रिया देखने और मुद्रा जमा करने और भुगतान करने के काऊंटर देखने गये। वे अनेक अंग्रेज़ सामंतों के प्रासाद देखने गये, जिनमें स्टैफोर्ड हाऊस, सदरलैंड की डचेज़, डेवनशायर के ड्यूक का चाट्सवर्थ स्थित राजसी महल भी थे, और उन्होंने खुले दिल से स्वीकार किया कि इनकी तुलना में उनकी बेलगछिया वाली कोठी तुच्छ थी। उन्हें लंदन के पार्क, हाइड पार्क, रीजेन्ट पार्क और किंग्सटन गार्डन आदि बहुत शानदार लगे।

शांति निकेतन में रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में द्वारकानाथ द्वारा खुले पृष्ठों पर लिखे अपनी मुलाकातों और परियुक्तियों के कुछ कार्यक्रम सुरक्षित हैं। ये जीर्ण-शीर्ण, फीके पड़े कागज के पन्ने उस डायरी के ही पन्ने हैं, जिसका उपयोग मित्रा ने किया था या किसी अन्य आबंध-पुस्तिका के पन्ने, यह कहना कठिन है। लिखावट बुरी तरह धुंधला गई है और बीच-बीच में रिक्त स्थान हैं, जिसमें पढ़ना संभव नहीं रहा। नीचे हम रिक्त स्थानों की जगह चार-चार नुक्ते रख कर कुछ नमूने पेश कर रहे हैं: 'सोमवार 8 (महीना नहीं दिया है) सर मार्टिन शी एक आदम-कद चित्र का प्रथम रेखांकन करेंगे.... कम से कम चार बार और बैठना पड़ेगा.... से नामक चित्रकार के यहां जाना है – उनका बनाया लेडी .... का रेखाचित्र देखना है.... और एक पूरे आदमकद चित्र के बारे में बात करनी है।' एक दूसरा टुकड़ा इस प्रकार है: (कोई तारीख नहीं) हॉपलैण्ड के बीच से यात्रा – बढ़िया खेती — सान बलून वृक्षों की घाटी का.... मे शानदार दृश्य....अनेक सामंतों के ठिकानों का मंजर.... केन्टरबरी के आर्कबिशप का पैतृक घर और महल.... मकान का कुछ भाग किंग जॉन के समय का — कुछ अत्यंत प्राचीन और....पेड.... तान दाब-पड़े नाबू का एक पेड़ जो बरगद वृक्ष के समान है .... पुरानी शैली का शानदार बाग — बढ़िया पार्क — जन-साधारण के लिए खुला ... अनेक भव्य पुराने चित्र जिनमें कुछ सर जोशुआ रेनॉल्ड के चित्रों की मूल प्रतियां। विचित्र ढंग का पुराना फर्नीचर और नक्काशी की हुई कृतियां — एक कमरा जेम्स प्रथम के लिए राज-शैय्या से सुसज्जित....' एक अलग टुकड़ा (बिना तारीख के): माता-पिता द्वारा परित्यक्त बच्चों के लिए सेन्ट जार्ज फील्ड फाउण्डलिन्ग असाइलम में दरिद्र, अंधे बच्चों का स्कूल—केन्ट रोड पर स्थित गूंगे और बहरों का असाइलम—लंदन का अनाथालय.... के लिए ....और .... मां-बाप के दरिद्र अनाथ बच्चों की शिक्षा के लिए — यह क्लेप्टन में स्थित है — चार्ल्स स्ट्रीट में मिडिलसेक्स अस्पताल-होस्टल में दरिद्रों का शरणालय... किशोर अपराधियों के सुधार के लिए। चेल्सिया

में सैनिक स्कूल और क्राइस्ट हॉस्पिटल भी ....न्यूज़ॅगेट में ब्ल्यू कोट स्कूल और हैनवेल में पागलखाना। ड्रेडनॉट 104 नाम की तोपें, ग्रीनविच के तट पर न्यू गेट में लंगर डाले जहाज में नाविकों का अस्पताल। लंदन के घाट। डेब्रिट का अभिजात-वर्ग।'

एक पन्ने पर एक ओर लिखा है: प्रीमियर वायेज दे बाबू द्वारकानाथ टैगोर; दूसरी ओर नगरों के नाम लिखे हैं: माल्टा, नेपल्स आदि आदि, (31 नगरों के नाम, साथ में होटलो के नाम भी, एक प्रकार से पहली यात्रा की मार्ग-सूची)

एक और पन्ने पर सिलखिड़ी और संगमरमर की बनी वस्तुओं, आवक्ष मूर्तियों, फूलदानों आदि की, लुई के यहां की कीमत के समेत और बोज्जान्ट्रीज के यहां से प्राप्त की गई सूची दी गई है। एक और पन्ने पर लंदन के उन कला-भवनों, उद्यानों, गोदी-बाड़ों की सूची है, जिन्हें देखने वे गये थे। एक और पन्ने पर लिखा है: '....देखा..... नये पेटेन्ट तथा पुराने, दोनों तरीकों से भाप के इंजन बनाने की सबसे बढ़िया जगह। बारक्ले का शराब का कारखाना बहुत विशाल है, माल्ट सूखी जौ से बीयर और हॉप्स मॉ से पोर्टर एल बनती है....'

एक और पन्ना (इस पर भी तारीख नहीं है): द्ररी लेन गया और वहां मैनियो फालियर्ड या डॉज ऑफ वेनिस और फॉलीज ऑफ ए नाइट देखे। चेर्स मैथ्यूज की अदाकारी बहुत पसंद आयी, और उसकी पत्नी मदाम वेस्ट्रियर्स की भी। वे 50 वर्ष की हैं और वह 25 का——'

इन छिटपुट और संक्षिप्त सूचनाओं से न तो विशेष अर्थ निकाला जा सकता है और न उनमें कोई सिलसिला ही खोजा जा सकता है। उनमें सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उनसे द्वारकानाथ की अतोषणीय जिज्ञासा का प्रमाण मिलता है, कि वे 1842 के लंदन की किसी भी उल्लेखनीय वस्तु या घटना को नज़रन्दाज़ नही करना चाहते थे, कि राज-परिवार और अभिजात-वर्ग से मिलने के बाद, या वहां के सांस्कृतिक आकर्षणों, जैसे म्यूजियमों, कला-भवनों और थियेटरों को देखने के बाद ही उनकी व्यक्तिगत जिज्ञासा और दिलचस्पी समाप्त नहीं हो गई थी, बल्कि उसका विस्तार अस्पतालों और स्कूलों और विशेष कर अंधों, गूंगे-बहरों के शरणालयों और अनाथ और दरिद्र बच्चों के अनाथालयों तक था। संभव है कि उन्होंने इन संस्थाओं को फौरन उसी वक्त खुले दिल से चंदे भी दिए हों, हालांकि उन्होने इसका कोई रिकार्ड नहीं रखा।

कलकत्ता के एक मित्र के नाम स्मीटन से लिखे एक पत्र में (तारीख 28 अगस्त, 1842, जो बाद में 1 नवंबर के **बंगाल स्पेक्टेटर** में प्रकाशित हुआ) उन्होंने लिखा: 'मैं बरमिंघम और लॉण्ड रेलवेज़ की जांच-पड़ताल करने गया था। ये इंगलैंड की महानतम आश्चर्यजनक वस्तुएं हैं, जो स्थान पहले बहुत दूर समझे जाते थे, इन्होंने उन्हें नज़दीक ला दिया है, और ऐसे व्यक्ति को तो विशेष कर और भी आश्चर्यजनक लगती हैं, जिसने इतने विशाल पैमाने पर कोई चीज़ पहले न देखी

हो। मैं पार्लियामेंट के उन नये भवनों को भी देखने गया जिनका एक शानदार पैमाने पर निर्माण हो रहा है, और जो बनने के बाद शायद लंदन की सबसे भव्य और सुंदर इमारतें होंगी। .... मैंने लंदन के सारे घाट और उनके आस-पड़ोस की बस्ती भी देखी है। लंदन की सारी दौलत, दरअसल, उन्हीं में है। उनका प्रबंध देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई — इसके बाद वह माल-गोदाम और खिदरपुर घाट की बात करना सरासर बेवकूफी है। क्यों, मैंने तो लंदन के कुछ चांदी के सुनारों की दुकानें देखी हैं, जो दौलत के लिहाज़ से, मेरे विचार में, कलकत्ते के समग्र व्यापार के बराबर हैं।'

उन्होंने अपनी डायरी में दर्ज किया: 'इस देश के फल बड़े अच्छे हैं – दरअसल, मैंने जो कल्पना की थी, उससे बेहतर। स्ट्राबेरी बहुत स्वादिष्ट हैं, विशेषकर क्रीम और चीनी के साथ खाने में, चेरी (ओलची) भी बहुत अच्छी हैं, लेकिन गूजबेरीज़ के लिए मेरी रुचि नहीं है और पसंद भी नहीं हैं। किशमिशें बहुत खट्टी हैं और अच्छी नहीं हैं। आलू बुखारे भी अच्छे हैं, और आड़ू और शफतालू भी बहुत अच्छे हैं, लेकिन मुझे आड़ू ज्यादा पसंद हैं।' इंगलैंड में पैदा होने वाली तरकारियों के बारे में, उनकी राय इतनी अच्छी नहीं थी। सुबह के वक्त कोवेन्ट गार्डन के सब्जी बाजार में घूम कर और कलकत्ते में बंगाल की एग्री-हॉर्टीकल्चरल सोसाइटी की ओर से समय-समय पर आयोजित प्रदर्शनियों की याद करते हुए, उन्होंने नोट किया कि कोवेन्ट गार्डन में चाहे सब्जियों की तादाद ज्यादा हो, लेकिन वे उतनी बढ़िया किस्म की नहीं थीं, जितनी कलकत्ते के टाऊन हाल में होती हैं।[३०]

मछली के तरह-तरह के शोरबे और पकवान खाने वाले बंगाल देश के वासी होने के कारण उन्हें ग्रीनविच में 20 जून का एक डिनर इतना स्वादिष्ट लगा कि उन्होंने अपनी डायरी में उसके हर दौर का जिक्र किया है: 'हंगरफोर्ड (के पोत घाट) गया, जहां से स्टीमर में बैठ कर ग्रीनविच गया और "शिप" में पार्कर और हॉग्सन परिवारों और अपनी पार्टी के साथ डिनर खाया। ऐसा शानदार मछली-डिनर था वह। पहले दौर में मेज पर तली हुई ईल मछली, ईल्स ए ला तोलूज़, तले फ्लाउन्डर्स, उबली ताज़ी ट्राऊट, दमपुख्त ईल और ईल के कटलेट पेश किए गए। दूसरे दौर में केवल वाटरसकर ही – मेरा ख्याल है, उसका यही नाम है – परोसी गई, जो स्वादहीन डिश है। तीसरे दौर में ह्वाइट बेट पेश की गई – इसका डिनर करने के लिए ही तो मैं यहां आया था, और सचमुच वह बेहद लजीज़ थी। चौथे दौर में उबले और भुने मुर्गे, जीभ, समुद्री झींगे की कटलेट, एक शोरबा जो स्वादिष्ट नहीं था; और सब्जियों के रूप में मटर, सेम और आलू परोसे गये। पांचवां दौर, इस बार तली हुई ह्वाइटबेट। छठा दौर, बीजों की पुडिंग, फल की कचौरियां, किशमिश और चेरी की कचौरियां, और दो किस्म की अलंकृत पुडिंग, जेली और ब्लैंक मेन्ज और सबसे बाद में पेश किया गया पनीर और अनेक प्रकार के फलों का सलाद।'[31]

ऊपर के विवरण से लगेगा कि द्वारकानाथ खूब ज्यादा खाने वालों में से थे।

दरअसल खाने और पीने के मामले में वे मित आहार और बढ़िया किस्म के भोजन के आदी थे। वे कोमल काया के व्यक्ति थे और अक्सर बुखार के शिकार हो जाते थे। लेकिन उनकी कर्मशक्ति असाधारण थी और उनकी जिज्ञासा की तो कोई सीमा ही नहीं थी। उनमें हर चीज़ देखने, हर चीज चखने-परखने की बलवती उत्सुकता थी और वे लंदन की गहमागहम जिंदगी और वैविध्यपूर्ण संस्कृति से, चाहे वह उच्चकोटि का मनोरंजन हो या उच्चकोटि की कला, वंचित नहीं रहना चाहते थे। उन्होंने सुप्रसिद्ध कलाकारों से मित्रता पैदा की, जिनमें एफ०आर० से थे, जिनको उन्होंने कलकत्ते के टाऊन हॉल के लिए उनका आदमकद चित्र बनाने का काम सौंपा था, सर मार्टिन शी और कोंत द ओर्स थे, जिन दोनों ने उनके आवक्ष-चित्र बनाये, मूर्तिकार वीक्स थे, जिन्होंने उनकी संगमरमर की आवक्ष-प्रतिमा उकेरी। वे थियेटर और आपेरा देखने जाते थे, लेकिन उन्होंने किसी अभिनेता या अभिनेत्री या गायक से मित्रता स्थापित की हो, इसका रिकार्ड नहीं मिलता। वे चिड़ियाघर देखने गये और उन्होंने टिप्पणी की कि वहां अधिकतर जानवर और पक्षी भारत या अन्य पूर्वी देशों के थे। इतने ही उत्सुक वे बंदरगाहों, फैक्टरियों, शराब के कारखानों, स्कूलों और अस्पतालों, यहां तक कि अनाथालयों को देखने के प्रति थे। जीवन-भर वे रोगियों और पीड़ितों, पंगु और अंधों की चिन्ता करते रहे और उनके शरणालयों को हाथ खोल कर दान देते रहे। लार्ड एम्हर्स्ट उन्हें निकटवर्ती देहात की सैर को ले गये, जहां का प्राकृतिक दृश्य और सामंतों की हवेलियां अत्यंत सुंदर और मनोरम हैं।

लंदन में उनके व्यस्त जीवन का हवाला देते हुए, **मंथली टाइम्स** ने 4 अगस्त, 1842 के अंक में लिखा: 'यह अग्रगण्य हिन्दू ही इस मौसम का सिरमौर था, दरअसल आज भी है। उसने एक से अधिक बार हर मेजेस्टी के साथ भोजन किया है – प्रिंस अलबर्ट और केन्ट की डचेज़ के साथ बैठ कर ह्विस्ट खेला है – नागरिक दावत में कछुआ और हिरन का मांस खाया है – बकलॉश की डचेज़ के यहां टुन्डा सिमकिन शराब पी है, और हमने सुना है कि अल्माक में नृत्य किया है। ब्यू ब्रूमेल की सोसाइटी में कभी उसकी आधी भी मांग नहीं रही जितनी हमारे पुराने दोस्त टैगोर की है; बात यह है कि "कुछ लोग पैदा ही महान होते हैं – कुछ अपने परिश्रम से महानता प्राप्त करते हैं – और कुछ पर महानता लाद दी जाती है।" सौभाग्य की बात है कि उत्सवों और दावतों का मौसम समाप्त होने वाला है, नहीं तो इतनी सरगर्मियों में से गुज़रने की उनमें शक्ति ही न रहती। हम एक बात का उल्लेख करना नहीं त्याग सकते कि इतने आदर-सम्मान और उत्सवों और मनोरंजनों के बीच रह कर भी वे अपने पुराने मित्रों को कभी नहीं भूलते, बल्कि बड़े स्नेह और मुक्त-हृदय से उनका अभिनंदन करते हैं; जिससे ज़ाहिर होता है कि जैसी सहृदयता और दोस्ती की भावना भारत में उनके स्वभाव का अंग थी, वह यहां भी उनके मन पर शासन करती है। जिन चीजों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है –

और यह कहना कठिन है कि किसकी ओर ध्यान नहीं दिया है – उनमें से पोस्ट-आफिस और पोतघाटों की संयोजना और व्यवस्था ने मुख्य रूप से उन्हें आकर्षित किया है। उनका हमारी भाषा पर अधिकार, उनकी पैनी और सूक्ष्म दृष्टि, उत्तर देने में उनकी व्यवहारकुशलता – और हर चीज़ की पूरी जानकारी प्राप्त करने की उनकी सच्ची लगन और इच्छा उन सबको आश्चर्यचकित कर देती है, जो उनके सम्पर्क में आये हैं। 10 तारीख को वे फिर ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों के साथ डिनर खायेंगे और उसके बाद स्कॉटलैंड, आयरलैंड और इंगलैंड के औद्योगिक उत्पादन करने वाले जिलों का दौरा करने के लिए निकल पड़ेंगे।'

इसी पत्रिका में 'प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर' शीर्षक से **दी टाइम्स** में से लेकर एक और दिलचस्प समाचार पुनर्प्रकाशित किया गया: 'गत शुक्रवार को हिज़ हाईनेस बड़ी परेशानी में फंस गये, जब वे टेम्स के तट पर ट्विकेनहम में लार्ड मेयर की पार्टी में भाग ले रहे थे। जिस समय बजरा पोप के ग्राम्य-निवास के पास नदी में बंधा खड़ा था, 6 बजे शाम के करीब लार्ड फिट्ज़गेरल्ड और वेस्सी का संदेश-वाहक एक पत्र लेकर वहां पहुंचा, जिसमें महारानी का आदेश था कि प्रिंस उसी शाम को एक शाही डिनर में उपस्थित हों। हिज़ हाईनेस के दुर्भाग्य से, उन्हें लंदन वापस लाने के लिए कोई सवारी नहीं तलाश की जा सकी। आखिरकार, लैम्बेथ रोड के मिस्टर टी०पी० ऑस्टिन ने, जो इस नागरिक समारोह में भाग लेने के लिए अपनी फिटन गाड़ी में एक मित्र को लेकर आये थे, हिज़ हाईनेस पर रहम करके उन्हें खाली सीट पर बिठा कर लंदन पहुंचाने का प्रस्ताव किया। मार्ग में उन्हें प्रिंस की गाड़ी मिल गई, जिसने प्रिंस को समय पर बकिंघम पैलेस पहुंचा कर दरबार का शिष्टाचार भंग करने के आरोप से उन्हें बचा लिया।'

शेफील्ड में, जो लोहा और इस्पात पैदा करने का केन्द्र है, द्वारकानाथ ने रोजर्स का छुरी-कांटे बनाने का कारखाना देखा, और उनके शो-रूम में एक 1871 धारों वाला और एक 145 और दूसरा 75 धारों वाला चाकू देख कर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इन अनेक धारों वाले चाकुओं में से एक, जिसके अंत में पेंसिल भी लगी थी, खरीद लिया।[32] यार्क की यात्रा के बाद, जहां का कैथीड्रल उन्हें दुनिया में सबसे बड़े गिरजों में से एक लगा, वे न्यू कासल गये। बंगाल की सबसे बड़ी कोयला खान के संस्थापक होने के नाते, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने अपनी डायरी में उस महान कोयला-क्षेत्र का, जो इंगलैंड का रानीगंज है, विस्तारपूर्वक और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन किया है; लेकिन साधारण पाठकों को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं होगी।'[33]

रेलगाड़ियाँ उनको इंगलैंड की 'सबसे आश्चर्यजनक उपलब्धि' लगीं। 1845 में इंगलैंड की अपनी दूसरी यात्रा पर जाने से पहले उन्होंने बंगाल में भी ऐसा ही 'आश्चर्य' लाने का भरसक प्रयत्न किया था। दुर्भाग्य से वे अपना स्वप्न पूरा होते

देखने के लिए जिन्दा नहीं रह सके।

ग्लास्गो में उन्होंने चार्टरवादियों और बेरोजगारों का एक जुलूस देखा और अपनी डायरी में नोट किया: 'इस समय करीब 3 लाख मजदूर बेकार हैं, उन गरीबों से पुलिस सख्ती से पेश आ रही है। वे भारत के पहाड़ी कुलियों में भुखमरी की चर्चा करते हैं, लेकिन मुझे यहां चारों ओर उनसे भी ज्यादा मुसीबतजदा लोग नज़र आते हैं।'[35]

29 अगस्त को द्वारकानाथ एडिनबरा पहुंचे। अगले दिन नगर की कौंसिल की एक विशेष मीटिंग का, 'अत्यंत प्रतिष्ठित हिन्दू द्वारकानाथ टैगोर' को 'फ्रीडम ऑफ दी सिटी' का सम्मान प्रदान करने के लिए, आयोजन किया गया। एडिनबरा के प्रमुख दैनिक पत्र **दी स्कॉचमैन** ने 'एक हिन्दू भद्रपुरुष को फ्रीडम ऑफ दी सिटी से सम्मानित' करने की घटना को 'ग्रेट ब्रिटेन के इतिहास में अभूतपूर्व घटना' बताया। उसने पूरे एक कॉलम में द्वारकानाथ के कार्यों और उनकी उपलब्धियों का बखान किया। यह सम्मान प्रदान करते हुए लार्ड प्रोवोस्ट सर जेम्स फारेस्ट बार्ट ने कहा: 'यह एक ऐसा सम्मान है जिसकी हम बेहद कद्र करते हैं, और जिसे हम खुले हाथों नहीं बांटते। यह सम्मान हम केवल उन लोगों को ही प्रदान करते हैं, जिन्होंने अपने कार्यों से यहां के लोगों या समूचे देश को महत्वपूर्ण लाभ पहुंचाया है – जिन्होंने सेवा कार्य में या साहित्य-सृजन के क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों द्वारा ख्याति प्राप्त की है – और उच्च श्रेणी के उन विख्यात विदेशियों को भी प्रदान करते है जो यदा-कदा हमारे देश में पधारते हैं। महामना, आप हिन्दू जाति के पहले व्यक्ति हैं, जिनको यह सम्मान प्रदान किया जा रहा है, और यद्यपि, मै अपनी व्यक्तिगत जानकारी से तो नहीं कह सकता, लेकिन मुझे उन सब लोगों की साक्षी के आधार पर, जिन्हें आपके बारे में तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला है, यह कहने का अधिकार दिया गया है कि आप इस सम्मान के पूरे अधिकारी हैं....' द्वारकानाथ ने बड़े शालीन शब्दों में इसका उत्तर दिया, जिसे 'कौंसिल ने अपने कार्य-वृत्त में शामिल करने का फैसला किया।'

पहली सितंबर को महारानी एडिनबरा पहुंची – यहां वे पहली बार आयी थीं – और दो दिन बाद, उन्हें नगर की चाबी भेंट की गई। यहां भी किले में महारानी ने खुशी से एक बार फिर उन्हें भेंट करने का अवसर दिया। 5 सितंबर को एडिनबरा के यूनीटेरियन असोसियेशन ने उन्हें एक मानपत्र प्रदान किया और 8 सितंबर को फिर एडिनबरा एमीग्रेषन एण्ड अबोरिजीनीज़ प्रोटेक्शन सोसाइटी की ओर से एक मानपत्र दिया गया। आरंभ में यह सोसाइटी वेस्ट इण्डीज़ में नीग्रो जाति के लोगों की गुलामी के खिलाफ आंदोलन करने के उद्देश्य से स्थापित की गई थी, लेकिन बाद में वह भारतीय किसानों के हितों में भी दिलचस्पी लेने लगी थी और जिसे हिल-कुलीज़ एमीग्रेशन सिस्टम पुकारा जाता था, उसके विरुद्ध भी आंदोलन करती थी। भारत के लोगों से संबंधित सोसाइटी के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के

काम में द्वारकानाथ से परामर्श और पथ-प्रदर्शन की मांग करते हुए मानपत्र में कहा गया: 'हम आपके रूप में एक ऐसे ज्ञानवान् मित्र को देखते हैं, जो आप जैसे धनी-मानी व्यक्ति को शक्ति और शालीनता प्रदान करता है, और एक ऐसे उदार व्यक्ति के रूप में पहचानते हैं, जिसने अपने देश के नौजवानों की शिक्षा के लिए विस्तृत योजनाओं को प्रोत्साहन दिया है।....'[37]

ग्लासगो होते हुए लौटते समय, जो स्कॉटलैण्ड के एडिनबरा का समकक्ष है, वे वहां के कारखानों, मालगोदामों और वैज्ञानिक बेल की याद में बने स्मारक को देखने गये, जिसने स्टीम बोट की ईजाद की थी, जिसमें द्वारकानाथ को विशेष दिलचस्पी थी। वे सोलहवीं सदी के धार्मिक सुधारक जॉन नॉक्स के मकबरे पर जाना भी नहीं भूले, हालांकि वे धार्मिक कट्टरता को नापसंद करते थे। ग्लासगो से वे जहाज़ द्वारा लिवरपूल आये, जहां उन्हें यह देख कर खुशी हुई कि उनके स्टीम टग असोसियेशन ने जिन चार इंजनों के लिए ऑर्डर किया था, उनका फासेट के इंजन बनाने वाले कारखाने में निर्माण हो रहा था। उनमें से एक इंजन उनके नाम के स्टीमर **द्वारकानाथ** के लिए था।

लिवरपूल के सामाजिक संस्थानों में उन्होंने सबसे अधिक दिलचस्पी अंधों के आश्रम में दिखायी। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा: 'मुझे लगा कि यह दृश्य देखने योग्य था और जब मैं वहां से आने लगा तो वे सब मुझसे हाथ मिलाने के लिए उत्सुक थे और मैंने सबसे हाथ मिलाये।'[38]

लिवरपूल से वे रेल-मार्ग द्वारा मैनचेस्टर आये, जहां वे मरे का कारखाना देख कर सबसे ज्यादा प्रभावित हुए। और यद्यपि वे आधुनिक सभ्यता की प्रगति के प्रतीक के रूप में मशीनों से प्यार करते थे, लेकिन सौंदर्य की वस्तुओं के प्रति उनका आकर्षण कम नहीं था, इसलिए उन्होंने वोर्सेस्टर जाकर चीनी मिट्टी के कलश और फूलदान देखे और उनकी प्रशंसा की।

इस उत्तेजक यात्रा के बाद, जो तीर्थ यात्रा के समान थी, वोर्सेस्टर से घोड़ागाड़ी द्वारा वे ब्रिस्टल आये, उस भूमि पर अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने के लिए, जिसमें उनके परम प्रिय मित्र राममोहन राय दफन थे। वे स्टेप्लेटन ग्रोव के बाग में उनकी उपेक्षित कब्र पर गये, जहां राममोहन राय ने मिस कासल के मेहमान के रूप में अपने जीवन के अंतिम दिन गुजारे थे। द्वारकानाथ ने राममोहन राय की कब्र को आर्नेविल में नगर के मुख्य कब्रिस्तान में स्थानान्तरित करने का प्रबंध किया और फिर एक वास्तुकार को उस पर हिन्दू-शैली का एक स्मारक निर्मित करने का काम सौंपा। इस प्रकार उस व्यक्ति के प्रति अपना ऋण चुका कर, जो उनका 'मित्र, पथ-प्रदर्शक और दार्शनिक' था, और कलकत्ते के टाऊन हॉल में जनता द्वारा सौंपे दायित्व को पूरा करके वे लन्दन वापस आ गये।

इस बीच, **मंथली टाइम्स** ने, जो द्वारकानाथ द्वारा औद्योगिक उत्पादन केन्द्रों और स्कॉटलैण्ड की यात्रा की सूचनाएं प्रकाशित करता रहा था, 4 अक्तूबर 1842

के अंक में निम्न समाचार छापा 'कुछ दिन पहले हमें यह देख कर संतोष हुआ कि मिस्टर वीक्स ने उस आकार को अंतिम रूप दे दिया है, जिसके अनुसार द्वारकानाथ की संगमरमर की आवक्ष-मूर्ति उकेरी जायेगी और सर मार्टिन शी एक आदमकद चित्र बना रहे हैं, और मिस्टर से भी इस प्रसिद्ध हिन्दू की अनुकृति तैयार कर रहे हैं।'

मित्रा के अनुसार लंदन वापस आने के कुछ दिन बाद द्वारकानाथ को शाही आदेश मिला कि उन्हें 29 सितंबर को विंडसर कासल में साम्राज्ञी और प्रिंस अलबर्ट के साथ दोपहर का भोजन करना है, लेकिन **कलकत्ता स्टार** के सम्पादक जेम्स ह्यूम के अनुसार यह तारीख उससे अगले दिन की थी, जैसा कि नीचे उद्धृत सम्पादकीय से ज़ाहिर है। इस दावत के समय साम्राज्ञी और प्रिंस अलबर्ट, दोनों ने द्वारकानाथ का यह आग्रह स्वीकार कर लिया कि उनके आदमकद चित्र उनके द्वारा कलकत्ते के टाऊन हॉल को भेंट किये जायें। साम्राज्ञी ने स्वयं अपनी इच्छा से यह आदेश देने का अनुग्रह भी किया कि उनका और उनके रॉयल पति के लघुचित्र उनकी व्यक्तिगत भेंट और यादगार के रूप में द्वारकानाथ को भेंट किये जायें। इस संबंध में **कलकत्ता स्टार** के सम्पादक जेम्स ह्यूम ने जो लिखा, वह उल्लेखनीय है:

'शुक्रवार, 30 तारीख को कलकत्ते के इस प्रतिष्ठित नागरिक को (जो अब एडिनबरा का नागरिक भी है) हर मैजेस्टी साम्राज्ञी ने विन्डसर कासेल में विशेष रूप से बुला कर सम्मानित किया, इससे पहले कि भारत लौटने के लिए वे पेरिस जायें और फिर मार्सई जाकर जहाज़ पकड़ें। हमें ज्ञात हुआ है कि इस अवसर पर हर मैजेस्टी और प्रिंस अलबर्ट द्वारा बाबू का स्वागत अत्यंत भव्य और स्नेहपूर्ण था। हर मैजेस्टी ने उन्हें अपना और अपने रॉयल पति का एक-एक चित्र भेंट करने का शालीन इरादा प्रकट किया। कहना न होगा कि यह भेंट अत्यंत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार की गई। हम स्वयं कल्पना नहीं कर सकते कि शाही उदारता का कोई और चिन्ह हमारे सम्मानित भारतीय को इससे अधिक स्वीकार होता, जो साम्राज्ञी ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया है। .... अब यह देखना बाकी है कि हर मैजेस्टी के मंत्रीगण द्वारकानाथ टैगोर के विशिष्ट या कहें बेमिसाल गुणों के प्रति न्याय करने में अपनी साम्राज्ञी की इच्छा के साथ कितनी सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे। हमें अच्छी तरह मालूम है कि बाबू की जरा भी आकांक्षा नहीं है कि उन्हें उन उपाधियों से विभूषित किया जाय जो कम नैतिक और बौद्धिक प्रतिभा के लोगों की दृष्टि में इतना जबर्दस्त आकर्षण रखती हैं। लेकिन इससे उन लोगों की जिम्मेदारी घट नहीं जाती जो योग्यता और गुण की परख करके राज-सम्मान द्वारा पुरस्कृत करने के मामले में साम्राज्ञी को परामर्श देते हैं, कि वे उनके अनुरूप उन्हें मान्यता और प्रशंसा के किसी विशेष चिन्ह से सम्मानित करें।'

'बम्बई के एक इतने ही प्रतिष्ठित और ऐसे ही उदारमना व्यक्ति को नाइट की उपाधि से सम्मानित किया जा चुका है।[40] हमें इस बात पर विश्वास नहीं होता कि द्वारकानाथ टैगोर जैसे व्यक्ति को किसी भी चिन्ह से सम्मानित किए बगैर, जो

उनके देशवासियों को बता सके कि वर्तमान शासन उनकी विरल प्रतिभा की कितनी कद्र करता है, इस देश के तट से वापस जाने दिया जायेगा। जीवन की हर परिस्थिति में द्वारकानाथ टैगोर ने सर्वत्र एक शालीन और उदात्त मिसाल पेश की है, चाहे अपने देश में हो या योरप में। एक व्यक्ति के नाते, अपनी बेहिसाब मेहमाननवाजी से, अपनी एक-सां नागरिक सुरुचि और शालीनता से, अपनी राजसी उदारता से; एक सरकारी कर्मचारी के नाते, अपने दायित्वों और कार्यों को पूरी निष्ठा, लगन और वफादारी से निभाने से; सबसे बड़े ज़मींदारों में से एक होने के नाते, अपनी ज़मीनों पर बसे सब लोगों की दशा सुधारने के निरन्तर प्रयत्नों से; और एक व्यापारी के नाते, अपनी अडिग ईमानदारी और जागरुक अध्यवसाय और उद्यमशीलता से वे बंगाल के सभी वर्गों के लोगों के प्रेम, विश्वास और स्थायी कृतज्ञता के पात्र बन गये हैं। उनके विरल गुणों के बारे में भूतपूर्व गर्वनर जनरल विलियम बेन्टिंक की राय इतनी ऊंची थी कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि द्वारकानाथ टैगोर को उनके हाथों से कोई ऐसी उपाधि प्रदान की जाय जो उनके प्रति सरकार के आदरपूर्ण-भाव का संकेत दे सके। हम जानते हैं कि लार्ड ऑकलैण्ड बहुत दिनों से द्वारकानाथ टैगोर के गहरे मित्र रहे हैं, और यह जानकर कि एक ऐसे व्यक्ति को सम्मानित किया गया है, जिसने भारत की समृद्धि और उसकी जनता की दशा सुधारने के लिए किए गये उनके हर कार्य में उन्हें भरपूर सहयोग दिया था, वे सबसे पहले खुशी मनायेंगे। द्वारकानाथ टैगोर के सह-नागरिकों ने उनके प्रति अपनी आस्था और स्नेह का सबसे बढ़िया प्रमाण उस समय ही दे दिया था जब उन्होंने उनको मानपत्र भेंट किया था और उनका चित्र या मूर्ति या दोनों प्राप्त करने के लिए चंदा उगाया था। हमें इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं लगती। द्वारकानाथ और उनके परिवार ने सर एडवर्ड हाइड ईस्ट के साथ मिल कर हिन्दू कालेज जैसी भव्य संस्था को जन्म दिया था। स्कूल बुक सोसाइटी, मेडिकल कालेज, देसी लोगों के लिए कलकत्ता और उसके गिर्द के स्कूल, वर्नाक्युलर, स्कूल, फीवर हॉस्पिटल, डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसाइटी, अंधों और कोढ़ियों के आश्रम, और अंत में ज़मींदारों की सोसाइटी, ये सब द्वारकानाथ और उनके परिवार के ऋणी हैं, चाहे अपने अस्तित्व मात्र के लिए, चाहे उन उदार दान-चंदों के लिए, जिन पर उनका अस्तित्व और सफलता निर्भर करती है। ऐसी देशभक्ति और ऐसी दानशीलता हमारे आदर और सम्मान की मांग करती है, और इस विश्वास की मांग करती है कि जिस व्यक्ति ने अपने देश पर इतने पुनीत और स्थायी उपकार किए हैं, वह उन लोगों के हाथों से, जिनमें उसका भाग्य समर्पित है, कोई उपयुक्त सम्मान प्राप्त करेगा।"[41]

किन्तु हुआ यह कि द्वारकानाथ इंगलैंड का तट छोड़ कर ब्रिटिश सरकार से नाइट की या कोई और उपाधि पाये बगैर ही वापस लौट आये। उन्हें सर की उपाधि या कोई दूसरा सम्मान देने का प्रस्ताव था और उन्होंने उससे इन्कार कर दिया था,

जैसा कि कई लेखकों का अनुमान है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका कोई सरकारी रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। दिसंबर 1842 के **बंगाल स्पेक्टेटर** ने लिखा कि 'कहा जाता है कि उन्होंने सर की उपाधि स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।' ब्लेयर क्लिंग ने लॉर्ड ब्राऊघम को लिखे जेम्स यंग के पत्र से हवाला दिया है: 'मेरी हार्दिक इच्छा है कि वे उन्हें बारों की उपाधि प्रदान करेंगे, **प्रमुख** भारतीय बारों की।'[42] क्लिंग का अनुमान है कि ऐसे ही किसी सम्मान की आशा में द्वारकानाथ ने अपना कुल-चिन्ह लंदन के कालेज ऑफ आर्मस में पुंजीकृत करा लिया था। यह पुंजीकरण (जिसका निरीक्षण, प्रस्तुत लेखक ने लंदन में क्वीन विक्टोरिया स्ट्रीट पर स्थित कालेज ऑफ आर्मस में अपनी इंगलैण्ड यात्रा के दौरान 1976 में किया था) दरअसल 15 दिसंबर, 1842 को किया गया था, जबकि द्वारकानाथ लंदन से भारत के लिए रवाना हो चुके थे। मूल अधिपत्र इस समय कलकत्ते के रवीन्द्र भारतीय म्यूजियम में प्रदर्शनार्थ रखा है, जहां पर इसे सूची के अंदर 'द्वारकानाथ टैगोर को ड्यूक ऑफ नॉरफोक की मार्फत क्वीन विक्टोरिया द्वारा अनुदत्त कुल-चिन्ह' के रूप में दर्ज है। यह अधिपत्र जिसे 'पूर्व भारत में बंगाल के द्वारकानाथ टैगोर, जमींदार और व्यापारी, आदि...' के नाम से पुंजीकृत किया गया है, एक दिलचस्प दस्तावेज़ है, जिसके शीर्ष पर बहुरंगी कुल-चिन्ह बना है। कुल-चिन्ह-फलक तीन भागों में बंटा है: निचले भाग में एक जहाज़ है जो समुद्र की लहरों पर चल रहा है, मध्य में दो कुण्डलित खर्रों के बीच एक खुली पुस्तक है और ऊपर के भाग में कमल के दो फूल हैं। फलक के शिखर पर एक हाथी अपनी सूंड में कमल का फूल पकड़े खड़ा है। हाथी के पीछे एक ध्वज है, जिस पर हल का चिन्ह अंकित है। फलक के नीचे आदर्श-वाक्य अंकित है: 'अच्छे कार्यों की विजय होगी!' स्मरण रहे कि इस आदर्श-वाक्य के साथ इस फलक का एक अरसे से उनके पत्र-पैड पर कुल-चिन्ह के रूप में इस्तेमाल होता आया था और उनके पोते कवि रवीन्द्रनाथ के आरंभिक पत्रों में भी देखा जा सकता है।

बंगाल स्पेक्टेटर ने, जिसमें से हमने ऊपर एक उद्धरण दिया है, यह भी लिखा कि साम्राज्ञी से विदा लेने से पहले द्वारकानाथ ने 'उनको एक बहुत शानदार शॉल और प्रिंस ऑफ वेल्स (प्रिंस कॅन्सोर्ट की जगह गलत छप गया है) को एक कीमती खंजर भेंट किया था। इसी अखबार ने एक महीने बाद सूचना प्रकाशित की: साम्राज्ञी और प्रिंस अलबर्ट से विदाई लेने से पहले द्वारकानाथ बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष लार्ड फिट्ज़गेरल्ड से मिले, जिन्होंने हर मैजेस्टी के आदेशानुसार उन्हें शाही उपहार और 'उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक कार्यों के प्रति साम्राज्ञी की प्रशंसा के एक विशेष चिन्ह के रूप में सोने का एक तमगा भेंट किया।'

इंगलैंड से चलने के पहले सी०वाई० फेनी ने, जिन्होंने प्राचीन केल्टिक परंपरा के पुनरुत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर रखा था, और जिनका विश्वास था कि इस परंपरा का वैदिक परंपरा से गहरा संबंध था, द्वारकानाथ को एक मान-पत्र

भेंट किया।[43] यद्यपि इस संस्था का अब अस्तित्व नहीं रहा, लेकिन आज उन भावनाओं को स्मरण करना दिलचस्प होगा, जिन्होंने उस मान-पत्र को प्रेरित किया था। उसका पहला पैरा उद्धृत करने योग्य है:

'परम यशस्वी जननायक, द्वारकानाथ टैगोर, सी०वाई०फेनी के नाम पर और उनकी ओर से, मैं इस द्वीप की प्राचीन और आदिम भाषा में आपको संबोधित करने की इजाज़त चाहता हूं और उनकी कृतज्ञता से आपको अवगत कराना चाहता हूं कि आपने उनके राष्ट्रीय समारोह के अवसर पर, जो उनके देश की प्राचीन प्रथाओं के अनुसार आयोजित किया गया है, जो पीढ़ी-दर पीढ़ी मौखिक परंपरा द्वारा सुरक्षित हैं, जिनका सिवाय इन परंपराओं के और कोई रिकार्ड या स्मारक शेष नहीं हैं, और यद्यपि यह परंपरा इतनी अस्पष्ट और अविशिष्ट किस्म की है कि इतिहास में उन्हें कोई स्थान नहीं मिलता, फिर भी अगर सुमेर देश से सिम्री जाति का कथित देशान्तरण, द्रुद और ब्राह्मण मतों की समानता और संस्कृत और सिम्राई भाषाओं में पाये जाने वाले उल्लेखनीय साम्य को उचित महत्व दिया जाय, तो इस बात का प्रमाण मौजूद है कि हिन्दू और केल्ट संस्कृतियों का एक ही मूल है या फिर प्राचीनतम काल में मानव-परिवार की इन दोनों आदिम शाखाओं में अंतरंग संबंध रहा है।'[44]

मित्रा के अनुसार, द्वारकानाथ को विदाई देने के लिए जो मित्र आये थे, उनमें 'वह अननुकरणीय उपन्यासकार, स्वर्गीय चार्ल्स डिकेन्स' भी थे।[45] द्वारकानाथ को विदाई देने के लिए घाट पर उस शाम को और भी अनेक विख्यात और प्रतिष्ठित लोग आये थे। 15 अक्तूबर की शाम को द्वारकानाथ और उनकी पार्टी लंदन ब्रिज के घाट से **विलियम फासेट** जहाज़ पर सवार हुए। तीन दिन बाद वे पेरिस पहुंचे। 'संसार में सबसे सुंदर और प्रभावशाली दृश्यों में से एक', इन शब्दों में द्वारकानाथ ने सौंदर्य और उल्लास, विज्ञान और कला के इस नगर के बारे में अपनी पहली प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। 'नगर में इस तरह रोशनी की गई थी, जैसे किसी शानदार अवसर पर चिरागां किया गया हो।'[46] पेरिस में उन्हें भारत से लौटे अनेक मित्र मिल गये, उनमें पार्कर और कैम्पबेल परिवार थे और विलियम प्रिंसेप थे, जो उनसे पहले ही वहां पहुंच गये थे। इनके अलावा उन्होंने अनेक नये प्रतिष्ठित व्यक्तियों से भी परिचय प्राप्त कर लिया, जिनमें घ्रामो की डचेज़, सी० लापेत, बारों जेम्स राथ्सचाइल्ड, एम० ग्वीजो आदि थे। उनके पुराने मित्र काऊंट डी ओरसे तो वहां थे ही, अपने चमक-दमक वाले शहर में उनका स्वागत करने के लिए।

उनकी पेरिस-यात्रा की रिपोर्ट करते हुए 4 नवंबर के **लंदन मेल** ने लिखा: '28 अक्तूबर को फ्रांस के बादशाह ने बाबू से भेंट की और हिज़ मैजेस्टी ने दरबार की औपचारिकता को त्याग कर उन्हें अपने परिवार के अंतरंग दायरे में दाखिल किया। इस विख्यात पूर्वदिशी बाबू का हर मैजेस्टी साम्राज्ञी, बेल्जियम के बादशाह और मलका, नेमूर्स के ड्यूक और डचेज़ और शहजादी क्लेमान्तीन से परिचय कराने के

बाद हिज़ मैजेस्टी अपने मेहमान को राजमहल के विभिन्न भागों को दिखाने के लिए ले गये, जिन्हें इस अवसर के लिए खास तौर पर रौशन किया गया था। उस शाम के दौरान फ्रांस के शाह ने उनसे भारत की दशा और वर्तमान अवस्था पर खुल कर विस्तार से बातें कीं और हार्दिक आशा व्यक्त की कि उनके प्रसिद्ध मेहमान फिर लौट कर फ्रांस पधारेंगे, जिसके उत्तर में द्वारकानाथ टैगोर ने वायदा किया कि 1843 की सरदियों में वे फिर आयेंगे।' उन दिनों चूंकि राज दरबार मातम मना रहा था, इसलिए कोई सार्वजनिक स्वागत-समारोह नहीं किया गया।

जिन दिनों द्वारकानाथ पेरिस में थे, वहां उन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों की कोर्ट की ओर से एक प्रशंसात्मक पत्र मिला, जिसमें कहा गया कि 'आपने ब्रिटिश इंडिया पर जो सार्वजनिक उपकार किए हैं, शिक्षा के प्रसार को आपने जिस उदारता से प्रोत्साहन दिया है, कला और विज्ञान के विकास के लिए जो महत्वपूर्ण कार्य किया है और कलकत्ते की खैराती संस्थाओं को, चाहे वे हिन्दुओं को राहत देने के लिए हैं या ब्रिटिश सम्प्रदाय को, आपने जो उदार सहायता दी है, उसका हम हार्दिक अनुमोदन करते हैं।' कोर्ट ने उनसे प्रार्थना की कि वे उनकी प्रशंसा के प्रतीक के रूप में एक सोने का तमग़ा स्वीकार करें, जिसे उस समय तैयार किया जा रहा था।

द्वारकानाथ ने 'माननीय डायरेक्टरों की कोर्ट' को 'उनके संतोषजनक प्रशंसापत्र' के लिए अपना हार्दिक धन्यवाद भेजने में क़तई विलम्ब नहीं किया और साथ ही उन्होंने 'माननीय कोर्ट के न्यायपूर्ण और उदार शासन' की भी प्रशंसा की और अपना यह 'पक्का विश्वास' भी दोहराया कि 'भारत की सुख-समृद्धि आपके महान देश से संबद्ध रहने में ही सबसे अच्छी तरह सुरक्षित रहेगी... जिसकी उन करोड़ों लोगों की भलाई और उन्नति की उदात्त चिन्ता, जिन्हें ईश्वर ने उसके अधीन किया है, संसार भर की प्रशंसा की पात्र बनेगी।'

डायरेक्टरों का पत्र और द्वारकानाथ का उत्तर, दोनों ही 4 नवंबर 1842 के **दी टाइम्स** में निम्न टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुए: 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने इस शरीफ़ इंसान की दानशीलता और उत्साह को जो श्रद्धांजलि अर्पित की है, उससे अधिक संतोषजनक बात की हम कल्पना नहीं कर सकते, अगर हम उस संतोष पर विचार न करें, जो भारत के हर मित्र को यह जान कर निश्चय ही होगा कि इन व्यापारी शहज़ादों (माननीय कोर्ट) के न्यायपूर्ण और उदार शासन को इस महत्वपूर्ण साम्राज्य के एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति का अनुमोदन प्राप्त हो गया है।'

डायरेक्टरों द्वारा उनकी सार्वजनिक सेवाओं के 'अनुमोदन' और एक सुवर्ण-पदक देने के प्रस्ताव के उत्तर में द्वारकानाथ स्नेहपूर्ण धन्यवाद का पत्र लिख कर भी संतोष कर सकते थे। लेकिन बजाय इसके उन्होंने आवश्यक रूप से ऐसे भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किए जो कंपनी के 'न्यायपूर्ण और उदार शासन' और अपने करोड़ों देशवासियों की भलाई के प्रति ब्रिटेन की 'उदात्त चिन्ता' की चापलूसी भरी प्रशस्ति लगते हैं, जबकि वे खूब अच्छी तरह जानते थे कि उनके देशवासी एक ऐसी टूटी-

फूटी, दरिद्र जिंदगी जी रहे थे जो मानवोचित नहीं थी। फिर भी द्वारकानाथ हृदय से एक जी-हजूरिया व्यक्ति नहीं थे, उनमें अपने आत्म-गौरव का गहरा भाव था, और अपने देश के शासकों की खामियों का पूरा अहसास था। इसलिए जॉन कम्पनी के डायरेक्टरों के 'अनुमोदन' से इतना अभिभूत होने का उनके पास कोई कारण नहीं था। ब्रिटेन की साम्राज्ञी और अभिजात वर्ग से उन्हें इसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा हार्दिक सम्मान प्राप्त हो चुका था और तत्काल उन्हें उतना ही हार्दिक सम्मान फ्रांस के सम्राट से प्राप्त हुआ था। क्या वे जान-बूझ कर डायरेक्टरों को खुश करने की नीति पर चल रहे थे, ताकि इंगलैण्ड और भारत को लघुतर जलमार्ग से वाष्पचालित जहाज़रानी द्वारा जोड़ने की जो विशाल परियोजना उनके दिमाग में पक रही थी, उसके लिए, और अपने देश में रेलवे लाइन के विकास के लिए वे उनकी अनुकूल प्रतिक्रिया और सहयोग प्राप्त कर सकें? क्या एक व्यापारी शहजादा दूसरे व्यापारी शहज़ादों के साथ कूटनीति से काम ले रहा था? नहीं तो उन्हें क्या जरूरत थी कि वे उस गलती को फिर दोहराते जो उन्होंने मैन्शन हाऊस के भाषण में की थी, और जिसके खिलाफ उनके कुछ अंग्रेज मित्रों तक ने प्रतिवाद किया था? उस भाषण में कम से कम एक अंतर्निहित व्यंग्य का संकेत तो देखा जा सकता था, जिसकी ओर **बंगाल हरकारू** के सम्पादक ने ध्यान आकर्षित किया था। डायरेक्टरों के नाम इतने अभिभूत भाव से लिखे इस पत्र में तो ऐसा कोई व्यंग्य अंतर्निहित नहीं था।

क्या द्वारकानाथ एक अभिनेता थे, जैसा कि क्लिंग का विचार है, जो अवसर के अनुकूल अपनी भूमिका अदा करते थे और अवसर के अनुकूल ही बोलते थे? वह एक कुशल अभिनेता भी हो सकते थे। 'कलकत्तामें वे एक साहसी, किसी के आगे न गिड़गिड़ाने वाले एक राजनीतिक नेता थे, जो राजनीतिक कदम उठाने के पक्ष में लोगों का समर्थन जुटाते थे। इंगलैण्ड में वे एक संभ्रांत कूटनीतिज्ञ थे, भारत की जनता के राजदूत; जो एक "महान मुगल" की भूमिका अदा कर रहे थे, जो अपने नौकर-चाकरों के अमले से घिरे रहते थे, और बराबर के स्तर पर भेंट-उपहारों, सौजन्य और अतिथय का आदान-प्रदान करते थे। वैसे, उन्होंने जो कुछ कहा था, उसमें उनका हार्दिक विश्वास था। एक ओर तो ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनके देशवासियों का शोषण किया था और उन्हें भरपूर लूटा-खसोटा था। दूसरी ओर, तत्कालीन, परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार ही भारत को सबसे अच्छी शासन-व्यवस्था प्रदान कर सकती थी।'[47]

दरअसल, इसमें जरा भी संदेह नहीं कि द्वारकानाथ ने जब यह लिखा कि 'यह उनका पक्का विश्वास है कि भारत की सुख-समृद्धि आपके महान देश के साथ संबद्ध रहने में ही सबसे अच्छी तरह सुरक्षित रहेगी तो उनका आशय वही था जो उन्होंने लिखा था। यह विश्वास अभी हाल तक भारत के अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं में सामान्यतः चलता आया है। 1907 में इलाहाबाद में होने वाली एक प्रांतीय

कान्फ्रेंस में अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू ने, जो भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के वरष्ठि नेताओं में से थे, कहा 'जॉन बुल का इरादा नेक है–बुराई करना उसके स्वभाव में नहीं है... सिर्फ उसे स्थिति को समझने में जरा देर लगती है, लेकिन जब वह स्थिति को साफा-साफ समझ जाता है तो वह अपना कर्तव्य निभाता है, और इस पृथ्वी पर ऐसी कोई ताकत नहीं है... नहीं, इस देश में या अन्यत्र रहने वाले उसके सगे-संबंधी भी नहीं – जो उसके दृढ़ संकल्प का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकें।'[48]

9 नवंबर को जार्ज थाम्सन के साथ, जो अपने जमाने के असाधारण व्यक्तियों में से एक था और जिसे उन्होंने अपने देश में आने के लिए निमंत्रित किया था,[49] द्वारकानाथ मार्सई से जहाज में रवाना हुए। भारत सरकार की ओर से विशेष रूप से भेजा गया एक स्टीमर उन्हें बंबई में मिला, जो उन्हें लेकर मद्रास आया, जहां वे एक अन्य स्टीमर पर सवार हुए और दिसंबर 1842 में, ग्यारह महीने के प्रवास के बाद कलकत्ते लौट आये।

नोट्स

[1] यह अमानती दस्तावेज रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के अभिलेखागार में देखा जा सकता है।

[2] **आत्म-जीवनी** देवेन्द्रनाथ टैगोर। विश्व भारती, कलकत्ता 1962, पृष्ठ 85.

[3] 70 वर्ष बाद, उसी टाऊन हॉल में 50वें जन्मदिन के अवसर पर द्वारकानाथ के विश्वविख्यात पोते कवि रवीन्द्रनाथ को सम्मानित किया गया। लेकिन इस अवसर पर दर्शक यद्यपि उतने ही उत्साह से भरे थे, लेकिन थे सारे के सारे बंगाली ही, न कि सर्वदेशीय। इस अन्तराल में दोनों समुदाय–शासक और शासित–एक-दूसरे से दूर हटते गये थे। साम्राज्य में साझीदारी का स्वप्न भंग हो चुका था और केवल उदारपंथियों के मन में एक क्षीण आशा के रूप में अपनी अंतिम सासें गिन रहा था।

[4] द्वारकानाथ के उत्तर के लिए देखिए मित्रा के **संस्मरण**, पृ० 77-78

[5] एफ०आर० के द्वारा बनाया उनका रंगीन चित्र आरंभ में टाऊन हाल में लटकाया गया था। अब वह विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, कलकत्ता में है। वीक्स द्वारा बनायी गयी संगमरमर की आवक्ष-मूर्ति बेल्वेडेयर, कलकत्ते में स्थित नेशनल लाइब्रेरी के पोर्टिकों में देखी जा सकती है।

[6] द्वारकानाथ की बहन रम्मानी की पुत्री रसबिलासी, जिनका विवाह भोलानाथ चट्टोपाध्याय से हुआ था। देखिए, कल्यानकुमार दास द्वारा लिखित मित्रा के **संस्मरण** के बंगाली संस्करण के नोट्स, पृ० 288.

[7] **संस्मरण**, पृ० 79.

महाराजा पटियाला (10 जून, 1935)। लेखक को यह सूचना एडिनबरा सिटी कौंसिल पुरालेखमाल मि० मैकी ने दी थी।

[37] **संस्मरण,** पृ० 98-99.

[38] **वही,** पृ० 100.

[39] 24 नवंबर, 1842 का **कलकत्ता स्टार** । जुलाई-दिसंबर 1934 के **मॉडर्न रिव्यू** में पुनप्रकाशित।

[40] जमशेदजी जीजीभाई को सर की उपाधि पहले दी जा चुकी थी। 5 मई, 1842 के **फ्रंड ऑफ इंडिया** ने रिपोर्ट प्रकाशित की: 'बम्बई के धनाढ्य पारसी सम्प्रदाय ने हर मैजेस्टी द्वारा नाइट की उपाधि के लिए सर जमशेदजी जीजीभाई के चुनाव के प्रति अपने समर्थन की निशानी के रूप में एक पट्टिका भेंट करने का निश्चय किया है।' वे पहले भारतीय थे जिन्हें 'सर' की उपाधि दी गई थी। चार साल पहले इसी समाचारपत्र ने 26 अप्रैल, 1838 के अंक में खबर छापी थी कि 'बम्बई के एक धनी पारसी व्यापारी जमशेदजी जीजीभाई ने एक लाख रुपया, यानी 10 हजार पौण्ड देने का वायदा किया है, अगर सरकार भी इतनी ही रकम 6 फीसदी ब्याज पर बम्बई में एक अस्पताल की स्थापना के लिए देने को राजी हो।' लंदन के कालेज ऑफ आर्म्स में रखे 1842 के रजिस्टर में इस लेखक ने देखा कि सर जमशेदजी जीजीभाई के नाम जारी किए गए नियुक्तिपत्र की तारीख 14 अप्रैल, 1842 है।

[41] कलकत्ता स्टार, 24 नवंबर 1842.

[42] क्लिंग, पृ० 173.

[43] यह असोसियेशन अब जिंदा नहीं है, यद्यपि वेल्स के लोगों में देशभक्ति की भावना पहले से कहीं ज्यादा प्रबल है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक के प्रश्न के उत्तर में बताया गया कि मान-पत्र देने की खबर **मौनमाऊथशायर मर्लिन** में, 15 अक्तूबर 1842 को प्रकाशित हुई थी। जिला पुस्तकालय के लाइब्रेरियन (कार्डिफ की सेन्ट्रल लाइब्रेरी) ने आगे बताया कि 'अबरगेवेनी स्थान के नाम का (जो अब वेल्स के ग्वेन्ट जिले में है) वेल्स-रूप वाई फेनी सही है, और सिम्रीगीडियन की धातु वेल्स भाषा का शब्द **सिम्रेग** है; इसलिए **सिम्रीगीडियन वाई फेनी** का अर्थ होगा, अबरगेवनी की वेल्स (सोसायटी)।'

[44] मान-पत्र की मूल प्रति कलकत्ते के रवीन्द्र भारती म्यूज़ियम में देखी जा सकती है।

[45] **संस्मरण,** पृ० 103.

[46] **वही** पृ० 103.

[47] क्लिंग, पृ० 174.

[48] **गोखले, गांधी एण्ड दी नेहरूज: स्टडीज इन इण्डियन नेशनलिज्म** में बी०आर० नंदा द्वारा उद्धृत ऐलन, एण्ड अन्विन, लंदन, 147.

[49] **संस्मरण,** पृ० 105.

नौ

घर को वापसी

घर को वापस आना निस्संदेह एक खुशी की बात थी और उनके असंख्य मित्रों और प्रशंसकों के लिए उत्सव मनाने का एक शुभ अवसर था। लेकिन आकाश में तूफान भी मंडरा रहे थे। जैम्स ह्यूम ने इंगलैंड के अपने एक मित्र को लिखा: "तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि दो देशों के नर-सिंह और साम्राज्ञी के प्रिय अतिथि, द्वारकानाथ टैगोर को – कभी सोच सकते हो – बदनाम और कलंकित किया गया है? परिवार ने उन्हें घर से निकाल दिया है, सगे-संबंधियों ने बहिष्कृत कर दिया है! – और किस कारण? क्योंकि उन्होंने योरप की यात्रा की थी, और वहां के लोगों के साथ खाया और पिया था! अगर कोई इस तरह की भविष्यवाणी करता तो वह विश्वसनीय न होती, लेकिन यह एक ठोस तथ्य है। तुम्हारा क्या ख्याल है कि मैरी ऐन वाकर्स ने इस बारे में क्या कहने की गुस्ताखी की है? यह कि उन्हें योरप की यात्रा करने के कारण बहिष्कृत नहीं किया गया, बल्कि इसलिए कि मैन्शन हाऊस के भाषण में उन्होंने भारत में अंग्रेजी राज की भूमिका की अत्यधिक भावुक शब्दों में प्रशंसा की थी और डायरेक्टरों को लिखे पत्र में भी!"[1]

लेकिन यह तूफान सिवाय कुछ धूल उड़ाने के और अधिक नुकसान किए बिना ही गुजर गया। यह आशा तो थी ही कि मैन्शन हाऊस में द्वारकानाथ का अविवेकपूर्ण भाषण और डायरेक्टरों के नाम उतना ही अविवेकपूर्ण पत्र उनके अपने अनेक संवेदनशील देशवासियों के कानों में खटकेगा, और कुछ लोग, जिन्हें उनके गैर-दकियानूसी तौर-तरीके पसंद नहीं थे या जो उनसे ईर्ष्या करते थे या जिनके मन में उनके प्रति कोई और शिकायत थी, वे सब उन्हें बदनाम करने के लिए इस बात का फायदा उठायेंगे। उदाहरण के लिए एक अखबार में "पुराना हिन्दू" (जो स्पष्ट है कि द्वारकानाथ से सख्त नफरत करता था) के नाम से प्रकाशित पत्र में

निन्दा-भरे शब्दों में कहा गया कि वे: 'एक हृदयहीन चाटुकार हैं, जिनका कोई सिद्धांत नहीं है, और जिनमें इतना स्वाभिमान नहीं है कि अपने ऊपर शर्म करें।'[2]

यहां तक कि उनके समर्थक पत्र **बंगाल हरकारू** ने भी कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के नाम उनके पत्र का हवाला देते हुए और इस सुझाव को अस्वीकार करते हुए कि उसके लिखने में जार्ज थाम्सन का हाथ रहा होगा, अपने सम्पादकीय में लिखा: 'चाहे जो भी हो, हमारे मित्र द्वारकानाथ ने इस पत्र पर अपने हस्ताक्षर करके जितनी बड़ी गलती की है, उतनी पहले कभी नहीं की, सिवाय एक बार पहले जब उन्होंने मैन्शन हाऊस के भाषण में कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। टैगोर परिवार का कहना है कि इस पत्र और भाषण के कारण ही उन्हें बहिष्कृत किया गया है, किसी अन्य कारण से नहीं। उनका कहना है कि उनके इंगलैंड जाने और अंग्रेजों के साथ दावतें खाने से उन्हें कोई आपत्ति नहीं है, उनका वास्तविक अपराध तो इस बात में है कि उन्होंने बार-बार यह दावा करके अपने सम्प्रदाय को चोट पहुंचाई है कि ब्रिटिश सरकार ने भारत के लोगों पर उपकार किया है..... जहां तक हमारा संबंध है, हम द्वारकानाथ के भाषण या उनके पत्र पर विशेष ध्यान भी न देते, सोचते कि दोनों ओर से एक-दूसरे की तारीफ के पुल बांधे जा रहे थे – दोनों शहद और शक्कर हो रहे थे, यथार्थ में जिसका 'कोई मतलब नहीं होता' – और हमें जरा भी संदेह नहीं कि द्वारकानाथ का ऐसा कोई मतलब था – लेकिन लगता है कि लोग यह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि उनके कथन में गहरा अर्थ था: सर जे० लुशिंगटन[3] और **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने कम संतुष्ट भारतीय लोगों की हर शिकायत के उत्तर में इस अभागे पत्र को उद्धृत किया है। इसलिए, हमें खेद है कि द्वारकानाथ ने कभी ऐसा पत्र लिखा या उस पर अपना नाम दिया। एक प्रशंसात्मक पत्र के रूप में तो यह ठीक है, लेकिन इसका इस्तेमाल एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक दस्तावेज़ के रूप में किया गया है, जिसमें एक ऐसे बुद्धिमान भारतीय का सुचिन्तित मत व्यक्त हुआ है, जिसे हम उसके देशवासियों का प्रतिनिधि समझते थे। अगर इस दृष्टि से मामले को देखें, तो इस पत्र ने नुकसान पहुंचाया है और आगे और भी ज्यादा नुकसान पहुंचा सकता है।'[4]

छै दिन बाद, **बंगाल हरकारू** ने बताया कि अपने परिवार द्वारा द्वारकानाथ के 'बहिष्करण' का समाचार पथुरियाघाट वाली शाखा के उनके एक चचेरे भाई हुर्रोकुमार टैगोर द्वारा भेजे एक पत्र पर आधारित था। **बंगाल हरकारू** के इसी 23 मार्च 1843 के अंक में उनके एक और चचेरे भाई, वोपेन्दुरमोहन टैगोर का भी एक पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे हुर्रोकुमार टैगोर के निवास पर हुई परिवार की उस मीटिंग में मौजूद थे, जिसमें द्वारकानाथ को बहिष्कृत करने का प्रश्न उठाया गया था। वोपेन्दुरमोहन की साक्षी के अनुसार इस प्रश्न पर केवल धार्मिक और रूढ़ियों के आधार पर बहस हुई थी और अंतिम फैसला बहिष्कार करने के विरुद्ध था: 'जब यह खबर आयी कि द्वारकानाथ इंगलैंड से घर के लिए



एफ. आर. से द्वारा निर्मित चित्र; विक्टोरिया मेमोरियल हॉल के संग्रहाध्यक्ष के सौजन्य से ।

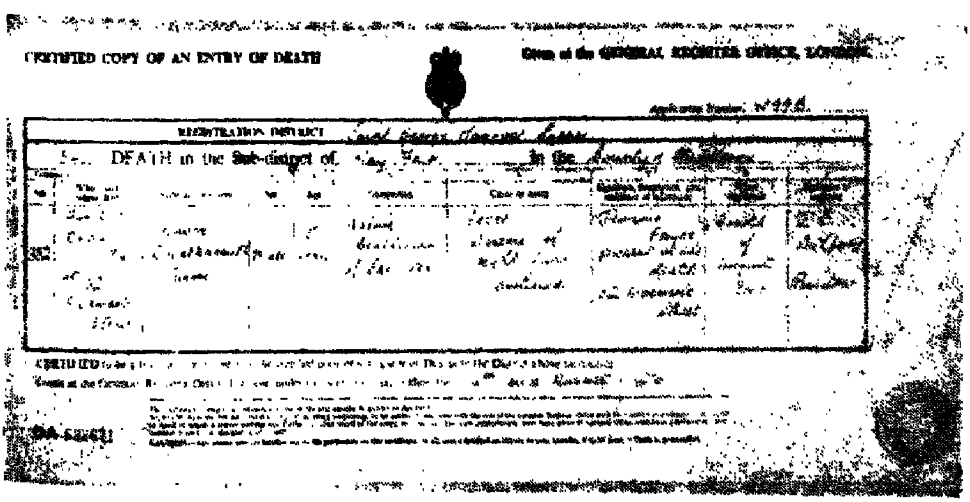


बारों द श्वीतेर द्वारा निर्मित चित्र;
मदाम कृष्णा रिबो के सौजन्य से ।



द्वारकानाथ की पन्ना जड़ी अंगूठी ।

मृत्यु-प्रमाणक ।

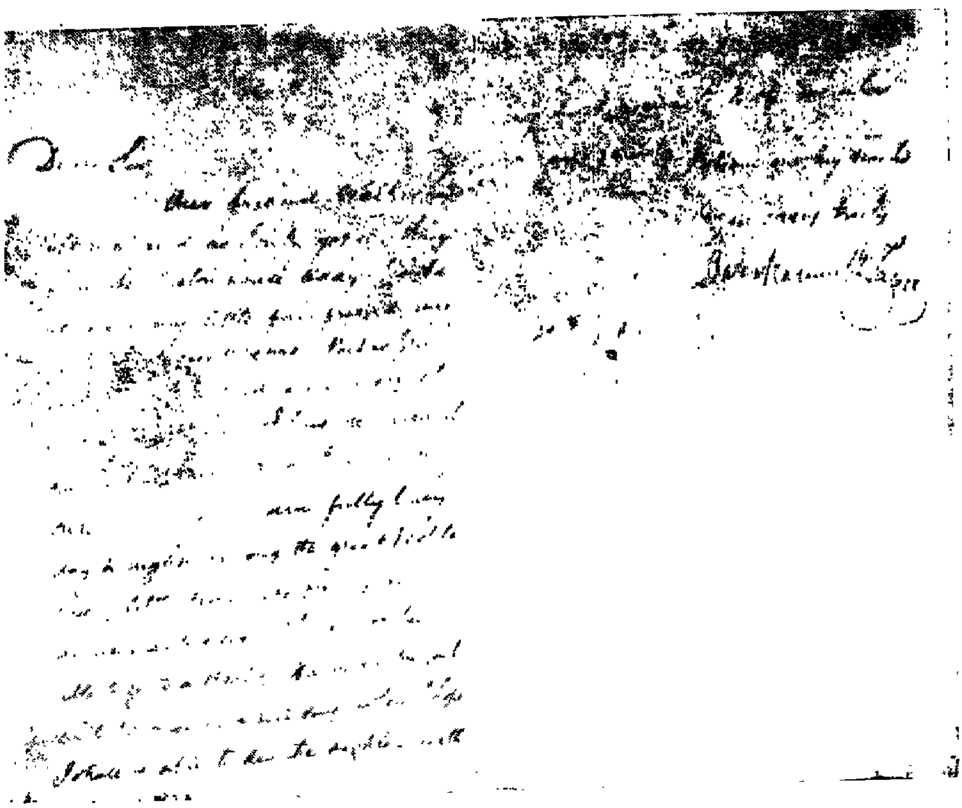


CERTIFIED COPY OF AN ENTRY OF DEATH

Given at the GENERAL REGISTER OFFICE, LONDON.

REGISTRATION DISTRICT

DEATH in the Sub-district of ... in the ...



द्वारकानाथ का लंदन के सेन्ट जार्ज होटल से 5 जुलाई 1845 की तारीख का फई द कोंशे को पत्र; मेस्यों चार्ल्स आइगरश्मिन और मदाम कृष्णा रिबो के सौजन्य से।

→

द्वारकानाथ की मृत्यु की लंदन से सूचना देते हुए फई द कोंशे का पेरिस में अपनी पत्नी को पत्र; (पाठ में इसका अनुवाद दिया गया है) मेस्यों चार्ल्स आइगरश्मित और मदाम कृष्णा रिबो के सौजन्य से।

[illegible]

à Bellevue

par Melun

près [illegible]

Ma chère amie,

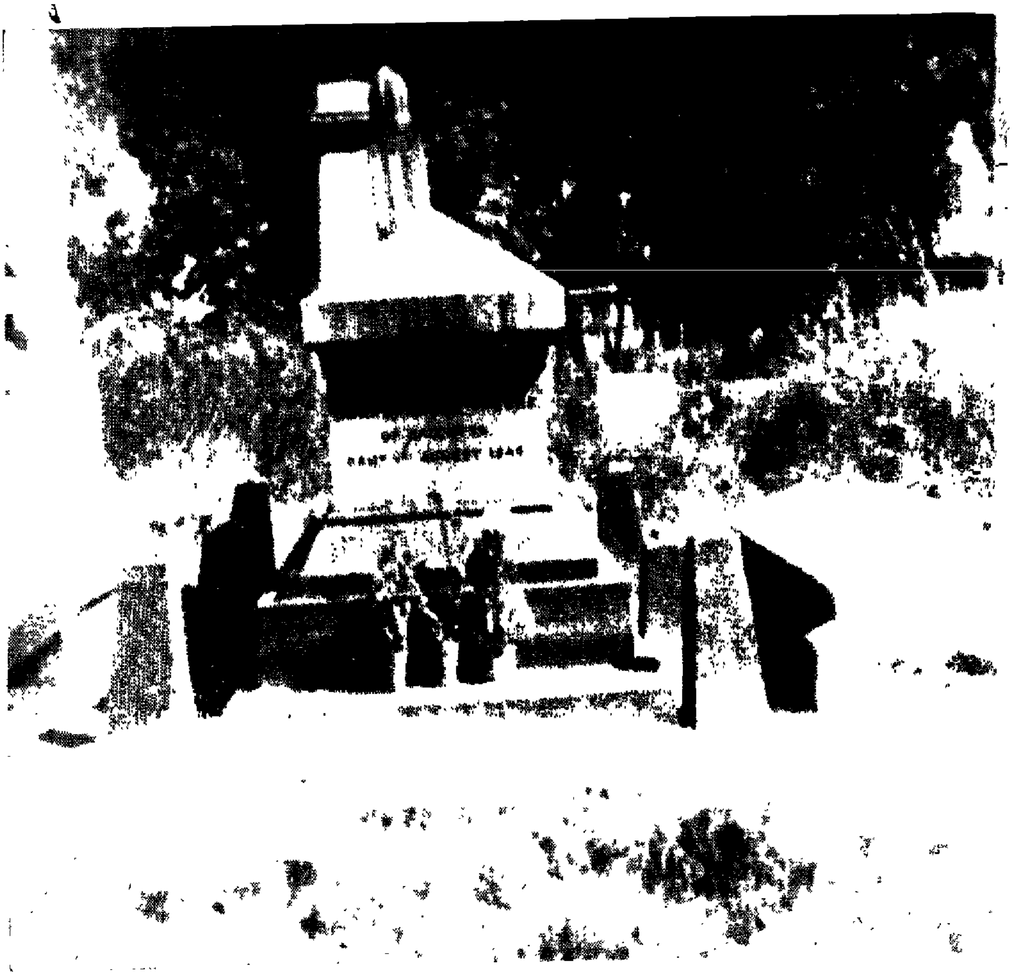
[illegible]

je crains que tu ne la trouves un peu triste. [illegible] fort belle.

je te quitte pour aller dans la cité.

adieu, chère amie, [illegible]

[illegible]



द्वारकानाथ की समाधि ।

राजा राममोहन राय की समाधि।





द्वारकानाथ टैगोर और फेलिक्स सिवेश्चियन फई द कोंशे । यह कार्टून उनके वंशज मेम्यों चार्ल्स आइईरश्मित के अनुसार फई द कोंशे ने बनाया था और यहां चार्ल्स आइगरश्मित और मदाम कृष्णा रिबो के सौजन्य से प्रकाशित किया जा रहा है । बायीं ओर के कोने में तारीख और हस्ताक्षर हैं : "मार्च 1846, पेरिस, फई द कोंशे, और कलकत्ते के मेरे प्यारे द्वारकानाथ टैगोर ।"

दायीं ओर के कोने में फ्रेंच भाषा में कविता की दो पंक्तियां लिखी है. जो इस प्रकार है :

Tei seul, A tai ! cher objet que j'adore
de tous les Dieux, le sent que j'implore !



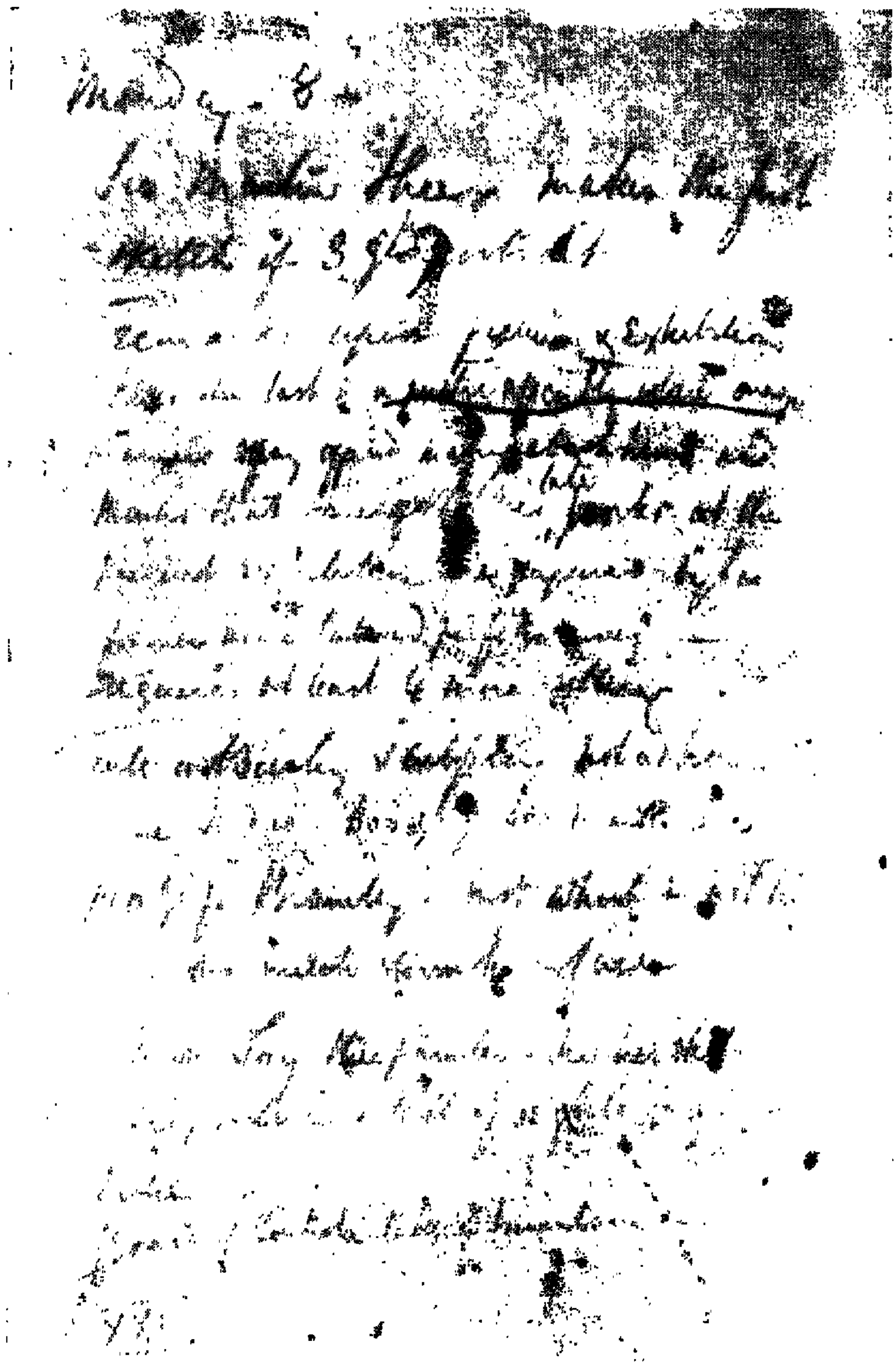
बारों द ओर्स द्वारा 1842 में निर्मित चित्र;
अमितेन्द्रनाथ टैगोर के सौजन्य से ।



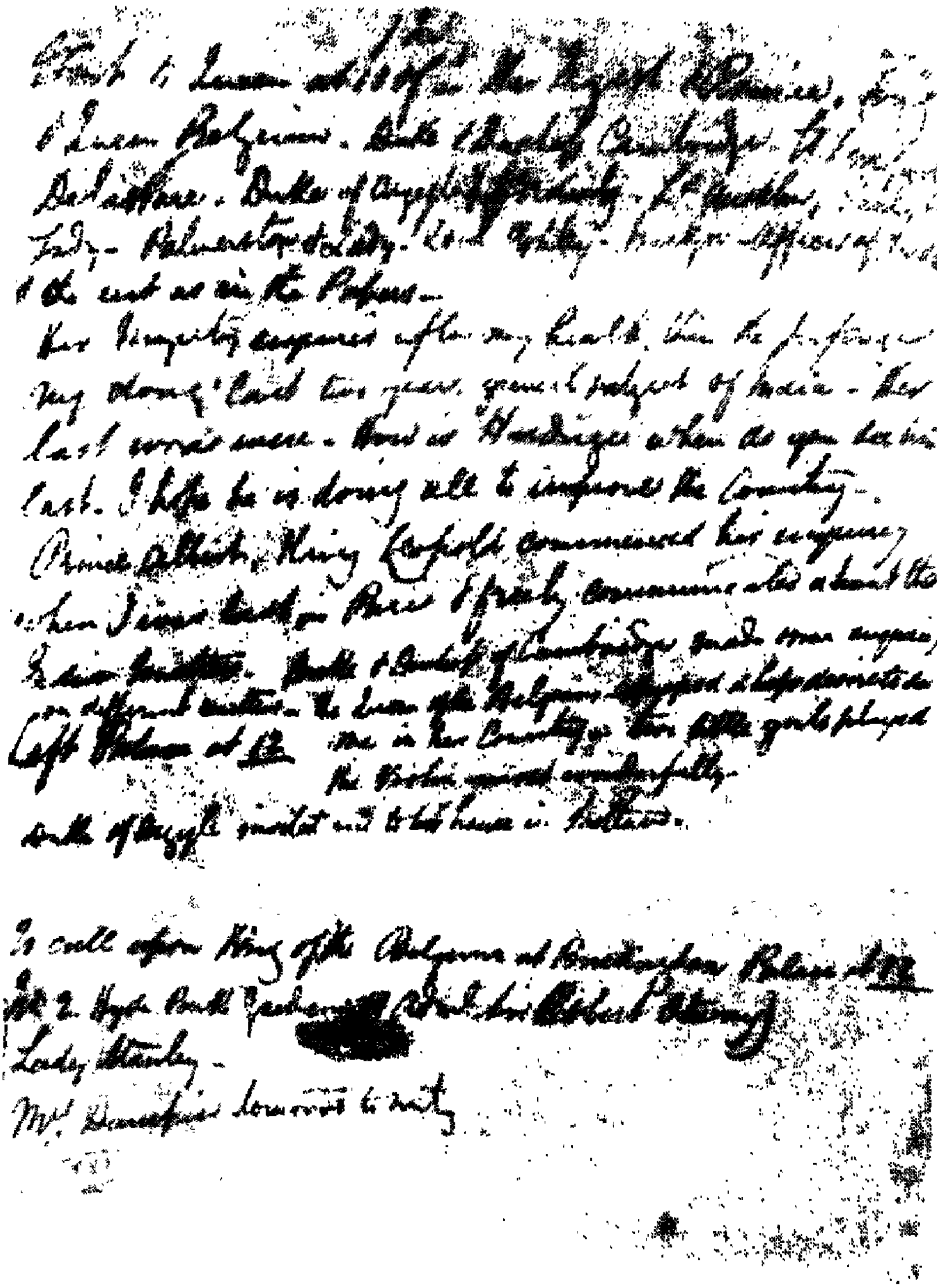
ब्रिस्टल गैलरी में ब्रिग्स द्वारा निर्मित राजा राममोहन राय का चित्र।



देवेन्द्रनाथ टैगोर के एक चित्र का फोटो जो 1860 के लगभग लिया गया था:
रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के सौजन्य से।



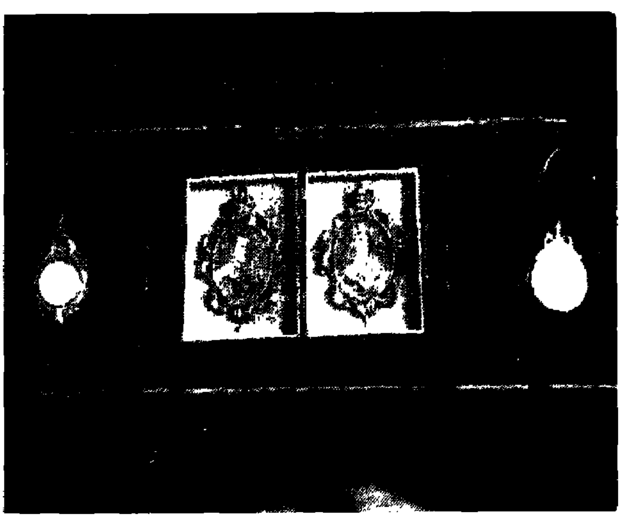
द्वारकानाथ के 1842 में प्रथम इंगलैंड यात्रा के समय के कतरन-रजिस्टर का एक पृष्ठ; रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के सौजन्य से ।



द्वारकानाथ के कतरन-रजिस्टर का एक पृष्ठ, जिस पर 7 जुलाई 1845 की तारीख है;
रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के सौजन्य से ।



महारानी विक्टोरिया द्वारा द्वारकानाथ को दिया गया परिवार-चिन्ह जो लंदन के कालेज आफ आर्म्स में 1842 में रजिस्टर किया गया ।



महारानी विक्टोरिया और प्रिंस अलबर्ट के लघु-चित्र जो द्वारकानाथ को भेंट किए गये थे । साथ में दोनों स्वर्ण-पदक भी ।



9 जून 1842 को एस. एस. रेन्बो में सवार होकर इंग्लिश चैनल पार करते हुए द्वारकानाथ टैगोर अपने भानजे चन्दर मोहन चटर्जी के साथ; पानी के रंगों में वास्तुकार एच. वीक्स द्वारा बनाया चित्र, जो एक सहयात्री थे : श्री शुभो टैगोर (कलकत्ता) के सौजन्य से ।



9 जून 1842 को एस. एस. रेन्बो द्वारा इंग्लिश चैनल पार करते हुए डोवर कासल का दृश्य; वास्तुकार एच. वीक्स द्वारा पानी के रंगों में बनाया चित्र, जो द्वारकानाथ के सहयात्री थे; कलकत्ते के श्री शुभो टैगोर के सौजन्य से।

चल पड़े हैं और जब उनके आगमन की प्रतिदिन प्रतीक्षा की जाती थी, टैगोर परिवार के कुछ सदस्यों ने, शुद्ध धार्मिक विचार से यह आशंका करके कि यदि वे पहले की तरह समाज में उनका स्वागत-सत्कार करेंगे तो सारे परिवार को घातक रूप से लांछित कर दिया जाएगा, यह प्रस्ताव किया कि लौटने पर उन्हें परिवार से बहिष्कृत कर दिया जाय और इस विषय पर एक-दूसरे से मिल कर अक्सर चर्चा होती थी। इस पर कुछ सदस्य, मेरा विश्वास है कि केवल तीन या चार ही प्रस्तावित बहिष्कार के विषय पर एकमत थे, जबकि बाकी सदस्य उनकी आशंकाओं से द्रवित नहीं हुए, क्योंकि उनका विश्वास था कि ऐसे प्रस्ताव का समर्थन करना उनके घोषित विचारों और कार्यों के विपरीत होगा। कुछ समय तक स्थिति इसी अनिश्चित अवस्था में पड़ी रही। द्वारकानाथ के लौटने पर जब मेरे आदरणीय बंधु बाबू हुर्रोकुमार टैगोर के घर पर एक मीटिंग हुई... मैं उस मीटिंग में उपस्थित था और मैं यहां स्पष्ट शब्दों में उन कारणों को बताना चाहता हूं, जिन्होंने प्रतिपक्षी दल को ऐसे सुझाव की योजना कार्यान्वित करने के लिए प्रेरित किया था। **ये कारण केवल धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित थे, और कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के नाम लिखे कथित पत्र की ओर एक बार भी कभी प्रच्छन्न संकेत तक नहीं किया गया था**.... मैंने बहस में आगे बढ़ कर भाग लिया और शुरू में मैं अल्पमत में था, लेकिन यह बताते हुए मुझे खुशी हो रही है कि जब बहस खत्म हुई, उस समय बहुमत मेरे साथ था।'

इन पत्रों पर टिप्पणी करते हुए और हुर्रोकुमार के बयान को, न कि वोपेन्दुर मोहन के बयान को, अधिक विश्वसनीय मानते हुए, सम्पादक ने लिखा: 'लेकिन जैसा कि हम कह चुके हैं, हम द्वारकानाथ के कार्यों के बारे में बड़ी खुशी से सोचना चाहते हैं – उन कार्यों के बारे में, जिन्होंने उन्हें इतनी ख्याति और प्रतिष्ठा का अधिकारी बनाया है। हम उन्हें राममोहन राय के सहयोगी के रूप में देखते हैं, जो एक उदात्त भावना से प्रेरित होकर सती की ज्वालाओं को बुझा रहे थे, और एक नारी को अपने मृत पति की चिता पर जिन्दा जलने की भयानकतम मृत्यु के चंगुल से मुक्ति दिला रहे थे। करुणा और दया के इन कार्यों के लिए उन्हें बहुत-बहुत आशीर्वाद। उनके अथक प्रयत्न व्यर्थ नहीं गये... हम उन्हें भारत में प्रेस की स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर उस व्यक्ति के साथ कंधे से कंधा मिला कर खड़े हुए देखते हैं, जिसे सताया गया, जिसका अखबार जप्त किया गया और जिसे देश निकाला दिया गया। संकट की घड़ी में द्वारकानाथ ही बेईमान लोगों के बीच एकमात्र ईमानदार व्यक्ति पाये गये। उन्होंने इस निंदा और भर्त्सना की परवाह नहीं की कि उनकी गिनती उन लोगों के मित्रों और समर्थकों में की जाने लगी है, जो सरकार के कोपभाजन बन गये थे। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे केवल उन लोगों के साथ रहने के ही इच्छुक नहीं थे, जो चांदी के सलीपर पहन कर मुलायम और खुशगवार मार्गों से ही गुजरते थे, बल्कि उस मित्र को भी सहारा देने की उनमें जुर्रत थी, जो विश्वासघात और निन्दा के अंधेरे और उत्पीडक क्षणों में गिरफ्तार था।[5]

हम उनके इन उदात्त और शानदार कार्यों को भूले नहीं हैं – न कभी भूलेंगे... लेकिन, अपनी पारी से हम "भावी उपकारों" की अपेक्षा रखते हैं। हमें आशा है, और विश्वास है कि हमें निराश नहीं होना पड़ेगा, कि द्वारकानाथ अभी भी उन लोगों की अगली पंक्ति में होंगे जो उनके देश की लड़ाई लड़ रहे हैं। उनका बढ़ा हुआ प्रभाव उनके दायित्वों को और भी बढ़ा देता है। अब उनके लिए सबसे कठिन काम करना बाकी रहा है, जो हर सार्वजनिक नेता को करना होता है – उस ख्याति को कायम रखना जो उन्होंने प्राप्त कर ली है.... द्वारकानाथ टैगोर ही द्वारकानाथ टैगोर को चोट पहुंचा सकते हैं। वे अपने प्रति सच्चे बने रहें, और अनुमोदन का जो फैसला उनके समकालीनों ने उनके पक्ष में सुनाया है, वह पक्का हो जायगा, जब प्रशंसाओं के शब्द भुला दिए जाते हैं और केवल बड़े और शानदार काम ही स्मृति में जिंदा रह जाते हैं।'

द्वारकानाथ को उनके परिवार ने अगर सचमुच ही बहिष्कृत कर दिया होता तो वे इस पर केवल मुस्कराहट ही देते, कभी परेशान न होते। उन्होंने अपने चचेरे भाईयों के साथ अच्छे संबंध बना कर रखे थे, और जीवन भर उन्हें अच्छा ही बनाये रखना था, लेकिन वे उनकी सद्भावना पर निर्भर नहीं थे। जहां तक उनके अपने निजी परिवार की बात है, उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी और वे जब जीवित थीं, तब भी एक लम्बे अरसे से वे उनके साथ हर प्रकार के शारीरिक संबंध से बच कर रहती थीं। 'भ्रष्ट' होने के उनके तथा घर की अन्य स्त्रियों के डर का ख़्याल करके उन्होंने अपने लिए बाहर एक मकान, एक राजसी बैठकखाना बनवा लिया था, जहां वे सोते थे और जब घर पर होते थे, तब अपना अधिकांश समय वहीं व्यतीत करते थे। गृह-देवताओं की पूजा का उन्होंने पूरा प्रबंध उन अठारह पेशेवर पुजारियों को सौंप दिया था, जो उन्होंने इसी काम के लिए नियुक्त कर रखे थे।

यह तथ्य कि वापस आने पर उन्हें लोक-निंदा का सामना नहीं करना पड़ा, बल्कि वे पहले से भी अधिक अपने रंग में थे, इस बात से प्रमाणित है कि उन्होंने 31 जनवरी 1843 को अपने उद्यान-भवन में एक शानदार दावत और बाल-डांस का आयोजन किया, जिसका 4 फरवरी 1843 के **बंगाल हेराल्ड** ने निम्न अत्यंत भावपूर्ण विवरण, प्रकाशित किया:

'मंगलवार की शाम को हमारे विख्यात सह-नागरिक ने अपने उद्यान-भवन में एक शानदार दावत और मनोरंजन का आयोजन किया, जिसका उद्देश्य एक ओर तो इंगलैंड से वापस आने पर अपने बहुसंख्यक इष्ट-मित्रों से पुनर्मिलन था, और दूसरी ओर डिप्टी गर्वनर की आदरणीय पत्नी के इंगलैंड वापस जाने के अवसर पर उनका सार्वजनिक सम्मान करना था। बाल-डांस और दावत से संबंधित सारे प्रबंध ऐसे बढ़िया थे कि वे आतिथेय की उत्कृष्ट सुरुचि और सुप्रसिद्ध उदारशीलता को चार चांद लगाते थे। और मेहमानों की अभूतपूर्व संख्या में उपस्थिति शब्दों से कहीं ज्यादा ऊंचे स्वर में इस बात की घोषणा कर रही थी कि

अपने नगर के हर वर्ग के लोगों के हृदय में द्वारकानाथ के प्रति कितना आदर और सम्मान का भाव है। हम जानते हैं कि इंगलैंड में ऐसी पार्टी में भाग लेने वाले मेहमानों की सूची प्रकाशित करने का रिवाज है। लेकिन अगर हम प्रस्तुत प्रसंग में इस प्रथा का पालन करें तो हमें बंगाल की डायरेक्टरी का वह सारा अंश छापना पड़ जायेगा, जिसमें सरकार के सुप्रीम और मातहत डिपार्टमैन्टों के सदस्यों के नाम हैं (केवल गवर्नर के नाम को छोड़ कर, जो, सभी जानते हैं, अफगानों को कई बॉल-पार्टियां देने के बाद यहां से बाहर निष्क्रीत महिलाओं और उनके बहादुर पतियों को बॉल-पार्टियां देने में व्यस्त हैं), जजों, सुप्रीम कोर्ट के बैरिस्टरों और उच्च अधिकारियों – साम्राज्ञी और कंपनी की सेवा में नियुक्त मुख्य अधिकारी-वर्ग के नाम हैं– नगर के प्रायः सारे व्यापारियों के नाम हैं, और इनके अलावा यूरोपियन महिलाओं की एक अंतहीन सूची है, और दूसरी राजाओं और बाबुओं आदि, आदि की लंबी सूची है। और यह सारी फेहरिस्त हमारे समाचार पत्र की सीमाओं और हमारे पाठकों के धैर्य का अतिक्रमण कर जायेगी, सिवाय उन लोगों के जो उस फेहरिस्त में अपने नाम, पोशाक, पद या जवाहरात वगैरह का खास जिक्र देखना पसंद करते हैं। हम उन लोगों को और स्वयं अपने आपको भी यह कह कर संतोष दिलाना चाहते हैं कि हमें इससे पहले इतना विशाल और इतने प्रतिष्ठित और शानदार लोगों का जमाव देखने का कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, जैसा कि मंगलवार की रात को हमने द्वारकानाथ टैगोर की छत के नीचे देखा। और हम यह बताना भी नहीं भूलना चाहते कि उस शाम के उत्सव में केवल गौरांग, उपाधिधारी और अमीर लोगों को ही शामिल होने की इजाजत नहीं दी गई थी। वहां के विशाल और खुले लॉन सब के लिए खुले हुए थे, निम्न वर्ग के हजारों हिन्दोस्तानी बागीचे की संकरी रौस पट्टियों पर से गुज़रते – या दीपमालिका से रौशन किए हुए झील के जल के किनारे घूमते हुए – या भीतर-बाहर से विभिन्न प्रकार के लैम्पों की रोशनी से जगमगाते मंदिरों की ओर देख रहे थे या विभिन्न लॉनों पर शानदार आतिशबाजी देखने के लिए भीड़ बना कर खड़े थे। हम यह स्वीकार करते हैं कि हमें द्वारकानाथ के भवन की दीवारों के अंदर मेहमानों के हास्य-विनोद से कहीं ज्यादा बाहर का यह मंज़र देखने में दिलचस्पी थी। हमने कुछ समय बाबू के इन कम प्रतिष्ठित, किन्तु कम उल्लसित नहीं, मेहमानों की भीड़ में घूम-फिर कर गुजारा, और यह मानना पड़ेगा कि बाहर की भीड़ जितने संयम और गंभीरता से पेश आ रही थी, उसके प्रति हम अपनी प्रशंसा का वर्णन नहीं कर सकते। यदा-कदा सुनायी देने वाली तालियों की गड़गड़ाहट के अलावा और कोई शोर-गुल सुनायी ही नहीं देता था जिससे कि वहां पर इतने लोगों की भीड़ की उपस्थिति का अनुमान लगता, जो अपने श्वेत वस्त्रों में (अधिकतर लोगों के सर और बदन श्वेत वस्त्रों में ढंके हुए थे) काफी कुछ उस तस्वीर की याद दिलाते थे जो हमने कयामत के दिन की देखी है, जिसमें खुदा का फैसला सुनने के इंतजार में खड़े लोगों को सफेद कफन के औपचारिक वस्त्र पहने

दिखाया गया है। बाग के बीच केन्द्र से लेकर पूरी परिधि तक चिरागां किया गया था। झील के हर किनारे पर, जो बाग के मैदान के भीतरी भाग में फैली है, लैम्पों की कतारें थीं, जिनकी रोशनी नीचे के तरल दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर एक अत्यंत चित्रोपम और मनोहर प्रभाव उत्पन्न कर रही थी। ग्रीष्मनिवास की इमारत, जो मुख्यपुल के आगे है, और देवी के मंदिर के निकट – तथा अन्य सभी प्राचीन शैली की भव्य और सुरुचिपूर्ण इमारतें पूरी की पूरी दीपमालाओं से ढंकी हुई थीं और अवर्णनीय सौंदर्य-छटा से जगमगा रही थीं। मुख्य बरामदे के ऐन सामने और आतिशबाजी के लिए नियत स्थान के पीछे, राज-भक्ति का आदर्श-वाक्य 'ईश्वर साम्राज्ञी की रक्षा करे' जीवंत प्रकाश से जगमगा रहा था। बागीचे के एक दूसरे भाग में एच०बी० के अक्षर, जो श्रीमती बर्ड के नाम के आद्याक्षर हैं, तेज रोशनी वाले लैम्पों के बीच चमक रहे थे। जहां तक भी आंख देख सकती थी, वृक्षों और कृत्रिम बनाये टीलों के बीच लैम्प लगे हुए थे और घोड़ागाड़ियों के आने-जाने के मार्गों पर इतनी रोशनी थी जैसे दिन का समय हो। श्रीमती बर्ड के आगमन पर आतिशबाजी शुरू हुई और बड़ी सफलता और उत्साह से देर तक जारी रही। आतिशबाजियों की संख्या असंख्य थी, वे अनेक डिजाइनों की थीं, और कुछ तो संसार के इस भाग में अनोखे ढंग की थीं। बाग के एक सुदूर भाग में एक के बाद दूसरे वृक्ष के प्रज्जवलित होते जाने के दृश्य ने दर्शकों पर एक विशिष्ट सम्मोहक प्रभाव डाला। ऐसा लगता था कि उन पेड़ों की हर शाख, हर टहनी और हर पत्ती झिलमिलाती लपटों से बनी हो। आतिशबाजी के बाद क्वाड्रिल्ज और वाल्ट्ज के नृत्य शुरू हुए जो तीन बजे रात तक चलते रहे। दावत के कमरे में हर प्रकार के व्यंजन मेजों पर सजे हुए थे और यद्यपि पार्टी में लोगों की बेमिसाल तादाद थी, लेकिन किसी को असुविधा होते नहीं दिखाई दी। बाबू एक काली ऊनी मखमल की पोशाक में थे, जिस पर एक सोने की भारी-भरकम चेन में हर मैजेस्टी द्वारा भेंट किया हुआ स्वर्ण-पदक लटक रहा था। हम इस विवरण को, अपनी यह हार्दिक कामना व्यक्त किए बगैर समाप्त नहीं कर सकते कि द्वारकानाथ टैगोर उस आदर और सम्मान का उपभोग करने के लिए दीर्घायु प्राप्त करें, जो उन्होंने अपने हृदय और मस्तिष्क के विरल गुणों से अर्जित किया है और यह कि वे अपने धन और प्रभाव का अपने देश के उत्थान में आगे भी उपयोग करते रहें। हमें यह सूचित करना भी नहीं भूलना चाहिए कि द्वारकानाथ ने अपने मेहमानों की सुरक्षा और सुविधा के लिए शामबाजार से लेकर अपने ग्रीष्म-निवास तक सड़क पर रोशनी का समुचित प्रबंध किया था।'

वह 'सोने की भारी-भरकम चेन' जिसमें हर मैजेस्टी द्वारा भेंट किया गया स्वर्ण-पदक लटक रहा था, द्वारकानाथ को चीन के उनके मित्र मिस्टर लैन्सलॉट डेन्ट ने भेंट की थी। वह उन्हें स्कॉटलैण्ड और इंगलैण्ड के उत्तरी जिलों के दौरे से लौटने पर लंदन में मिले थे, जबकि वे सेन्ट जार्ज होटल में न ठहर कर सेन्ट जेम्स में फेन्टन होटल में ठहरे थे, जैसा कि लैन्सलॉट डेन्ट को लिखे इस भेंट के लिए धन्यवाद के पत्र

में दिये पते से जाहिर है। यह पत्र द्वारकानाथ ने 15 अक्तूबर, 1942 को लिखा था:[6]

'मुझे यह चेन भेजने में आपका क्या अभिप्राय है, यह छिपाया नहीं जा सकता। आप **चीन-हितैषी** व्यक्ति हैं, और आप स्वर्ण-पदक और अपनी भेंट को एक-दूसरे से जोड़कर, स्पष्टतः अपनी यह कामना व्यक्त करना चाहते हैं कि बरतानिया की हर मैजेस्टी और चीन का सेलेशियल ऐम्पायर (दिव्य साम्राज्य) इस **दृढ़तम** तथा **शुद्धतम** सूत्र में एक दूसरे से बंध जायें; इसलिए आपने सच्चे कारखाने में बनी यह सोने की चेन भेजी है, ताकि इसे पदक पर उत्कीर्ण आपकी साम्राज्ञी की प्रतिमा और अभिलेख से जोड़ दिया जाय।'

'अच्छा! मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि अगर औरतों ने हम पर शासन करना है तो मैं इनसे अच्छी और किसी औरत को नहीं जानता और अगर वे हर व्यक्ति के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा उन्होंने मेरे साथ किया है तो मेरी कामना है कि वे सारे संसार की साम्राज्ञी बनें।'

'मैं हर ऐसी भावना से जिसकी मुझसे अपेक्षा की जाती है, आपके इस कीमती उपहार को स्वीकार करता हूं, हालांकि हम दोनों को एक सूत्र में बांधने के लिए ऐसी किसी श्रृंखला की जरूरत नहीं थी। अब आप एक शानदार साहचर्य में रहेंगे, क्योंकि अब आपका **विचार मन में आये बगैर** मेरे लिए साम्राज्ञी की प्रतिमा की ओर देखना असंभव होगा, और हर बार जब भी मेरी राज-भक्ति यह कहने की प्रेरणा देगी कि "ईश्वर साम्राज्ञी की रक्षा करे" – तो मैं यह कहने के लिए भी विवश रहूंगा "और लैन्सलॉट डेन्ट की भी"।'

'तुम्हारी जिंदगी इस चेन की उम्र से दसगुनी ज्यादा लंबी हो और तुम्हारी खुशी उतनी ही कीमती, यह मेरे प्यारे डेन्ट, द्वारकानाथ टैगोर की हार्दिक कामना है।'

अंग्रेजों को स्वयं उनके देश में अपने सर्वोत्तम रूप में देखने के बाद द्वारकानाथ का यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि शिक्षा ही सर्वसाधारण की उन्नति की कुंजी है और नारियां भी समाज का उतना ही आवश्यक और तेजस्वी अंग हैं, जितने कि पुरुष। उनके मित्र लॉर्ड ऑकलैण्ड अवकाश-ग्रहण कर इंगलैण्ड वापस जा चुके थे और नये गवर्नर जनरल लार्ड एलेनबरो को आंतरिक सुधार और विकास की योजनाओं से अधिक अफगानों से युद्ध करने में दिलचस्पी थी। द्वारकानाथ ने इंगलैण्ड में बने अपने नये मित्र लॉर्ड ब्राऊघम की मार्फत से बंगाल कौंसिल ऑफ एजूकेशन के शिक्षा-कार्यक्रम के लिए नये गवर्नर जेनरल का समर्थन पाने की कोशिश की। लॉर्ड ब्राऊघम ने गवर्नर जनरल को लिखा कि बेन्टिंक और ऑकलैण्ड की नीति के फलस्वरूप बंगाल के स्कूलों ने 'कंपनी की नौकरी में कुछ अत्यंत योग्य मातहत अधिकारी देश के सिविल मामलों से संबंधित प्रशासन चलाने के लिए दिये हैं, और ये मातहत अधिकारी ही हैं, जिनको हम सरकार के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी आगे भी दे सकते हैं।'[7] लेकिन लॉर्ड एलेनबरो ने लॉर्ड ब्राऊघम का अनुरोध यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि बंगाली **भद्रलोक**

को अंग्रेजी शिक्षा देना एक बड़ी गलती थी और इसकी बजाय वे अभिजात-वर्ग के बेटों के लिए शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना बेहतर समझते हैं।[8] यद्यपि द्वारकानाथ दोनों दृष्टियों से धनी-मानी व्यक्ति थे – बड़े व्यापारी भी थे और बड़े जमींदार भी – लेकिन बंगाली मध्यवर्ग के उज्जवल भविष्य में उनकी गहरी आस्था थी, और उनकी सहानुभूतियां सदा युवा पीढ़ी के साथ थीं। उन्होंने पहले कहा था कि बंगाल के नौजवान देशभक्तों को अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग के लिए एक संयुक्त दल के रूप में संगठित हो जाना चाहिए।[9] यह एक ऐसा प्रबोधन था, जिसे उनके पोते ने अनेक दशकों के बाद बार-बार दोहराया।

उन दिनों लड़कियों का शायद ही कोई स्कूल था, और इसकी मांग भी नहीं थी, क्योंकि रूढ़िवादी मां-बाप, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान अपनी बेटियों को घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर स्कूल जाने की इजाजत नहीं दे सकते थे। लड़कियों की शादी उनके बचपन में ही कर दी जाती थी और उनके लिए अधिक से अधिक अपनी मातृभाषा में कुछ लिख-पढ़ लेने की योग्यता प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त समझा जाता था। द्वारकानाथ का भी अपने गुरू राममोहन राय की तरह विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा ही नये युग की वाहक थी, इसलिए उन्होंने अपने खर्च पर लड़कियों के लिए प्रशिक्षित अंग्रेज अध्यापिकाओं की देख-रेख में एक स्कूल खोलने का प्रस्ताव किया। इसके लिए उन्होंने पत्र लिख कर उपयुक्त अध्यापिकाएं चुनने में आर्कबिशप कार्यू की सहायता मांगी। दुर्भाग्य से किन्हीं अज्ञात कारणों से इस प्रस्ताव का कोई फल नहीं निकला यद्यपि आर्कबिशप पूरी तरह अपना सहयोग देने के लिए राजी थे। खैर, लड़कियों में शिक्षा का प्रसार करने में द्वारकानाथ की गहरी दिलचस्पी से लोग काफी परिचित थे, क्योंकि उनकी मृत्यु पर कलकत्ते के टाऊन हाल की शोक-सभा में बोलते हुए श्रद्धेय डा० नाश ने 'उपस्थित भारतीय लोगों से आग्रह किया कि वे अपने दिवंगत देशवासी द्वारकानाथ टैगोर का अनुसरण करने का औचित्य और लाभ दृष्टि में रख कर हिन्दू लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय कदम उठायें।'[10] लगभग चार साल बाद, **बंगाल हरकारू** ने ही 8 जून 1850 के अंक में एक अंग्रेज महिला का संस्मरण छापा, जिसमें उन्होंने बताया कि भारत में लड़कियों की शिक्षा के बारे में उनसे द्वारकानाथ ने अपना स्वप्न बताते हुए कहा था: 'मेरे देश की महिलाओं को यह सुख उपलब्ध हो, ऐसा दिन अभी काफी दूर है। मैं ऐसे हिन्दू को काफी इनाम देने को तैयार हूं, जिसमें इतना साहस हो कि वह अपनी पत्नी और बेटियों को यूरोपियन पद्धति की शिक्षा देने के लिए आगे आये।' दुर्भाग्य से उनकी अपनी कोई बेटी जीवित नहीं रही कि वे अपने विश्वासों और साहस को व्यवहार की कसौटी पर कसते, यद्यपि एक दुर्भावनापूर्ण अफवाह उड़ाई गई थी कि उन्होंने अपनी बेटी की शादी एक मुसलमान पीर अली से कर दी थी– संभवतः टैगोर परिवार पर लगे वंशानुगत 'कलंक' की ओर व्यंग्य-पूर्ण संकेत के रूप में। लेकिन इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि द्वारकानाथ अगर अपनी दूसरी

इंगलैण्ड-यात्रा से लौटने के लिए जिन्दा रहते तो वे साहसपूर्वक और बड़ी उदारता से अपने मित्र ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नारी-शिक्षा और विधवा-पुनर्विवाह के उदात्त प्रयत्नों में अपना पूरा योग देते।

जैसा कि पहले बता चुके हैं, द्वारकानाथ ने जार्ज थाम्सन को अपने साथ भारत आने के लिए राजी कर लिया था। इसकी सूचना देते हुए 29 दिसंबर 1842 के **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने लिखा: 'मिस्टर जार्ज थाम्सन, जो इस युग के सब से असाधारण व्यक्ति हैं, अपनी अद्वितीय वाक्पटुता से ब्रिटिश अधीन अफ्रीकी उपनिवेशों में गुलामी-प्रथा का अंत करने में अपना योगदान करके, अब इस देश में द्वारकानाथ टैगोर के साथ पधारे हैं। यह आशा करना उचित होगा कि उनका आगमन भारत के लिए हितकारी सिद्ध होगा। उनकी देशज प्रतिभा को परोपकार की भावना ने अलंकृत किया है; और उनकी हार्दिक सहानुभूतियां सदा गरीबों और बेसहारा लोगों का साथ देती रही हैं।'

अनेक कट्टरपंथी लोगों को अशांति फैलाने वाले ऐसे उग्रवादी का आगमन जरा भी पसंद नहीं आया। बंगाल की युवा पीढ़ी पर उसका प्रभाव खतरनाक सिद्ध हो सकता था। **कलकत्ता स्टार** के सम्पादक जेम्स ह्यूम जैसे लोगों की यह समझ में ही न आता था कि द्वारकानाथ जैसा गंभीर यथार्थवादी ऐसे भड़काने वाले व्यक्ति को बर्दाश्त कैसे कर सकता था और न यह कि द्वारकानाथ के मैन्शन हाऊस वाले भाषण के बाद वह उग्रवादी भी इनको कैसे बर्दाश्त कर पाता था?[11] लेकिन जेम्स ह्यूम तो द्वारकानाथ के चरित्र के एक पक्ष से ही परिचित था और नहीं जानता था कि द्वारकानाथ का दिमाग कितना लचीला और उनकी सहानुभूतियां कितनी विशाल और विस्तृत हैं और अपने देशवासियों से उनका प्यार कितना गहरा है। अपने मैन्शन हाऊस वाले भाषण और राजपरिवार और सामंतों से मेल-जोल के बावजूद द्वारकानाथ को जार्ज थाम्सन तथा अन्य ब्रिटिश उग्रवादियों की मित्रता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। सच तो यह है कि थाम्सन उनका हार्दिक प्रशंसक बन गया था, जैसा कि भारत आने से पहले एडिनबरा में विदाई समारोह के अवसर पर एक सार्वजनिक जलपान में दिए गये उसके भाषण में द्वारकानाथ के चरित्र और सार्वजनिक जीवन के बारे में प्रशंसात्मक हवालों से सिद्ध है।[12]

थाम्सन एक अरसे से भारत का समर्थन करते आ रहे थे। नवंबर 1838 में ग्लासगो में एबॉरिजिनीज प्रोटेक्शन सोसायटी (आदिवासी रक्षा समिति) के सामने भाषण देते हुए उन्होंने कहा था: 'हम अक्सर आयरलैण्ड और उसके आदिवासियों के साथ न्याय करने की बात सुनते हैं... लगता है जैसे आयरलैण्ड और भारत दोनों ही इंगलैंड के लिए बने हैं, ताकि वह उनके आदिवासियों को अपने अत्याचारों से खूब लूट-खसोट सके.... आयरलैण्ड के सत्तर लाख लोगों के प्रति न्याय के समूह-गान के बीच मैं चाहता हूं कि हम भारत के दस करोड़ लोगों के प्रति न्याय के समूह गान में भी शामिल हो जायें।[13] कलकत्ते में थाम्सन के आगमन का

उग्रवादियों ने, जिनमें सबसे मुखर वे लोग थे, जो यंग बंगाल के नाम से प्रसिद्ध थे, खुल कर हार्दिक स्वागत किया। थाम्सन के भाषण उन्हें मंत्र-मुग्ध-सा कर देते और उनके साप्ताहिक लेक्चर सुनने के लिए बड़ी संख्या में उत्साही श्रोताओं की भीड़ जमा होती और प्रेस में भी उनकी खूब चर्चा रहती। इन लेक्चरों का आयोजन सोसायटी फॉर दी एक्वीजीशन ऑफ जनरल नालेज के तत्वावधान में किया जाता था। यह संस्था उग्रवादी कवि डेरोजियो के अकेडमिक असोसियेशन की उत्तराधिकारिणी थी ओर उसमें हिन्दू कालेज के अनेक भूतपूर्व विद्यार्थी और बंगाल के बुद्धिजीवियों के आम तौर पर अधिक सजग और राजनीतिक दृष्टि से सचेत व्यक्ति शामिल थे।

इन भाषणों में थाम्सन अपने श्रोताओं को जागरूक नागरिकों की हैसियत से अपनी जिम्मेदारी के प्रति सचेत रहने के लिए प्रेरित करता था। वह कहता था, 'भारत में विदेशी शासक हैं, विदेशी सलाहकार हैं, विदेशी इतिहासकार हैं, विदेशी निन्दक हैं और मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि विदेशी वकील हैं। आप किसी ऐसे प्रश्न पर विचार करने के लिए टाऊन हॉल में मीटिंग बुलायें, जिसका संबंध केवल भारतीयों से ही है, तो वहां बोलने वाले भी विदेशी होते है। किसी मामले में अगर इंगलैण्ड के अंदर एक एजेंट या प्रतिनिधि तैनात करने की जरूरत हो, और चाहे उस मामले का संबंध सिर्फ हिन्दोस्तानियों से ही क्यों न हो, लेकिन उस एजेन्ट का विदेशी होना जरूरी होता है।' उसने कहा कि उसके मन में एक ऐसे भारतीय को देखने की कितनी लालसा है जो यहां के निवासियों के उद्देश्यों के परोपकार के रूप में आगे कदम बढ़ाये, कि जो अपने को हिन्दू कह सके और जो अपने देशवासियों की भलाई के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सके और उनके उद्देश्य के प्रति अपनी निर्भय और निस्वार्थ निष्ठा की मिसाल कायम कर सके। लेकिन वह हताश नहीं था, क्योंकि एक दिन ऐसा देशभक्त भारतीय आगे आयेगा और कहेगा: 'मैं अब अपने लिए नहीं, बल्कि अपने देश, अपने प्यारे देश के लिए ही जीऊंगा।'[14]

प्रोफेसर एस० आर० मेहरोत्रा का कहना है कि जार्ज थाम्सन की भाषण-कला ने बंगाल की उदीयमान पीढ़ी पर जादू डाल दिया था। इससे पहले कभी कलकत्ते में ऐसे भाषण नहीं सुने गये। **बंगाल हेरल्ड** ने लिखा कि: "इस देश में जितने भी लोग बाहर से आये हैं, उनमें से किसी ने भारतीय मानस पर उतना प्रभाव नहीं डाला, जितना कि थाम्सन के भाषणों ने।" उनका आगमन भारत में राजनीतिक आंदोलन के इतिहास का एक सीमाचिन्ह है, और इस कथन में औचित्य की कमी नहीं है कि उन्हें "भारत में राजनीतिक शिक्षा का पिता" कहा जाता है। उनके भाषणों ने ही 20 अप्रैल 1843 को बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी की स्थापना की भूमिका तैयार की थी।'[15]

दरअसल, भारत में राजनीतिक शिक्षा की प्रक्रिया इससे पहले ही शुरू हो चुकी थी और इसमें द्वारकानाथ का काफी योग था। इसका जन्म उस ऐतिहासिक स्मरण-

पत्र में, जो सुप्रीम कोर्ट को भेजा गया था और उस अपील में हुआ था, जो किंग-इन-कौंसिल को भेजी गई थी, और जिन्हें 1823 में प्रेस पर लागू की गई सेंसर की पाबंदी के खिलाफ प्रतिवाद करने के लिए राममोहन राय ने लिखा था और जिस पर द्वारकानाथ ने भी हस्ताक्षर किए थे। इसके बाद द्वारकानाथ इस आंदोलन को उस समय तक चलाते रहे जब तक कि 1835 में प्रेस की स्वतंत्रता बहाल नहीं कर दी गई। इस धीमी, अंतरिम और दीर्घकालीन प्रक्रिया में जमींदारों की संस्था (लैण्ड होल्डर्स सोसाइटी) भी एक दूसरा सीमा-चिन्ह थी। 'जमींदारों की संस्था ने अपने अस्तित्व की अल्प अवधि (1838-1844) में कोई उल्लेखनीय कामयाबी नहीं हासिल की, लेकिन यह भारत में पाश्चात्य ढंग की एक राजनीतिक संस्था संगठित करने का पहला उल्लेखनीय प्रयास था, जो कई पहलुओं के भावी संगठनों के लिए एक मिसाल बन गया। देश के इतिहास में इसका प्रमुख रूप से उल्लेख जरूरी है। 1868 में प्रसन्नकुमार टैगोर की स्मृति में आयोजित कलकत्ते की एक सभा में बोलते हुए राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा कि उनकी दृष्टि में लैण्डहोल्डर्स सोसाइटी 'इस देश की आजादी की हरकारा संस्था थी।' उन्होंने आगे कहा, 'इसने लोगों को अपने अधिकारों के लिए वैध ढंग से संघर्ष करने की कला का पहला पाठ सिखाया था, और सिखाया था कि उन्हें किस तरह साहसपूर्वक अपनी मांगों पर दृढ़ता से डटना चाहिए और अपनी राय प्रकट करनी चाहिए।'[16]

1842 में द्वारकानाथ के विदेश जाने के बाद इस सोसाइटी के काम में शिथिलता आ गई। 26 जनवरी 1843 के **फ्रंड ऑफ इंडिया** ने लिखा कि 'पिछले बारह महीनों से हमने इस सोसाइटी के काम या इसके अस्तित्व तक के बारे में कुछ भी नहीं सुना। अब द्वारकानाथ और जार्ज थाम्सन के आगमन से सोसाइटी फिर से जिन्दा हो गई है और 1, चितपुर रोड पर उसका नया दफ्तर खोला गया है। प्रसन्नकुमार ने पुनः अपना कार्यभार संभाल लिया है और थाम्सन कमेटी के सक्रिय सदस्य बन गये हैं और जॉन क्राफोर्ड के स्थान पर सोसाइटी के प्रतिनिधि नियुक्त किए गए हैं।' जमींदारों की यह संस्था सरकार द्वारा जमीनों के पुनर्ग्रहण की शिकायत और बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त खत्म किये जाने के खतरे का विरोध करने के लिए अस्तित्व में आयी थी। सरकार ने पहली शिकायत को वस्तुतः दूर करके और दूसरी शिकायत के बारे में निश्चित और स्पष्ट आश्वासन देकर सोसाइटी को असल में अपने उद्देश्य से ही वंचित कर दिया। 1843 में कलकत्ता में एक दूसरी राजनीतिक संस्था – दी बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी – की स्थापना ने, जिसके सदस्यों में अधिक निष्ठा और उत्साह था, जमींदारों की सोसाइटी को और भी निष्क्रिय बनने में मदद की।'[17] इसके बाद जल्द ही इसकी कुदरती मौत हो गई।

27 अप्रैल 1843 के **फ्रंड ऑफ इंडिया** ने सूचना दी: 'बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी की पिछले बृहस्पतिवार को स्थापना हुई। नयी संस्था के राजभक्ति संबंधी प्रस्ताव में काफी संशोधन किया गया है। लेकिन हमारी विनीत सम्मति यह है कि

यह प्रस्ताव बिल्कुल अनावश्यक था। यह सोसाइटी अपनी राजभक्ति की जितनी ही अधिक चर्चा करेगी, उतनी ही वह राजभक्ति अधिक संदेहजनक लगेगी।'

इसके कुछ दिन बाद ही मई में वह स्वर्ण पदक आ गया जो कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स द्वारकानाथ को प्रदान करना चाहती थी। 10 मई 1843 को डिप्टी गर्वनर डब्ल्यू०डब्ल्यू० बर्ड ने वह पदक एक सार्वजनिक समारोह में द्वारकानाथ को भेंट किया।[18] एक संक्षिप्त भाषण में आभार प्रकट करते हुए द्वारकानाथ ने कहा कि इस पुरस्कार को वे 'उतना अपने सम्मान में दिया गया नहीं मानते जितना कि... वह उनके माध्यम से भारतीय जनता को दिया गया एक आश्वासन है कि उनके शासकों की दृष्टि में उनकी सुख-समृद्धि और शिक्षा-दीक्षा परम प्रिय उद्देश्य हैं।' उन्होंने बुद्धिमानी दिखायी और पिछली बार की तरह भावुकतापूर्ण प्रशंसा के उद्गारों को नहीं दोहराया।

इस बीच, चूंकि वे साल के अंत में या अगले साल के शुरू में दोबारा योरप में एक लंबे प्रवास की योजना बना रहे थे, वे अपने परिवार के भविष्य, अपनी विशाल जमींदारी और तेजी से बढ़ते हुए व्यापारिक साम्राज्य के बारे में गंभीर चिन्ता से ग्रस्त रहे। उनके ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्रनाथ, जिनके अंदर 1838 में अपनी दादी मां अलकासुंदरी की मृत्यु के बाद से एक आध्यात्मिक परिवर्तन आ गया था और जिन्होंने उपनिषदों के दर्शन में एक नई आस्था का स्रोत खोज लेने के बाद उसके प्रतिपादन और प्रचार के लिए तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की थी, हाल में ही ब्रह्मोसमाज में शामिल हो गये थे और उसमें अब एक नई जान डालने में व्यस्त थे। इस पर पिता की प्रतिक्रिया क्या थी? शायद अस्पष्ट थी। शायद उन्हें इस बात की खुशी थी कि उनका पुत्र, प्रायः अन्य धनी परिवारों के वंशजों की तरह भोग-विलास में लिप्त आवारा छोकरा नहीं था, बल्कि एक गंभीरमना और उच्च आदर्शों के प्रति समर्पित व्यक्ति था। उन्हें शायद इस बात पर भी गर्व था कि उनका पुत्र उस आदर्श में नया जीवन डालने और उसे आगे बढ़ाने में पूरी लगन और निष्ठा से लगा था, जिसे कभी द्वारकानाथ के प्रिय मित्र, पथ-प्रदर्शक, और फिलॉसफर अपनी विरासत के रूप में छोड़ गये थे और जिसे राममोहन राय की मृत्यु के बाद जिन्दा रखने में स्वयं द्वारकानाथ ने निरंतर योग दिया था। एक औपचारिक धर्म-प्रतिष्ठान से कहीं ज्यादा वह उनकी 'सामाजिक असहमति और निर्भीक विरोध' की सबसे महान विरासत थी, जिसका द्वारकानाथ ने स्वयं पोषण और प्रतिपादन किया था, जिसे अब वे अपने पुत्र के उत्साह में प्रतिबिंबित देख रहे थे, हालांकि उस रूप में नहीं, जिसे वे पसंद कर सकते। मूलतः द्वारकानाथ धर्म-निरपेक्ष व्यक्ति थे और धर्म के बाह्य रूपों के प्रति उदासीन थे, जबकि बेटे की दृष्टि में उपासना की नई पद्धति खोजे हुए नये सत्य की प्रतीक थी। और इस प्रकार, पिता के लिए बेटे के उच्च आदर्श आवश्यकता से अधिक ऊंचे सिद्ध हो रहे थे।

हालांकि द्वारकानाथ की हार्दिक इच्छा अवश्य यह रही होगी कि उनका पुत्र

अपने पिता की विरासत को उसी उत्साह से पोसता, जिस उत्साह से वह राममोहन राय की विरासत को पोस रहा था, लेकिन वे इतने हकीकतनिगार और बुद्धिमान भी थे कि यह समझ सकें कि देवेन्द्रनाथ इस कार्य के योग्य नहीं थे। व्यापार में न उनका दिमाग चलता था न दिल ही लगता था। द्वारकानाथ को अपने दूसरे पुत्र गिरीन्द्रनाथ पर भी भरोसा नहीं था कि वह उनकी आशाओं पर पूरा उतरेगा। तीसरा पत्र नगेन्द्रनाथ अभी किशोर और अपरिपक्व था। इसलिए निराश किन्तु कभी हताश न होने वाले पिता ने 16 अगस्त 1843 को एक नया वसीयतनामा तैयार किया, जिस तरह पहली बार विदेश जाने से पहले अगस्त 1840 में किया था, जिसके अनुसार उन्होंने अपनी जमींदारियों का एक ट्रस्ट कायम किया।[19] इस वसीयत-नामे में यह दिया गया था कि पिता की मृत्यु के बाद देवेन्द्रनाथ यदि चाहें तो कार, टैगोर एण्ड कंपनी में द्वारकानाथ के हिस्सों को ले सकते हैं। अगर वे इसके लिए राजी न हों तो दूसरे पुत्र गिरीन्द्रनाथ को ये शेयर लेने का मौका दिया जाय और अगर वे भी राजी ने हों तो तीसरे बेटे नगेन्द्रनाथ को। उन्होंने वसीयतनामे में पहले ट्रस्ट के दस्तावेज की तरह इस बात का भी प्रावधान किया कि उनकी चारों जमींदारियां उनके सभी पुत्रों और पोतों के लिए ट्रस्ट के रूप में रखी जायें। अगर बेटे कंपनी में साझेदारों के रूप में शामिल न होकर उन दस लाख रुपयों को वापस लेना चाहें जो द्वारकानाथ ने कंपनी को उधार दिये थे, तो वे कंपनी की व्यापारिक सुरक्षा और साख को ध्यान में रखते हुए केवल किश्तों में ही रुपया निकाल सकते हैं – इस तरह उन्होंने कार, टैगोर एण्ड कंपनी के भविष्य के बारे में अपनी चिन्ता का संकेत दे दिया। जोरसेन्को की सम्पत्ति मुख्यतः दोनों बड़े बेटों में बांट दी गई, पूर्वजों से प्राप्त और बड़ा भाग तो देवेन्द्रनाथ को दिया गया और राजसी बैठकखानाा गिरीन्द्रनाथ को। सबसे छोटे पुत्र नगेन्द्रनाथ के लिए एकमुश्त रकम छोड़ दी गई थी, ताकि अगर वह चाहे तो अपने लिए अलग कोठी बनवा सकता था। परिवार के और सदस्यों को भी सम्पत्ति में से हिस्सा दिया गया था और एक लाख रुपया डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसायटी के लिए रखा गया था। तीनों पुत्रों के साथ-साथ प्रसन्न कुमार टैगोर और डी०एम० गॉर्डन को इस वसीयतनामे पर अमल करने के लिए नामजद किया गया।

यह वसीयतनामा तैयार करने के बाद जल्द ही द्वारकानाथ ने, जिनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था, अंतिम बार पश्चिम प्रांतों का दौरा किया। 5 अगस्त 1843 के **बंगाल हेरल्ड** में प्रकाशित सूचना में कहा गया: 'हमारे यशस्वी मित्र द्वारकानाथ टैगोर दोबारा इंगलैंड की यात्रा पर जाने से पहले उत्तरी प्रांतों का दौरा करने के लिए जाने वाले हैं। वे दो-एक हफ्तों के अंदर ही स्टीमर द्वारा इलाहाबाद तक जायेंगे, फिर डाकगाड़ी के जरिए आगरा, दिल्ली आदि की यात्रा करेंगे।' लगता है कि वे अपने साथ जार्ज थाम्सन को ले गये थे और शायद यही कारण था कि उन्हें इस लंबी यात्रा में छै महीने लग गये, क्योंकि वे अपने अंग्रेज मित्र को उत्तर भारत की सैर

करवाना चाहते थे और दिल्ली में मुगल सम्राट से उनकी भेंट का आयोजन करना चाहते थे। 8 जून 1843 के **फ्रंड ऑफ इंडिया** ने (सोमवार, 5 जून के 'सप्ताह की घटनाएं' कालम के अंतर्गत) रिपोर्ट प्रकाशित की: 'कल के **स्टार** में इस तथ्य का हवाला दिया गया है, जिसकी सूचना हमारे पास कुछ दिन पहले से थी कि जार्ज थाम्सन ने साम्राज्ञी विक्टोरिया के दरबार में दिल्ली सम्राट के राजदूत का पद स्वीकार कर लिया है। वह साम्राज्ञी के सामने उन शिकायतों के बारे में एक वक्तव्य पेश करेगा, जिनके अंतर्गत मुगल सम्राट को कार्य करना पड़ा रहा है। **स्टार** के अनुसार उसे एक हजार रुपया मासिक का वेतन और कलकत्ते से दिल्ली, और दिल्ली से लंदन तक के सफर-खर्च के लिए तीन हजार रुपये दिये जायेंगे। लेकिन हमने सुना है कि यह रकम बारह हजार है। हमें आशा है कि मिस्टर थाम्सन वेतन के मामले में सम्राट के वचन मात्र पर भरोसा न करके कोई पक्की गारंटी प्राप्त करने की सावधानी बरतेंगे। राजा राममोहन राय को भी तैमूर के वंशज ने इसी तरह एक निश्चित वेतन देने का वायदा करके नियुक्त किया था। उनका पुत्र एक लंबे अरसे तक सम्राट के दरबार में राजा के बकाया वेतन के लिए दावा दायर करता रहा, लेकिन उसका दावा बेकार रहा, और बकाया रकम का, जहां तक हमें ज्ञात है, आज तक भुगतान नहीं किया गया।'

द्वारकानाथ दिसंबर के आरंभ में दिल्ली पहुंचे थे। **दी फ्रंड ऑफ इंडिया** ने 21 दिसंबर 1843 के अंक में सूचना प्रकाशित की: 'बाबू द्वारकानाथ पहली दिसंबर को दिल्ली पधारे और अब यहां के दर्शनीय स्थानों की सैर करने में व्यस्त हैं।' **बंगाल हरकारू** ने भी सूचना प्रकाशित की 'मुगल सम्राट की ओर से उनका अनुकूल स्वागत किया गया और वे इस समय मलका के महल में हैं। इस तरह की अफवाह है कि बाबू द्वारकानाथ टैगोर सम्राट के राजदूत होंगे और मिस्टर थाम्सन उनके सेक्रेटरी और वे शीघ्र ही लंदन के लिए रवाना हो जायेंगे।' लेकिन यह अफवाह एक अफवाह मात्र सिद्ध हुई।

देश के अंदर कुछ नदी मार्ग से और कुछ सड़क मार्ग से पश्चिम की ओर तय की गई इस लंबी यात्रा ने न केवल द्वारकानाथ को अपना स्वास्थ्य सुधारने में मदद की, बल्कि कलकत्ता और इलाहाबाद के बीच सरकार द्वारा चलायी जाने वाली स्टीम-बोट सर्विस की असुविधाजनक स्थिति ने उन्हें उसके समानान्तर निजी क्षेत्र में खुद अपनी स्टीम-बोट सर्विस चालू करने का निर्णय करने में भी मदद की। इस प्रकार इंडिया जनरल स्टीम नेवीगेशन कंपनी का जन्म हुआ। ब्लेयर क्लिंग ने लिखा है कि 'दीर्घकालीन दृष्टि से देखें तो बंगाल कोल कंपनी[20] और आसाम टी कम्पनी की तरह इंडिया जनरल भी द्वारकानाथ के अधिक सफल उद्यमों में से एक है जो एक उत्तराधिकारी कंपनी के अंतर्गत अभी तक चल रही है।'[21] जैसे मानो इतना ही काफी नहीं था, द्वारकानाथ ने नई भूमि तोड़ते हुए एक नया उद्योग भी शुरू कर दिया। इंगलैंड और योरप में जब से उन्होंने रेल-सेवा के नये आश्चर्य का अनुभव

किया था, उनकी कल्पना जैसे प्रज्ज्वलित हो गई थी। उनके देश के पास भी यातायात का यह आधुनिकतम साधन होना चाहिए, इसलिए उन्होंने ग्रेट वेस्टर्न ऑफ बंगाल कायम करने की योजना तैयार की। 'रेलवे स्थापित करने की योजना कार्यान्वित करने के दौरान ही उनकी मृत्यु हो गई; भाग्य ने उन्हें रेल-युग, भारत में पूंजीवादी विकास के आकांक्षित युग की एक संक्षिप्त झलक तो दिखा दी थी, लेकिन उसके अंदर प्रवेश करने से रोक दिया था।'[22]

इन सब नये उद्यमों और उनसे उत्पन्न समस्याओं ने द्वारकानाथ को योरप की दूसरी यात्रा पर सन् 1843 के अंत में या 1844 के आरंभ में जाने से रोक लिया। बार-बार ज्वर के प्रकोप के कारण उनका स्वास्थ्य फिर से चिन्ता का विषय बन गया था। अंत में उन्होंने 1845 की मार्च में योरप जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें डर था कि उनका शरीर अगले ग्रीष्म की थपेड़ें नहीं बर्दाश्त कर सकेगा।

इसी दौरान ब्रिटिश साम्राज्ञी और उनके पति के आदमकद चित्र, जो उन्होंने द्वारकानाथ के अनुरोध पर कलकत्ता शहर को भेंट करने का वायदा किया था, जहाज से कलकत्ता पहुंच गये थे। 'साम्राज्ञी के आदेशानुसार' जो सरकारी पत्र 1844 के अंत में प्राप्त हुआ था, उसमें कहा गया था: 'जैसा कि मैंने कुछ समय पहले सरकारी तौर पर आपको सूचित करने के लिए लिखा था कि आपके अनुरोध पर कलकत्ता शहर के लिए बनाये गये दो शाही चित्र समुद्री जहाज द्वारा भेज दिए गये हैं, और अब मैं आपको यह सूचित करने के लिए लिख रहा हूं कि साम्राज्ञी ने अपना एक लघु-चित्र जल्द से जल्द बनाने का आदेश दिया है, जिसे आपके प्रति साम्राज्ञी के व्यक्तिगत अनुग्रह की निशानी के रूप में आपको अपने निजी संग्रह के लिए भेजा जायेगा।'[23]

शनिवार, 1 मार्च, 1845 के तीसरे पहर टाऊन हॉल में कलकत्ता के नागरिकों को 'दो शानदार चित्रों के लिए साम्राज्ञी का अभिनंदन' करने की खातिर एक मीटिंग हुई, जैसा कि **बंगाल हरकारू** के अतिरिक्त सांध्य संस्करण में सूचित किया गया। 'सारे प्रस्ताव एकमत से स्वीकार किए गये और एक प्रस्ताव में मीटिंग की ओर से हमारे सम्मानित सह-नागरिक द्वारकानाथ टैगोर का धन्यवाद किया गया कि उन्होंने कलकत्ते को कला के इतने सुंदर नमूने उपलब्ध करवाये थे।'[24] प्रस्तावों का उत्तर देते हुए द्वारकानाथ ने उपस्थित नागरिकों का धन्यवाद किया और कहा कि 'उन्होंने जो कुछ किया था वह करना उनका कर्तव्य था। वे पुनः इंगलैंड जा रहे थे और उन्होंने अपने मित्रों को आश्वासन दिलाया कि सुदूर देशों की यात्रा करने में उन्हें आत्म-संतोष मिलता है, इसके अलावा और किसी व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए वे यह यात्रा नहीं कर रहे। इसमें संदेह नहीं कि उनके और उनके अनेक देशवासियों के बीच इस बारे में मतभेद है, लेकिन वे उनमें से सभी को यह बता देना चाहते हैं कि भाग्य उन्हें चाहे जिस देश में ले जाकर पटके, वे अपने देश और उन सभी के हितों को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देंगे और न अपनी सीमित

शक्ति के अनुसार उनके हितों को बढ़ावा देने में कोई कसर नहीं बाकी रखेंगे।'[25]

वर्ष के आरंभ में द्वारकानाथ ने इंगलैण्ड जाने की तैयारी के दौरान, हमेशा की तरह, अपने देशवासियों की शिक्षा के भविष्य की चिन्ता करते हुए, कौंसिल ऑफ एजूकेशन को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने मेडिकल कालेज के दो विद्यार्थियों के सफर-खर्च और लंदन विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के दौरान उनके लंदन प्रवास और शिक्षा का पूरा खर्च उठाने का प्रस्ताव किया था। कौंसिल ऑफ एजूकेशन ने कृतज्ञतापूर्वक यह प्रस्ताव स्वीकार करके भोलानाथ बोस और सूरजकुमार चक्रवर्ती,[26]— इन दो विद्यार्थियों को चुना। सरकार ने एक और विद्यार्थी का खर्च उठाने का प्रस्ताव किया,[27] और एक चौथे विद्यार्थी के लिए सार्वजनिक चंदा करके धन एकत्र किया गया। इस प्रकार अंत में चार विद्यार्थी द्वारकानाथ के साथ इंगलैण्ड गये। आखिरी दो विद्यार्थियों के नाम थे, द्वारकानाथ दास बोस और गोपाल चंदर सील। विद्यार्थियों को अपनी देखरेख में लेकर उनके अध्यापक डा० एच०एच० गुडीव भी साथ गये।

नोट्स

1 **लेटर्स टू फ्रंडस एट होम** (जून 1842 से मई 1843 तक), लेखक – एक बेकार आदमी। स्टार प्रेस, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।

2 क्लिंग, पृ० 179-180.

3 ईस्ट इंडिया कंपनी के दो में से एक डायरेक्टर, जिसके नाम पत्र भेजा गया था।

4 **बंगाल हरकारू,** 17 मार्च, 1843.

5 संकेत **कलकत्ता जर्नल** के प्रतिभाशाली और साहसी सम्पादक जेम्स सिल्क बकिंघम के निर्वासन की ओर है, जो स्थानापन्न गवर्नर-जनरल, जॉन ऐडम्स के कोप-भाजन बन गए थे।

6 '**ऑवर फेमिली करेस्पॉन्डेन्स**–1835-57' – रवीन्द्र सदन अभिलेखागार, शांति निकेतन।

7 क्लिंग द्वारा ब्राऊघम पेपर्स से उद्धृत, पृ० 179.

8 वही, पृ० 179.

9 वही, पृ० 179.

10 **बंगाल हरकारू,** दिसंबर 3, 1846.

11 **लेटर्स टू फ्रंडस एट होम:** ले० एक बेकार आदमी।

12 अक्तूबर 26, 1842 के दी **स्कॉट्समैन** में प्रकाशित रिपोर्ट और 20 जनवरी 1843 के **बंगाल हरकारू** में उद्धृत।

13 19 नवंबर, 1838 के **ग्लास्गो आर्गस** और 20 नवंबर, 1838 के **ग्लास्गो सेटरडे पोस्ट** से 9 मई, 1839 के **फ्रंड ऑफ इंडिया** द्वारा उद्धृत।

14 एस०आर० मेहरोत्रा: **दी इमर्जेन्स ऑफ दी इंडियन नेशनल कांग्रेस**: विकास प्रकाशन, दिल्ली, 1971.

15 वही।

16 वही।

17 वही।

18 दोनों स्वर्ण-पदक, एक साम्राज्ञी द्वारा भेंट किया गया और दूसरा बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा, कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में देखे जा सकते हैं।

19 द्वारकानाथ के जीवन में अगस्त महीने का बड़ा महत्व है, जैसा कि वह उनके पौत्र कवि रवीन्द्रनाथ के जीवन में होगा। द्वारकानाथ ने कार, टैगोर एण्ड कंपनी की अगस्त में स्थापना की, अपना पहला ट्रस्ट दस्तावेज भी अगस्त में ही तैयार किया और अपना वसीयतनामा भी, और अगस्त में ही उनका देहावसान हुआ। क्या वे अगस्त में ही जन्मे भी थे? उनके जन्म की तिथि और मास अज्ञात हैं, लेकिन अगस्त का अनुमान कर लेना किसी और अनुमान से भिन्न नहीं होगा।

20 बंगाल कोल कंपनी की स्थापना डीन्स कैम्पबेल के सहयोग से की गई थी और एक लंबी अवधि तक वह अपने प्रकार की सबसे अधिक समृद्ध कंपनी थी। 1908 में एंड्रयू यूल एंड कंपनी इसकी मैनेजिंग एजेंट बन गई।

21 क्लिंग, पृ० 1941 ये तीनों कंपनियां किस उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरीं, इसका पूरा ब्यौरा जानने के लिए पाठक को प्रो० ब्लेयर क्लिंग की पुस्तक **पार्टनर इन ऐम्पायर** में बड़े अध्यवसाय से प्रस्तुत किया गया विवरण देखना चाहिए।

22 वही, पृष्ठ 194.

23 दोनों चित्र विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, कलकत्ता में देखे जा सकते हैं।

24 **संस्मरण**, पृ० 108.

25 **बंगाल हरकारू**, अतिरिक्त साप्ताहिक संस्करण, मार्च 1, 1845 की सम्पादकीय टिप्पणी।

26 अंग्रेजी में इस नाम के विभिन्न पत्रों में विभिन्न ढंगों से हिज्जे किए गये।

27 कुछ विवरणों के अनुसार, डा० एच०एच० गुडीव ने एक विद्यार्थी का खर्च देने का प्रस्ताव किया था। यह बात कि डा० गुडीव ने पूरा खर्च दिया था, या उसका केवल एक अंश मात्र ही और बाकी सरकार ने दिया या सार्वजनिक चंदे से पूरा किया गया, स्पष्ट नहीं है। संभवतः यह विद्यार्थी सूरजीकुमार चक्रवर्ती था, जो डा० गुडीव का प्रिय शिष्य था और आरंभ से ही उनके प्रभाव में आ गया था। इंगलैण्ड जाने से पहले ही, जहां पर बाद में उसे इनाम में स्वर्ण-पदक दिया गया, उसने ईसाई मत स्वीकार कर लिया था और बदल कर अपना नाम सूर्यकुमार गुडीव चक्रवर्ती रख लिया था। इंगलैंड में उसने एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था। देखिए किशोरीचंद मित्रा के **संस्मरण** के बंगाली संस्करण में पृ० 298-297 पर कल्यानकुमार दास गुप्ता की टिप्पणी। इसके विपरीत नवीन चंद्र ने 19 मई, 1846 को जो पत्र अपने ममेरे भाई गिरीन्द्रनाथ के नाम लिखा था, उसमें 'सूरजीकुमार चक्रवर्ती' का हवाला उन दो विद्यार्थियों में से एक के रूप में दिया गया है जिनको द्वारकानाथ ने अपने खर्च पर इंगलैंड भेजा था।

दस

दूसरी यात्रा

बंगाल हरकारू ने शनिवार, 8 मार्च, 1945 की शाम को अपने अंक में सूचना प्रकाशित की कि 'बेन्टिंक जहाज आज सुबह अस्सी यात्रियों को लेकर कलकत्ते से रवाना हुआ।' इन अस्सी यात्रियों में द्वारकानाथ और उनकी पार्टी के लोग भी थे। पी. एंड ओ. का स्टीमर जब बंदरगाह से हटा और द्वारकानाथ ने अपने देश की भूमि से विदा ली, उस समय क्या उन्हें पूर्वानुभूति हुई थी कि वे अपने मातृभूमि को फिर कभी नहीं देख सकेंगे?

इसका अनुमान लगाना कठिन है। हालांकि द्वारकानाथ नियमपूर्वक अपनी डायरी रखते थे, लेकिन वे बहिर्मुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे, जो केवल अपने बाह्य क्रिया-कलापों, यात्राओं और अनुभवों को ही उसमें दर्ज करते थे और उनके मन के भीतर क्या प्रतिक्रिया होती थी, इसका आभास भी नहीं देते थे। उन्होंने दो साल पहले से इस यात्रा की योजना बना रखी थी, वस्तुतः 1843 में भारत लौटने से भी पहले से। अक्तूबर, 1842 में जब वे पेरिस में थे, उस समय उन्होंने फ्रांस के सम्राट लुई फिलिप को वचन दिया था कि वे एक साल बाद फिर लौट कर आयेंगे। उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा था, इसलिए कोई कारण नहीं था कि स्वास्थ्य-लाभ के लिए वे इतनी जल्दी लौटने का विचार करते। इस बार उन्होंने निश्चय ही एक लंबे प्रवास का इरादा किया होगा, क्योंकि वे अपने साथ अपने सबसे छोटे पुत्र नगेन्द्रनाथ को ले गये थे, जो उस समय सोलह वर्ष का एक सुंदर नौजवान था और जिसे वे एक संभ्रांत अंग्रेज से शिक्षा दिलाना चाहते थे। क्या वे इंगलैंड में अपने लिए भी काम-काज के मार्ग तलाश करने की बात सोचते थे? कौन कह सकता है?

उनके व्यक्तिगत अमले में उनके पुत्र के अलावा, उनका एक भानजा नवीन चन्द्र मुखर्जी (जो उस भानजे से भिन्न था जो पहली यात्रा में उनके साथ गया था),

उनके निजी डाक्टर डब्ल्यू. रेले, उनके प्राईवेट सेक्रेटरी टी.आर. साफे और तीन नौकर थे। डा. एच.एच. गुडीव की देखरेख में चारों मेडिकल छात्र भी उनके साथ ही गये थे। यह ज्ञात नहीं है कि उन्होंने पहली यात्रा की तरह इस बार भी मार्ग में जो देखा और अनुभव किया था, उसके बारे में अपनी प्रतिक्रियाएं अपने मित्रों को लिखे लंबे पत्रों में या किसी डायरी में दर्ज की थीं, जो भी हो मित्रा के संस्मरणों में जो कुछ विवरण मिलता है और रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में जो छिट-पुट सूचनाएं उपलब्ध हैं, इनके अलावा और कुछ नहीं बचा। इस बार उनके भानजे नवीन चंद्र ने ही यात्रा के बारे में गिरीन्द्रनाथ को (द्वारकानाथ के द्वितीय पुत्र) कुछ पत्र आडंबरपूर्ण बंगाली में (उस समय तक बंगाली भाषा में गद्य का सम्यक् विकास नहीं हुआ था), और कुछ पत्र स्कूली बच्चों की अटपटी अंग्रेजी में लिखे थे।

8 मई, 1845 के **इंगलिशमैन** ने **बेन्टिंक** के एक यात्री का पत्र प्रकाशित किया, जिसमें उसने जहाज़ की अत्यंत खराब अवस्था पर क्षोभ प्रकट करते हुए लिखा कि वहां कमरों में हवा और रोशनी का माकूल इंतजाम नहीं है, जिससे यात्रियों को खुले डेक पर सोना पड़ता है। 'केवल आधे दर्जन केबिनों को छोड़ कर बाकी इतनी बुरी हालत में हैं कि वे भारतीय महासागर की जलवायु में सोने-बैठने के काबिल नहीं है।' संवाददाता का नाम नहीं दिया गया था, लेकिन उसके इस सुझाव को देखते हुए कि पी. एंड ओ. कंपनी को भोजन के कमरे में पंखे लगवाने चाहिए, अनुमान किया जा सकता है कि कहीं द्वारकानाथ ही उनके गुमनाम संवाददाता न हों। इसमें संदेह नहीं कि उनके अपने जहाज में, जिससे उन्होंने अपनी पहली यात्रा की थी, अधिक सुविधाएं उपलब्ध थीं और उनके मन में इस बात का क्षोभ अवश्य रहा होगा कि उनकी विस्तृत योजना बेकार हो गई थी और ईस्ट इंडिया कंपनी ने डाक लाने-ले जाने का ठेका एक अंग्रेज कंपनी को दे दिया था। वे स्वयं अपनी कंपनी को कितने सुचारू ढंग से चला सकते थे। अपने सौजन्य के कारण ही वे अपनी आलोचना को गुमनाम रखने पर विवश हुए होंगे।

स्वेज़ पहुंच कर, जहां नवीन चंद्र को 'काली पहाड़ियों के अलावा जीवन का कोई चिन्ह' नजर नहीं आया, पार्टी ने **बेन्टिंक** से उतर कर स्थल मार्ग से काहिरा तक की यात्रा पूरी की, जहां वे लोग शेफर्ड्स होटल में एक पखवारे तक ठहरे। वहां के वायसराय मोहम्मद अली पाशा ने द्वारकानाथ का भव्य स्वागत किया और उसने उनके इस्तेमाल के लिए 'सवारी के सोने की जीन कसे नौ घोड़े और एक खच्चर दिया और उनके आगे आगे चलने वाले दो घुड़सवार भी साथ कर दिए।' मित्रा के अनुसार द्वारकानाथ ने वायसराय के साथ कई मुलाकातें कीं, जिनके दौरान उसने द्वारकानाथ के इस आग्रह में बड़ी दिलचस्पी दिखाई कि उसे स्वेज को अलैक्जेंड्रिया से जोड़ते हुए एक रेल-लाइन का निर्माण करना चाहिए।[1] 84 वर्ष का बुजुर्ग वायसराय बड़े विनोदी स्वभाव का था और 'द्वारकानाथ के पुत्र की पोशाक की शान-शौकत का मजाक उड़ाते हुए हंस-हंस कर लोट-पोट हो गया। उसने

विशेषकर बालक की पगड़ी की प्रशंसा की और विनोदपूर्वक उसे अंग्रेज महिलाओं से सावधान रहने के लिए कहा...अंग्रेज सुंदरियों से अपनी पगड़ी और अपने दिल की रक्षा करने के लिए आगाह किया...'[2] फारसी का ज्ञान होने के कारण द्वारकानाथ को उस भाषा में पाशा के साथ स्वच्छंद रूप से वार्तालाप करने में कोई कठिनाई पेश नहीं आयी, लेकिन अन्य लोगों के साथ वार्तालाप दुभाषियों के माध्यम से ही करना पड़ता था।

एक बार फिर नील नदी के मार्ग अलैक्जेंड्रिया का सफर, फिर वहां से भूमध्यसागर पार करके माल्टा द्वीप में पंद्रह दिन का संगरोधन। वहां के गर्वनर और नौसेनाध्यक्ष ने पहले की ही तरह इस बार भी उनका हार्दिक स्वागत किया और उन्होंने द्वारकानाथ और उनके दल के लोगों को नेपल्स तक पहुंचाने के लिए एक स्टीमर प्रदान किया। लेकिन 'लार्ड क्लेरेन्स पेजेट की कमान में ऐग्ले नाम के स्टीमर को जैसे ही खींचा जाने लगा कि द्वारकानाथ लार्ड क्लेरेन्स के निमंत्रित मेहमान बन गये।... नेपल्स पहुंचने पर उन्हें तोपों की शाही सलामी दी गई। जहाज़ पर से दागी गई तोपों का यह उनका पहला अनुभव था। द्वारकानाथ और उनके साथियों को नेपल्स में विक्टोरिया होटल में ठहराया गया। वे अंग्रेज राजदूत सर विलियम टेम्पल से भेंट करने गये, जो उन्हें इटली के नरेश से भेंट करने के लिए ले गया। इटली नरेश द्वारकानाथ से धाराप्रवाह अंग्रेजी में वार्तालाप करते रहे।[3]

नवीनचन्द्र ने अपने ममेरे भाई को (नेपल्स, 18 मई की तारीख को) लिखे पत्र में नेपल्स, पोम्पे, विसूवियस, कृत्रिम जलप्रपातों, रेलवे और वहां के म्यूजियम के सौंदर्य की, जिसमें 'भारतीय वस्तुओं का विशाल संग्रह है', प्रगल्भ शब्दों में प्रशंसा की, और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि वहां हर सड़क पर एक थियेटर है।[4]

नेपल्स से वह दल लेगहार्न, पिसा, जिनेवा, मार्सोल्ज और बोर्दियो से होता हुआ पेरिस पहुंचा। बोर्दियो से 5 जून को लिखे पत्र में नवीनचन्द्र ने दिहात-मार्ग से अपनी यात्रा का जिक्र करते हुए लिखा है कि यह ऐसी यात्रा थी 'जैसी मैंने अपने जीवन-काल में कभी नहीं की थी—अंगूर के खेतों, जैतून के पेड़ों, सेब और चेरी के बागों और उन स्वादिष्ट स्ट्राबेरी की क्यारियों का ऐसा अंतहीन विस्तार...' बोर्दियो के बारे में भी उन्होंने 5 जून को ही (व्याकरण के नियमों और विराम-चिन्हों के प्रति आम तौर पर अपनी अवहेलना दिखाते हुए) लिखा, 'यह नगर अपनी शराबों के लिए प्रसिद्ध है (,) जिसे तुम क्लैरेट के नाम से पुकारते हो, यहां उसका नाम इस स्थान के नाम पर है और कलकत्तामें तुम जो सबसे बढ़िया शराब (क्लैरेट) पीते हो वह असली (बोर्दियो) नहीं है, बल्कि इस देश की साधारण शराब है, और अंग्रेज बोर्दियो के नाम पर उसे क्लैरेट का नाम देकर यहां से जहाजों में भर कर भेजते हैं। मिस्टर दिस्तोन्नोव ने, जो सबसे बढ़िया (बोर्दियो) शराब बनाते हैं, कल अपने अंगूर-बागानों से तैयार की गई अपनी शराब की कुछ बोतलें भेजी थीं, जो कहते हैं 1778 में खींची गई थी... मैंने अपने जीवन में इतने बढ़िया स्वाद की

क्लैरेट कभी नहीं पी, और मेरा विचार है कि मिस्टर दिस्तोन्नोव कार, टैगोर एण्ड कंपनी के जरिये इस बढ़िया क्लैरेट की कुछ पेटियां तुम्हें जल्द भेजेंगे। आम तौर पर वे साधारण कोटि की क्लैरेट ही इस कंपनी के पास भेजते हैं। हम यहां पर इस शराब और शैम्पेन के अलावा, जो शैम्पेन के प्रांत अर्थात् अपने जन्म-स्थान से सीधे मंगाई जाती है, अन्य कोई शराब नहीं पीते।

'हम सब यहां पर इतने स्वस्थ हैं कि डा० रेले का कहना है कि स्वस्थ से स्वस्थ व्यक्ति भी कलकत्ते में इतनी स्वस्थ अवस्था में नहीं होता। रेले और साफे मुटा कर दुगने हो गये हैं और हम सब लोग भी इतने मोटे हो गये हैं कि सबसे ढीली कमीजें भी अब तंग हो गई हैं।

'यह स्थान अपनी नारियों के सौंदर्य के लिए भी प्रसिद्ध है, जिसका अनुभव हमें कल रात ऑपेरा हाऊस में हुआ, जहां करीब 10 अनुपम सुंदरियां कसी हुई (गुलाबी) पतलूनें पहने आयीं और उन्होंने एक सुंदरतम दृश्य प्रस्तुत किया, वे परीकथाओं की परियों जैसी थीं। लिख कर मैं इससे अधिक व्यक्त नहीं कर सकता, क्योंकि जबानी बयान करने में भी मुझे एक महीना लग जायेगा... कल हम लोग पेरिस के लिए रवाना हो जायेंगे।'[5]

पेरिस में द्वारकानाथ पंद्रह दिन ठहरे, जिस बीच वे फ्रांस के सम्राट लुई फिलिप के अक्सर मेहमान बनते रहे। 'सम्राट पूर्वात्य के जमींदार की सौम्यता से बहुत प्रभावित हुए, और उन्होंने उनकी केवल भद्रतापूर्ण ही नहीं, बल्कि सौहार्द्रपूर्ण आवभागत की। द्वारकानाथ एक उत्सव के दिन वर्साई का महल देखने गये, जहां फूलों के वन में चलने वाले फव्वारों की छटा एक शानदार दृश्य प्रस्तुत कर रही थी, जिसका आंखों देखा वर्णन हमारे लिए एक दर्शक ने किया है। इस अवसर पर एक दिलचस्प घटना हुई। मेला देखने के लिए सारे देश से आने वाले लोगों की भीड़ यह जानने के लिए बेहद उत्सुक थी कि वह विशिष्ट व्यक्ति कौन था, जिसे उनके सम्राट ने इतनी हार्दिकता से सम्मानित किया था। विदेश मंत्रालय के सचिव मोशिये फुएत ने उत्सव के प्रमोद भरे वातावरण से प्रेरित होकर कह दिया कि वह विशिष्ट अजनबी स्वर्ग साम्राज्य का सम्राट था। यह खबर फैलते ही लोग एक स्वर से चिल्लाये, 'मेरे खुदा!' और वे अपने भाग्य को सराहने लगे कि उन्होंने इतने महान व्यक्ति को अपने ही देश में अपनी आंखों से देखा था।'[6]

मित्रा के अनुसार द्वारकानाथ 24 जून को लंदन पहुंचे थे, लेकिन नवीनचंद्र ने अपने ममेरे भाई गिरीन्द्रनाथ को शनिवार, 21 जून को लंदन से पत्र लिखा: 'मैं अभी एक घंटा पहले ही यहां पहुंचा हूं और मैंने डोवर से लेकर लंदन के दिहाती इलाके के अलावा यहां का अभी तक कुछ भी नहीं देखा है।' इस बार भी द्वारकानाथ पिक्काडिली से परे अल्बेमार्ले सड़क पर स्थित सेन्ट जार्ज होटल में ही ठहरे। आरंभ में तो उनका पुत्र और भानजा भी उनके साथ ही ठहरे थे, लेकिन कुछ दिनों के बाद उनके लिए अन्यत्र अलग-अलग कमरों का प्रबंध किया गया। स्पष्टतः एक

लंबे प्रवास की योजना को दृष्टि में रख कर द्वारकानाथ ने नगेन्द्रनाथ की शिक्षा के लिए एक प्राइवेट ट्यूटर (शिक्षक), मिस्टर ड्रमण्ड को नियुक्त कर दिया और जब उनके पुराने मित्रों, भारत के भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड ऑकलैंड और बंगाल के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सर एडवर्ड रियान ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे किशोर नगेन्द्रनाथ की शिक्षा-दीक्षा की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करेंगे तो उन्हें इससे गहरा संतोष प्राप्त हुआ। नवीनचंद्र को, जिन्होंने कलकत्ते की यूनियन बैंक में कुछ दिन शिक्षार्थी, के रूप में काम किया था, राबर्ट मिचेल एण्ड कं० में जो कार, टैगोर एण्ड कंपनी की लंदन में एजेंट थी, एक असिस्टेंट के पद पर नियुक्त करवा दिया। 7 जुलाई को नवीनचंद्र ने कलकत्ते के अपने ममेरे भाई को पत्र में लिखा : 'सर एडवर्ड रियान और लॉर्ड ऑकलैंड ने नगेंद्रनाथ की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था पूरी तरह अपने हाथ में ले ली है और जहां तक मेरा संबंध है, मैं रेशम, नील, चीनी, साल्टपीटर तथा व्यापार की ऐसी ही अन्य वस्तुओं के बारे में लंदन के प्रमुख व्यापारियों और दलालों से पूरी शिक्षा ग्रहण करूंगा और उन सबने वायदा किया है कि जितने दिन मैं यहां हूं, उतने दिनों में ही वे मुझे एक निपुण व्यापारी बना देंगे और जैसा कि मामा कहते हैं, मैं यहां से एक बिल्कुल भिन्न नया आदमी बन कर कलकत्ता वापस जाऊंगा।' बड़े भोले अंदाज में उन्होंने आगे लिखा : 'मेरा नैतिक चरित्र अभी तक बिल्कुल पवित्र और शुद्ध है और मामा या तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध जाने का मेरा कोई इरादा भी नहीं है।'

व्याकरण और विराम-चिन्हों के प्रति लापरवाही बरतने के बावजूद नवीनचंद्र अपनी बात का अर्थ स्पष्ट करने में समर्थ थे। उन्होंने अपनी मातृभाषा में न लिख कर अपने ममेरे भाई को अंग्रेजी में पत्र क्यों लिखे, इसका कारण संभवतः यह था कि नगेंद्रनाथ की ही तरह (जो अपनी डायरी अंग्रेजी में लिखते थे) वे भी जल्दी से जल्दी एक संभ्रांत अंग्रेज के रूप में अपना नव-संस्कार कर लेना चाहते थे। द्वारकानाथ स्वयं अंग्रेजी ज्ञान और चरित्र की खूबियों में विश्वास करते थे और इस दिशा में लोगों के रुझान और व्यवहार को प्रोत्साहन देते थे। यह प्रवृत्ति उनके पुत्र देवेन्द्रनाथ के अतिसंयमी और आडंबरहीन प्रभाव में, जो स्वदेशी मूल्यों में विश्वास करते थे, अगली पीढ़ी में ही उल्ट जाने वाली थी।

लंदन पहुंचने के कुछ दिनों बाद ही द्वारकानाथ का साम्राज्ञी के ड्राइंग रूम में स्वागत किया गया और उन के प्रति विशिष्ट सम्मान का भाव प्रदर्शित दिखाया गया। वे भारत से कुछ उपहार साथ ले गये थे, जो उन्होंने शयन-कक्ष की परिचारिका, लेडी जोसलिन के हाथों साम्राज्ञी को भिजवाये थे। मित्रा के अनुसार 'साम्राज्ञी ने कुछ अनोखे चीनी आभूषण और दिल्ली के सोने के बने बाजूबंद और कंगन ही स्वीकार किए थे और प्रिंस अलबर्ट ने द्वारकानाथ से एक अत्यंत सुंदर शाल – चोगा भेंट में कबूल किया था।'[7]

7 जुलाई के दिन द्वारकानाथ को बकिंघम पैलेस से एक विशेष निमंत्रण प्राप्त

हुआ। उसी दिन दोपहर को 2 बजे ममेरे भाई नवीनचन्द्र ने पत्र में लिखा: 'बाबू अभी-अभी साम्राज्ञी के यहां से उनको कलकत्ता के लोगों का मान-पत्र भेंट करके लौटे हैं, जो उन्होंने उनके उस चित्र के लिए पास किया था, जो अब कलकत्ता के टाऊन हॉल में टंगा है।

'साम्राज्ञी ने उन्हें एक और, अपना और प्रिंस अलबर्ट का लघु-चित्र भेंट किया है, जो उनके अपने व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए है (टाऊन हॉल के लिए नहीं)।

'आज रात को 9.30 बजे वे एक और दावत में जा रहे हैं।'

यद्यपि किशोरी चंद मित्रा ने जिन्होंने द्वारकानाथ की डायरी में से उनकी पिछली यात्रा का विवरण प्रस्तुत करने के लिए प्रभूत उद्धरण दिए हैं, उनकी इस दूसरी यात्रा की डायरी का कहीं कोई हवाला नहीं दिया, फिर भी इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता कि उन्होंने इस बार भी डायरी रखी थी किन्तु जो उनकी अचानक और असामयिक मृत्यु के कारण उनके अन्य कागज-पत्रों और चीजों के साथ ही खो गई। जैसे पहली यात्रा में, वैसे ही इस यात्रा के दौरान भी, लगता है, उन्होंने एक पाकेट नोट-बुक भी रखी थी, जिसमें वे अपने आबंधों, मुठभेड़ों और लोगों और दृश्यों के बारे में अपनी तत्काल भावनाओं को जल्दी से दर्ज कर लेते थे। इस पाकेट नोट-बुक के कुछ फटे पन्ने, जिन पर स्याही का रंग फीका पड़ गया है और जो टूटने लगे हैं, शांति निकेतन में रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। लिखावट अब सुपाठ्य नहीं रही और बीच-बीच में शब्द बिल्कुल मिट गये हैं, जिनको अनुमान से जोड़ना आसान नहीं रहा। कुछ नमूने नीचे दिये जा रहे हैं, जो बेहद संक्षिप्त और अधूरे हैं:

पन्ना एक, तारीख 17 जुलाई (जैसा कि उपर दिए गये नवीन चन्द्र के पत्र में है) साम्राज्ञी के यहां सुबह 10 बजे गया – साम्राज्ञी और प्रिंस, बेल्जियम के सम्राट और साम्राज्ञी, केम्ब्रिज के ड्यूक और डचेज, लॉर्ड लिवरपूल डेलावेयर, अर्गाइल के ड्यूक, लॉर्ड ऑकलैण्ड, स्टेन्ले और लेडी, पामस्टर्न और लेडी, लॉर्ड ऐश्ले, ...अफसर...और बाकी वे सब जिनके नाम अखबारों में छपे हैं।

'साम्राज्ञी ने मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा, मेरी पिछले दो साल की सरगर्मियों के बारे में, साधारण विषय भारत संबंधी। उनके अंतिम शब्द थे–हार्डिंग कैसे हैं, उनसे आप अंतिम बार कब मिले थे। मुझे आशा है कि देश को सुधारने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं।

'प्रिंस अलबर्ट, सम्राट लियोपोल्ड ने पूछा कि मैं पेरिस में किन दिनों ठहरा था और भारत संबंधी मामलों के बारे में स्वच्छंद आदान-प्रदान होता रहा। केम्ब्रिज के ड्यूक और डचेज ने भी अनेक विषयों पर पूछताछ की। बेल्जियम की साम्राज्ञी ने इच्छा प्रकट की कि मुझे वे अपने देश में मिलाना चाहती हैं–दो नन्हीं बालिकाओं ने शानदार वायलिन-वादन प्रस्तुत किया। अर्गाइल के ड्यूक ने मुझे स्कॉटलैण्ड में अपने घर पर निमंत्रित किया। 12 बजे मैं पैलेस से वापस आया।'

उसी पन्ने पर आगे, बिना तारीख दिए, लिखते हुए: 12 बजे बकिंघम पैलेस में बेल्जियम के सम्राट से भेंट के लिए जाना है। नं० 2 हाइड पार्क गार्डन्स में एडमिरल सर राबर्ट ऑटवे–लेडी स्टेन्ले–मिसेज डेम्पियर के यहां कल।'

पन्ना दो, 30 जुलाई 1845 : मिस्टर हडसन के साथ बुशी पार्क गया, विधवा साम्राज्ञी से मिलने। वहां मेरा सहर्ष स्वागत किया गया और स्वयं साम्राज्ञी की इच्छानुसार मुझे भोजन के समय उनके साथ बिठाया गया। वे बड़ी सौजन्यतापूर्वक विविध विषयों पर बातें करती रहीं और उन्होंने खेद प्रकट किया कि मौसम इतना खराब था कि वे बाग दिखाने के लिए मेरे साथ नहीं जा सकती थीं–और आग्रह किया कि मैं उनसे मिलने के लिए दोबारा आऊं। मैं कभी नहीं भूल सकता कि वे मेरे प्रति कितनी स्नेहशील और सहृदय थीं।'

पन्ना दो, 1 अगस्त : फिशमांगर्स हॉल। लॉर्ड मेलबोर्न ने सर राबर्ट पील के समर्थन में भाषण देते हुए कहा कि हालांकि सर राबर्ट ने उनकी नकल करके ये कानून बनाये थे, फिर भी उन्होंने उदारता के सिद्धांत का पालन करते हुए उनका समर्थन किया था और हालांकि अब शरीर (उनका मंत्रिमंडल) मर चुका है, लेकिन उसकी अमर आत्मा, अंग्रेज जाति की भावना, आज भी सर राबर्ट के बनाये इन उदारतावादी कानूनों में जीवित है। लार्ड जॉन रसेल ने भी भाषण दिया और मैंने उनके स्वास्थ्य की कामना करते हुए सबका धन्यवाद किया।'

पन्ना दो – शनिवार 2 अगस्त, 1845 : हॉलैण्ड के सम्राट से भेंट हुई– वर्तमान वाईकाऊंट हावरडेन, बैरन डोडल, मिस्टर बांड–ने अक्तूबर में मुझे अपने देश आने का निमंत्रण दिया, जबकि उनका पुत्र भी हालैंड में होगा – उनके साथ इतने लोग थे कि उनसे अधिक बातचीत नहीं कर सका।'

इस बीच द्वारकानाथ के अपने देश में तरह-तरह की ऊलजलूल अफ़वाहें फैली हुइ थीं। 17 जुलाई के अंक में **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने समाचारों के साप्ताहिक सार-संचय के अंतर्गत **बाम्बे टाइम्स** द्वारा प्रकाशित काहिरा से प्राप्त पत्र को उद्दृत किया, जिसके अनुसार, 'द्वारकानाथ ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हैं।' **इंगलिशमैन** ने अनुमान लगाया कि वे रोम के धर्मपीठ के प्रभाव में आकर शायद रोमन कैथोलिक मत स्वीकार करेंगे और संभव है कि उन्हें प्रचार-विभाग का बैंकर नियुक्त किया जाये, जिसके पास हर साल भारत में अपने मिशनों को भेजने के लिए लाखों रुपये होते हैं। 'हमारा विश्वास है,' **फ्रेंड ऑफ इंडिया** ने टिप्पणी की, 'कि यह अफवाह बिलकुल निराधार सिद्ध होगी।' यह ज्ञात नहीं है कि द्वारकानाथ को रोमन कैथोलिक या किसी अन्य प्रकार का ईसाई बनाने के लिए सचमुच प्रयत्न किये गये थे या नहीं, लेकिन अगर ऐसे प्रयत्न किए जाते तो द्वारकानाथ की प्रतिक्रिया संभवतः वही होती जो उनके मित्र और गुरू राममोहन राय की हुई थी, जब कलकत्ता के लार्ड बिशप मिडिल्टन ने, यह विश्वास करके कि राममोहन राय ईसाई हो गये थे, उन्हें 'अधिक पवित्र धर्म स्वीकार करने, पर बधाई दी थी। राममोहन

राय ने तुरंत उत्तर दिया था: "माई लॉर्ड, आपको गलतफहमी हो गई है-मैंने एक प्रकार का अंध-विश्वास इसलिए नहीं त्यागा है कि मैं एक दूसरे प्रकार के अंध-विश्वास को अपना लूं।"[8]

द्वारकानाथ के पुराने मित्र जे.एच. स्टॉक्वेलर उन दिनों लंदन में ही थे और उन्होंने लंदन में द्वारकानाथ के सामाजिक जीवन का उल्लेख अपनी पुस्तक 'एक पत्रकार के संस्मरण' (मेमॉयर्स ऑफ ए जर्नलिस्ट) में किया है, जो बाद में 1873 में प्रकाशित हुई :

'द्वारकानाथ में यूरोपीयन संगीत और नाट्य का आनंद लेने की अच्छी समझ और सुरुचि थी, इसलिए वे जल्द ही, अपने देश में रहते हुए इतालवी ऑपेरा (गीति-नाट्य) के प्रशंसक बन गये थे और उन्होंने एक प्रमुख कलाकार को नियुक्त किया था, उन्हें गायन सिखाने के लिए। आश्चर्य नहीं कि इंगलैण्ड आने पर उन्हें इस कोटि के आनंद का नशा-सा चढ़ गया। उनके शालीन व्यवहार और तौर-तरीकों और उनके शानदार शाल-दुशालों ने – उनकी उच्च ख्याति और हीरे-पन्नों की अंगूठियों ने – उनको उस सत्र के फैशनेबल पुनर्मिलन समारोहों में सबसे बड़े आकर्षण का केन्द्र बना दिया था। आभिजात वर्ग के सबसे वैभवशाली सदस्यों के घरों में उनका सदा एक अभिनन्दित मेहमान के रूप में स्वागत होता था और इन्वरनेस की स्नेहशील डचेज तो उन पर विशेष रूप से मेहरबान थीं।

'लंदन की आमोद-शालाओं का एक चक्कर लगाने के बाद उन्होंने मुझे पत्र लिख कर अपने अल्बेमार्ले स्ट्रीट के होटल में निमंत्रित किया, क्योंकि वे मुझसे कुछ सहायता चाहते थे। मैं इतनी बार उनका कृपा-पात्र बना था और बड़ी हद तक उनका विश्वास-पात्र भी रहा था, इसलिए उनकी सहायता करने की संभावना के विचार-मात्र से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। लंदन-जीवन के आमोद-प्रमोद उन्हें रास नहीं आये। लगता था, इनसे उनका जी भर गया था, और यह बात दरअसल सच ही थी। कुछ पूछताछ करने के बाद उन्होंने कहा, "एस्टोक्वेलर, मैंने तुम्हारे शानदार मुल्क में सौंदर्य, सामाजिक प्रतिष्ठा और पद और धन-ऐश्वर्य का सारा आभिजात्य देख लिया है, अब मैं प्रतिभा का आभिजात्य देखना चाहता हूं। मेरे कहने का मतलब यह है कि मैं अब सामाजिक स्तर पर उन तमाम प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों से मिलना चाहता हूं, जिन्हें तुम जानते हो और जो राज-दरबार के दायरे में नहीं मिलते। क्या तुम मेरे लिए ऐसे व्यक्तियों की एक छोटी-सी पार्टी का आयोजन कर सकते हो? मैंने उनको बताया कि मैं विज्ञान के क्षेत्र की केवल कुछ ही महान विभूतियों को, या साहित्य-जगत के कुछ ही मूर्धन्य लेखकों को जानता हूं, लेकिन उन्हें अगर ऐसे वाग्विदग्ध (हाजिरजवाब) व्यक्तियों से मिलने में संतोष प्राप्त हो सके, जो एक शानदार दावत का पूरा आनन्द उठा सकें, जो औपचारिकता त्याग कर मुक्त-हृदय से वार्तालाप करें और यदा-कदा अपनी हाजिरजवाबी और हास्य-व्यंग्य से वार्तालाप को चमका दें, तो मैं उसका प्रबंध कर सकता हूं। "मैं भी

यही चाहता हूँ, " उन्होंने कहा, और मैंने कुछ लोगों को निमंत्रण भेजने में जरा भी देर नहीं की।

'एक सप्ताह के भीतर ही यह पार्टी नौटिंग्हिल स्क्वायर में मेरी नेक मां के घर पर जमा हुई। इसमें आक्सेनफोर्ड, टाम टेलर, अलबर्ट स्मिथ, गिलबर्ट ऐबेकेट, हेरिसन एन्सवर्थ, शर्ले बुक्स, रॉबर्ट कीले और उनकी पत्नी, जार्ज मूर, द्वारकानाथ और उनका तरुण भानजा शामिल हुए। चूंकि शराबें बुरी नहीं थीं और मेरे घर के 'नारी वर्ग' ने **व्यंजन-सूची** का दायित्व संभाला था, इसलिए दावत बड़े खुश-गवार ढंग से सम्पन्न हुई। ऑक्सेनफोर्ड द्वारकानाथ की बगल में बैठे थे, इसलिए उनसे वार्तालाप अधिकतर वे ही करते रहे, क्योंकि **टाइम्स** का यह सोम्य समीक्षक एक निपुण विद्वान भी है और पूर्वात्य के साहित्यों के बारे में कुछ विद्वतापूर्ण और सुसंगत उत्तर पाने का अवसर मिलने से अत्यंत प्रसन्न दिखायी देता था। अक्सर हाजिरजवाब या 'विनोदी' व्यक्ति एक-दूसरे की संगत में बहुत नहीं खुलते। लगता है कि उन्हें डर रहता है कि कहीं मात न खा जायें। लेकिन इस मौके पर काफी खुल कर बौद्धिक हंसी-मसखरी और विनोदपूर्ण मजाक-दिल्लगी चलती रही, और चूंकि अपने पड़ोसी के साथ रह-रह कर गंभीर वार्ता के बीच, जो रामायण, शास्त्रों, कुरान और जेन्दावेस्ता के बारे में गहरी जानकारी पाने के लिए उत्सुक था, द्वारकानाथ 'मुक्त-हृदय से खिलखिला कर हंसते' थे, इसलिए मैंने अनुमान किया कि पार्टी सफल हुई थी। जब हम लोग कॉफी पीने के लिए ड्राइंग-रूम में गये तो उस समय द्वारकानाथ ने दरअसल मुझसे कहा भी, "मैंने आज बड़ी खुशगवार शाम गुजारी है। लगता है कि मैं जैसे एक घंटे तक सितारों की मंडली में रहा हूं।""[9]

अगस्त में द्वारकानाथ आयरलैण्ड गये। 23 अगस्त को नवीनचन्द्र ने कलकत्ते में अपने ममेरे भाई को लिखा, '...तुम्हें आखिरी (डाक) से यह तो मालूम हो ही गया होगा कि बाबू आयरलैंड गये हैं और हम लोग लंदन में ही हैं। नगेन्द्र अपनी पढ़ाई में खूब व्यस्त है और मैं विभिन्न वस्तुओं के दलालों के साथ।... कल हमें बाबू का पत्र मिला कि वे सही सलामत डब्लिन पहुंच गये हैं और उनके स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हुआ है।

'मैं रफ्ता-रफ्ता तुम्हें बाबू का वह आदमकद चित्र भेजूंगा, जो प्रसिद्ध कलाकार मिस्टर से के चित्र की हू-ब-हू नकल है और जो तुम्हारे यहां टाऊन हॉल में टंगा है, लेकिन इसका आकार निश्चय ही छोटा है।

'बाबू को उदारमना साम्राज्ञी ने हाथी दांत की दो आवक्ष मूर्तियां भेंट करने का आदेश दिया है, कि अपनी और एक अपने शाही पति की, जिन्हें प्राप्त करने का सौभाग्य और किसी को नहीं मिला। तुम्हें जल्द ही संगमरमर की कुछ मूर्तियां प्राप्त होंगी, जो हमने इटली से गुजरते हुए खरीदी थीं। मेरा विचार है कि उनसे बढ़िया मूर्तियां हमने कभी नहीं देखीं। उन्हें हम ट्यूडर जहाज से भेज रहे हैं, जो अगले

मंगलवार 26 अगस्त को लंदन से रवाना होगा।'

कैप्टन एण्ड्रयू हेंडरसन के साथ द्वारकानाथ लिवरपूल से जहाज द्वारा डब्लिन गये, जहां वे मेयर का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए एक दिन ठहरे। डब्लिन में वहां के वायसराय ने उनको दावत पर बुलाया।[10] अक्तूबर, 18, 1845 के **बंगाल हरकारू** ने रिपोर्ट प्रकाशित की : 'द्वारकानाथ अपने अनेक परिजनों के साथ डब्लिन से बेलफास्ट पहुंच गये हैं।' मित्रा के अनुसार बेल्फास्ट में उनके होटल के अंदर उनसे भेंट करने वालों का तांता लगा रहता था और आयरिश लोगों की विनोदप्रियता की एक विचित्र मिसाल देखने को मिली, जब पी. एण्ड ओ. के मैनेजिंग डायरेक्टर मिस्टर हार्टले ने एक मित्र से, जो द्वारकानाथ से मिलने के लिए बेहद उत्सुक थे, कहा कि "द्वारकानाथ जब उनको खुशामदीद कहें तो उन्हें तुरंत घुटनों के बल बैठ कर राजा का हाथ चूमना चाहिए।"

आदर-सत्कार के इस आलम में भी द्वारकानाथ ने मिस्टर डिक्सन के, जो बाद में पार्लियामेंट के मेम्बर बने थे, लिनन कपड़ा बनाने वाले मुख्य कारखानों का निरीक्षण करने का समय निकाल लिया। साथ ही वे लार्ड रोस्से की विशाल दूरबीन को देखने के लिए भी कम उत्सुक नहीं थे, जिन्होंने बड़े चाव से उनका स्वागत किया। दक्षिण की ओर कार्क जाते समय वे डेनियल ओ कॉनेल[11] से उनके घर पर मिले। इस मशहूर आयरिश देशभक्त के साथ वे किलार्ने की झीलें देखने गये। एक दूसरे के प्रशंसक होने के बावजूद उनके राजनीतिक विचारों में काफी अंतर था। ओ 'कॉनेल एक जोशीले देशभक्त थे, जो ब्रिटेन के साथ एक संघ-शासन के बंधन को तोड़ कर आयरलैंड की पूर्ण स्वतंत्रता का प्रतिपादन करते थे, जो उनकी दृष्टि में देश के पुनरुत्थान के लिए एक अनिवार्य शर्त थी। इसके विपरीत, द्वारकानाथ भी यद्यपि अपने ढंग के देश-भक्त थे और अपने देश के पुनरुत्थान के पक्के हामी थे, लेकिन साथ ही उनका विश्वास था कि यह पुनरुत्थान ब्रिटेन के संरक्षण और सहयोग से ही संभव था, जिसके साथ अपने देश के संबंध को वे दैवी संयोग समझते थे। यह जानने की इच्छा होती है कि आयरलैंड के उस कट्टर देशभक्त ने, जो ब्रिटेन को ज्यादा नजदीक से जानता था, भारतीय देशभक्त की प्रत्यक्षतः इस दास्य-भावना के बारे में दरअसल क्या सोचा था। वे खुल कर एक दूसरे से राजनीतिक मामलों पर विचार-विनिमय करते थे, और यद्यपि वे पूरी तरह कभी एक-दूसरे से सहमत नही हुए, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि ओ'कॉनेल के उग्र विचारो और जोशीली वाग्मिता ने द्वारकानाथ को कम प्रभावित नहीं किया। यह प्रभाव और गहरा होकर संभवतः कोई व्यावहारिक रूप धारण कर लेता, अगर द्वारकानाथ भारत लौट कर पुनः अपनी जीवनचर्या शुरू कर पाते।

एक और आयरिश सज्जन, जिनके द्वारकानाथ बड़े प्रशंसक बन गये थे, फादर मेथ्यूज, थे, जो एक परोपकारी, समाज-सुधारक और शराबखोरी बंद करने का उपदेश देने वाले व्यक्ति थे। आयरलैंड में आलुओं का अकाल पड़ जाने से उत्पन्न

होने वाली विषम स्थिति में उन्होंने लोगों की सहायता के लिए जो कार्य किया था, उसके बारे में द्वारकानाथ पहले से ही सुन चुके थे। रोमन कैथोलिक प्रार्थना के अवसर पर उनसे मिलने के बाद ही उन्होंने फादर मैथ्यूज को अपना सहायता-कार्य जारी रखने के लिए एक बड़ी रकम दान में दी। फादर मैथ्यूज ने भोगवादी द्वारकानाथ को शराबखोरी त्यागने के लिए राजी करने की भरसक कोशिश की, जिससे दोनों के बीच काफी हंसी-मजाक होता रहा। हालांकि फादर मैथ्यूज भारतीय अतिथि को अपने मद्यत्याग के सिद्धांत का अनुयायी नहीं बना सके, लेकिन उन्होंने अपने स्नेह और आदर की निशानी के रूप में उनको एक पदक भेंट किया। द्वारकानाथ फादर मैथ्यूज के संत जैसे उदात्त व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनसे वायदा करवा लिया कि वे उन्हें अपना एक चित्र बनवाने की इजाजत देंगे। द्वारकानाथ ने इस कार्य के लिए प्रसिद्ध आयरिश चित्रकार मिस्टर लीही को नियुक्त किया।

24 नवंबर 1845 के **लंदन मेल** ने **कार्क रिपोर्टर** से लेकर यह खबर छापी :

"हम अपने पाठकों के लिए यह पत्र प्रकाशित करके पर्याप्त हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। यह पत्र उस सुप्रसिद्ध भारतीय बैंकर द्वारकानाथ टैगोर का है, इस देश की पिछली यात्रा के दौरान जिनकी दानशीलता और राजसी कार्यों के विवरण हम पहले भी प्रकाशित कर चुके हैं। हमें बेहद खुशी हो रही है कि इस उदात्त और शालीन, भारतीय ने यह कार्य एक साथी नगरवासी को सौंपा है, क्योंकि हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि मिस्टर एडवर्ड डी. लीही कार्क-निवासी हैं और मेक्लाइज, फिशर और होगन के समकक्ष कलाकार होने के नाते उन्होंने स्थानीय प्रतिभा और जीनियस के लिए नगर की प्रतिष्ठा को चार चांद लगाये हैं। हमें आशा है कि वे हमारे बीच काफी लंबे अरसे तक रहेंगे, ताकि उनके साथी नगरवासी उनकी मौजूदगी का लाभ उठा सकें, क्योंकि लीही अपने ही नगर में कई वर्षों के बाद पहली बार पधारें हैं :–

'"प्यारे फादर मैथ्यूज – इस पत्र के वाहक, मिस्टर लीही, को मैंने आपका चित्र बनाने के लिए नियुक्त किया है, जिसके लिए मेरे ऊपर अनुग्रह करके आपने चित्रकार के सामने बैठने का वायदा किया था। मेरा विश्वास है कि मिस्टर लीही को आप पहले से ही जानते हैं और मुझे पूरा भरोसा है कि वह प्रस्तुत स्थिति में अपना सुखद कार्य इस ढंग से सम्पन्न करेंगे कि वह विषय के प्रति न्याय करेगा। आपका व्यक्तिगत परिचय पाकर मैं अपने आपको कितना सम्मानित और परितृप्त महसूस करता हूं, इस भावना को मैं पहले ही व्यक्त करने की चेष्टा कर चुका हूं, और अब मैं और भी अधिक उत्सुक हूं कि मेरे देशवासी मेरे घर की दीवार को सुशोभित करने वाले उस व्यक्ति के चित्र को देखें, जिसने अपने देशवासियों का उस राष्ट्रीय कलंक से उद्धार किया है, जो एक लम्बे अरसे से उनके नाम पर लगा था।

"विश्वास करें, प्यारे फादर मैथ्यूज, आपके प्रति अनन्य आदर की भावना से

प्रेरित सदा के लिए आपका अनन्य मित्र द्वारकानाथ टैगोर, सेन्ट जार्ज होटल, नवंबर 1, 1845।" [44]

यह बात कि एक संक्षिप्त परिचय के दौरान ही द्वारकानाथ ने फादर मैथ्यूज जैसे एक अनिंद्य सचाई और संत-चरित्र के व्यक्ति का आदर और स्नेह प्राप्त कर लिया था, स्वयं द्वारकानाथ के शालीन, उदात्त और आकर्षक व्यक्तित्व की सहजता का प्रमाण है। यह प्रमाण उसी कोटि का है, जो द्वारकानाथ के प्रति राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्नेह और आत्मीय भाव में निहित था। निम्न पत्र से, जिस पर कार्क की 1 अक्तूबर 1845 तारीख है, अपने भारतीय मित्र के प्रति फादर मैथ्यूज के गहरे स्नेह और आदर और स्वयं सहज विनयशीलता का सबूत मिलता है:

"प्रिय और आदरणीय महानुभाव,

"जिस क्षण ने मुझे आपका परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया, वह मेरे जीवन का सबसे सुखद क्षण था, और उसे मैं जीवन-पर्यन्त हर्षपूर्वक याद करता रहूंगा। एक ऐसे व्यक्ति द्वारा मेरे प्रयत्नों की प्रशंसा, जो स्वयं अपने आपको अपनी जाति और देश का उपकारक सिद्ध कर चुका है, वास्तव में मेरी भावनाओं के लिए अत्यंत सुखदायी है, और मुझे उस पवित्र कार्य में और अधिक उत्साह और लगन से जुटे रहने के लिए प्रेरित करती है, जिसके कारण मुझे महान परोपकारी व्यक्ति द्वारकानाथ को अपना मित्र और संरक्षक कहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

"मुझे जो आनंद प्राप्त हुआ, उसमें अगर कोई विघ्न था तो वह कार्क में आपकी उपस्थिति का संक्षिप्त काल था। किंग्सटन और डब्लिन में आपके संपर्क में मैंने जो थोड़े से अत्यंत कीमती क्षण बिताये, उन्होंने मेरे मन में अधिक लम्बे साहचर्य की कामना तीव्र कर दी है। आपने मुझसे जो छोटी-सी यादगार प्राप्त करने का अनुग्रह किया है और उसे इतना अधिक मूल्यवान समझा है, यह मुझे अत्यन्त सुखकर बात लगी है—यद्यपि मुझे दुख है कि मेरे पास आपके योग्य भेंट करने की कोई चीज नहीं है। चूंकि आपकी छोटी से छोटी इच्छा भी मेरे लिए सदा एक आदेश की हैसियत रखेगी, इसलिए मैं खुशी से प्रतिदिन कुछ घंटे चित्र बनाने वाले कलाकार के साथ लगाऊंगा। हिन्दुओं के राजकुमार के साथ-साथ कैन्वस पर चित्रित होने में शायद आत्म प्रदर्शन की गंध आये, लेकिन मैं आपकी किसी इच्छा से इन्कार नहीं कर सकता –

"आपने परोपकारी कार्यों के लिए मुझे दान की जो इतनी बड़ी रकम दी है, वह – यह जानते हुए कि युवाओं की शिक्षा के प्रति आप में कितना तीव्र उत्साह है – मैंने रिश्माण्ड के शानदार स्कूलों को दे दी है। अगर मेरे वचन से यह प्रभावित हो सके, तो निश्चय ही आपके परोपकारी कार्यों का पुरस्कार महान होगा, लेकिन स्वयं आपका निर्मल हृदय और वह शिव और शालीन देवता, जिसके कृपालु उद्देश्यों के साथ आप इतनी वफादारी से सहयोग कर रहें हैं, आपको मनुष्यों के साधुवाद से

कहीं श्रेष्ठतर पुरस्कार से अभिनंदित करेगा।

'आप से जल्दी पुनः मिलने की तीव्र उत्कण्ठा के साथ, और आपकी आध्यात्मिक और भौतिक खुशी की तीव्र कामना के साथ, आपका ही

गंभीर आदर-भाव से
प्रिय और सम्मानित महानुभाव,
आपका निष्ठावान् मित्र
(हस्ताक्षर) थियोबाल्ड मैथ्यूज'

नवंबर 26, 1845 के **बंगाल हरकारू** ने रिपोर्ट प्रकाशित की : 'बाबू द्वारकानाथ आयरलैंड के दौरे से वापस आ गये हैं और उस देश के आतिथ्य-सत्कार की अत्यंत उदार शब्दों में प्रशंसा करते हैं। वहां के लोगों ने समझा कि वे भारत के सम्राट हैं, और कुछ लोगों ने उन्हें फल भेंट करने के बाद बड़े अदब से उनका हाथ चूमना चाहा और जब वे बंदरगाह पर पहुंचे तो सारे झंडे फहरा दिए गये। बाबू बड़े क्षुब्ध-भाव से आयरलैंड के निम्न-वर्ग के लोगों की दुर्दशा का जिक्र करते हैं, जो उनके अनुसार भारत की रैयत से भी बदतर है।'

लंदन में एक दिन शाम को मिस्टर ग्लैड्स्टोन द्वारकानाथ से मिलने आये और बातचीत के दौरान इस संभावना पर बहस होने लगी कि क्या एक भारतीय भी ब्रिटिश पार्लियामेंट का सदस्य हो सकता है। ग्लैड्स्टोन के अनुसार जो ईसाई नहीं है, वह निर्धारित शपथ नहीं ले सकता और इस प्रकार वह अनिवार्य है, चाहे उसे पार्लियामेंट के लिए चुना ही क्यों न गया हो। उन्होंने कहा कि ईसाई-धर्म के संस्थापक ईशु को खुदा का बेटा मानने में आस्था का न होना ही किसी व्यक्ति को ईसाई कहलाने से वंचित कर देता है। द्वारकानाथ का दावा था कि एक हिन्दू को भी, जो एक परमात्मा में विश्वास करता है, पार्लियामेंट का सदस्य होने का उतना ही अधिकार है, जितना कि ईसा-मसीह को खुदा का बेटा मानने वाले का है। कोई भी एक-दूसरे को अपनी बात पर राजी नहीं कर सका।[16]

ग्लैड्स्टोन से वार्तालाप की इस रिपोर्ट को पढ़ कर आश्चर्य होता है कि द्वारकानाथ क्या सचमुच ब्रिटिश पार्लियामेंट के भावी सदस्य के रूप में अपनी जीवन-वृत्ति की कल्पना करते थे। यह तथ्य कि अपनी पहली इंगलैंड-यात्रा की तरह शीतकाल के आरंभ में ही वे इस स्वदेश नहीं लौटे, इस संदेह को पक्का कर देता है कि उनकी योजना एक लंबी अवधि तक प्रवास करने की थी और संभवतः इंगलैंड को वे अपना द्वितीय निवास बनाना चाहते थे। वे अपने पुत्र को एक अंग्रेज सज्जन के रूप में शिक्षित करवा रहे थे और अपने भानजे को व्यापार के ब्रिटिश तौर-तरीकों में प्रशिक्षण दिलवा रहे थे, ताकि वह स्वदेश लौट कर उनके व्यापार का आंशिक भार संभाल सके। उनके मन में क्या था, इसका अनुमान तो कठिन है, फिर भी यह स्पष्ट है कि विदेश में अपने प्रवास को आवश्यकता से अधिक लंबी अवधि तक बढ़ाने का कोई न कोई जबर्दस्त कारण जरूर रहा होगा, जबकि उन्हें ज्ञात था

कि भारत में उनका व्यापार अच्छी दशा में नहीं था और यहां उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति और देखरेख की जरूरत थी। स्वास्थ्य के कारण उनका वहां रुकना संगत तर्क नहीं दीखता, क्योंकि कलकत्ता की गरमियां अगर उनकी नाजुक सेहत को माफिक नहीं आती थीं, तो इंगलैंड की कड़ाके की सरदियां तो और भी कम माफिक आने वाली थीं।

स्पष्ट है कि उनका मन एक दुविधा में फंसा हुआ था कि वे स्वदेश वापस जायें, जहां उनकी जरूरत थी, या एक धनी और सम्पन्न अंग्रेज सज्जन के रूप में वहां रह कर अपनी तड़क-भड़कदार और असंयत और अपव्ययी जिंदगी को जारी रखें। अनेक अप्रत्याशित जोखिमों के बावजूद उन्हें दूसरा विकल्प न ही ज्यादा लुभावना लगा। कलकत्ते में अपने ममेरे भाई को 2 अक्तूबर, 1845 को लिखे पत्र में नवीनचन्द्र ने बताया : 'बाबू अगले साल अक्तूबर 1846 में भारत लौटने की बात करते हैं, इसलिए हम लोग मार्च 1847 तक ही भारत पहुंच सकेंगे। मैं इस बारे में निश्चित रूप से नहीं कह सकता, क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि बाबू हर क्षण अपनी राय बदलते रहते हैं।' अक्तूबर 1845 में जब यह पत्र लिखा गया था, द्वारकानाथ का स्वास्थ्य काफी अच्छा था। आयरलैंड के सुखद दौरे ने, जहां उनका शाही ढंग का स्वागत हुआ था, उनको काफी उल्लसित कर दिया था और शायद उनकी महत्वाकांक्षा को भी उत्तेजित कर दिया था। उनका पुत्र नगेन्द्रनाथ प्रतिदिन हाइड पार्क में घुड़सवारी के लिए जाता था और उच्च अभिजात वर्ग के अंग्रेज सज्जन की अन्य योग्यताओं का अभ्यास कर रहा था। भानजा भी एक कुशल और दुनियादार व्यापारी के रूप में तरक्की कर रहा था और अपने मामा की प्रशंसा का पात्र बन गया था, जो उसके गंभीर, दायित्वपूर्ण व्यवहार की अपने दूसरे भानजे, चंदर मोहन के तौर-तरीकों से अक्सर तुलना करते थे, जिसे वे 1842 में अपनी पहली यात्रा में साथ ले गये थे, और जो 'सुंदर महिलाओं के साथ आमोद-प्रमोद में लगे रहने के अलावा और कुछ नहीं करता था।' महिलाओं को भेंट करने के लिए और शानदार दावतों और आकर्षक मनोरंजनों के लिए कलकत्ते से आने वाली हर डाक में काश्मीर के शालों, बढ़िया किस्म के भारतीय इत्रों, चटनियों और स्वादिष्ट व्यंजनों और मिष्ठानों के पार्सल आते थे।

नोट्स

1 **संस्मरण,** पृ० 109.

2 **बंबई कुरियर** के सम्पादक के अनुसार जो स्वेज पहुंच कर द्वारकानाथ की पार्टी में शामिल हो गया था और जिसने बाद में खेदिव महल की यात्रा का लंबा और मनोरंजक विवरण

लिखा, जो 7 अप्रैल 1846 के **बम्बई कुरियर** में प्रकाशित हुआ।

[3] **संस्मरण**, पृ० 111.

[4] गिरीन्द्रनाथ को लिखे नवीनचन्द्र के पत्र, रवीन्द्र सदन अभिलेखागार, (प्रलेख 10) शांतिनिकेतन।

[5] वही।

[6] **संस्मरण**, पृ० 111-112. दुर्भाग्य से मित्रा ने अपनी सूचना का स्रोत नहीं बताया।

[7] वही, पृ० 112-113.

[8] **इण्डिया गजट**, 8 अक्तूबर 1829.

[9] ऑक्सेनफोर्ड (1812-77), आलोक और नाट्यकार, टॉम टेलर (1817-80) नाटककार और एक समय **पंच** का संपादक, विलियम हैरीसन एन्सवर्थ (1805-82) उपन्यासकार और सम्पादक।

[10] **संस्मरण**, पृ० 115.

[11] वही, पृ० 115.

[12] ओ'कोनेल, डेनियल (1775-1847), आयरिश देशभक्त, राजनयिक, वकील, सांसदिक जो अपने देश में 'दी लिबरेटर' के नाम से विख्यात है।

[13] फादर मैथ्यूज, थियोबाल्ड (1790-1855), आयरिश देशभक्त और मद्यनिषेधी सुधारक। कयूचिन सम्प्रदाय के एक सदस्य के रूप में उन्होंने कार्क में सफलतापूर्वक नशाबंदी का आंदोलन चलाया, जहां उन्होने अनेक वर्षों तक कार्य किया। 'उनका प्रभाव, जो आयरलैंड में तो व्यापक था ही, इंगलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी फैल गया, और 1847 में महारानी विक्टोरिया ने उनकी पेन्शन बांध दी। दिसंबर 1856 में, क्वीन्सटाऊन में उनकी मृत्यु हुई।' (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका)।

[14] 1846 के अगस्त में लंदन के अंदर द्वारकानाथ की हठात् मृत्यु के बाद इस प्रसिद्ध चित्र का क्या हुआ और वह आज कहां पर है, यह लेखक को ज्ञात नहीं है।

[15] पत्र की मूल प्रति (पटलीकृत) शांति निकेतन के रवीन्द्र सदन अभिलेखागार में है।

[16] **संस्मरण**, पृ० 116.

ग्यारह

पेरिस में अंतरिम अवकाश

20 नवंबर 1845 के पत्र में नवीनचंद्र ने लिखा : 'मैंने सुना है कि पेरिस में फ्रांस के सम्राट ने मेरे मामा के बारे में पूछताछ की थी (इसलिए) उनको कम से कम कुछ दिनों के लिए वहां जाना ही पड़ेगा।'

द्वारकानाथ के लिए इंगलैंड में यह पहली सरदी थी, और उन्होंने जल्द ही महसूस कर लिया कि उनका स्वास्थ्य उसके मनमाने उतार-चढ़ाव को बर्दाश्त करने में सक्षम नहीं था। इसलिए 18 दिसंबर को वे मेजर हेन्डरसन और अपने प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर साफे को लेकर पेरिस के लिए रवाना हो गये। बेटा और भानजा लंदन में ही रहे, जहां नवीनचंद्र के शब्दों में, 'हम यहां पेरिस जाने की अपेक्षा उपयोगी काम में लगे हैं।' 7 जनवरी 1846 को नवीनचंद्र ने सूचना दी, 'पेरिस में बाबू अच्छी तरह से हैं, हमेशा की तरह प्रसन्न-चित्त और उनका स्वास्थ्य भी तेजी से सुधर रहा है।' पेरिस में द्वारकानाथ ने एक फैशनेबल होटल के सबसे बड़े कमरों के सेट किराये पर लिए थे।

पेरिस की इस यात्रा के दौरान ही द्वारकानाथ भारतविज्ञ फ्रीड्रिक मैक्स मूलर के निकट व्यक्तिगत सम्पर्क में आये थे, जो तब तक इतने विख्यात नहीं हुए थे और अभी ऋग्वेद के अपने विश्व-प्रसिद्ध संस्करण पर कार्य कर रहे थे। इस भेंट का वर्णन स्वयं मैक्स मूलर और उनकी पत्नी दोनों ने किया है और फिर बहुत बाद में नीरद चौधरी ने भी किया है, जिन्होंने उन दोनों के विवरण से विस्तृत उद्धरण दिये हैं।[1] चूंकि मैक्स मूलर का विवरण आंखों-देखा भी है और पूरा भी, इसलिए उसको उद्धृत करना यहां उपयोगी होगा :

'पचास साल पहले भारतवासी इतनी आजादी से विदेश-यात्रा नहीं करते थे,

जितनी आजादी से अब करते हैं। उस समय तक काले पानी को पार करना और उसके परिणामों का सामना करना विभीषिकाओं से मुक्त नहीं था। इसलिए 1844 में जब एक वास्तविक हिन्दू पेरिस में आ-प्रकट हुआ, तो उसके आगमन ने एक जबर्दस्त सनसनी पैदा कर दी और मेरे मन में उसका परिचय पाने की तीव्र उत्कंठा। वह एक सुंदर व्यक्ति था, और, चूंकि उसने पेरिस के सबसे बढ़िया होटलों में सबसे बढ़िया कमरों के सेट किराये पर लिए थे, इसलिए उसके प्रति काफी जिज्ञासा पैदा होना स्वाभाविक ही था। उन दिनों मैं **कालेज द फ्रांस** में प्रोफेसर बर्नाफ के लेक्चरों में हाजिरी देता था, और चूंकि यह भारतीय यात्री उस महान फ्रांसीसी विद्वान के नाम परिचय-पत्र लेकर आया था, इसलिए मुझसे भी इस अजनबी भारतीय का परिचय करवाया गया और जल्द ही उससे परिचय घनिष्ठ हो गया। वह भारत के एक सबसे महान और धनी परिवार का प्रतिनिधि था। यह द्वारकानाथ टैगोर महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के पिता थे, जो अभी भी जीवित हैं, और सत्येन्द्रनाथ टैगोर के पितामह थे, जो इंडियन सिविल सर्विस के सर्वप्रथम सफल भारतीय उम्मीदवार हैं, जिन्हें मैं लंदन में एक नौजवान विद्यार्थी के रूप में जानता था और जिन्होंने अब अनेक वर्षों तक अपने देश और अपनी महारानी की श्रेष्ठ योग्यता से सेवा करने के बाद अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लिया है।

'द्वारकानाथ टैगोर संस्कृत के विद्वान नहीं थे, लेकिन वे संस्कृत साहित्य से अपरिचित भी नहीं थे। सबसे पहली बार मैंने उनको **इंस्टीट्यूट द फ्रांस** में देखा था, जब प्रो० बर्नाफ ने उन्हें भागवत्-पुराण के अपने शानदार संस्करण की एक प्रति भेंट की थी। उसमें एक पृष्ठ पर संस्कृत-पाठ छपा था और उसके सामने के पृष्ठ पर उसका फ्रांसीसी अनुवाद और यह देख कर विचित्र लगा, जब भारतीय व्यक्ति ने फ्रांसीसी अनुवाद के सफेद पृष्ठ पर अपनी कोमल गेहुंआ उंगलियां रख कर एक आह भर कर कहा, 'काश! मैं इसे पढ़ सकता।' यह अनुमान किया जा सकता है कि शायद उन्होंने अपने देश की प्राचीन भाषा को समझ सकने की इच्छा प्रकट की होगी, किन्तु वे तो फ्रांसीसी भाषा की बेहतर जानकारी के लिए अपनी लालसा व्यक्त कर रहे थे।

'वे न तो एक पुरावेत्ता थे, न अपने धर्म या धर्म-ग्रंथों की भाषा के विद्यार्थी ही। लेकिन जब बर्नाफ ने मेरे कार्य के बारे में उन्हें बताया और किस तरह मैंने पेरिस में रह कर वेद की पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि तैयार की थी और मूल से उसका मिलान किया था, तो उन्होंने मेरे प्रति गहरी दिलचस्पी दिखायी। उन्होंने मुझे निमंत्रित किया और मैं अक्सर सुबह का वक्त उनके साथ भारत और भारतीय रीति-रिवाजों की चर्चा में गुजारने लगा। आश्चर्य की बात है कि वे संगीत के बड़े निष्ठावान् प्रेमी थे और इतालवी और फ्रांसीसी संगीत में उनकी विशेष रुचि थी। उन्हें यह बहुत पसंद था कि वे गायें और मैं पिआनो पर उनका साथ दूं, और मुझे जल्द ही पता चल गया कि उनकी आवाज सिर्फ सुरीली ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने

संगीत की अच्छी तालीम भी हासिल की थी। इस प्रकार हम दोनों में अच्छी पटने लगी। एक दिन सुबह इतालवी संगीत में उनकी रुचि की सराहना करने के बाद मैंने उनसे गाकर शुद्ध भारतीय संगीत का नमूना पेश करने का अनुरोध किया। आरंभ में उन्होंने एक गाना सुनाया, जिसे भारतीय तो कहा जाता है, लेकिन जो वास्तव में ईरानी है और जिसमें भारतीय शैली या चरित्र का अभाव है। इस तरह का गाना मैं नहीं चाहता था। और मैंने पूछा कि उन्हें क्या शुद्ध भारतीय गायकी के कुछ टुकड़े भी नहीं आते। वे मुस्कराये और पीठ मोड़ कर खड़े हो गये। 'तुम्हें वह पसंद नहीं आयेगा,' उन्होंने कहा, 'लेकिन मेरे बार-बार आग्रह करने पर वे पियानो के आगे बैठ गये और कुछ स्वर छेड़ने के बाद गाने और बजाने लगे। मैं निःसंकोच स्वीकार करता हूं कि मैं सुन कर भौंचक रह गया। मुझे उनके गाने में न कोई राग, न लय और न स्वर-सामंजस्य ही नजर आया। लेकिन जब मैंने यह बात कही तो उन्होंने सिर हिला कर कहा : 'तुम सब एक जैसे हो, अगर कोई चीज तुम्हें अपरिचित लगती है तो तुम फौरन उससे विमुख हो जाते हो। मैंने जब पहली बार इतालवी संगीत सुना तो मुझे लगा कि यह तो कोई संगीत है ही नहीं, लेकिन मैं तब तक इतालवी संगीत सुनता गया, सुनता गया, जब तक कि वह मेरी रग-रग में नहीं बस गया, और मैं उसे पसंद करने लगा, अर्थात् तुम्हारे शब्दों में, उसे समझने लग गया। और सब चीजों के बारे में भी यही बात है। तुम कह सकते हो कि हमारा धर्म कोई धर्म नहीं है, हमारी कविता कविता नहीं है, हमारा दर्शन दर्शन नहीं है। योरप ने जो कुछ भी पैदा किया है, उसको हम जानने और समझने की कोशिश करते हैं, लेकिन इससे यह कल्पना भी करने की कोशिश न करना कि भारत ने जो पैदा किया है, उससे हम नफरत करते हैं। अगर तुम उसी तरह हमारे संगीत का अध्ययन करो, जिस तरह हम तुम्हारे संगीत का अध्ययन करते हैं, तो तुम्हें पता चलेगा कि उसमें भी राग, लय और स्वर-सामंजस्य उतना ही है, जितना तुम्हारे संगीत में। और अगर तुम हमारे काव्य, हमारे धर्म या हमारे दर्शन का अध्ययन करोगे, तो तुम्हें पता चलेगा कि हम लोग वह नहीं हैं, जिन्हें तुम विधर्मी या अज्ञानी कहते हो, बल्कि जो अज्ञेय और ज्ञानातीत है, उसके बारे में हम उतना ही जानते हैं, जितना तुम लोग, और संभव है कि उसके भीतर हमने तुम लोगों की तुलना में कहीं अधिक गहराई तक देखा-समझा है।'

'उनका कहना ज्यादा गलत नहीं था। वे काफी मुखर और उत्तेजित हो गए थे और उनको शांत करने के लिए मैंने कहा कि मुझे पूरा अहसास है कि भारत के पास संगीत का विज्ञान है, जो गणित के सिद्धांतों पर आधारित है। संगीत संबंधी संस्कृत के कुछ ग्रंथों की पाण्डुलिपियों का मैंने अध्ययन किया था, लेकिन सच तो यह है कि मैं उनका सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ सका था। एक बार इस विषय पर प्रोफेसर एच. एच. विल्सन से, जो कई वर्षों तक भारत में रह चुके थे और जो स्वयं एक संगीतज्ञ थे मैंने पूछताछ की थी। लेकिन उन्होंने मुझे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

उन्होंने बताया कि जब वे भारत में थे, तब एक बार एक भारतीय संगीत-शिक्षक के पास गये थे, जो प्राचीन ग्रंथों की जानकारी का दावा करता था। वह उन्हें भारतीय संगीत की शिक्षा देने के लिए इस शर्त पर राजी हुआ कि वह हफ्ते में उनके पास दो या तीन बार आया करेगा। फिर छः महीनों के बाद वह उन्हें बता सकेगा कि वे भारतीय संगीत सीखने के योग्य हैं या नहीं और, क्या वास्तव में उसके शिष्य बनने के अधिकारी हैं। और तब, उसने वायदा किया कि पांच वर्षों में वे संगीत के शास्त्र और अभ्यास में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे। यह भारतीय सरकार के एक अधिकारी के बस की बात नहीं थी, जिसके सर पर काम का इतना बोझ था। और हालांकि उन्होंने पंडितों से बहुत-सी बातें सीखीं, लेकिन प्रोफेसर विल्सन को, जो मेरे ख्याल से उन दिनों टकसाल के अध्यक्ष थे, तथा उनके जिम्मे और भी कई काम थे, पांच साल के लिए एक संगीत-शिक्षक का शिष्य बनने के विचार को तिलांजलि देनी पड़ी। द्वारकानाथ को यह बात बड़ी मनोरंजक लगी, लेकिन उन्होंने स्वीकार किया कि भारत के शास्त्रीय संगीत की सूक्ष्मताओं में पारंगत होने के लिए पांच वर्ष की अवधि तो बहुत कम थी, और इसके परिणामस्वरूप मैंने भी संगीत रत्नाकर, संगीत-सुधा आदि ऐसे ही अन्य संस्कृत ग्रंथों में निपुण होने की आशा त्याग दी, यद्यपि ईस्ट इंडिया हाउस के पुस्तकालय में इन ग्रंथों की पाण्डुलिपियां देख कर अक्सर मेरी जिज्ञासा प्रबल हो उठती थी...

'मेरे मित्र द्वारकानाथ, यद्यपि विद्वान नहीं थे, लेकिन बड़ी तीक्ष्ण-बुद्धि के व्यक्ति थे और दुनियादार भी। वे एक प्रकार से ब्राह्मणों को नीची नजर से देखते थे और मैंने जब उनसे पूछा कि क्या भारत लौटने पर उन्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा तो वे हंस पड़े और बोले, "नहीं, मैं घर पर लगातार भारी संख्या में ब्राह्मणों को खिलाता रहता हूं और इतना प्रायश्चित ही पर्याप्त है..."[3]

'लेकिन अगर वे अपने ब्राह्मणों को नीची नज़र से देखते थे, तो उनकी निगाह में काले-कोट वाले अंग्रेज ब्राह्मणों के लिए भी कोई अधिक आदर नहीं था। यद्यपि वे हर विलायती चीज को पसंद करते थे, लेकिन उन्हें अंग्रेज-समाज और विशेष कर अंग्रेज पादरी-वर्ग की कमजोरियों का पता करने में एक कुटिल आनन्द मिलता था। वे नियमित रूप से इंग्लैंड के अनेक समाचारपत्र पढ़ा करते थे, राजनीतिक भी और धार्मिक भी, और उन्होंने एक काली-कापी बना रखी थी, जिसमें वे बड़े मनोयोग से उन सब बातों को नोट कर लिया करते थे, जो बिशपों, पादरियों और उपयाजकों की शान में बट्टा लगाती थीं। निश्चय ही पादरी-वर्ग में फैली बुराईयों और भ्रष्टाचारों का यह एक विचित्र संकलन था, और मैं अक्सर ताज्जुब करता हूं कि उसका क्या हुआ है। उनके पुत्र संत-रूप देवेन्द्रनाथ टैगोर के निकट, जो आर्य-समाज (निश्चय ही ब्रह्म-समाज की जगह गलती से यह छप गया है) के अध्यक्ष हैं, ऐसे हथियारों का कोई उपयोग नहीं है, लेकिन उनके पिता को इस पुस्तक में आनंद मिलता था और जब कभी भारतीय और ईसाई धर्मों के निजी गुणों और अच्छाईयों

का सवाल उठता था तो वे बड़े तपाक से यह पुस्तक निकाल लेते थे। इस पर मैं सिर्फ इतना ही कह सकता था कि चाहे इटली के हों, इंगलैंड के हों या भारत के, किसी भी धर्म की परख केवल उसके पादरियों-पुजारियों के आधार पर नहीं करनी चाहिए।

'द्वारकानाथ पेरिस में सचमुच ही पूर्वात्य शैली में बड़े ठाठ-बाट और शान-शौकत से रहते थे। अगर मेरी स्मृति ठीक है तो फ्रांस के बादशाह लुई फिलिप ने उनका स्वागत किया था, स्वागत ही नहीं, बल्कि शाम की एक विशाल दावत में स्वयं अपनी और अपने दरबार की उपस्थिति से उनको सम्मानित किया था। कमरे में चारों दीवारों पर भारतीय शॉल लटकाये गये थे, और उन दिनों पेरिस की हर महिला की सर्वोच्च महत्वाकांक्षा के प्रतीक थे। और उनके आनन्द का क्या कहना था जब भारतीय प्रिंस ने कमरे से बाहर जाते समय हर महिला के कंधे पर एक-एक शॉल रख दिया!

इंगलैंड में द्वारकानाथ ने भारत के महान धर्म-सुधारक राममोहन राय की स्मृति के प्रति पुनीत कर्तव्य को पूरा किया। उन्होंने ब्रिस्टल में उनकी भस्म[1] पर एक समाधि का निर्माण करवाया। उन्होंने तब सोचा भी नहीं था कि जल्द ही वे भी राममोहन राय की तरह विदेश में मृत्यु को प्राप्त होंगे।

'मेरा विश्वास है कि इसमें उनका भी योगदान था कि भारत में वेदों के अध्ययन के प्रति एक नई रुचि पैदा हो गई। यह दरअसल एक विचित्र और असामान्य स्थिति थी कि एक ऐसे देश में, जहां वेद को धर्म के क्षेत्र में सर्वोच्च प्रामाणिकता प्राप्त हो, जिसे इंगलैंड में न्यू टेस्टामेन्ट की हैसियत से कहीं ज्यादा देवी श्रुति का सबसे बड़ा प्रमाण माना जाता हो, उनकी इस बाइबिल को कभी छापा नहीं गया था और जो केवल पंडित-पुरोहितों के एक छोटे-से वर्ग को ही उपलब्ध था, जिन्हें वह कंठस्थ था और जिसकी चन्द पाण्डुलिपियां ही उनके पास थीं फिर भी स्थिति ऐसी ही थी, बल्कि वेद के अध्ययन की ऐसी अवहेलना हुई थी कि जब जे. मुयर ने घोषणा की कि वेद का संस्करण तैयार करने वाले को भारी इनाम दिया जायेगा तो एक भी भारतीय विद्वान इसके लिए न राजी हुआ और न ऐसा करने की उसमें क्षमता ही थी। इसलिए जब द्वारकानाथ ने देखा कि मैं खामोशी से सचमुच सबसे महत्वपूर्ण वेद का, जो वस्तुतः एकमात्र सच्चा वेद है, अर्थात् ऋग्-वेद का संस्करण तैयार कर रहा था, और यह कि मैंने पेरिस और बर्लिन के शाही पुस्तकालयों में तथा अन्यत्र उपलब्ध पाण्डुलिपियों को एकत्र करके उनकी प्रतिलिपि तैयार कर ली थी और अब लंदन में अपने संकलन को पूरा करने वाला था, तो लगता है, उन्होंने अपने पुत्र देवेन्द्रनाथ टैगोर को इस बात की सूचना भेज दी थी कि मैं पैरिस में क्या कर रहा था। अपने धर्म और धर्म-सुधार में गहरा उत्साह होने के कारण, देवेन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हीं दिनों चार भारतीय विद्यार्थी बनारस भेज दिये, ताकि वे काशी के पंडितों की देख-रेख में वेदों का अध्ययन कर सकें। उनमें से एक को ऋग-वेद का अध्ययन करना था, दूसरे को साम-वेद का, तीसरे को यजुर्वेद का और चौथे

को अथर्व-वेद का। बहरहाल, अगर स्वयं देवेन्द्रनाथ के पत्र से अनुमान लगायें तो संभव है कि यह एक संयोग-मात्र था।'

मैक्स मूलर ने 'एक विशाल शाम की दावत' का जिक्र किया है, जिसमें फ्रांस का बादशाह लुई फिलिप और उनका दरबार शामिल हुआ था। 14 मई, 1846 के लंदन से प्रकाशित **कोर्ट जर्नल** ने द्वारकानाथ द्वारा दी गई एक पार्टी (दावत) का एक लंबा और विस्तृत विवरण प्रकाशित किया जो प्रत्यक्षतः विलक्षण रूप से अतिरंजित था। इस विवरण को यहां ज्यों का त्यों उद्दृत करना उचित होगा, ताकि कम से कम जन-मानस पर उसका क्या प्रभाव पड़ा था, इसका कुछ अनुमान पाठकों को हो सके। नीरद चौधरी ने मैक्स मूलर की जीवनी में द्वारकानाथ का जिक्र करते हुए लिखा है कि उन्होंने 'फ्रांस की राजधानी में उतना ही सनसनीखेज प्रभाव डाला था, जितना कि ड्यूमा की पुस्तक **कोंत ऑफ मोन्ते क्रिस्तो** ने।' अब **कोर्ट जर्नल** में प्रकाशित विवरण प्रस्तुत है :

'पेरिस के फैशनेबल जगत में आज की जो **सब से बड़ी और शानदार** घटना थी, वह थी प्रसिद्ध हिन्दू बैंकर, प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर द्वारा होटल स्टैकपूल में दी गई एक लाजवाब और लामिसाल दावत। यह बात हमारे पाठकों को विशेष रूप से दिलचस्प लगेगी, क्योंकि निश्चय ही भारतीय करोड़पति लौट कर लंदन में अपनी शानदार मेहमाननवाजी फिर दोहरायेंगे, जहां उनकी दावतें हमेशा बेहद दोस्ताना और खुशगवार रही हैं।

'वैभव, विचार की मौलिकता और शानदार अंदाज में सम्पन्न होने की दृष्टि से यह दावत बेमिसाल थी। पेरिस में लार्ड सेमूर, कर्नल थार्न, मिस्टर होप आदि की शानदार दावतें अभी तक प्रशंसा और खेद से याद की जाती हैं – और हमारे अपने देश में अपनी शानशौकत और उदारता के लिए प्रसिद्ध अभिजातवर्ग के सदरलैण्ड की डचेज, बकलाश की डचेज, लंदनदरी की मार्कियोनेस या डेवोनशायर के ड्यूक जैसे प्रमुख सदस्यों की दावतें – ये सब होटल स्टैकपूल की दावत के परी-देश जैसे आश्चर्यचकित करने वाले दृश्य के आगे फीकी पड़ गई थीं।

'पिछले दो महीनों से यह दौलतमंद नवाब– अनुमानतः जिसकी दौलत तीस लाख पौंड से भी अधिक है – रियू सेन्तनोरे में स्थित इस शानदार होटल में ठहरा हुआ है, जिस के बागीचे शॉ जालीजे पैलेस तक फैले हुए हैं। छै हफ्तों से कम अरसे के अंदर ही सुरागार से लेकर अटारी तक होटल की ऐसी कायापलट की गई है और उसका उद्घाटन इतनी शान-शौकत से किया गया कि उसकी कल्पना भी कठिन हो।

'आठ बजे से ही पूरी की पूरी एवन्यू द मारिनी पर, जहां स्टैकपूल होटल के बाग का एक फाटक है, एक अजीबोगरीब और आश्चर्य जनक ढंग से चिरागां कर दिया गया था : पूरी एवन्यू पर दोनों ओर दरख्तों के बीच पूरबी देशों के फैशन के अनुसार सफेद पोशाकों में सजे 500 व्यक्ति खड़े कर दिये गये थे। इनमें से हरेक के हाथ में एक जलती हुई मशाल थी, जिससे वे संकेत पाते ही विचित्र-विचित्र ढंग के ज्योति-

पैटर्न बनाते थे। एक क्षण, सारी मशालें जमीन पर झुका दी जाती थीं, दूसरे ही क्षण लगता था कि पेड़ों की डालियों में आग लग गई है, फिर जैसे ये सारे ज्योति-पिण्ड आगे बढ़ कर उन सफेद प्रेतों के सिर के गिर्द तरह-तरह के दायरे खींच रहे हों। इन हिलती-डुलती, चक्कर काटती रोशनियों से कुछ घोड़े बिदक उठे, जिससे यह उचित समझा गया कि इन्हें स्थिर कर दिया जाय। एवन्यू द मारिनी में दमिश्की ईरानी ढंग का एक विशाल शामियाना या पंडाल लगाया गया था, जिसमें कीमती कालीन बिछे थे और यह स्थान था जहां आकर मेहमान अपनी सवारियों से उतरते थे। वहां से उन्हें एक विशाल स्वागत-कक्ष में ले जाया जाता था, जिसकी दीवारों पर चारों ओर विशाल आईने लगे थे और जहां वे अपने चोगे आदि टांगने को देते थे। हिन्दू पोशाक में वहां आगंतुक मेहमानों की सेवा में करीब पचास परिचारक तत्पर थे, जो उनके सिंगार-प्रसाधन की हर सुविधा का ध्यान रखते थे। एक बड़ी गैलरी मेहमानों के नौकरों के लिए निश्चित कर दी गई थी, और उस रात एक समय ऐसा आया जब उस गैलरी में करीब 1200 नौकर जमा हो गए थे। उनके मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के खेलों का प्रबंध किया गया था और यहां पर ही अपनी मूल वरदी में लैस बीस दरबान भी खड़े किए गए थे, जो अपनी बुलंद आवाज में उन नौकरों के नाम पुकारते थे, जब उनके विभिन्न मालिकों के सामने उनकी उपस्थिति जरूरी होती थी। इस प्रकार इतने सुरूचिपूर्ण ढंग से हर संभव आवश्यकता के लिए प्रबंध किया गया था, जिसके बराबर की मिसाल संभ्रांत और सभ्य योरप में भी नहीं मिलती।

'लेकिन यह सब तो उन चमत्कारों की भूमिका मात्र थे, जो इनके बाद आने वाले थे। फूलों और पत्तियों से आच्छादित चार तोरण मार्ग, जिनकी रक्षा फारसी पोशाक पहने आठ सैनिक कंधों पर रखी चमचमाती नंगी तलवारों से कर रहे थे, एक विशाल मधुशाला तक ले जाते थे, जिसकी दीवारें और छत पूरी तरह से गुलाब के फूलों से ढकी हुई थीं, जबकि गुलाबी रंग के बिल्लौरी लैम्प चारों और मंद और सुखद प्रकाश बिखेर रहे थे। यहां पर हर लेडी को सुंदर कामेलिया पुष्पों का एक-एक गुलदस्ता भेंट किया गया, जिसके बीच में चांदी की डंडी पर याकूत, नीलम या पन्ना में से कोई एक हीरा-जवाहर चमक रहा था। इन विचित्र पुष्पों के गिर्द डंडी में लगी चांदी की पत्तियों में से एक पर मीनाकारी द्वारा ऐसे रहस्यपूर्ण और अबोधगम्य काले अक्षर खुदे हुए थे, जिनका अर्थ बड़े से बड़े विद्वान भी नहीं लगा सकते।

'गुलाबकक्ष से निकल कर मेहमानों ने एक विशाल उद्यान में प्रवेश किया, जहां पर पेड़ गर्व से समय से पूर्व ही अपनी पर्णावली की नुमायश कर रहे थे—यहां पर गुलाबों, बकायनों, या हनी सकल के कुंज थे, उनकी पीली जूही की लताएं फूलों से लदी थीं और वातावरण को अपनी सुंदर महक से सुवासित कर रही थीं। वृक्षों को चोटियों से एक विशाल आच्छादन का निर्माण किया गया था, जहां से फूलों के

बीच अनेक झाड़-फानूस लटके हुए थे, जो सारे परिदृश्य को रौशन कर रहे थे, जबकि उबलते गरम पानी से भरे विशाल नलके, जो नजर से छिपा कर बिछाये गये थे, वातावरण में वसंत ऋतु जैसी हलकी-हलकी उष्मा पैदा कर रहे थे। यहां पर रंग-बिरंगे पंखों वाले पक्षी अपने मधुर स्वरों में चहक रहे थे। और चश्मों और झरनों की कलकल-मर्मर दूर नृत्य-कक्ष के पोल्का या बाल्ज़ नृत्यों की ध्वनियों के साथ मिश्रित हो रही थीं। यहां या वहां, हर तरफ मेहमान शगूफों से लदे मग्नोलिया या नारंगी के वृक्षों के नीचे घास के कालीन पर कोहनी टेके विश्राम कर रहे थे। इससे आगे मेहमान बॉलनृत्य के कमरे में प्रवेश करते थे, जहां से संगीत के मधुर स्वर उठ रहे थे। उससे भी आगे एक लम्बी गैलरी थी जिसकी दीवारों पर अत्यंत सुंदर और भव्य चीजें लटकी थीं, जिन पर चांदी की कशीदाकारी हो रही थी– और वहां रेशम और सोने से मढ़े एक प्रकार के सिंहासन पर इन करिश्मों के सिरजनहार विराजमान थे– द्वारकानाथ टैगोर, जो विनय और शालीनता से मिश्रित अंदाज में इस तरह मेहमानों का अभिवादन कर रहे थे कि वे सब लोगों की सराहना के पात्र बन गये थे। मेहमानों के स्वागत का यह तरीका, चाहे यूरोप के राष्ट्रों को विचित्र लगता हो, समारोह की उस पूर्वात्य दृश्यावली में पूरी तरह से उचित और संगत था। इस गैलरी के अंत में और भी कई कक्ष थे, कुछ नृत्य के लिए, कुछ खामोश वातावरण में गपशप के लिए, कुछ चांस के खेलों के लिए। इनकी दिवारें आज के सबसे मशहूर कलाकारों के चित्रों से सजायी गयी थीं। इससे भी आगे संगीत-गोष्ठी का एक शानदार कमरा था, जिसमें से लाब्लाश की शानदार आवाज या ग्रीजी, पेरजियानी, दोरुज्गा आदि के रजत-कंठों के स्वर हवा में तैरते हुए आ रहे थे। इस प्रकार हर प्रकार की रुचियों के लिए प्रबंध किया गया था, लेकिन फिर भी एक कमरा बंद था– जो सब लोगों की जिज्ञासा का केन्द्र बना हुआ था। अचानक संगीत बंद हो गया, दरवाजे खोल दिए गये और लोगों की भीड़ उस रहस्यपूर्ण कमरे में रेलपेल करती हुई प्रविष्ट हुई। वहां आकर्षक लकड़ी की मेजों पर काश्मीरी शाल-दुशालों, भारतीय कला-वस्तुओं, चीनी मिट्टी के चीनी और जापानी बर्तनों, हीरे-जवाहरात के आभूषणों तथा हर प्रकार की विचित्र और अनोखी चीजों के ढेर लगे हुए थे। एक कांस्य त्रिपादिका पर रखे चांदी के विशाल कलश में टिकटें भरी हुई थीं, जिन पर वैसे ही रहस्यपूर्ण चिन्ह अंकित थे, जैसे कि महिलाओं को दिए गये गुलदस्तों में लगी चांदी की पत्तियों पर खुदे हुए थे और एक तरुण बालिका उन टिकटों को निकालने के लिए उसके पास भारतीय नर्तकी की पोशाक में सजी खड़ी थी। वह जैसे ही कलश में से एक टिकट निकालती, उस पर अंकित चिन्ह तुरंत मण्डप पर आग्नेय अक्षरों में प्रतिभासित हो उठते, और हर महिला को सीधे पता चल जाता कि भाग्य ने उसकी तरफदारी की है या नहीं। वहां 800 पुरस्कार थे, उनमें से मा की बारोनेस को चीनी मिट्टी की एक केतली प्राप्त हुई, पैस्तोरेत के मारक्विस को भारतीय मलमल की एक पोशाक, ऑफ की काउंटेस को सोने की

जरदोजी का एक शानदार रेशमी कपड़ा, मदाम रॉकोनी को एक बढ़िया काश्मीरी शाल, जिसकी कीमत 800 फ्रांक थी, मिला।

'पुरस्कार वितरण की क्रिया समाप्त होते ही बॉल-नृत्य का सुखद मनोरंजन आरंभ हुआ, जो रात के चार बजे तक जारी रहा, जबकि एक नया दृश्य सामने आया। आगे का विशाल प्रांगण खाने के कमरे के रूप में बदल दिया गया था– जहां शानदार दावत का प्रदर्शन था– अठारह मेजें बिछायी गयी थीं, जिनमें से हरेक पर दो-दो सौ महमान बैठे। जिन्हें वहां पर जगह नहीं मिल सकी उनके लिए पहली मंजिल पर तीन विशाल मदिरा-कक्षों को दावत के कमरों के रूप में सजाया गया था। पहली मंजिल के कमरों से इस विशाल दावत का जो नजारा देखने को आता था, उसकी कल्पना असंभव है। कंजूसी के प्रतीक उस प्रचलित फैशन का, जिसके अनुसार महिलाएं तो बैठ जाती हैं और मर्द उनके पीछे खड़े होकर अपनी पारी का इंतजार करते हैं, यहां पर पालन नहीं किया गया। यहां हर व्यक्ति के लिए बैठने का स्थान था और सुंदरियों के भड़कीले साज-सिंगार और चमकते-दमकते हीरे-जवाहर भद्र-पुरुषों की गंभीर, काली पोशाकों के बीच अत्यंत प्रभावकारी वैषम्य पैदा कर रहे थे। इस दृश्य के अनन्त रूप थे, जिसे सुनहरी और लाल वर्दियों में लैस 2000 नौकरों की मौजूदगी ने और भी चमका दिया था। मेजों पर बढ़िया समुद्री झींगों के शानदार महल, पेस्ट्री के किले, टिकियों के पर्वत, कवक के साथ पकाये मुर्गों और दूसरी जायकेदार नायाब चीजें, मुख्य भोजन को और स्वादिष्ट बनाने वाली सरस-सुगंधित तश्तरियों और कुछ भारतीय पाक्-शास्त्र के अनुसार पकायी गयी वस्तुओं के, जो युरोपियनों के लिए अज्ञात थीं और जिनके स्वाद से वे अपरिचित थे, अंबार लगे हुए थे। इन भोज्य-पदार्थों के बीच जगह-जगह पर चांदी के शमादान रखे थे, जिन पर हजारों मोमबत्तियां जल रही थीं, जबकि साथ ही छत से लटके छब्बीस विशाल दीप-वृक्ष (झाड़) नीचे दृश्य को अपनी रोशनी से आप्लावित कर रहे थे।

'इस विशाल कक्ष की सजावट भी अनोखी थी। छत और दीवारों पर ब्रह्मा का पूरा इतिहास चित्रित था, जो जाहिर था, उपस्थित मेहमानों के लिए बिल्कुल अज्ञेय था, जबकि चित्रित आकृतियों के भावहीन, जड़तापूर्ण चेहरों और इस दावत की रंगरेलियों के निर्देशक मेजबान के बुद्धिमान चेहरे का फर्क दर्शनीय और उल्लेखनीय था। जब सारे मेहमान बैठ गये तो एक विचित्र और तेज गति वाले संगीत के दूरागत स्वर सुनायी देने लगे। ये स्वर निकट आते गये और अंत में तीस संगीतज्ञों का दल प्रकट हुआ। वे रेशमी कुरते पहने थे। जबकि कुछ लोग मजीरे-ताश बजा रहे थे, दूसरों के पास तम्बूरे थे और कुछ शहनाइयां बजा रहे थे। उनके पीछे पचास भारतीय नर्तकियां आयीं, जिन्होंने अलग-अलग दल बना कर भोजन के दौरान मेहमानों का मनोरंजन करने के लिए अपने राष्ट्रीय नृत्यों के प्रदर्शन से एक समां बांध दिया। दावत इतनी देर तक चली की मेहमानों के उठने से

पहले ही दिन निकल आया था।

'हमारी स्मृति में' पेरिस ने पहले कभी मनोरंजन का ऐसा शानदार दृश्य नहीं देखा–और एक लंबे अरसे तक इसकी याद को भुलाना संभव नहीं होगा।'

गद्‌गद्‌भाव से प्रशंसा करने वाले इस विवरण ने, जिसे निश्चय ही ऐसे संवाददाता ने लिखा होगा, जिसने इस शानदार दावत में परोसी गई शराबें और व्यंजन छक कर लिए होंगे, **कोर्ट जर्नल** के पाठकों को कम आश्चर्यचकित नहीं किया होगा और न उनका कम मनोरंजन ही। **बंगाल हरकारू** के सतर्क सम्पादक ने लिखा:

'हमने अपने लंदन संवाददाता के हवाले से प्राप्त **कोर्ट जर्नल** में प्रकाशित उस विशाल दावत का वर्णन पढ़ा है, जो हमारे सह-नागरिक द्वारकानाथ टैगोर ने पेरिस में दी थी। सचमुच ही, यह अरब की रातों से लिया गया किस्सा लगता है। और अगर यह शानदार वर्णन दरअसल उतने ही शानदार तथ्यों पर आधारित है, तो हम कहेंगे अलादीन का चमत्कारी चिराग, 'प्रिंस द्वारकानाथ' के हाथ आ गया है, और उन्होंने उसका इस्तेमाल किया है, शान-शौकत का एक ऐसा शानदार मंजर रचने के लिए, जैसा कि पहले कभी, जिन्नों की दास्तानों के अलावा, और कहीं नहीं रचा गया। 'इस दौलतमंद नवाब' की अनुमानित दौलत–तीस लाख–फ्रेंक हों, रुपये हों या पौंड ही क्यों न हों–इतनी फजूलखर्ची का शायद ही भार उठा सके...

'इस विवरण में कितना तथ्य है और कितनी कल्पना, या तथ्य कहां जाकर खत्म होता है और कल्पना कहां से शुरू होती है, इस बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। संभवतः दोनों एक-दूसरे में इस तरह गुंफित हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी, हमें एक बात तो निश्चित लगती है, वह यह कि, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि दावत बड़ी शानदार थी, लेकिन उसके प्रकाशित विवरण को हमें उसी रूप में **चुटकी भर नमक** के साथ ग्रहण करना चाहिए, जिस तरह 'समुद्री झींगों के शानदार महलों' को।'

बहरहाल, वास्तविकता जो भी हो, यह बात सच है कि आम लोगों की दृष्टि में मोंत क्रिस्तो के कोंत की तरह द्वारकानाथ भी बेशुमार दौलत के मालिक समझे जाने लगे थे, जैसा कि बाद में 8 जून 1846 के **बंगाल हरकारू** में प्रकाशित एक संवाद से पता चलता है। अपने लंदन स्थित संवाददाता को उद्धृत करते हुए उसने लिखा :

'पेरिस से लौटने के बाद से द्वारकानाथ का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं रहा है। याद रहे कि कुछ दिन पहले कोर्ट जर्नल में उनके द्वारा पेरिस में आयोजित 'अरब की एक रात' का अनर्गल विवरण छपा था, लेकिन मेरे पास आपके लिए इससे भी ज्यादा चटपटी और अनर्गल एक चीज है, जो इस बात की मिसाल है कि बैंकर प्रिंस के बारे में यहां कैसी-कैसी बेहूदी और फालतू बातें लिखी जाती हैं। इसे मैं एक नयी पत्रिका **लिटरेरी हेराल्ड** में से काट कर भेज रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आप पढ़ कर चीख पड़ेंगे, मैं यकीन नहीं कर सकता !

'द्वारकानाथ टैगोर–इस भारतीय नवाब या राजसी व्यापारी का नाम किसने नहीं सुना होगा, जिसके काश्मीरी शालों, हीरे-जवाहरों और एशियाई वैभव की वस्तुओं ने हमारी श्रेष्ठतर और सबसे बुद्धिमान सुंदरियों के सिर फेर दिये हैं? इस व्यक्ति से संबंधित हर चीज– उसकी दौलत, उसकी पोशाक, उसकी आदतें, तौर-तरीके, व्यवहार और उसका अस्तित्व तक एकदम वैभवपूर्ण है। उसका अस्तित्व तो दरअसर असाधारण से असाधारण स्वप्न से भी बढ़-चढ़ कर है। उसका जीवन एक अनंत, अविरत रोमांस है, जिसका एक अनोखा परिच्छेद था, उसका फ्रांस की राजधानी का प्रवास-काल। उसके लिए सबसे अद्भुत महल बनाये गये हैं, आश्चर्यजनक परिणाम में उसे दौलत प्राप्त हुई है आर कुदरत ने उसे असाधारण दानशील और परोपकारी भावना से मालामाल किया है, और लगता है कि कम से कम इस बार फ्रांसीसियों की अतिशयोक्ति ने वास्तविकता को अनिरंजित करके नहीं देखा। लगता है कि द्वारकानाथ मदाम डी. के सौंदर्य से आकर्षित होकर दिलोजान से उन पर फिदा हो गया। उसने देखा कि उसकी मनमोहक कामिनी तीन व्यक्तियों से आत्मीय स्तर पर मिलती-जुलती थी। एक उसके परिवार का मित्र था, दूसरा भी अपने को परिवार का आदमी ही समझता था। एक तीसरा व्यक्ति था, रूखे व्यवहार और गंभीर मुद्रा का। सुंदरी के घर में उसकी मौजूदगी का रहस्य द्वारकानाथ की समझ में नहीं आया। यह व्यक्ति नवाब की आवभगत में तो बड़ी दिलचस्पी लेता था, लेकिन घर की मालकिन की ओर जरा भी ध्यान नहीं देता था। वह शायद ही कभी उनके वार्तालाप पर कान देता और बोलना तो और भी कम था, लगता था कि वह जैसे कमरे में होने वाले वार्तालाप के लिए अजनबी हो। इसके अलावा, वह बहुत थोड़े समय तक ही वहां रहता था और मदाम डी. उसको जाने से कभी रोकने की कोशिश नहीं करती थी। इन नकारात्मक चिन्हों के सामने एक एशियाई व्यक्ति भला एक पति को कैसे खोज सकता था? अब अनुमान कीजिए, द्वारकानाथ के आश्चर्य का जब उनसे जवाब तलब किया गया। उन्होंने जिस स्पष्टवादिता से अपने प्रेम का निवेदन किया और उसके बाद जो प्रस्ताव रखा, वह घृणास्पद लग सकता है, यह सारा दृश्य निस्संदेह पूर्वात्य किस्म का था, लेकिन शायद इस पर पुनर्विचार करने पर ज्ञात हो कि हमारी सभ्यता यदा-कदा ऐसी सूक्ष्मता का प्रदर्शन नहीं कर पाती। तो यह रहा वह वार्तालाप जो नवाब ने आश्चर्यचकित पति के साथ किया : 'अगर मुझे पहले ही मालूम हो जाता कि संबद्ध महिला आपकी पत्नी है, तो सबसे पहले मैं आपको ही अवगत कराता कि उनके गुणों और आकर्षणों ने मेरे दिल पर क्या असर डाला है, लेकिन पेरिस के तौर-तरीकों से अनभिज्ञ होने के कारण और उनके पति की कभी कोई चर्चा न सुनने के कारण, स्वाभाविक है कि मैंने सोचा कि वह स्वयं अपनी मालकिन हैं। एक शब्द में, जनाब, मैं आपकी सम्पति पर आक्रमण करने या आपके अधिकारों को जबरन छीनने की क्षमता नहीं रखता। तौर-तरीके फरक हो सकते हैं, लेकिन

कर्तव्य तो हर देश में समान ही होते हैं। अगर इतनी मूल्यवान वस्तु के प्रति आपके लिए असंवेदनशील हो जाना संभव हो, और शायद आपको यह बेहतर लगे कि आपके घर में कोई दूसरी महिला उस स्थान को ग्रहण कर ले जो आज उनका है, तो मैं उस अवस्था में अपनी आधी दौलत देकर भी नहीं सोचूंगा कि मैंने अपने सुख-चैन के लिए अधिक कीमत चुकायी है और मैं खुशी से उन्हें अपना हाथ दे दूंगा।' यह बताने की जरूरत नहीं कि हमारे पेरिस वाले पति को यह बात बहुत बुरी लगी और बजाय इसके कि वह इसे नवाब के हंसी-मजाक का एक नमूना समझता, उसने परिवार के दोस्त के जरिए द्वारकानाथ को द्वंद-युद्ध की चुनौती भेज दी। साहसी और वफादार विदेशी महाशय ठीक समय पर नियत स्थान पर पहुंच गये। उनके पास सिवाय दो कृपाणों के, जो सदा उनकी पेटी में लगे रहते थे, और कोई हथियार नहीं था। अपने प्रतिस्पर्धी के हाथ में दोनों कृपाण देते हुए उन्होंने कहा, 'इनमें से एक चुन लीजिए।' द्वंद-युद्ध का भारतीय तरीका हमारे तरीके से मूलतः भिन्न है, जो हमारी सभ्यता की श्रेष्ठता को और भी चमका देता है। पूरब के देशों में प्रचलित यह प्रथा इस बात की इजाजत नहीं देती कि एक व्यक्ति अपने प्रतिद्वंदी की जिंदगी लेने की कोशिश करे, या यह कि उसे अपना खून दे कर उस आघात का प्रायश्चित करने दिया जाय जो उसने किसी दूसरे को पहुंचाया है या उससे प्राप्त किया है। उन कौमों में, जो अभी तक अपेक्षया आदिम या प्राकृतिक अवस्था में हैं, द्वंद-युद्ध एक साथ ही दो आत्म-हत्याओं की पूर्ति है। इसलिए नवाब ने अपने प्रतिद्वंदी से जो प्रस्ताव किया था, वह यह था कि वह शांत और संतुष्ट मन से अपनी कृपाण द्वारा अपना पेट चाक कर ले और कसम खा कर वायदा किया था कि वे स्वयं ऐसा करने में उससे पीछे नहीं रहेंगे। यह आसानी से कल्पना की जा सकती है कि गंभीरता से इस तरह का प्रस्ताव पेश किये जाने के बाद विरोध का मामला और आगे नहीं बढ़ा और न कोई सिर फूटा और न किसी की अंतड़ियां ही निकल कर बाहर आयीं। कोई नैतिकवादी व्यक्ति शायद यह भी दावा कर सकता है कि द्वारकानाथ ने भी, जो इस समय पेरिस के जीवन और आचरण संबंधी अत्यंत मनोनुकूल सबक सीख रहे हैं, एक अत्यंत उल्लेखनीय सबक सिखाया है। तब से उनकी ख्याति और उनकी लोकप्रियता बेहद बढ़ गई है; वे प्रशंसा के केन्द्र बन गये हैं, जिस पर सबसे मोहक मुस्कानें और आकर्षित करने वाले हाव-भाव निछावर किये जाते हैं। आखिर जो व्यक्ति इतने उदात्त साहस का धनी हो और जिसके पास बांटने के लिए इतने काश्मीरी शाल हों, वह ढेर की ढेर प्रशंसा का पात्र न बनेगा तो और कौन बनेगा!'

लंदन से प्राप्त इस संवाद पर सम्पादक की टिप्पणी अत्यंत संक्षिप्त थी। 'यह द्वारकानाथ ही कर सकते हैं!– है न?'

1845-46 में अपने पेरिस प्रवास के दौरान प्राकृतिक दृश्यों और प्रतिकृतियों का चित्रण करने वाले प्रसिद्ध कलाकार बारों द श्वोतेर से द्वारकानाथ का परिचय हुआ,

जो विख्यात कलाकार यूजीन दलक्रवा[6] के गहरे मित्र थे और जिनकी बनायी बारों द श्वीतेर की प्रतिकृति लंदन की नेशनल गैलरी में देखी जा सकती है। द्वारकानाथ ने उनको तेल-रंगों में अपनी आदमकद प्रतिकृति बनाने का काम सौंपा और इसका परिश्रमिक भी पेशगी अदा कर दिया। लेकिन इसके पूर्व कि यह प्रतिकृति 1847 में पूरी हो पाती, द्वारकानाथ का अगस्त 1846 में लंदन में अचानक देहावसान हो गया। ईमानदार कलाकार ने बहुत कोशिशों के बाद द्वारकानाथ के पुत्र देवेन्द्रनाथ का पता ढूँढ निकाला और उनको यह चित्र पार्सल कर दिया और उसकी एक अनुप्रति भी भेजने का वायदा किया।[7] 18 दिसंबर 1888 को कलकत्ते के **स्टेट्समैन** ने चित्र के सही सलामत पहुंच जाने की सूचना 'द्वारकानाथ के चित्र की कहानी' शीर्षक से प्रकाशित की। (**स्टेट्समैन के 100 वर्ष**, 1975 में उद्धृत)।

योरप में अपने दूसरे प्रवास-काल में द्वारकानाथ दो बार पेरिस गये थे, एक बार तो वे पन्द्रह दिन के लिए जून 1845 में लंदन जाते समय वहां रुके थे और दूसरी बार दिसम्बर 1845 से मार्च 1846 तक वहां ठहरे थे। इनमें से पहली यात्रा के दौरान जून, 1845 में, जब सम्राट लुई फिलिप ने हार्दिकता से उनका स्वागत किया था, उनका संपर्क कोंत फई द कोंशे से हुआ, जो विदेश मंत्रालय में नयाचार के असिस्टेंट डायरेक्टर थे, और जिनसे कलकत्ते में फ्रांस के कौंसल जनरल ने उनका परिचय कराया था। यह परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में बदल गया था, जैसा कि सेन्ट जार्ज होटल, लंदन से उनको 5 जुलाई 1845 को लिखे द्वारकानाथ के पत्र से स्पष्ट है:[8]

'प्रिय महोदय,

हमारा मित्र वॉकर मुझे छोड़ कर चला गया है और चूंकि चुंगीघर से मेरा सामान आज ही मिला है, मैं अपने नन्हें सुंदर मित्र को वे सारे उपहार नहीं भेज सका, जिनका मैंने वायदा किया था। लेकिन चूंकि जेनेराल वेंत्यूरा यहां पर मौजूद हैं और उन्होंने यह सामान अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव किया है, इसलिए मैंने यह उनको दे दिया है और मुझे उम्मीद है कि आप तक सही-सलामत पहुंच जायेगा। मैं दिन और रात इस महान कौम के लोगों से मिलने-मिलाने में व्यस्त रहता हूं, जिससे स्वयं अपने मनोरंजन और आराम के लिए बहुत कम समय बचता है, यहां तक कि मैं अभी तक थियेटर देखने तक नहीं जा सका। बहरहाल, यह भेंट-मिलाप का दौर कुछ ही दिनों में समाप्त हो जायगा और तब मैं दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए जा सकूंगा। आपके परिवार के सदस्यों को सादर अभिवादन। विश्वास करें, प्रिय महोदय,

आपका सच्चा मित्र,

द्वारकानाथ टैगोर'

कोंत से द्वारकानाथ का परिचय उनके पेरिस के दूसरे और दीर्घकालीन प्रवास के दौरान निश्चय ही मित्रता में बदल गया होगा, और दोनों अंतरंग मित्रों ने पेरिस के जीवन के आमोद-प्रमोदों का मिलकर आनंद लिया होगा, जैसा कि **ज्यूरनाल**

ड ऑक्तोजनेर से साफ जाहिर है, जो कोंत ने बाद में प्रकाशित किया था और जिसके परिच्छेद (XXV) का अधिकांश भाग द्वारकानाथ टैगोर से संबंधित है। उसमें से कुछ संगत उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं:[9]

'वह (जेनेराल वेंत्यूरा) अभी पेरिस में ही थे, जब बाबू द्वारकानाथ टैगोर यहां प्रकट हुए। वे एक भारतीय हैं, जिन्हें उनकी जात ने बहिष्कृत कर रखा है, जो कलकत्ते में अंग्रेजों के बीच आन बसे थे और जिन्होंने एक बैंक कायम की थी। वे फ्रांस आये, जहां वे एक शहजादे की शान-शौकत से रहे; उन सुंदर महिलाओं में शाल-दुशाले बांटते थे, जो उन पर मुस्कराती थीं। उनके साथ उनका एक बेटा और एक भानजा था।

'खुले दिमाग के व्यक्ति, लेकिन साधारण रूप से सुसंस्कृत, यद्यपि वे आंग्ल-समाज में रह चुके थे; एक ईमानदार और जिज्ञासु व्यक्ति, जो सब कुछ जान-समझ लेना चाहते हों और जो हर चीज को आत्यंतिक दृष्टि से देखने के आदी हों, और जिनके लिए यूरोपीय सभ्यता अत्यधिक बलवान थी, इस कारण नहीं कि उसमें अधिक कल्पनाशीलता है, बल्कि इसलिए कि उसमें अधिक विवेकशीलता है। ऐंद्रिय और विषयासक्त होने के कारण, वे हर समय सुंदर नर्तकियों और आकर्षक नारियों से घिरे रहना पसंद करते थे। एक बार ऑपेरा (गीति-नाट्य) देखने के बाद उन्होंने एक महिला शिक्षक से संगीत-शिक्षा लेनी चाही, यद्यपि उनकी आवाज बेसुरी थी। अपनी रातों को दिन में बदल कर उन्होंने अपने हट्टे-कट्टे शरीर और स्वास्थ्य को नष्ट कर डाला और लंदन के क्लेरेन्डन होटल में जेनेराल और मेरी बाहों में फौत हो गये, क्योंकि उनकी रक्त-शिराओं में सिर्फ पानी था और ऊपरी खून देते समय उनका हार्ट फेल हो गया।[10]

'पेरिस में मैं उन्हें अंधे बच्चों के संस्थान में ले गया; तत्काल वहीं उन्होंने कलकत्ता में एक ऐसा ही संस्थान स्थापित करने का विचार पक्का किया। त्युलेरी में डिनर खाने के लिए सम्राट लुई फिलिप का निमंत्रण मिलने पर उन्होंने सम्राट को लिख भेजा कि यह विचार करके कि बारिशों का मौसम अनकरीब है और उन्हें तुरंत भारत वापस जाना चाहिए, जहां कई जरूरी काम उनके इंतजार में रुके पड़े हैं, वे इस निमंत्रण को अगले वर्ष के लिए स्वीकार कर रहे हैं। वे सचमुच अगले वर्ष लौट कर आये और उन्होंने सम्राट को अपने आगमन से सूचित कर दिया।[11]

'एक रोज सुबह वे मुझसे मिलने आए। किसी ने उनसे माबिल गार्डन के सांध्य-उत्सवों के बारे में जिक्र किया था। शनिवार का दिन था, मेबाइल गार्डन जाने का सबसे उपयुक्त अवसर। उन्होंने मुझसे साथ चलने का आग्रह किया। "मैं वहां कभी नहीं गया," मैंने उत्तर दिया, "लेकिन आदमी कहीं भी जा सकता है; आप शाम को मुझे लेने के लिए आ जायें।" बाग में घुसते ही मेस्यों थीयर्स और ऐडमिरल ला सूसे से हमारी मुलाकात हो गई। उनके साथ काऊंट मार्ने भी थे, जो स्वीडन में फ्रांस के मिनिस्टर हैं। "महारानी पोमारे कहां हैं?" द्वारकानाथ ने पूछा। किसी ने उसकी ओर

इशारा करके बताया। द्वारकानाथ का नौकर उस लड़की को बुला लाया, जो काफी बदसूरत थी और जिसके कुछ दांत टूटे हुए थे।[12] वह पास आयी और दुभाषिये ने उससे कहा: "प्रिंस (उनकी विचित्र पोशाक और फजूलखर्ची के कारण लोग उन्हें एक राजकुमार समझने लगे थे) चाहते हैं कि तुम उनके मनोरंजन के लिए अपना कोई कम बदला हुआ नृत्य पेश करो।" और इसके बाद उन्होंने उसके उत्साह में जान डालने के लिए कुछ सिक्के उसके हाथ पर रख दिए। पुलिस के सिपाही के हाथ में सोने के सिक्के की रिश्वत ने उसे अपनी आंखें फेर लेने को विवश कर दिया। और तब पोमारे ने, अपनी एक मजाकिया सहेली के साथ नृत्य के ऐसे कमाल दिखाये कि उसके शरीर की लोच और थिरकन ने आश्चर्यचकित कर दिया। बाद में हल्की-सी बूंदा-बांदी होने लगी। लोगों ने भाग कर एक बड़े हॉल में शरण ली, जहां बैठने के लिए बैंचें रखी हुई थीं। बाबू हॉल के द्वार के पास की बैंच पर बैठ गये और वह सारी की सारी मूर्ख लड़कियां, जो अपनी जवानी में अलमस्त थीं, आकर उनके बढ़िया शाल को, जो उन्होंने लपेट रखा था, टटोल-टटोल कर उसकी कोमलता का अहसास करने लगीं और उनकी उंगली में दमकती हुई हीरे की शानदार अंगूठी को छीनने की कोशिश करने लगीं। "दूर हटो," बाबू ने एक जवान औरत से कहा, जो द्वारकानाथ को घेर कर उनसे हिन्दुस्तानी में बात कर रही थी। पहले कभी उससे उनकी मुलाकात हुई थी, लेकिन वे उसे पहचान नहीं पा रहे थे,। "यह कौन है?" उन्होंने पूछा। उनके पास खड़े एक नौजवान ने कहा, "यह मिसेज जेम्स है।" वह औरत प्रसिद्ध वेश्या लोला मांत थी। लोला आयरिश कौम की थी। वह अपने परिवार के साथ भारत गयी थी, जहां वे लोग ब्रिटिश सरकार की नौकरी करते थे। वहां उसने जेम्स नाम के एक नौजवान लेफ्टिनेंट से शादी की थी और कलकत्ते में बाबू द्वारा निर्मित "हनीमून-घरों" में से एक में कुछ दिन गुजारे थे। नव-दम्पतियों को बाबू इन घरों की चाबियां दे दिया करते थे। अपने विशाल बागीचे के दोनों सिरों पर उन्होंने मण्डप बनवा दिये थे, जिन्हें मुख्य बाग में फूलों वाली झाड़ियों की बाढ़ लगा कर अलग किया गया था। अगर दोनों मंडपों में नव-दंपतियों के जोड़े ठहरे होते थे, तो वे इच्छानुसार आपस में मिलजुल भी सकते थे। बाबू ने लोला को ओतेल द्यू रैं, प्लास वेन्दोम में आकर मिलने के लिए कहा; जहां वे ठहरे थे, क्योंकि उन्हें उसको कुछ बताना था। लोला ने अगले ही दिन उनसे मिलने का वायदा किया।

'लेकिन अगले दिन रविवार को हम लोग वर्साई देखने गये थे और लौटने पर मालूम हुआ कि वह आयी थी। हम लोग भोजन के कमरे में बैठे ही थे कि वह लौट कर आ गई। बाबू ने आदेश दिया कि उसे उनके शयन-कक्ष में ले जाया जाय। फिर, पास में बैठे एक अंग्रेज जेनरल को इशारे से उठने को कह कर, उन्होंने अन्य सहभोजियों से माफी मांग कर इजाजत ली और हम लोग उठ खड़े हुए। "जरा ठहरिये," मैंने दोनों से कहा, "मैं जरा जाकर लोला को सावधान कर आऊं।" शयन-कक्ष में प्रवेश करके, जहां वह पहले से मौजूद थी, मैंने उससे कहा, "तुम एक गंभीर

और नाजुक दृश्य देखोगी; तुम्हारा भला इसी में है कि तुम उचित व्यवहार करो।" "आह! बाह!", उसने उत्तर दिया, "मैं ऐसे बहुतेरों को देख चुकी हूँ।" तब मैंने बाबू और उनके साथी को अंदर बुला लिया। बाबू को देखते ही वह मुस्करायी; लेकिन जब उसकी नजर जेनरल पर पड़ी तो वह यकायक बेहोश होकर गिर पड़ी। वह उसके चाचा थे। एक नौकरानी को बुलाया गया जिसने उसकी चोली के फीते खोल उसके सीने को ढीला किया और उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये। वह होश में आ गई। तब बाबू ने उससे कहा, "मिसेज जेम्स, मैंने तुम्हें पहले इतनी अनुकूल परिस्थितियों में देखा था कि इस समय तुम्हारी सेवा करने से पीछे हटने को मेरा दिल नहीं मानता। इसलिए तुम उस प्रस्ताव पर गौर करो जो मैं तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। जेनरल, जो यहां मौजूद हैं और मैं, हम दोनों मिल कर तुम्हें पन्द्रह हजार फ्रैंक की सालाना पेंशन देंगे, बशर्ते कि तुम उस जिंदगी को छोड़ दो, जो तुम इस समय जी रही हो। यह पेंशन तुम्हें ल्फैत के घर में नियत समय पर तब तक हर साल मिलती जायेगी जब तक तुम एक संयत और सदाचारी जीवन बिताओगी, लेकिन दुराचार के मार्ग पर अगर फिर एक कदम भी उठाया तो पेंशन बंद कर दी जायेगी। बोलो, तुम क्या फैसला करती हो?" उसने सर झुका लिया, फिर सर उठाते हुए, जैसे किसी आलोड़ित करने वाले झटके से कांपती हुई वह चीख कर बोली, "नहीं, मुझे यह मंजूर नहीं। मुझे एक ईमानदार औरत होना चाहिए, यहां मैं अपने मन की रानी हूं।" यह कहते ही वह उछल कर खड़ी हो गई और बिस्तर पर पड़े शॉल से अपने अस्त-व्यस्त प्रसाधन को ढकते हुए कमरे से निकल कर भाग गई। जिस गाड़ी में बैठ कर वह गई थी, उसे तेजी से जाते हुए हमने सुना। वह काश्मीरी शॉल फिर हमें कभी नहीं दिखायी दिया।[13]

'द्वारकानाथ के प्रवास के दौरान सबसे विचित्र बात थी उन प्रार्थना-पत्रों, याचनाओं और अनुरोधों की विपुल संख्या, जो उन्हें प्राप्त होते थे। लोग उन्हें लगातार कर्जों या अनुदानों या पैसों के लिए लिखते रहते; उन्हें अक्सर प्रेम-निवेदन के पत्र भी मिलते। प्रेम-निवेदन का एक पत्र तो अत्यंत भावावेशपूर्ण था, जो अभिजात-समाज की एक सुप्रसिद्ध महिला ने उनको भेजा था। यहां तक कि देहातों से भी उन्हें पत्र आते थे। मिसाल के लिए, तूर के औषध-विक्रेता की दुकान के एक कर्मचारी ने उनसे एक बड़ी रकम की याचना की ताकि उसे अपने मालिक की दुकान खरीदने की सुविधा हो सके और उसने यह भी अनुरोध किया कि द्वारकानाथ उसके मालिक से कहें कि वह अपनी बेटी से उसकी शादी कर दे। मेरे भारतीय मित्र स्वेच्छापूर्वक केवल खैराती कार्यों के लिए ही दान देते थे...'

नोट्स

1 (i) **ओ लोंश सिनः** फ्रेडरिक मैक्स मूलर ('मेरे भारतीय मित्र' नामक परिच्छेद) लांगमैन्स, ग्रीन एण्ड कं०, 1899.

(ii) **दी लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ दी राइट ऑनरेबल फ्रेडरिक मैक्स मूलर।** उनकी पत्नी द्वारा सम्पादित, जिल्द 1, 1902.

(iii) **स्कॉलर एक्स्ट्राऑर्डिनरी** — दी लाइफ ऑफ प्रोफेसर, दी राइट ऑनरेबल फ्रेडरिक मेक्स मूलर। नीरद चौधरी। आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1974. मैक्स मूलर ने द्वारकानाथ को **हितोपदेश** के अपने जर्मन संस्करण की एक प्रति बंगाली भाषा और लिपि में उनके नाम समर्पण लिख कर भेंट की थी। यह प्रति इस समय कलकत्ते के ब्रह्मोसमाज के पुस्तकालय में है। 16 फरवरी 1975 के कलकत्ते से प्रकाशित साप्ताहिक **सण्डे** ने इसके मुख-पृष्ठ और समर्पण का चित्र छापा था।

[2] मैक्स मूलर ने वर्ष की याद करने में गलती की। इसे '1845-46 की सरदियों में' होना चाहिए।

[3] **समाचार-दर्पण** ने 12 अक्तूबर 1833 के अंक में 'कुमारहट्टा का एक निवासी' का लिखा एक पत्र छापा, जिसमें कहा गया था कि यद्यपि धर्म-सभा की आचार-संहिता उन लोगों के साथ किसी प्रकार का संबंध रखने की मनाही करती है, जिन्होंने सती-प्रथा का विरोध किया था, लेकिन ब्राह्मण लोग अभी भी द्वारकानाथ टैगोर के यहां होने वाले उत्सवों के निमंत्रण स्वीकार करके वहां जाते थे।

[4] राममोहन राय को दफनाया गया था, जलाया नहीं गया था, इसलिए उनके लिए जिस समाधि का निर्माण करवाया गया था, उसमें उनका ताबूत दफन है, न कि उनकी भस्म।

[5] 29 मई, 1846 के **बंगाल हरकारू** ने लंदन के **कोर्ट जर्नल** का एक सम्पादकीय में बड़ा दिलचस्प और व्यंग्यपूर्ण वर्णन किया था: '**कोर्ट जर्नल** एक ऐसा प्रकाशन है, जिसे श्रद्धा और आदर से देखना चाहिए;—यह, समाचारपत्रों में वही है, जो मनुष्यों में एक नरेश होता है, जो संभवतः 'सबसे अधिक बुद्धिमान, सबसे अधिक सदाचारी और सबसे अधिक जिम्मेदार और सबसे 'श्रेष्ठ' नहीं होता, बल्कि देवत्व की उस आभा से मण्डित होता है, जो हर नरेश और उससे संबंधित हर चीज के गिर्द छायी रहती है। इसके अलावा **कोर्ट जर्नल** समाचार पत्र-जगत के साधारण सदस्यों से तो विशेष कर और भी अधिक वफादारी की अपेक्षा कर सकता है—करना ही चाहिए, उसे वह प्राप्त भी है—अगर सम्राट अखबार पढ़ते हैं—उसे जो स्वयं सम्राट का अखबार है तो। हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि हमारी महारानी **टाइम्स** अखबार के भारी-भरकम संस्करण के पीछे अपने भव्य व्यक्तित्व को छिपायेंगी, लेकिन हम अपनी कल्पना में उन्हें अपनी ही कोर्ट के साफ-सुथरे चौपेजी **जर्नल** पर नीचे झुक कर नजरसानी करते हुए अवश्य देख सकते हैं। और फिर **कोर्ट जर्नल** का सम्पादन एक महिला करती हैं और वे महिला एक कोंतेस हैं—इसलिए शरीफ पाठको, यह जान लो कि नौ इंच × बारह इंच का यह **कोर्ट जर्नल** एक महिलानुमा साप्ताहिक है; और उसकी कीमत, अगर उस भोंडे सिक्के में गिनें, जिसकी कोंतेसें और झोंपड़ियों में रहने वाले सभी गुलाम हैं, जो आठ पेंस है। देखने में इस अखबार की आडंबरहीन शक्ल वास्तविक रूप में अभिजातवर्गीय है, और अपने नाम और मुख-पृष्ठ पर शाही-चिन्ह के अलंकरण के बगैर इसे बहुत मामूली अखबारों में ही गिना जायगा।'

[6] 1805 में नीयनबर्ग में जन्म और 1889 में साल्जबर्ग में मृत्यु। पेरिस में शिक्षा प्राप्त की, जहां वे बस गये और चालीस वर्षों तक कार्य करते रहे (**ल बेनेजित**)।

[7] बारों द श्वीतेर का पत्र, जिस पर कोई तारीख नहीं है, 'बाबू देवेन्द्रनाथ टैगोर, बोलपुर,

बर्दवान के निकट, कलकत्ता' के पते से भेजा गया था, रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन के अभिलेखागार में सुरक्षित है, और वह इस प्रकार है:

'जनाब,

कुछ साल फ्रांसीसी कोंसल जेनरल ने आपके स्वर्गीय पिता के आदम-कद चित्र के बारे में, जो मैंने 1847 में पेन्ट किया था, आपको एक पत्र भेजा था।

'इस चित्र का प्रदर्शन पेरिस और फिर लंदन में (रॉयल अकादमी में) किया गया था, और यह मेरे पास या मेरे संरक्षण में केवल इस कारण ही बना रहा, क्योंकि स्वर्गीय बाबू ने इसकी एक नकल तैयार करने का आदेश दिया था, जो इस बीच पूरी हो गई है।

'यह आदमकद चित्र आपकी सम्पत्ति है, क्योंकि इसकी कीमत, अर्थात 100 पौण्ड की रकम मुझे चुका दी गई थी। यह अभी भी मेरे पास है, और मैं आपका कृतज्ञ रहूंगा, अगर आप मुझे सूचित कर सकें कि यह चित्र मैं आपको किस तरीके से भिजवा सकता हूं।

'जहां तक इसकी प्रतिकृति का सवाल है, जो मूल चित्र की हू-ब-हू नकल है, उसको भी मैं बिलाशर्त, पारिश्रमिक की कोई रकम बताये बगैर, और आप पर ही यह छोड़ कर कि जो उचित समझें दें, आपको भेजना चाहता हूं।

'अंत में, मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं एक ऐसी कलाकृति को जो मेरी सम्पत्ति नहीं है, और जो आपके लिए एक वांछित कृति है, अपने पास न रखने के लिए अत्यंत उत्सुक हूं। आपका वफादार सेवक,

(ह) बारों द श्वीतेर

नं० 10 रयू रोयाल आ पेरिस'

दुर्भाग्य से इसका कोई रिकार्ड नहीं मिलता कि देवेन्द्रनाथ ने क्या उत्तर दिया था, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने इसका उत्तर अवश्य दिया था और शायद एक चेक भी साथ ही भेजी थी, जैसा कि टैगोर परिवार में विश्वास किया जाता है।

8 मदाम कृष्णा रिबो और मेंस्यो चार्ल्स आइगरश्मित के सौजन्य से, जो कोंत फई द कोंशे के वंशज थे, पुनः उद्धृत।

9 मदाम कृष्णा रिबो और मेंस्यो चार्ल्स आइगरश्मित के सौजन्य से। इसके अंग्रेजी अनुवाद के लिए लेखक डा० लोकनाथ भट्टाचार्य का आभारी है। मूल प्रकाशन की जीरॉक्स प्रति देते समय मदाम रिबो ने पाठक को विवेकपूर्वक सावधान किया कि 'चुटकलों और इतिहास में एक गंभीर अंतर होता है। 19वीं सदी में हर व्यक्ति या प्रायः हर व्यक्ति महसूस करता था कि उसे अपने "संस्मरण" लिखने चाहिए (मोशिये आइगरश्मित के अनुसार फई द कोंशे हर साल अपने खर्च पर अपने संस्मरण प्रकाशित किया करते थे।) पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए संस्मरणों के लेखक तथ्यों को अतिरंजित करने, कल्पना से गढ़ने या उनमें नमक-मिर्च मिलाने में संकोच नहीं करते थे।' कोंत द कोंशे एक विनोदी और सनकी स्वभाव के फ्रांसीसी राजनयिक थे, और उनका कुदरती रुझान सही विवरण देने की अपेक्षा हर बात को मनोरंजक बना कर पेश करने की ओर अधिक था। उनके वक्तव्यों पर भरोसा नहीं किया जा सकता; यह उनके 'संस्मरणों' में वर्णित तथ्यों, और लंदन में द्वारकानाथ की मृत्यु के पश्चात अपनी पत्नी को लिखे उनके पत्र से, जो बाद में उद्धृत किया गया है, बिल्कुल स्पष्ट है।

10 यह कोंत के लापरवाह और गैर-जिम्मेदार वक्तव्यों का साधारण नमूना है। द्वारकानाथ की मृत्यु क्लेरेन्डन होटल में नहीं हुई थी और न कोंत और जेनेराल वेंत्यूरा की बांहों में।

उनकी मृत्यु सेन्ट जार्ज होटल में हुई थी, और उस समय उनकी परिचर्या में व्यस्त अनेक अंग्रेज डाक्टर और मित्र और सगे-संबंधी वहां उपस्थित थे। न तो किसी डाक्टर ने, न सरकारी मृत्यु-प्रमाणक ने और न पोस्ट मार्टम परीक्षण ने ही (जिसका उल्लेख किशोरी चंद मित्रा ने किया है) इस बात का जिक्र किया है कि उन्हें 'खून चढ़ाया गया था, क्योंकि उनकी रक्त-शिराओं में खून की जगह पानी ही पानी था।' और न किसी इंग्लिश अखबार या अन्य उपस्थित व्यक्ति ने मृत्यु-शैय्या पर पड़े व्यक्ति के पास कोंत फई द कोंशे या जेनेराल वेंत्यूरा की मौजूदगी का संकेत किया है।

11 यह स्पष्ट नहीं कि यहां द्वारकानाथ की किस पेरिस-यात्रा की ओर संकेत है। लगता है कि यहां भी तथ्य खल्तमल्त हो गये हैं।

12 अनुवादक की टिप्पणी: यह शब्दानुवाद है, लेकिन अर्थ स्पष्ट नहीं है। इसका शायद यह अर्थ हो कि कुछ दांत काले थे।

13 स्वयं कोंत फई द कोंशे का फुटनोट है: 'हमें मालूम है कि अभागिन लोला का क्या हश्र हुआ। कलकत्ते में अपने पति को त्यागने के बाद उसे एक अंगेज भगा ले गया और मेड्रिड में उसे अकेला छोड़ कर गायब हो गया। वहां से आकर वह पेरिस में असहाय फंस गई, जहां सड़क के किनारे के एक थियेटर में उसने अपने आपको एक नर्तकी के रूप में पेश किया, और लोगों ने निर्दयतापूर्वक सीटियां बजा कर उसका मखौल उड़ाया। रंगमंच से विरक्त होकर वह वेश्या बन गई। बाद में वह म्यूनिख चली गई, जहां उसने सम्राट लुई को अपने प्रेम-पाश में फांस लिया, जिसने उसे सेनोरा द्यू बोरे का नाम देकर अभिजातवर्गी समाज में भयंकर बदनामी के बावजूद, कोंतेस ऑफ लैंड्सफेल्ड की उपाधि से मण्डित कर दिया और उसका चित्र बावेरिया के अभिजात-वर्ग और पूंजीपति वर्ग की अतीव सुदंरियों के संकल्न में शामिल करवा दिया। राजनयिक दल के अधिकांश व्यक्ति सम्राट की कृपापात्र इस औरत के यहां भीड़ लगाये रहते, लेकिन फ्रांस के मंत्री, बारों द बुरगोयन लगातार उसके यहां जाने से इन्कार करते रहे।'

मूल **संस्मरण** के इस फुटनोट में शनिवार, सितम्बर 1, 1979 के **स्टेट्समैन वीकली** (कलकत्ता) के अंक में प्रकाशित यह पैराग्राफ परिशिष्ट के रूप में जोड़ देना चाहिए:

'अधिकांशतः कलकत्ता-निवासी भारत के साथ मदाम ग्रांड के संबंध के बारे में परिचित हैं, लेकिन चंद लोगों को ही मालूम है कि एक और सुंदरी ने, जिसे बाद में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई, कलकत्ते में कुछ वर्ष बिताये थे। लोला मांत ने रूस के जार निकोलय प्रथम को अपने ऊपर मोहित कर लिया, वह बाल्जक और अलैक्जेन्डर ड्यूमा (वरिष्ठ) की मित्र थी, फ्रांज लिज्त के साथ उसका गहरा प्रणय-संबंध रहा, फिर वह बावेरिया-नरेश लुडविग प्रथम की रखेल बन गई और उसकी सरकार की नीतियों को प्रभावित करती रही।

'लोला मांत उसका कृत्रिम नाम था। उसका असली नाम मेरी डोलोरेस गिल्बर्ट था और वह एक अंग्रेज फौजी अफसर की बेटी थी। आर०पी० गुप्ता के अनुसार उसने अपने यौवन के आरंभिक दिन कलकत्ते में गुजारे थे और वह 1841 में, तेईस वर्ष की आयु में कलकत्ता छोड़ कर चली गई थी, जब उसके पति ने, जो स्वयं एक फौजी अफसर था, किसी और स्त्री के प्रेम में पड़ कर उसे त्याग दिया था।

'मेरी गिलबर्ट पालकी को सबसे तकलीफदेह सवारी समझती थी, लेकिन "(अपने) इंसानी घोड़ों का गीत" उसे बड़ा दिलचस्प लगता था, "जिसे वे दौड़ना शुरू करते ही

गुनगुनाने लगते थे, और उसने उस गीत का अपने शब्दों में पाठ नोट कर लिया था—'ज्यादा वजन नहीं है/कबड्डा/नहीं बाबा/कदम तेज बढ़ाओ। कबड्डा/सुंदर बाबा/कबड्डा।'

"कबड्डा," इसमें 'खबरदार' का आंग्ल रूप है।

बारह

अंतिम दिन

पेरिस में तीन महीने के व्यस्त और उत्तेजक प्रवास के बाद, जिसमें उन्होंने निश्चय ही अपने जीवन की शमा दोनों सिरों से जलायी होगी, द्वारकानाथ 18 मार्च, 1846 को लंदन वापस आ गये। लेकिन उनकी जीवन-शक्ति की ओजस्विता ऐसी थी—जबकि दुर्भाग्य से उनके स्वास्थ्य की तितिक्षा इतनी नहीं थी— कि लौटने के बाद कुछ दिनों तक उनके अंदर थकान, शिथिलता या चिन्ता का कोई चिन्ह नजर नहीं आया। कम से कम उनका भानजा नवीनचन्द्र ऐसा कुछ भांपने में असमर्थ रहा, क्योंकि अपने ममेरे भाई गिरीन्द्रनाथ को उसने अपने पत्र में लिखाः

'मेरे मामा कल पेरिस से पूर्ण स्वस्थ अवस्था में लौट आये, इतनी स्वस्थ दशा में कि जरा भी थकान महसूस किए बगैर वे अब अपनी इंगलिश पार्टियों का आनंद ले सकेंगे। वे अक्सर घर पर डिनर कभी नहीं खाते....।' 7 अप्रैल को उन्होंने फिर लिखाः 'बाबू पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं और नगेन्द्र भी। नगेन्द्र की पढ़ाई अच्छी तरह चल रही है, वह कड़ी मेहनत कर रहा है और सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। उस दिन लार्ड ऑकलैंड बता रहे थे कि उन्होंने सारे इंगलैंड में ऐसा नौजवान नहीं देखा जो इतने परिश्रम से अध्ययन करता हो, जितना नगेन्द्र इस उम्र में कर रहा है। इससे बाबू बहुत प्रसन्न हुए।' एक बार फिर 27 अप्रैल को उन्होंने लिखाः 'मेरे अच्छे मामा अपना स्वास्थ्य आश्चर्यजनक रूप से ठीक रखे हैं, और अब वे कभी-कभी कलकत्ता वापस जाने की बात भी करते हैं, लेकिन इस आनंदकारी घटना के लिए तारीख या समय नहीं निश्चित करते, और मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती। खैर, कोई चिन्ता नहीं, हम लोग जल्द ही तुम सबसे मिलेंगे। मैं सोचता हूं कि एक साल की अवधि में...'

19 मई का पत्र कलकत्ते के अंदर स्टॉक्वीलर का दिवाला निकल जाने की, और द्वारकानाथ द्वारा इस आड़े वक्त में उसका बचाव करने की सूचना देता है, उसमें

'मई के सुहावने मौसम का — गाड़ी में जाते समय फ्रांस के सम्राट लुई फिलिप पर गोली चलाने...' का जिक्र है। फिर किंचित हल्के अंदाज में सूचित किया गया है: 'मेरे ख्याल में तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य नहीं होगा कि एक या दो हफ्तों के अंदर ही हर मैजेस्टी महारानी प्रसव-गृह में पहुंच जायेंगी। वह शख्स अलबर्ट ऐसा वफादार खादिम है जैसा इंगलैण्ड की किसी महारानी के पास नहीं रहा।' एक भारतीय मुस्लिम यात्री बजलूर रहीम के बारे में कुछ विद्वेषपूर्ण शब्द लिखने के बाद, उन दो मेडिकल विद्यार्थियों की सफलता का जिक्र है, जिनकी इंगलैण्ड-यात्रा का खर्च द्वारकानाथ ने उठाया था: 'तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जो मेडिकल लड़के हमारे साथ आये थे, उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय के छै सौ यूरोपीय विद्यार्थियों को मात दी है। उनमें से एक को तुलनात्मक शरीर-रचना-विज्ञान में प्रथम पदक (स्वर्ण) मिला है, उसका नाम सूरजी कुमार चकरबट्टी है; और दूसरे को दो भिन्न शाखाओं में, जो मेरे विचार में शायद रसायन-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान हैं, दो रजत पदक प्राप्त हुए हैं। यहां के लोग यह देखकर काफी आश्चर्यचकित हुए हैं कि 6000 मील की दूरी से आये विद्यार्थी यहां के देशज लड़कों से बाजी मार ले गये हैं। मुझे आशा है कि यह बात अन्य नौजवानों को भी यहां आने और इन विद्यार्थियों की मिसाल का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित करेगी।

'बाबू बिल्कुल ठीक हैं और नगेन्द्र भी।'

यद्यपि उनका अंग्रेजी का ज्ञान अभी उतना नहीं था जितना अपेक्षित है, लेकिन नवीनचंद्र अपनी टिप्पणियों में अधिक खुल कर और आजादी से बात कहने लगे थे, जो उनके संगी-साथियों के (मुख्यकर उस कंपनी के सहयोगियों के जहां वे काम सीख रहे थे।) प्रभाव का सूचक है। 2 जून के पत्र में, अपनी मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम का बखान करने के बाद, वह सिखों पर अंग्रेजों की विजय के बारे में अपनी खुशी का इजहार करते हैं—इस तरह का द्वैत-भाव उन दिनों विरल नहीं था....' लेकिन मैं तुम्हें इससे भी बड़ी खुशी का समाचार बता रहा हूं, जो दुनिया के हर कोने में बसे ब्रिटिश प्रजा-जनों के लिए दिलचस्पी रखती है। मेरा मतलब है, राजकुमारी (पांचवी) का जन्म और मैं सोचता हूं कि वह शख्स प्रिंस अल्बर्ट **अपने ढंग** का सबसे कृतज्ञ नौकर है, जैसा पहले कभी कोई नहीं रहा, और वह अपना कर्तव्य कभी नहीं भूलता, इसलिए उसे बिना कोई काम किए वेतन मिलता रहता है....।' फिर एक पैराग्राफ अंग्रेज महिलाओं के तथाकथित सौंदर्य के बारे में है, 'जो प्रायः असुंदर होती हैं। जो लोग उन्हें परियां समझते हैं (अपने मामा का प्रच्छन्न उपहास, जो अक्सर इस शब्द का प्रयोग करते थे।) परियों के बारे में उनकी कल्पना बड़ी दरिद्र है।' लेकिन उनमें से कुछेक जो सुंदर हैं, 'वे इस आसमान के नीचे सबसे सुंदर जीव हैं।' फिर भी 'मैं तुम्हें यकीन दिला सकता हूं कि एक पूर्वात्य पुरुष के जनानखाने में उससे कहीं ज्यादा संख्या में सुंदर और मनमोहिनी युवतियां होती हैं, जितनी कि अल्वियोन के स्वच्छन्द, अनियंत्रित हरमों के अंदर होती हैं।... हम सब पूर्णतः

स्वस्थ हैं। बाबू अगले साल के अक्तूबर में इंगलैंड छोड़ कर जाने की बात करते हैं। मेरा ख्याल है कि इसे और नहीं टाला जायेगा....।'

10 जून के अगले पत्र में उन्होंने सूचित किया: 'बाबू इस महीने के अंत तक स्विट्जरलैंड जाने की बात करते थे, लेकिन सौभाग्य से यह यात्रा पूरा प्रबंध हो जाने तक के लिए स्थगित हो गई है। आर०सी० जेनकिन्स हर रोज उन्हें कलकत्ता लौटने के लिए तंग करते हैं, लेकिन मेरे मामा कहते हैं कि वे तब तक कोई समय निर्धारित नहीं कर सकते जब तक उन्हें फुल्टन का पत्र नहीं मिलता जो इस समय तुम्हारी जमींदारी के मामलों की देखरेख करने के लिए कलकत्ता गए हैं।....' इस बीच, 'कोई शाम ऐसी नहीं गुजरती जब हम किसी थियेटर में नहीं होते, जिनकी संख्या यहां काफी बड़ी है।...'

इससे साफ जाहिर है कि भानजे से (और देखा जाय तो बेटे से भी, जिसकी डायरी अपने आप में एक दिलचस्प दस्तावेज है) द्वारकानाथ बहुत कम मिलते थे, और उन्हें अपने दिल की बात बताना आवश्यक नहीं समझते थे। ये दोनों कभी-कभी ही उनकी झलक देख पाते थे। और उनके उत्साहपूर्ण आचरण-व्यवहार और उनकी अविरत कार्य-व्यस्तता और आमोद-प्रमोद में भाग लेने की प्रवृत्ति से उन्होंने यह गलत अनुमान कर लिया था कि वे 'अपने स्वास्थ्य को उल्लेखनीय रूप से ठीक रखे हुए हैं।' सच तो यह है कि पेरिस की फिजूलखर्चियों के परिणामस्वरूप उनके गिरते हुए स्वास्थ्य और बढ़ती हुई आर्थिक कठिनाइयों के साथ उनकी चिन्ताएं भी बढ़ती जा रही थीं। वे कितने परेशान थे, यह उनके इस पत्र से जाहिर है जो उन्होंने अपने पुत्र देवेन्द्रनाथ को लिखा था। इसे पूरा का पूरा उद्धृत करना उपयोगी होगा, क्योंकि यह उनके हाथ का लिखा अंतिम दस्तावेज है, जो सुरक्षित बचा है:

लंदन 19 मई 1846

मेरे प्रिय देवेन्दर,

साउथम्प्टन की डाक कल जायेगी और मैं इस अवसर का लाभ उठा कर तुम्हें उन पार्सलों के लदान का बिल भेज रहा हूं जो राबर्ट स्मॉल—कप्तान स्कॉट की मार्फत जहाज से जा रहे हैं। उनमें एक बड़ा बक्स है, जिसमें गिब्स की संगमरमर की प्रतिमा है; बेहद कीमती है, जिसे उस वक्त तक दफ्तर के गोदाम में सबसे खुश्क जगह पर रखना, जब तक उद्यान-भवन में एक गैलरी नहीं जोड़ दी जाती—जिसके बारे में तुम्हें अलग से हिदायतें प्राप्त होंगी। बाकी और तमाम चीजों को उद्यान-भवन में लै जाकर अत्यंत सावधानी के साथ खोला जाय, क्योंकि उनमें सिलखड़ी मिट्टी की मूर्तियां और चीनी के बर्तन हैं। रखने से पहले बेहतर होगा कि बर्किंग यंग ऑर्गन के पीपों को देखभाल लें। उनमें से कुछ तो इतालवी धुनें हैं और बाकी गीति-नाट्य (ऑपेरा) हैं।

'मैं वहां पर मिस्टर फुल्टन के पहुंचने और मेरे मामलों के बारे में वह क्या कर रहे

हैं, यह जानने के लिए बेहद उत्सुक हूं। दो महीनों से पहले तो उनका पत्र पाने की मैं आशा नहीं करता। सर थास टर्टन से कहना कि मुझे मालूम है कि सार्वजनिक कार्यों में उनका समय इतना व्यस्त है कि उन्हें लिख कर कष्ट देने से कोई लाभ नहीं था, जबकि मैं उन्हें सिवाय अपने बारे में और कोई खबर नहीं दे सकता था, जिसे वे तुम से या मेरे साझेदारों से भी जान सकते थे। मैंने लेडी टर्टन से, उनके लंदन पहुंचने पर, भेंट की थी और कल वे मुझसे मिलने के लिए आयी थीं। वे पहले से स्वस्थ दिखायी दे रही थीं और कुछ महीनों में बिल्कुल ठीक हो जायेंगी।

'मेरा एक मित्र दिल्ली का बना एक छोटा-सा स्कार्फ चाहता है, लाल रंग का, जिसका हाशिया सोने की जरी का हो – वैसा ही जैसा कि तुमने मुझे पहले भेजा था और इसे तुम मुझे भेजने वाली वस्तुओं के साथ अगले ही पार्सल में भेज दो। उस पर उसकी कीमत की पर्ची भी लगी रहे।

'22 मई — मुझे अभी-अभी तुम्हारा 8 अप्रैल का पत्र मिला है और (मैं) तालुक शाहूश की बिक्री के बारे में राजा बर्दोकान्त की लापरवाही और स्वयं तुम्हारे मूक-अश्रुओं से बेहद चिढ़ गया हूं। जहां तक राजा बर्दोकान्त का संबंध है, उसे अपने मामलों की रत्ती भर भी परवाह नहीं है— लेकिन तुम्हारे नौकर इतनी बेशर्मी से इन मामलों की खबर देने में गफलत कर सकते हैं, यह मुझे आश्चर्य की बात लगती है। अब तक मैंने बाहरी हल्कों से जो कुछ सुना है और तुम्हारे अमले के बारे में मिस्टर गॉर्डन ने जो कुछ मुझे लिखा है, उससे मुझे यकीन हो गया है कि ये रिपोर्टें सच हैं। मुझे तो सिर्फ इस बात पर ताज्जुब हो रहा है कि मेरी सारी जायदादें क्यों नहीं तबाह हो गईं। मुझे यकीन है कि तुम्हारा अधिकांश समय अखबारों के लिए लिखने और मिशनरियों के साथ लड़ने में लगता है, न कि इन महत्वपूर्ण मामलों पर ध्यान देने और उनको बचाने में, जो काम तुमने बजाय खुद करने के अपने नौकरों के हाथों में सौंप दिया है। अगर मेरी सेहत भारत की गरमी और जलवायु बर्दाश्त करने लायक होती तो मैं खुद इन मामलों की देखभाल के लिए फ़ौरन लंदन छोड़ कर चल देता, लेकिन अब मेरे सामने एक ही विकल्प है कि मैं हाउस को यह अधिकार दे दूं कि वह गिरवी रखी सारी जमीनों को निकाल दें और मुफस्सिल की जितनी भी जमींदारियां बिक सकें, जल्दी से जल्दी बेच दें।

'मैं सुनता हूं कि कोई चीज ठीक नहीं हो रही, हम हर मुकदमा हार रहे हैं— दूरबासिनी और रामिस्सकोपोर गड़बड़ी में पड़ गये हैं और बाकी दूसरे भी जल्द इसी दशा को पहुंच रहे हैं। चूंकि डाक कल सुबह जा रही है, इसलिए मुझे दूसरे मामलों पर शांतिपूर्वक और आराम से लिखने का मौका नहीं दे रही। देबी रे, ग्रींडर और रामचंदर से कहना कि मुझे उनके पत्र मिल गये हैं और अगली डाक तक उनका उत्तर स्थगित करना पड़ेगा–आशुतोष दे से भी यह कहना।

'मुझे उम्मीद है कि गार्डन रानी कात्यानी (?) के कम्पनी संबंधी कागजात इस पत्र के पहुंचने से पहले ही ठीक ठाक करवा लेंगे। देवी रे से यह भी कहना कि अगर

उन्हें दूरबासिनी के लिए खरीदार मिल जाय तो मुझे बेचने में कोई ऐतराज नहीं होगा, लेकिन 2,50,000 रुपये, यानी दो लाख पचास हजार रुपयों से कम में नहीं। हर सूरत में इतनी कीमत के लायक तो यह है ही और अगर कोई इसका ठीक से प्रबंध करेगा, तो उसे 30/40,000 रुपये सालाना का मुनाफा दे सकती है। खरीदार बड़ी आसानी से कलक्टर की बिक्री के माध्यम से इसको बिकवा सकता है, जिससे उसे जमीनों की तमाम पुरानी पट्टेदारियों को रद करने का मौका मिल जायेगा – हमारे लिए कलक्टर की बिक्री और हमारी खरीद हमेशा बेनामी सौदे के रूप में नजर आयेगी।

'जहां तक चंदर के माहवारी भत्ते का सवाल है, चूंकि उसे कुछ नौकर रखने का खर्च ही चाहिए, मैं सोचता हूं कि 100/- रुपया महीना काफी होगा। जब तक उसे कोई दूसरी नौकरी नहीं मिल जाती, तुम उसके लिए यह रकम बांध सकते हो।

'मैं देखता हूं कि मिस्टर ईलियट चौरंगी का मकान छोड़ कर चले गये हैं। उसे बेच देने की कोशिश करो, क्योंकि किरायेदार पाना हमेशा कठिन होता है।

'अगर जमींदारियों के सहृश और मुल्लोय अभी तक मिस्टर मेकेन्जी के प्रबन्ध में नहीं दिये गये, तो एक क्षण की भी देर किये बग़ैर यह कर डालो।

'घर पर सभी को मेरा स्नेह,

'विश्वास करो तुम्हारा सस्नेह

द०/- द्वारकानाथ टैगोर

निम्नलिखित पंक्तियां पुनश्च लिखे बिना एक अलग पन्ने पर इस पत्र में जोड़ी गई थीं:

'मिस्टर हैलीडे ने मुझे लिखा है कि चर जमीनों के लिए वे एक नये कानून का प्रस्ताव कर रहे हैं और मैंने इंग्लिशमैन में इसकी संक्षिप्त खबर भी देखी है। तुम मुझे इन सारे मामलों के बारे में अच्छी तरह सूचित करते रहा करो और उनके बारे में मुझे हमेशा लिखते रहो, क्योंकि यद्यपि मैं कलकत्ते में मौजूद नहीं हूं, लेकिन मैं यह कर सकता हूं कि इस देश में उन्हें सही ढंग से कार्यान्वित किया जाय, इसलिए जब कभी जमीनी जायदाद या कानूनी मसलों के बारे में कोई नया ऐक्ट प्रस्तावित किया जाय तो तुम मुझे अखबारों में से इसकी खबर की कतरनें काट कर भेज दिया करो। अखबारों में मिस्टर डफ से उनके कालेज के बारे में लड़ाई करने की अपेक्षा ये कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण बातें हैं। द: डी०टी० इसके नीचे फिर लिखा है:

'तुम्हारा 19 नवंबर का पत्र अभी मिला है, लेकिन इस डाक से उसका उत्तर देने का अब समय नहीं है।'

मुख्य पत्र के पृष्ठ भाग में मोटे अक्षरों में लिखा था: '**9 मई (?) 1846 देवेन्दर नाथ टैगोर स्क्वायर, कलकत्ता।'**

इस तथ्य के अलावा कि यह द्वारकानाथ के हाथ का लिखा अंतिम उपलब्ध पत्र है

(दरअसल उनके अधिकांश पत्र, नोट्स, डायरियां आदि अपने हाथ से लिखी हुई हैं, क्योंकि उन दिनों तक टाइप-राइटर नहीं बने थे, और यद्यपि उनका एक सेक्रेटरी था और वे एक से अधिक लिपिक रखने में समर्थ थे, लेकिन वे अपने व्यक्तिगत पत्र स्वयं अपने हाथ से लिखना ही पसंद करते थे) इस पत्र के मजमून का अपने आप में महत्व है। सबसे पहले तो यह बात स्पष्ट है कि आर्थिक चिन्ताएं उनके मन पर बोझ बनी हुई थीं और वे उन सारी जमीनों-जायदादों को बेचने के लिए उत्सुक थे, जो फालतू या अनावश्यक थीं। यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि घर से इतनी लम्बी अनुपस्थिति और लंदन और पेरिस में रंगरलियां मनाने के बावजूद अपनी जमीन-जायदाद के मामलों की उनकी जानकारी ताजा और मुकम्मल थी और कठिनाइयों का सामना किस तरह करना है, इसके बारे में उनके विचार स्पष्ट थे। यह बात तो और भी जाहिर है कि उन्हें अपने पुत्र देवेन्द्रनाथ की क्षमता और लगन में जरा भी विश्वास नहीं था कि वे उनकी जमींदारियों के हितों की समुचित देखभाल कर सकेंगे। पत्र में बार-बार हल्की फटकारें दी गई हैं कि देवेन्द्रनाथ उन्हें नई पैदा होने वाली महत्वपूर्ण समस्याओं की समय पर सूचना देने से चूक गये थे और कि जमींदारियों का प्रबंध उन्होंने एकदम अपने मातहतों पर छोड़ रखा था। द्वारकानाथ इतने संभ्रांत और शालीन व्यक्ति थे और इतने स्नेहशील पिता थे कि वे अपने पुत्र और वारिस को सचमुच खुले शब्दों में मूर्ख और निकम्मा नहीं पुकार सकते थे, लेकिन संभव है कि हताश होकर मन में उन्हें ऐसा समझते हों। (आश्चर्य है कि जीवन में आगे चल कर जब एक विशाल परिवार का दायित्व कंधे पर आ पड़ा, तो बेटा, जो उस समय तक एक महर्षि के रूप में सब लोगों की श्रद्धा का पात्र बन चुका था, एक सुयोग्य और समझदार जमींदार और कुलपिता भी सिद्ध हुआ।)

द्वारकानाथ ने देवेन्द्रनाथ को निश्चय ही अनेक पत्र लिखे होंगे, और दूसरे पुत्र और अन्य सगे-संबंधियों को तथा अपने कारोबार में यूरोपियन साझीदारों को भी कुछ पत्र अवश्य लिखे होंगे। खेद की बात है कि इनमें से एक सुखद संयोग के कारण केवल यह पत्र ही, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, बाकी बचा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वे सब (या उनमें से अधिकांश) लापरवाही के कारण नष्ट हो जाने दिए गये, या संभव है कि, जैसा उनके प्रपौत्र और जीवनीकार क्षितीन्द्रनाथ ने आरोप लगाया है, वे जान-बूझ कर नष्ट कर दिये गये थे? कौन बता सकता है?

1846 की ग्रीष्म ऋतु इंगलैड में असाधारण रूप से गरम रही होगी, क्योंकि नवीनचंद्र ने अपने 19 जून के पत्र में हद से ज्यादा गरमी की शिकायत की है, और गृहस्मारी से पीड़ित होकर, अपनी अतिरंजन की आदत के मुताबिक, उन्होंने लंदन की गरमी को 'कलकत्ता से 100 फीसदी अधिक' बताया है। उनके मामा का स्विट्जरलैण्ड की यात्रा का विचार इस गरमी के कारण था या उनके मन में कोई व्यापारिक परियोजना बन रही थी; यह ज्ञात नहीं है। एक असाध्य आशावादी

द्वारकानाथ, क्षितिज पर एकत्र होते काले बादलों के बावजूद, लगातार आशा करते रहे कि अंततः सब कुछ ठीक हो जायगा। वे जल्द ही पुनः स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त कर लेंगे, जैसा कि पहले भी कई बार हो चुका था और वे समय रहते भारत लौट कर अपने तमाम मामलों को ठीक कर लेंगे। उन्हें अपनी क्षमता पर पूरा भरोसा था। उन्होंने मुट्ठीभर साधनों से अपने परिश्रम और बुद्धि के सहारे अपनी दौलत कमायी थी और अपने व्यापारिक साम्राज्य का निर्माण किया था, और अगर इसमें कुछ दरारें नजर आने लगी थीं, तो वे जल्द ही इस टूट-फूट को दुरुस्त कर लेंगे। इंग्लिश समाज में उनका स्थान काफी ऊंचा बन चुका था और लौटने पर फिर खुली बाहों का स्वागत होगा और संभव है कि वे पार्लियामेंट की सीट और सर का खिताब प्राप्त कर सकें। उन्हें, लगता है कि, इसका कोई पूर्वाभास, कोई पूर्वानुभूति नहीं थी कि उनका सितारा जो इतनी दीप्ति के साथ चमक रहा था, अब डूबने को था।

संकट की घड़ी अचानक आयी। 30 जून को इन्वरनेस की डचेज के यहां डिनर खाते समय, द्वारकानाथ को अचानक कंपकंपी का दौरा पड़ गया। क्या यह उस भयानक मलेरिया का प्रकोप था, जो उन्हें कलकत्ता की दलदलों की देन था और जो एक लंबे अरसे से उनके अंदर सोया पड़ा था, किन्तु अब अचानक आक्रामक रूप में जाग पड़ा था? मेहमानदारिन ने, जो उनकी परवाह रखती थीं, दौड़ कर उनको अपना समूर का कोट ओढ़ा दिया, लेकिन उनकी कंपकंपी काबू में नहीं आयी।

इस दुर्घटना के बाद द्वारकानाथ ने अपने सेंट जार्ज होटल के कमरे में शैया पकड़ ली। उनके व्यक्तिगत फिजीशियन डा० मार्टिन तथा दो अन्य सलाहकार, डा० ब्राइट और डा० चेंबर्स उनकी परिचर्या में थे।[3] जब उनकी दशा में कोई सुधार नहीं हुआ तो उन्हें वर्दिन्ग ले जाया गया, जो ससेक्स में एक समुद्र तटीय स्वास्थ्य-स्थल था। वहां प्रथम श्रेणी के होटल (मार्टिन होटल) में उनके और उनके संगी-साथियों के लिए, जिनकी संख्या सत्रह थी, जिनमें उनके डाक्टर मार्टिन, प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर सेफ, उनके जर्मन संगीत-शिक्षक, एक दुभाषिया तथा अन्य लोग शामिल थे, कमरों का एक सेट आरक्षित कर लिया गया। इन सत्रह व्यक्तियों में उनके दो निजी भारतीय नौकर भी थे, एक मुसलमान बावर्ची और एक उनका खिदमतगार हूली, जो अपने मालिक के बेहद वफादार सेवक थे।[4]

सोलह साल के बाद द्वारकानाथ के पौत्र सत्येन्द्रनाथ, जो इण्डियन सिविल सर्विस (आई०सी०एस०) में दाखिल होने वाले प्रथम भारतीय थे, अपने दादा की बीमारी और वहां पर ठहरने की परिस्थितियों की व्यक्तिगत रूप से जांच-पड़ताल करने के लिए वर्दिन्ग गये। अपने चचेरे भाई गनेन्द्रनाथ को उन्होंने 25 अगस्त 1862 के पत्र में वर्दिन्ग से लिखा: 'उस दिन मैं होटल की मालकिन से मिला, जो उन दिनों यहां मौजूद थीं। उन्होंने कृपा करके दादा के इस जगह प्रवास के बारे में कुछ ब्यौरे बताये। उनके साथ सत्रह नौकर थे, जिसमें दो भारतीय नौकर भी थे। उनके

सेक्रेटरी के अलावा, एक दुभाषिया, एक जर्मन संगीतज्ञ और एक व्यक्ति जो उनके डाक्टर मार्टिन समेत पांच लोगों की टीम थी, जो हर समय उनके साथ रहती थी। मेरे चाचा (नगेन्द्रनाथ) और नवीन बाबू उस समय उनके साथ नहीं रहते थे, लेकिन उन्हें केवल एक या दो बार देखने के लिए आये थे।

'मेरे दादा का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। उनकी बेचैनी बेहद बढ़ गई। वे हर सुबह 5.30 या 6 बजे उठ जाते और हवाखोरी के लिए गाड़ी में बैठ कर निकल जाते, फिर लौट कर शायद एक संक्षिप्त नींद लेते। थोड़ी-सी संगतरे की जेली और थोड़े से चावल और शोरबा के अलावा, जो उनका नौकर हूली पकाता था, वे और कुछ नहीं खाते थे, और क्लैरेट के अलावा और कोई मदिरा नहीं लेते थे। वे हर समय एक सुंदर काश्मीरी शॉल लपेटे रहते थे और महिलाएं उनकी एक झलक देखने का अवसर पाने के लिए उनके दरवाजे पर जमा हो जाती थीं। क्लीवलैण्ड की डचेज हर रोज उनसे मिलने के लिए आती थीं, और इन्वरनैस की डचेज उन्हें हर रोज पत्र लिखती थीं। मुझे यह सब सूचना देने वाली महिला की बहन मिसेज ब्राऊन उन दिनों इस होटल की मालकिन थीं और दादा प्रतिदिन धार्मिक कर्तव्य की तरह उनके साथ बैठ कर एक गिलास क्लैरेट का पीते थे। इसका क्या मतलब हो सकता है, इस बारे में केवल अनुमान ही किया जा सकता है। संभव है कि वे मिसेज ब्राऊन की छत के नीचे बैठ कर शांति का सुख लेना चाहते थे। वे अत्यंत मिलनसार व्यक्ति थे और जो भी उनके यहां आता था, उसके साथ अत्यंत शालीन व्यवहार करते थे।

'हालांकि वे बहुत बीमार थे, उनके दिमाग का संतुलन कभी नहीं गड़बड़ाया। वे कभी किसी चीज की शिकायत नहीं करते थे और हर समय खुश नजर आते थे। अदना से अदना नौकर भी उनकी सर्वव्यापी वदान्यता में हिस्सेदार था। वे अपने देश की आदतों और रस्मों का पालन करते रहे। वे भारतीय ढंग की पोशाक पहनते थे। वे अपने हुक्के के बगैर कभी न रहते, जिसे उनका खिदमतगार हूली भर कर ताजा करता रहता था। उनके पास कर्पर की बनी एक मसालेदानी थी, जिसमें आठ खाने थे, जो विभिन्न प्रकार के सुगंधित मसालों से भरे रहते थे। लगता था कि गरमी से उन्हें बहुत कष्ट रहता था, हमेशा खिड़कियां खोल कर सोते थे, नियमित रूप से हर सुबह स्नान करते थे और बरफ के बड़े शौकीन थे। उनका वफादार नौकर हूली दिन-रात उनकी खिदमत में लगा रहता था। वह हमेशा उनके बेड-रूम के बाहर दरवाजे पर सोता और एक किस्म की चटाई पर उनके निकट बैठ कर घंटों तक उनके तलवे सहलाता रहता। धीरे-धीरे दादा की सेहत उनका साथ छोड़ने लगी। वे जानते थे कि उनका अंत समय निकट था, और जब कभी उनसे कोई पूछता कि वे कैसे हैं, तो अपनी सौजन्यता और सहृदयता से, जो उनके स्वभाव की विशिष्टता थी, वे उत्तर देते, "मैं संतुष्ट हूं।" क्लान्ति क्रमशः बढ़ती गई और सोचा गया कि उन्हें वहां से हटाना ही उनके हित में होगा। 27 जुलाई को उन्होंने यह स्थान छोड़ दिया....."[5]

द्वारकानाथ इतने समझदार व्यक्ति थे कि यह संभव ही नहीं कि उन्हें यह चेतना न रही हो कि अब वे इने-गिने दिनों के ही मेहमान थे। उन्होंने कुछ दिनों पहले ही, जैसा कि उन्होंने देवेन्द्रनाथ को सूचित किया था, अपने बेलगछिया उद्यान-भवन के लिए कला-कृतियों के क्रेट भेजे थे, जहां एक नई गैलरी के निर्माण की उनकी योजना थी। ये सारे स्वप्न और योजनाएं अब चकनाचूर हो चुकी थीं। फिर भी इस कटु निराशा और साथ ही असह्य शारीरिक पीड़ा को वे बड़े धैर्य और शांत-चित्त से झेलते रहे और जब कोई पूछता कि वे कैसा महसूस कर रहे हैं, तो वे एक मुस्कान के साथ अस्फुट स्वर में उत्तर देते थे, 'मैं संतुष्ट हूं।' इससे जाहिर है कि अपने दुनियादार और भोगवादी तौर-तरीकों के बावजूद, उनके अंतर में आध्यात्मिक शक्ति का विपुल भंडार था।

हालांकि उनका अंत निकट था, वे फिर भी इतने चैतन्य और सक्रिय थे कि अपनी गाड़ी में बैठ रोज हवाखोरी के लिए बाहर जाते थे और आंगतुकों से मिलते थे, जिनमें से कुछ तो उनके घनिष्ठ मित्र होते थे और कुछ मित्र और व्यापार में साझेदार भी। उन्होंने अवश्य ही इन लोगों से कहा होगा कि भारत में अपने विशाल साधनों और जिम्मेदारियों का वे क्या कुछ करना पसंद करेंगे और उनसे अपनी व्यापारिक योजनाओं, बेलगछिया के अपने प्रिय उद्यान-गृह और उसमें संग्रहीत कला-भंडार के बारे में चर्चा की होगी। उन्होंने शायद कोई नया वसीयतनामा भी लिपिक को लिखवाया हो और अपनी स्वाभाविक दानशीलता से उन सबको, जिन्होंने उनके वफादार नौकर हूली की तरह दिन-रात एक करके उनकी सेवा की थी, पुरस्कृत किया हो। लेकिन इनमें से एक भी चीज को, न उनके वार्तालापों को, और न उनकी हिदायतों को आने वाली पीढ़ियों के लिए किसी ने भी लिख कर सुरक्षित नहीं किया, यहां तक कि उनके प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर साफे ने भी नहीं। यह कि उन्होंने ये बातें रिकार्ड न की हों, इस पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। ये सब जिम्मेदार लोग थे जो द्वारकानाथ को श्रद्धा और प्यार करते थे, और यह अनुमान तर्कसंगत लगता है कि उन्होंने तमाम आवश्यक ब्यौरे उनके परिवार को या मित्रों को या दोनों को प्रेषित कर दिये होंगे। इस अत्यंत मूल्यवान रिकार्ड का क्या हुआ, यह एक रहस्य है।

सागर-तट की हवा ने उनको कोई फायदा नहीं पहुंचाया, और उनकी हालत लगातार बिगड़ती देख कर डाक्टरों ने उनको फिर वापस लंदन ले जाना ही बेहतर समझा। 27 जुलाई को उनकी हालत सहसा और भी खराब हो गई। अगस्त के **मॉर्निंग क्रॉनीकल** ने सूचना प्रकाशित की: 'हमें यह जान कर खेद है कि सुप्रसिद्ध बाबू द्वारकानाथ टैगोर अस्वस्थता के तीव्र आक्रमण से पीड़ित हैं, जिससे उनके मित्रों को गहरी चिन्ता हो रही है।... उनकी बिगड़ती दशा के सारे संकट का भय पैदा करने वाले लक्षण, जो हमारे विचार में, जिगर में सूजन बढ़ जाने के कारण हैं, तीन दिन पहले उभर कर सामने आये थे और तब से वे अत्यंत चिन्ताजनक हालत

में हैं। डा० चेम्बर्स और लोअर ग्रॉसबीनर स्ट्रीट के डा० मार्टिन उनकी अनवरत परिचर्या में लगे हुए हैं। कल शाम को इन प्रसिद्ध डाक्टरों ने घोषणा की थी कि "द्वारकानाथ टैगोर की दशा पिछले दो दिनों की अपेक्षा कुछ बेहतर थी।"

लेकिन उनके दिन पूरे हो चुके थे और उसी दिन शनिवार 1 अगस्त की शाम को 6 बज कर 15 मिनट पर अल्बे मार्ले सड़क पर स्थित सेन्ट जार्ज होटल में, जहां वे हमेशा ठहरते थे, उनकी मृत्यु हो गई। एक विषादपूर्ण संयोग के रूप में उस दिन लंदन में एक भयंकर तूफान आया था जो 3 बजे दोपहर से लेकर द्वारकानाथ की अंतिम श्वास के पन्द्रह मिनट बाद तक अपनी तीव्र थपेड़ों से लंदन को झकझोरता रहा था। इसकी रिपोर्ट प्रकाशित करते हुए 3 अगस्त 1846 के **दी टाइम्स** ने (2 अगस्त को रविवार की छुट्टी के कारण पत्र का कोई संस्करण नहीं छपा था) लिखा: 'शनिवार के दिन राजधानी और इसके उपनगरों में मीलों दूर-दूर तक तीव्र गर्जन, बिजली की चमकन और ओलों की वर्षा के साथ झंझावात और बारिश का ऐसा भयंकर तूफान आया जैसा पिछले कई वर्षों में नहीं देखा गया था।'

इस घटना की याद करते हुए, जे०एच० स्टॉक्वेलर ने अपने **संस्मरणों** में लिखा: 'उनकी मृत्यु के समय जोरदार गर्जन-तर्जन के साथ एक भयंकर तूफान इस महानगर के ऊपर से गुजरा, जैसे मानो यह कुदरती बात थी कि सच्चे अर्थों में इतने महान व्यक्ति का देहावसान ऐसे गंभीर क्षण में ही होना चाहिए। मैंने कभी बादलों की ऐसी तेज गड़गड़ाहट नहीं सुनी थी, न बिजली को इतनी दूर-दूर तक लपकते देखा था, यहां तक कि पर्वतीय तूफान के समय न तो आर्मीनिया में, और न मानसून के आगमन के समय भारत में ही, जैसा कि उस दिन देखा था, जब उदात्त और शालीन द्वारकानाथ की आत्मा उनके पार्थिव शरीर को त्याग कर जा रही थी।'

सोमवार, 3 अगस्त 1846 के **दी टाइम्स** में[6] एक पूरे कॉलम की निधन-सूचना प्रकाशित हुई। उनकी उल्लेखनीय वंश-परंपरा और एक व्यापारी-प्रिंस के रूप में उनके आश्चर्यजनक जीवन-चरित की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए और उनकी दानशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए, इस समाचारपत्र ने कहा कि संभवत: भारत में कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं है, उसकी पदवी या स्थिति चाहे जो हो, जिसने जाति और धर्म का भेदभाव किए बगैर अपने देशवासियों की भलाई के लिए द्वारकानाथ टैगोर से अधिक काम किया हो। बृहस्पतिवार, 7 अगस्त के **लंदन मेल** ने लिखा: 'ऐसे व्यक्ति विरल हैं, जिन्हें अपने जीवन-काल में इतना सम्मान मिला है और बाद में जिनके लिए इतना व्यापक शोक मनाया गया है, या जो अपने देशवासियों की इतनी गहरी कृतज्ञता के पात्र हैं, जितना कि बाबू को। भारत की सर्वोच्च ब्राह्मण जाति का होने के नाते उनका खानदान एक दीर्घकालीन और असंदिग्ध अभिजात वंश-परंपरा प्रमाणित कर सकता है। लेकिन हम आज इस अभिजात वंश-परंपरा के कारण उनके जीवन पर दृष्टिपात नहीं कर रहे, बल्कि इससे कहीं अधिक अच्छे कारणों से। ईश्वर-प्रदत्त इतने सौम्य और भव्य व्यक्तित्व

के धनी, इतने शिष्ट, शालीन और सम्मोहक आचरण वाले सज्जन, सर्वोच्च कोटि की प्रतिभा से सम्पन्न, युग की राजनीति के पूर्ण ज्ञाता, स्वभाव से और व्यवहार में उदारवादी होने के कारण हर देश में जहां वे रहते या जहां से होकर गुजरते, वे हर वर्ग के लोगों का आदर और सम्मान सहज ही प्राप्त कर लेते थे। वे चाहे जितने भी प्रतिभा-सम्पन्न थे, किन्तु उनकी महानता का दावा इससे भी अधिक ऊंचे आसन पर निर्भर करता है–वे अपने देश के उपकारक थे। कलकत्ता के निवासी, चाहे भारतीय हों या यूरोपीय, उनकी कीमत भली भांति पहचानते थे और जानते थे कि वे उनके कितने ऋणी थे, जब उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में, जिसका आयोजन कम्पनी के सिविल और मिलिटरी के कार्यकारी विभागों के मुख्य अफसरों ने वाणिज्य और व्यापार के समुदाय से मिल कर किया था, इस बात का समर्थन किया कि उनका एक आदम-कद चित्र टाऊन हाल की दीवारों को सुशोभित करे और उनकी एक आवक्ष प्रतिमा उस स्मारक-भवन में स्थापित की जाय, जिसका निर्माण लार्ड मेटकॉफ के सार्वजनिक और व्यक्तिगत कार्यों की स्मृति में किया गया था। इस प्रकार लोगों ने भारत के लिए हितकारी हर सार्वजनिक और निजी कार्य और उद्यम को प्रोत्साहन देने वाले उनके गुणों की साक्षी दी थी। उन्होंने हिन्दू कालेज, अस्पताल, शरीर-रचनाविज्ञान का स्कूल आदि की स्थापना करने के कार्य में उनके अदम्य उत्साह की बानगी देखी थी, और डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल फंड में 10,000 पौण्ड का चंदा देते समय उनकी महान दानशीलता का नमूना देखा था। लार्ड विलियम बेन्टिक ने स्वीकार किया है कि वे उनके ऋणी हैं कि सती-प्रथा बंद कराने में उनका जबर्दस्त प्रभाव कितना काम आया था, और दूसरे गवर्नर-जनरलों ने भी इसी तरह अन्य कार्यों के लिए उनका आभार स्वीकार किया है। इसलिए उनकी महानता का अहसास दिखाने का कार्य किया ईस्ट इंडिया कंपनी ने, उनकी सेवाओं का स्मरणात्मक एक बहुमूल्य और बड़ा स्वर्ण-पदक प्रदान किया; और हर मैजेस्टी ने भी इतना ही मूल्यवान उपहार देकर और फिर बाद में अपना और अपने पति का लघु-चित्र भेंट कर उनका अभिवादन किया है। द्वारकानाथ टैगोर का अंतिम सार्वजनिक कार्य भी किसी से कम नहीं था – वह था दो मेडिकल विद्यार्थियों को इस देश में भेजना, और अपने पास से उनकी शिक्षा का पूरा खर्च उठाना। इस योजना की सफलता के बारे में भी सभी जानते हैं जिन्होंने लंदन विश्वविद्यालय की पिछली कार्रवाई की रिपोर्ट पढ़ी हैं।'

आगे इस समाचारपत्र ने आशा प्रकट की कि राजा राममोहन राय की उतनी ही अकाल मृत्यु के कुछ वर्षों के अंदर ही भरी जवानी में द्वारकानाथ की अकाल मृत्यु का कुछ रूढ़िवादी हिन्दू यह अर्थ नहीं लगायेंगे कि यह शास्त्रों द्वारा 'काले पानियों' को पार करने पर लगाये श्राप का परिणाम थी। तत्कालीन भारत के कुछ हलकों में ऐसी विषाद भविष्यवाणियां प्रचलित हो गई थीं, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। लेकिन सौभाग्य से ये उन लोगों की साहसिक आत्मा या महत्वाकांक्षा को अवरुद्ध

करने में अधिक सफल नहीं हुई जिन्होंने इन दो महान अग्रदूतों का बाद में अनुसरण किया; उनमें से एक स्वयं द्वारकानाथ के पौत्र सत्येन्द्रनाथ थे। यह संख्या तब से निरंतर बढ़ती गई है और उसमें केवल जीविका, दौलत या सुख-आनंद के खोजी भौतिकवादी ही शामिल नहीं हैं, बल्कि साधू, योगी, गुरू और महात्मा लोग भी शामिल हैं जो अपने धर्मों की वर्जनाओं का तिरस्कार करके उसकी भाव-समाधि संबंधी गुह्य विधियों के प्रचार को अपने लिए आर्थिक लाभ उठाने का साधन बनाते हैं। द्वारकानाथ के युग के विपरीत आज समस्या यह है कि भारतीय नागरिकों को विदेश जाने से कैसे रोका जाये, जो उन देशों में भी जाने को उत्सुक रहते हैं, जहां उन्हें कोई नहीं चाहता। हिन्दू कट्टरता ने सचमुच अपनी रणनीति बदल ली है।

मृत्यु का प्रमाण-पत्र, जो 4 अगस्त 1846 को रजिस्टर किया गया था, उसमें मृत्यु का कारण 'दाहिने फेफड़े का ज्वर-रोग' बताया गया था।[7] किशोरी चन्द मित्रा के अनुसार **पोस्ट मार्टम** (शव-परीक्षा) ने दिखाया कि उनके शरीर के सारे अवयव पूर्ण स्वस्थ अवस्था में थे।[8] लेकिन वर्तमान लेखक **पोस्ट मार्टम** की रिपोर्ट का लिखित प्रमाण ढूंढने में सफल नहीं हो सका।

अगले दिन, 5 अगस्त को उनका अन्तिम संस्कार किया गया। जैसा कि बृहस्पतिवार 6 अगस्त के **दी टाइम्स** ने रिपोर्ट किया:

'इस अत्यंत सम्मानित और विशिष्ट विदेशी का नश्वर शरीर 5 अगस्त को केन्सल ग्रीन के एक शव-कक्ष में रख दिया गया।

'दिवंगत पुरुष के पुत्र की इच्छा के अनुसार, अंतिम संस्कार एकदम प्राइवेट ढंग से किया गया।

'शव-यात्रा का जुलूस दिवंगत बाबू के निवास स्थान (अल्बे मार्ले स्ट्रीट पर स्थित सेन्ट जार्ज होटल) से सुबह साढ़े दस बजे निकला।

'अर्थी के पीछे मेजर हेन्डरसन की प्राइवेट गाड़ी थी, जिसमें उनका पुत्र नगेन्द्रनाथ टैगोर, मोहन लाल[9] और एक विशिष्ट भारतीय नौजवान, नवीन चन्द्र मुकर्जी थे, जो बाबू का रिश्तेदार है। इसके पीछे एक शोक-गाड़ी थी, जिसमें सर एडवर्ड रियान (दिवंगत के पुत्र के नियुक्त अभिभावक), मेजर हेन्डरसन (दिवंगत के साझेदार) डाक्टर रेले और डी०जे० मैक्किलॅप थे। दूसरी शोक-गाड़ी में ऑन० कैप्टन आर०गोर, केप्टन हेन्डरसन, मि० सी० प्लाउडेन, और डा० गुडीव थे। तीसरी गाड़ी में मि० मॉर्डोन्ट रिकेट्स, मि० प्रिन्सेप, जेनरल वेन्तूरा और मिस्टर राबर्टस थे, जो सब भूतपूर्व बाबू के अंतरंग मित्र थे। शोक-गाड़ियों के पीछे मोहन लाल की प्राइवेट गाड़ी थी, जिसमें तीन भारतीय विद्यार्थी थे। कूरियर और बाबू के निजी खिदमतगार और सेवक जुलूस के अंत में दिवंगत की अपनी निजी गाड़ी में थे।

कब्रिस्तान में पहुंचने पर जुलूस समर्पित स्थान से परे जाकर पंक्तिबद्ध खड़ा हो

गया," जहां, प्रवेश द्वार के ठीक सामने ही ईंटों का चिना एक विशाल भूमिगत शवकक्ष तैयार किया गया था।

'अंतिम संस्कार की हर रस्म अत्यंत गंभीर मौन की स्थिति में सम्पन्न की गई, जिसका अतिक्रमण केवल मेघों की गड़गड़ाहट और झंझावात कर रहा था, जो एक तूफान के रूप में ऐन उसी समय फूट पड़ा था, जिस समय संस्कार सम्पन्न हो रहा था।

'कब्रिस्तान के स्थानापन्न पादरी, श्रद्धेय मि० ट्विगर अपनी व्यक्तिगत हैसियत से अंतिम संस्कार करवा रहे थे, लेकिन शव के ऊपर किसी प्रकार की धार्मिक प्रार्थना या क्रिया सम्पन्न नहीं की गई।

'जब मातम मनाने वाले व्यक्ति जाने लगे जो नगेन्द्रनाथ ने उनसे आग्रह किया कि वे शव-कक्ष को बंद करने तक रुकें, इस इच्छा का पालन करने के लिए सभी तुरंत राजी हो गये। इसमें कुछ समय लगा। आखिकार जब एक विशाल पत्थर तहखाने के ऊपर रख दिया गया, तब लोग अपनी-अपनी गाड़ियों में बैठ कर वापस आ गए।

'दिवंगत आत्मा का पुत्र काले कपड़ों की एक भारतीय पोशाक पहने था। मोहन लाल तथा अन्य उपस्थित भारतीय अपनी रोजमर्रा की भड़कीली भारतीय पोशाकों में थे।

'वह ताबूत, जिसमें दिवंगत पुरुष का शव रखा गया था, देखने में अत्यंत भव्य था। उस पर शुद्ध रेशमी मखमल की चादर ढंकी हुई थी, जिस पर चांदी के आभूषण टंके हुए थे। ताबूत के ढक्कन पर चांदी की दो पट्टियां जड़ी हुई थीं, जिनमें से एक पर हिन्दुस्तानी भाषा में दिवंगत बाबू की शैली और पदवियां उकेरी हुई थीं, और दूसरी पर अंग्रेजी भाषा में उनका अनुवाद, जो इस प्रकार है:

बाबू द्वारकानाथ टैगोर, जमींदार,

1 अगस्त 1846 को देहावसान। आयु 51 वर्ष।

'कहा जाता है कि मृत्यु से दिवंगत पुरुष के सुंदर मुख और नाक-नक्श में कोई फर्क नहीं आया था, जिसके कारण वे लोग जो ऐसे शोक-समय पर आवश्यक क्रियाएं सम्पन्न करने के लिए बुलाये जाते हैं, उन्हें यह विश्वास दिलाने में काफी कठिनाई हुई कि उनके शरीर को छोड़ कर आत्मा जा चुकी थी। इस अवस्था में बाबू के चेहरे का एक मोम का ढांचा बना लिया गया।'[11]

'बाद में उनके शरीर में से भारत को भेजने के लिए उनका हृदय निकाल लिया गया, ताकि उस सम्प्रदाय की रीतियों के अनुसार, जिसके वे अनुयायी थे, उसका संस्कार किया जा सके।'[12]

ब्लेयर क्लिंग के अनुसार ब्रिटेन की 'महारानी ने चार शाही गाड़ियां भेजी थीं।' यद्यपि यह बिल्कुल उचित था और द्वारकानाथ के प्रति उनकी सर्वविदित

स्नेहभावना को देखते हुए यह विश्वास-योग्य बात भो है कि 'महारानो ने चार शाहो गाड़ियां भेजो थीं,' लेकिन अंग्रेजो के किसो भी पत्र ने, यहां तक कि **कोर्ट जर्नल** ने भी उनके जनाजे में सम्मिलित शाहो गाड़ियों का उल्लेख तक नहीं किया है। इसके विपरीत कोंत फई द कोंशे के 6 अगस्त को लंदन से अपनो पत्नो के नाम पेरिस भेजे गये पत्र में (जो यहां मदाम कृष्णा रिबो और मेंस्यो आइगरश्मित के सौजन्य से उद्धृत किया जा रहा है) जनाजे में इन शाहो गाड़ियों को मौजूदगो का जिक्र है। प्रसंगतः अवतरण नोचे उद्धृत है: 'मैं कल शाम को यहां पहुंचा, जेनरल के यहां ठहरने के लिए... मुझे विश्वास है कि मैं तुम्हें और साथ हो लूसो को यह बता कर परेशान करूंगा कि मैं बाबू के जनाजे में शामिल होने को दृष्टि से ऐन वक्त पर हो यहां पहुंचा था। बेचारे को शनिवार को मृत्यु हो गई। वे उस तपाने वाले बुखार के शिकार हो गये, जो उन्हें पेरिस में लग गया था। वे तेज गति को जिंदगो जोने को इच्छा के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। दफनाने को क्रिया में सारा दिन लग गयाः महारानो और केबनेट के सदस्यों ने अपनो गाड़ियां भेजो थीं। सारा उच्च वर्ग पूरा का पूरा वहां मौजूद था, और जनाजे में शामिल होने वाले हर व्यक्ति को काले रेशम को एक ओढ़नो दो गई थी, जो लौटायो नहीं गयी। यह ओढ़नो एक किस्म का बड़ा रूमाल होतो है तो अंतिम संस्कार के समय हरेक को पोशाक का आच्छादन बन जातो है। बाबू के भिन्न धर्म के कारण गिरजाघर ने उनके शव को स्वोकार नहीं किया। वे आम कब्रिस्तान में दफनाये गये, जो कि एक किस्म का **पेरे ला चेज** बन जायगा...।'[14]

यद्यपि यह असामयिक मृत्यु थी (वे केवल 51-52 वर्ष के थे), लेकिन किसो भी रूप में इतनो आकस्मिक या रहस्यमय नहीं थो कि कोई तर्क-संगत गलतफहमो पैदा करतो। फिर भी उनको मृत्यु को परिस्थितियों के बारे में भारत के अंदर, उनके पारिवारिक क्षेत्र में और बाजार में भो, तरह-तरह को अफवाहें फैलायो गईं। यह ज्ञात नहीं है कि नगेन्द्रनाथ और नवोनचन्द्र इंगलैंड से क्या रिपोर्ट लेकर आये थे, लेकिन यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि करोब एक शताब्दो के बाद जब रवोन्द्रनाथ टैगोर के ज्येष्ठ पुत्र रथोन्द्रनाथ ने अपने संस्मरण लिखे तो उन्होंने अपने परदादा को मृत्यु का 'कुछ रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में' होना बताया।[15]

नोट्स

[1] पत्र की मूल प्रति रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन में सुरक्षित है: 'कॅरैस्पॉन्डेन्स-कम-डायरी फाइल्स ऑफ द्वारकानाथ टैगोर। फाइल नं० 3' प्रतिलिपि में विराम-चिन्ह और हिज्जे उसी रूप में हैं जैसे मूल प्रति में थे, केवल कहीं-कहीं अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से कोष्ठकों में बंद आवश्यक संशोधन सुझाये गये हैं।

[2] श्रद्धेय डॉ० डफ एक स्कॉटिश पादरी थे, जिन्हें कलकत्ते में स्थापित करने में राममोहन राय ने मदद की थी और जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में पथ-प्रदर्शक का काम किया था। हिन्दू-ब्राह्मणों को ईसाई बनाने के अभियान में उनकी उत्साही भूमिका ने हिन्दू सम्प्रदाय को सख्त नाराज कर दिया और देवेन्द्रनाथ के नेतृत्व में उनके विरुद्ध रूढ़िवादी हिन्दुओं और ब्रह्मोसमाज को एकजुट करने में मदद की।

[3] द्वारकानाथ के निजी चिकित्सक, डाक्टर रेले, जो भारत से उनके साथ गये थे, निस्संदेह उनकी परिचर्या में लगे हुए थे, यद्यपि परामर्शदाता न होने के कारण अखबारों में उनका नाम नहीं दिया गया था। वे उनके अंतिम संस्कार के समय भी मौजूद थे।

[4] यद्यपि न तो उनका पुत्र नगेन्द्रनाथ और न भानजा नवीनचन्द्र उनके साथ वर्थिन्ग गये थे या उनकी बीमारी के दौरान उनके पास ठहरे थे, लेकिन वे 'एक या दो बार' उनसे मिलने के लिए अवश्य गये थे, जैसा कि सत्येन्द्रनाथ टैगोर के एक परवर्ती साक्ष्य से स्पष्ट है। यह आश्चर्यजनक बात है कि न तो नगेन्द्रनाथ ने और न नवीनचन्द्र ने ही कलकत्तामें अपने भाई को लिखे पत्रों में द्वारकानाथ की बीमारी का कभी उल्लेख किया। और अगर किया था, तो इसके विवरण खो गये हैं।

[5] सत्येन्द्रनाथ'स लेटर्स, इंदिरा देवी द्वारा सम्पादित, **कलकत्ता रिव्यू,** 1924 (जिल्द, xii)। साथ ही देखिए, सत्येन्द्रनाथ टैगोर के बंगाली में संस्मरण: **अमार बाल्य कथा ओ बम्बई प्रवास।**

[6] **दी टाइम्स** में प्रकाशित मृत्यु-संवाद की फोटो-कापी, जो प्रस्तुत लेखक को लंदन के इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी एण्ड रिकार्ड्स के सौजन्य से प्राप्त हुई थी, बाद में रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन को भेंट कर दी गई।

[7] मृत्यु के रजिस्टर की प्रस्तुत लेखक ने जाकर स्वयं जांच की थी और उसकी एक सरकारी फोटोकापी भी प्राप्त कर ली थी, जो बाद में रवीन्द्र सदन, शांति निकेतन को भेंट कर दी।

[8] **संस्मरण** पृ० 117. द्वारकानाथ की मृत्यु और उनके दफनाने की क्रिया का विवरण जानने के लिए अमिताभ गुप्त का **देश** (कलकत्ता) में प्रकाशित बंगाली लेख 'द्वारकानाथेर समाधि' भी देखें, साहित्य संख्या, वि०सं० 1364.

[9] मोहन लाल का साहसिक जीवन-चरित, यद्यपि एक अंश तक रहस्य के आवरण में छिपा हुआ है, किसी कदर कम दिलचस्प नहीं है। मार्च 28, 1846 के **कोर्ट जर्नल** ने उनकी पुस्तक 'ट्रेवल्स इन दी पंजाब, अफगानिस्तान एण्ड तुर्किस्तान, टू बल्ख, बुखारा एण्ड हेरात, एण्ड ए विजिट टू ग्रेट ब्रिटेन एण्ड जर्मनी' (एलेन एण्ड कं०) की समीक्षा प्रकाशित की थी। समीक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि ये यात्राएं 14 वर्ष की अवधि – 1831 से 1845 तक में पूरी हुईं, और यह कि मोहन लाल ने अपना साहसिक जीवन 'साहसी सर अलेक्जेन्डर बर्न्स, जिनकी 1841 में काबुल में हत्या कर दी गई थी' के दुभाषिये और फारसी भाषा के सेक्रेटरी के रूप में शुरू किया था। लगता है कि मोहनलाल मूलतः दिल्ली-निवासी थे, लेकिन उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया, यह भी नहीं बताया गया कि वे हिन्दू थे, यद्यपि उनके नाम में मुसलमान या सिख से अधिक हिन्दू ध्वनि है (लेकिन एक जगह उनका जिक्र मिर्जा के रूप में किया गया है।) उन्हें फारस के शाह और प्रिंस अलबर्ट ने सम्मानित किया था।

[10] स्मरण रहे कि राजा राममोहन राय भी ब्रिस्टल के कब्रिस्तान में 'समर्पित स्थान में' नहीं दफनाये गये थे, क्योंकि वे एक ईसाई-धर्मावलम्बी के रूप में नहीं मरे थे, और अपनी कब्र

पर ईसाई-प्रार्थना नहीं चाहते थे। द्वारकानाथ के साथ भी ऐसा ही हुआ। कहा जाता है कि दोनों ने पवित्र अक्षर **ओम्** का उच्चारण करते हुए अपनी अन्तिम श्वास ली थी। दफनाने के लिए जब राममोहन राय के शरीर को नहलाया गया, उस समय पता चला कि वे जनेऊ धारण किए हुए थे। ऐसी कोई सूचना नहीं है कि द्वारकानाथ के शरीर पर भी ऐसा कोई पारम्परिक हिन्दू चिन्ह मिला था, हालांकि, राममोहन राय के विपरीत, उन्होंने कभी अपने पारम्परिक धर्म को नहीं त्यागा था।

11 उनके मुख के ढांचे का क्या हुआ, यह अज्ञात है।

12 **दी टाइम्स** की रिपोर्ट को अगर सही मान लें कि उनका हृदय 'भारत को भेजने के लिए' निकाल लिया गया था, तो उसका बाद में क्या हुआ, इसका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

13 **पार्टनर इन ऐम्पायर,** पृ० 237.

14 पेरिस के सुप्रसिद्ध कब्रिस्तान का हवाला; जहां अनेक ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व के विख्यात व्यक्ति दफन हैं।

लेखक का नोट: यह पत्र कोंत के स्वभाव के अनुरूप है; कल्पना में मिश्रित तथ्य, सुनी-सुनायी बातों के साथ मिश्रित कथन। 5 तारीख की शाम को लंदन पहुंच कर उनके लिए यह संभव ही नहीं था कि वे जनाजे या अंतिम संस्कार में शामिल हो सकते, जो सुबह को ही हो गया था। उन्होंने इस घटना का विवरण जेनरल वेन्तूरा से सुना होगा, जिनकी एक गाड़ी में उपस्थिति की साक्षी **दी टाइम्स** की रिपोर्ट में मिलती है। उन्होंने जो सुना था उसको अतिरंजित करके 'सारा उच्च-वर्ग सारा का सारा वहां मौजूद था' बना दिया और कल्पना से जोड़ दिया कि जनाजे में शामिल होने वाले हर व्यक्ति को 'काले रेशम की एक ओढ़नी दी गई,' आदि।

15 **ऑन दी एजेज ऑफ टाइम**: रवीन्द्रनाथ टैगोर के व्यक्तिगत संस्मरण। ओरियन्ट लांगमैन्स, कलकत्ता, 1958। द्वारकानाथ अपने जीवन-काल में एक अनुश्रुत पुरुष बन गये थे और मृत्यु के बाद तो और भी अधिक अनुश्रुत हो गये, लेकिन थोड़े समय के लिए ही, जिसके बाद उनकी स्मृति तक भुला दी गई। एक मिथ्यापवाद, जो उनके परिवार में काफी प्रचलित रहा और जिसे बड़ी-बूढ़ियां बड़े दिनों तक दुहराती रहीं, वह यह था कि ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों के इशारे पर द्वारकानाथ की जानबूझ कर हत्या की गई थी, क्योंकि ब्रिटेन के शाही-परिवार और अभिजात वर्ग के साथ उनके बढ़ते प्रभाव से उन्हें ईर्ष्या थी। इससे भी अधिक चटखारे लेने वाली यह गप्प थी कि द्वारकानाथ इतने रमणी-रंजक व्यक्ति थे और महिलाएं उनको इतना पसंद करती थीं कि संभव है, उन्होंने महारानी को भी इस हद तक अपने आकर्षण में बांध लिया हो कि प्रिंस अलबर्ट उनसे ईर्ष्या करने लगे हों और उन्होंने उनको गुप्त रूप से जहर दिलवा दिया हो। रवीन्द्र भारती यूनीवर्सिटी म्यूजियम के अभिलेखागार में रखे क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के कागज-पत्रों में एक निकट संबंधी का पत्र है, जिसके अंदर शिष्ट-समाज की गपशप में प्रचलित ऐसी अनेक कहानियों की सूचना दी गई है। उनमें से एक कहानी इस प्रकार है कि द्वारकानाथ के आग्रह पर महारानी ने एक भारतीय साड़ी धारण की और द्वारकानाथ ने उनके माथे पर सिन्दूर का टीका लगा दिया, ताकि वे एक भारतीय वधू जैसी दिखें। संवाददाता ने रिपोर्ट की कि 'महारानी ने उनसे पूछा कि क्या वे उन्हें इजाजत देंगे कि वे उनको एक सम्मान-सूचक उपाधि प्रदान करें। इस पर मिस्टर टैगोर ने मूल साश्चर्य पूछा, 'एक सम्मान-सूचक उपाधि!' योर मेजेस्टी मुझे कौन-सी उससे भी 'श्रेष्ठ उपाधि दे सकती हैं जो मेरी अपनी

है – ठाकुर – जिसका अर्थ है भगवान? इस बात ने महारानी का मुंह बंद कर दिया। निस्संदेह यह कहानी अप्रमाणिक है, लेकिन इससे यह अवश्य जाहिर होता है कि अपने समकालीन लोगों के मन पर द्वारकानाथ के रंगीन व्यक्तित्व का कितना प्रभाव था। बाजार में प्रचलित गप्पों तो इससे भी चार कदम आगे जाती थीं। द्वारकानाथ के प्रणय-संबंधी किस्सों की टोह में हमेशा तत्पर और जहां कुछ न हो, वहां कल्पना से ईजाद करने में चौकस, इन गप्पें में यहां तक दावा किया जाने लगा कि द्वारकानाथ से ब्रिटेन की महारानी ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसकी बाद में बेल्जियम के किसी निवासी के साथ शादी कर दी गई। कहने की जरूरत नहीं कि ये सारी कहानियां कपोल-कल्पित थीं और किसी दस्तावेज या प्रामाणिक आलेख में उनका कोई आधार नहीं मिलता।

उपसंहार

कलकत्ता तक द्वारकानाथ की मृत्यु का समाचार पहुंचने में कई सप्ताह लगे। उस समय देवेन्द्रनाथ अपनी पत्नी शारदा और तीन पुत्र द्विजेन्द्र, सत्येन्द्र और हेमेन्द्र के साथ नौका द्वारा गंगा में परिभ्रमण के लिए गये हुए थे। नाव एक भयंकर तूफान में फंस गई। और बड़ी मुश्किल से किनारे से लगायी गई और उन सबको सही-सलामत उतारा गया। ऐन उसी समय कलकत्ता से एक तेज हरकारा लंदन में द्वारकानाथ की मृत्यु का समाचार लेकर भागता हुआ वहां पहुंचा। देवेन्द्रनाथ ने तुरन्त लौटने का निश्चय किया, यद्यपि यात्रा खतरे से खाली नहीं थी।

जहां तक ज्ञात है, लगता है कि यह एकदम अप्रत्याशित समाचार, यद्यपि एक ज़बर्दस्त आघात था, गहरे शोक की भावना से नहीं सुना गया। संभव है कि उन्होंने अपने अवचेतन में एक राहत महसूस की हो, क्योंकि संत-पुरुष देवेन्द्रनाथ अपने पिता के दुनियादार और फजूल-खर्च स्वभाव और आचरण के प्रशंसक नही थे। कहा जाता है कि बाद में उन्होंने बताया था कि उनके पिता जब विदेश में थे, वे उन्हें एक लाख रूपया प्रति मास भेजा करते थे। अब वे पिता के प्रभुत्व से मुक्त हो जायेंगे। और अपने भाग्य के स्वयं निर्माता होंगे और अपने परिवार की विशाल सम्पत्ति का उपयोग अपने प्रिय धर्म के प्रचार के लिए कर सकेंगे।

श्राद्ध

कलकत्ते वापस आने पर पवित्र गंगा के किनारे एक प्रतीकात्मक दाह-संस्कार आयोजित किया गया, जिसमें पवित्र **कुश** की घास की प्रतिमा जलायी गई। देवेन्द्रनाथ के, जो बाद में महर्षि के रूप में विख्यात हुए, स्वभाव की यह विशेषता थी कि वे एक धर्म-संकट में पड़ गये थे: **श्राद्ध** किस रीति से किया जाय? परंपरागत हिन्दू रीति से या उनके अपने नव-विकसित धर्म के अनुसार? वे जानते थे और यह बात उन्होंने अपनी आत्मकथा में कही भी है कि उनके पिता सती-प्रथा के विरोधी होने और राममोहन राय के प्रति अटूट स्नेह रखने के बावजूद मृत्यु-पर्यंत

पारंपरिक हिन्दू रीति-रिवाजों में विश्वास करते रहे। उन्होंने यह भी देखा था कि द्वारकानाथ ने अपनी मां अलकासुंदरी का श्राद्ध, जिनके प्रति देवेन्द्रनाथ भी इतने श्रद्धालु थे, कितने खुले हाथों किया था। अगर द्वारकानाथ की खुद अपनी आस्था और भावना का आदर करना जरूरी था, श्राद्ध का अनुष्ठान परंपरागत रूढ़ रीति के अनुसार ही करना होगा। लेकिन तब **शालिग्राम** का इस्तेमाल करना पड़ेगा, जो देवता का पत्थर में तराशा प्रतीक है, और यह मूर्ति-पूजा का एक रूप होगा जो कि ब्रह्मोसमाज के नेता के लिए एक अभिशाप के बराबर था। सम्प्रदाय और परिवार के सभी वरिष्ठ सदस्यों ने, राजा राधाकान्त देव, रमानाथ टैगोर (स्वयं द्वारकानाथ के भाई), उनके चचेरे भाई, प्रसन्न कुमार टैगोर और उनके दूसरे पुत्र गिरीन्द्रनाथ ने देवेन्द्रनाथ से बार-बार आग्रह किया कि वे अपने पिता के धर्म का आदर करें और परम्परागत रीति से उनका श्राद्ध करें। लेकिन देवेन्द्रनाथ अपने निर्णय पर अटल बने रहे। उनमें एक धर्मोपदेशक की कट्टरता थी और वे अपनी आस्था पर अडिग रहे। **शालिग्राम** की पूजा नहीं होगी और उपनिषदों से केवल उन श्लोकों का ही पाठ होगा, जिनका चयन स्वयं उन्होंने किया था।

फिर भी यह दुविधा उनके मन पर बोझ बना रही जब तक कि एक स्वप्न ने (मनोवांछित आकांक्षा का गुह्य पिष्ट-पेषण) उससे उन्हें मुक्ति नहीं दिलायी। स्वप्न में उन्हें किसी की छाया दिखाई दी, जो उन्हें इशारे से बुला कर उन्हें ग्रहों और नक्षत्रों से पार किसी अज्ञात क्षेत्र में ले गयी। वहां उनके आगे उनकी स्वर्गीय मां, उसी सुंदर और दीप्त रूप में, जिस रूप की स्मृति थी, उनके आगे प्रकट हुई और बोलीं, 'मैं तुमसे मिलना चाहती थी, इसलिए तुम्हें बुला भेजा है। देखती हूं कि तुम ब्रह्म-ज्ञानी बन गये हो। **कुलम् पवित्र जननि कृतार्थ**।' इस 'दैवी' साक्षात्कार ने देवेन्द्रनाथ की दुविधा का समाधान कर दिया। उन्होंने फिर एक बार भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि उनकी मां आजीवन रूढ़ परंपराओं की अंध-भक्त रही थीं। मां के आशीर्वाद से आश्वस्त होकर, जो उन्हें इतने रहस्यमय अर्थात् दैवी माध्यम से प्राप्त हुआ था, उन्होंने अपने मार्ग पर चलने का निश्चय पक्का कर लिया, चाहे इससे उनके सगे-संबंधी और मित्र उनसे विमुख ही क्यों न हो जायें। इसलिए जब **श्राद्ध** का दिन आया, तो उन्होंने यह अनुष्ठान ब्रह्मोसमाज की रीति से सम्पन्न किया और पारम्परिक ढंग से **श्राद्ध** सम्पन्न करने का काम छोटे भाई गिरीन्द्रनाथ के ऊपर छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि अगले दिन के पारम्परिक भोज में शामिल होने के लिए निमंत्रित मेहमानों में से एक भी नहीं आया। फिर भी ब्राह्मणों को नाममात्र की ही सही, कुछ न कुछ दान-दक्षिणा तो देनी ही थी, और शनिवार, 17 अक्तूबर 1846 के **बंगाल हरकारू** ने यह रिपोर्ट प्रकाशित की : 'हमें ज्ञात हुआ है कि पिछले बृहस्पतिवार (15 अक्तूबर) को स्वर्गीय द्वारकानाथ टैगोर के श्राद्ध के अवसर पर कुछ कीमती शाल-दुशालों के साथ-साथ अनेक सोना और चांदी की वस्तुएं भेंट की गईं, जो कि सुना जाता है ब्राह्मणों में उनकी सापेक्ष पद-प्रतिष्ठा के

अनुसार बांटी जायेंगी और साथ ही उन्हें पचास से लेकर सौ-सौ रुपयों की दक्षिणा भी दी जायेगी।'

स्मरण सभा

एक ओर अगर उस व्यक्ति की स्मृति में पुत्र की श्रद्धांजली, यदि औपचारिक मात्र नहीं तो बेहद सादा और आडम्बरहीन थी, तो दूसरी ओर समाचार पत्रों ने मुक्त कंठ से अपनी श्रद्धांजली अर्पित की। उनकी मृत्यु का समाचार सब से पहले 19 सितंबर 1846 के **बंगाल हरकारू** में प्रकाशित हुआ : 'उनके देश को एक नैतिक क्षति का आघात झेलना पड़ रहा है, संभवतः जिसकी पूर्ति कुछ पीढ़ियों में ही हो सकेगी; लेकिन उन लोगों की राय में जो भारत को जानते हैं, इसमें संदेह है कि फिर कभी कोई 'उनके जैसा' पैदा होगा।'

दो दिन बाद इसी पत्र ने अपने सम्पादकीय में लिखाः 'द्वारकानाथ टैगोर की मृत्यु से भारत ने एक ऐसे युग-पुरुष को खो दिया है, जिसने योरप की दृष्टि में भारत का सम्मान और गौरव बढ़ाने के लिए सबसे ज्यादा काम किया था। यह बात नहीं कि वे भारत के सपूतों में सबसे ज्यादा योग्य या सबसे बड़े विद्वान थे, क्योंकि इस दृष्टि से तो उसके बेटों में और भी हैं, और पहले भी थे, जो उनसे कहीं बढ़-चढ़ कर थे। यह तो उनके दिल और दिमाग की उदार-वृत्ति और सार्वभौमिक दृष्टि थी, न कि उसकी अन्तःशक्ति, जिसके अंदर लोगों का कल्याण करने की उनकी शक्ति निहित थी। यह उनकी स्वतंत्र-चेता और दूरदृष्टि से सम्पन्न आत्मा थी, जिसने अनुकूल परिस्थितियों का सहारा लेकर उन्हें प्रेरित किया और उन्हें यहां अपने देशवासियों का भला करने की और बाहर विदेशों में, अपने देश का नाम ऊंचा करने की क्षमता प्रदान की। एक ऐसी जाति में पैदा होकर भी, जिसमें अनन्यता एक धर्म की सीमा तक पहुंच गई है, और ऐसे पूर्वजों के वंशज होकर भी, जो साधारण जनों की पूजा और भक्ति के पात्र रहे हों, वे जातिवाद की उस कट्टरता से मुक्त होने के लिए प्रसिद्ध थे, जो इन परिस्थितियों में उनके अंदर जन्मजात मानी जा सकती थी।

यहां पर उनके लिए यह दावा करना कि वे अपने देशवासियों और सह-नागरिकों की कृतज्ञ प्रशंसात्मक यादगार के अधिकारी थे, बिल्कुल व्यर्थ होगा, जबकि सभी वर्गों के लोगों के दिलों में उनका नाम उन परोपकारी अनुदानों के साथ, जो इतने उदार और वदान्य थे, और उन मेहमाननवाजियों के साथ, जो ऊंचे राजसी स्तर की होती थीं, अनन्य और अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। उन्हें अपने जीवन-काल में उन सम्मानों का एक अंश तो प्राप्त हो गया था, जो उनके उच्च सामाजिक गुणों के लिए देय थे, और हमें इसमें जरा भी संदेह नहीं कि उनकी स्मृति को भी पूरे हिसाब का भुगतान कर दिया जायगा। और अगर ऐसा संभव भी हो कि उनके सह-नागरिक और देशवासी उसे भूल जायें, जो उनको देय है और

उतना ही स्वयं अपने आपको भी, तो उस समय तक जब तक कलकत्ता में उनके बनाये समाजोपयोगी और परोपकारी संस्थान कायम हैं, तब तक वे भव्य और उदात्त स्मारकों से वंचित नहीं रहेंगे।

'योरप में, चाहे वह सम्राटों के दरबारों के अंदर हो या अपने व्यक्तिगत जीवन की एकांतता में, उन्होंने अपने लिए ऐसा नाम और ऐसी ख्याति अर्जित कर ली थी, जिसे जल्दी भुलाया नहीं जा सकेगा। उनका दरबारी सभ्याचार, उनकी राजसी शान-शौकत, उनके व्यक्तित्व में योरप और एशिया के सर्वोत्तम चारित्रिक गुणों का भव्य सम्मिश्रण, और साथ ही अपने देश और देशवासियों के हितों में गहरी दिलचस्पी—इन सब बातों के कारण वे ऊंचे और नीचे वर्गों के सभी लोगों के ध्यानाकर्षण और प्रशंसा के पात्र बन गये थे। प्रकाण्ड विद्वान और गंभीर दार्शनिक राममोहन राय केवल अपने जैसे उदारचेता लोगों की दृष्टि में ही प्रशंसनीय हो सके, लेकिन द्वारकानाथ को, जो एक संभ्रात सांसारिक व्यक्ति थे, क्या राजा और क्या प्रजा, क्या निठल्ले फेशनेबल लोग और क्या व्यापार में लगे व्यस्त और कर्मठ व्यक्ति, समान रूप से हरेक का आदर और सम्मान प्राप्त हुआ...।'

ये श्रद्धांजलियां केवल अंग्रेजी के समाचारपत्रों तक ही सीमित नहीं थीं। जैसा कि 24 सितंबर 1846 के **बंगाल हरकारू** ने अपने संपादकीय में कहा :

'हमें बंगाली भाषा के दो सबसे प्रभावशाली समाचारपत्र, **भास्कर** और **प्रभाकर** में द्वारकानाथ टैगौर की मृत्यु पर प्रकाशित लेखों के अंग्रेजी अनुवाद प्राप्त हुए हैं। हमें खेद है कि अत्यधिक लम्बे होने के कारण एक ऐसे विषय पर, जिसमें सब लोगों की दिलचस्पी है, और जिसे उन्होंने इतने शालीन और समुचित ढंग से पेश किया है, हमारे लिए बंगाली भाषा के अपने इन प्रतिष्ठित सहयोगी पत्रों के लेख पुर्नप्रकाशित करना सुविधाजनक नहीं है। लेकिन शायद यह बता देना ही काफी होगा कि वे अपने प्रमुख देशवासी की मृत्यु को एक सार्वजनिक विपत्ति मान कर उनके प्रति अपना शोक प्रकट करने में सब के साथ हैं और उन्होंने हर वर्ग और पद के लोगों की भलाई करने के लिए जो नेक काम किये थे, उनका भावभीने शब्दों में स्मरण किया है। **प्रभाकर** ने कहा है कि चूंकि द्वारकानाथ चले गये हैं, इसलिए उनके असंख्य देशवासियों में अब एक भी ऐसा नहीं रहा जो सार्वजनिक महत्व के ज्वलंत प्रश्नों पर बेतकल्लुफ और बेझिझक भाव से अंग्रेज शासकों के साथ वार्तालाप कर सके, या उन्हें भारत-संबंधी नीति के बारे में अच्छी और सही सलाह देकर एक सीमा तक गैर-सरकारी मंत्री की भूमिका अदा कर सके। हमें डर है कि इस विचार में अत्यधिक सचाई है, लेकिन हमारा विश्वास है कि सरकार के आगे अपने देशवासियों के अधिकारों और मांगों की वकालत करने वाले एक इतने ही योग्य व्यक्ति से यह देश अधिक दिनों तक वंचित नहीं रहेगा।

'**प्रभाकर** ने स्वर्गीय बाबू के चरित्र के गुणगान के साथ समाप्त करते हुए अपने देशवासियों से अपील की कि वे उनकी स्मृति को उपयुक्त श्रद्धांजली अर्पित करने के

लिए साधन जुटाने के उद्देश्य से एक सभा बुलाएं। हमें आशा है कि यह सुझाव भारत के निवासियों द्वारा भुला नहीं दिया जायगा। और हमें विश्वास है कि उनके देशवासियों के अलावा अन्य लोग भी, जो उनकी स्मृति का उतना ही आदर करते हैं, अब उनकी मृत्यु के बाद उनके गुणों के प्रति अपनी सराहना व्यक्त करने में सुस्ती नहीं दिखायेंगे, जिन्हें वे उनके जीवनकाल में इतने उत्साह से सराहते रहते थे। हम यह सुनने की आशा करते हैं—और वह भी जल्द ही—कि ऐसे मौकों पर जिन लोगों का पहलकदमी करने का कर्तव्य है, वे टाऊन हॉल में एक सार्वजनिक सभा बुलायेंगे। कलकत्ता के समाज के लिए यह शोभा की बात नहीं होगी अगर वह एक ऐसे व्यक्ति को, जिसका वह इतना ऋणी है, अपनी कब्र में उन मरणोत्तर सम्मानों के बिना ही डूब जाने दे, जो उसने इतने उदात्त और शालीन कारनामों से अर्जित किए थे।'

विख्यात स्वर्गीय व्यक्ति की स्मृति को स्थायी बनाने की खातिर उसके उपयुक्त स्मारक के लिए साधन जुटाने पर विचारार्थ एक सार्वजनिक सभा बुलाने की **प्रभाकर** की अपील व्यर्थ नहीं गई, यद्यपि इस सुझाव को ठोस रूप देने में कुछ समय लगा। 2 दिसंबर, 1846 को कलकत्ते के शासनाधिकारी ने 4 बजे शाम को इस उद्देश्य से एक सार्वजनिक सभा बुलायी। इस मीटिंग की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए, उस दिन सुबह के सम्पादकीय में **हरकारू** ने अपने पाठकों को प्रोत्साहित किया कि वे 'उस व्यक्ति की स्मृति का समुचित सम्मान करें जिसने लोक-सेवा की भावना और राजसी दानशीलता की ऐसी श्रेष्ठ और उदात्त मिसाल पेश की थी।'

सम्पादकीय ने आगे लिखा : 'उनका नाम कलकत्ते के प्रायः उन सभी उपयोगी और खैराती संस्थाओं के साथ जुड़ा हुआ है, जिन पर नगर को गर्व है, और हममें से सैंकड़ों ऐसे हैं, जिन्होंने उनकी उस उदारता से लाभ उठाया है, जिसके लिए वे प्रसिद्ध थे। उन्होंने अनेक लोगों को कर्जों और मुसीबतों से मुक्ति दिलायी थी, अनेक उद्योगों को प्रोत्साहन दिया था, जो उनकी मदद के बिना कभी स्थापित ही न किए जाते, और किसी अन्य भारतीय की अपेक्षा उन्होंने, शायद, इस देश के उत्पादन-साधनों के विकास के लिए कहीं ज्यादा काम किया था। एक एशियाई व्यक्ति होने के नाते उनके चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता, उनका नैतिक साहस था। वे अपनी राय व्यक्त करने में या उस पर दृढ़तापूर्वक डटे रहने में वे जरा भी नहीं हिचकिचाते थे, और उन्होंने सत्ता के आगे कभी चाटुकार की तरह घुटने नहीं टेके। ललित-कलाओं के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि, उनके चरित्र का एक अन्य असाधारण गुण था। संगीत के प्रति उनके अंदर गहरा अनुराग था, जिसका उन्होंने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था और उन्हें आम तौर पर इतालवी संगीत की धुनें इस अंदाज में गुनगुनाते हुए सुना जा सकता था, जिससे जाहिर होता था कि वे उससे सुपरिचित थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी और उनके घर में हमेशा सुंदर और सूक्ष्म वाद्यों का संकलन रहता था। उन्होंने विदेशों से कला-चित्रों और

कला-प्रतिमाओं के कुछ अत्यंत कीमती नमूने आयात किये थे जो आज डमडम रोड पर स्थित उनके सुंदर निवास को सुशोभित कर रहे हैं। उन्होंने अन्य व्यक्तियों के अंदर ललित कलाओं के प्रति सुरूचि पैदा करने के लिए भरसक प्रयत्न किये थे। वे यहां के सभी कलाकारों के, विशेष कर संगीतज्ञों के सबसे बड़े सर-परस्त थे, जिनके लिए वे वदान्य मेसोइनास की तरह थे। हमारे कुछ पाठकों को शायद आज भी याद होगा कि इतालवी ऑपेरा कायम करने के लिए उन्होंने कितनी फराखदिली से अनुदान दिया था। यहां का रंगमंच उनकी वदान्यता का कितना ऋणी था, हमें यह बताने की जरूरत नहीं है। फिर भी संयोगवश हम यह बता दें कि उनके बनवाये हुए चित्रों में से कुछ में हमारे पुराने दूरी थियेटर के, जो आग में नष्ट हो गया था, उन समृद्ध दिनों की स्मृति सुरक्षित है, जब उसकी प्रबंध समिति में कुछ ऐसे प्रसिद्ध शौकिया अभिनेता थे, 'जैसे अभिनेता हमें कभी देखने को नहीं मिलेंगे।' इस प्रकार द्वारकानाथ के कला-प्रेम का किंचित विस्तार से वर्णन करते समय हम उनके अन्य कार्यों को नहीं भूल रहे जो हमारी प्रशंसा के और अधिक हकदार हैं, और जिनके बारे में, निस्संदेह, आज मीटिंग में बोलने वाले विस्तार से उल्लेख करेंगे ही। हमें याद है कि अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभ में, जब वे विख्यात राममोहन राय के अनुयायी और सहयोगी थे, उन्होंने अपने देश की सामाजिक व्यवस्था के एक साहसी और निर्भीक सुधारक के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी, और बाद में वे प्रेस की स्वतंत्रता और हर ऐसे कार्य और वैधानिक कदम के समर्थक और प्रवक्ता बने रहे, जो उनके देशवासियों के राजनीतिक और नैतिक विकास में योग देता था। उन्होंने शिक्षा-प्रसार के निमित्त जो कुछ किया, वह सर्वविदित है और यहां उसे दोहराना अनावश्यक है।'

जैसा कि इस सम्पादकीय में पूर्वानुमान किया गया था, उस दिन तीसरे पहर की मीटिंग में, जिसका सभापतित्व सर जान पीटर ग्रांट ने किया, एक के बाद दूसरे वक्ता ने द्वारकानाथ के अनेक महान गुणों और समाज-सेवी कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपनी श्रद्धांजली अर्पित की। शोक-पीड़ित लोगों की भावना को व्यक्त करने वाले पहले प्रस्ताव को पेश करते हुए डा० आर्कडीकन डीयल्ट्री ने द्वारकानाथ के चरित्र की उन तीन विशिष्टताओं का उल्लेख किया, जिनके वे प्रशंसक थे। सबसे पहली, उनकी वदान्यता, जिसकी मिसाल के रूप में वक्ता ने उनके द्वारा अपने जीवन-काल में डिस्ट्रिक्ट चेरिटेबल सोसाइटी को दिए गये एक लाख रुपये के अनुदान का, और अब, अपनी वसीयत के अनुसार जो मृत्योपरान्त प्रकाशित हुआ था, खैराती प्रयोजनों के लिए और एक लाख रुपये के अनुदान का जिक्र किया। दूसरी, अपने देशवासियों में धर्म-निरपेक्ष शिक्षा के प्रसार के प्रति उनका अदम्य उत्साह, और तीसरी विशेषता थी, अपने मित्रों और देशवासियों में प्रचलित भेदभाव और द्वेष की भावनाओं से उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद और उनके मुकाबले में समाज-सुधार के अपने नेक इरादों और मन्सूबों

को कार्यान्वित करते जाना। इस प्रस्ताव का अनुदान बाबू रुस्सोमोयी दत्त ने किया।

दूसरा प्रस्ताव एडवोकेट जनरल, जे.डब्ल्यू. कॉलविल ने पेश किया। उन्होंने जोरदार भाषण में लंदन के यूनीवर्सिटी कालेज में भारतीय विद्यार्थियों की सहायता के उद्देश्य से एक द्वारकानाथ इनडाउमेन्ट ट्रस्ट (धर्मादा निधि) कायम करने का प्रस्ताव किया ताकि वे अपनी सामान्य या पेशेवर शिक्षा पूरी कर सकें। द्वारकानाथ वैज्ञानिक शिक्षा को कितना महत्व देते थे, इस पर जोर देते हुए उन्होंने मिसाल के तौर पर बताया कि द्वारकानाथ अपने साथ कई मेडिकल विद्यार्थियों को लंदन ले गये थे, जिन्होंने वहां बड़ा सम्मान पाया था और इनाम जीते थे। इस प्रस्ताव का समर्थन राजा सुतचरन घोषाल ने किया।

तीसरा प्रस्ताव रुस्तमजी कावसजी ने पेश किया और कलकत्ते के शासनाधिकारी ने उसका अनुमोदन किया। इसके अनुसार प्रस्तावित इंडाउमेन्ट फंड का प्रबंध चलाने के लिए कौंसिल ऑफ एजूकेशन के प्रेसिडेन्ट, एडवोकेट जनरल, गवर्नमेन्ट एजेन्ट और बंगाल सरकार के सचिव को स्थायी पदेन न्यासी नियुक्त किया गया।

चौथे प्रस्ताव द्वारा, जिसे मि. जी.ए. बुशबी ने पेश किया और जिसका बाबू काशी प्रसाद घोष ने अनुमोदन किया, इन उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए रुस्तमजी कावसजी, रस्सोमोयी दत्त, रामगोपाल घोष, डा० जान ग्रान्ट, मेजर हेन्डरसन, रामचन्दर मित्तर और डा० डब्ल्यू.बी.ओ. शांगनेस्सी की एक कमेटी ऑफ ट्रस्टीज (न्यासी समिति) का गठन किया गया। सारे प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किये गये।

अंत में कैथोलिक चर्च की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए श्रद्धेय डा० नाश ने अन्य बातों के साथ यह कहा कि इंगलैंड और फ्रांस इन दोनों देशों के सम्राटों द्वारा द्वारकानाथ का 'उतनी ही हार्दिकता से स्वागत हुआ था, जितनी हार्दिकता से रूसियों के सम्राट का स्वागत किया गया था।' आगे चल कर उन्होंने कहा, 'द्वारकानाथ की दानशीलता किसी धर्म या जाति तक सीमित नहीं थी, उनके लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि उनकी दानशीलता के गरीब पात्र के सर को भारतीय सूर्य झुलसाता था या अफ्रीकी सूर्य—वह चाहे जिस धर्म की वेदी पर माथा टेकता या भेंट चढ़ाता हो, बाबू द्वारकानाथ टैगोर उसके अंदर अपने जैसे ही एक सहप्राणी का रूप देखते थे। आदरणीय सभापति और अन्य संभ्रांत और भद्र लोगों और प्रतिभाशाली व्यक्तियों और सरकारी अफ़सरों के सामने, जो इस अत्यंत प्रतिष्ठित सभा में उपस्थित हैं, एक और घटना का जिक्र करना चाहता हूं : वह यह है: 'उन्होंने (द्वारकानाथ ने) परम श्रद्धेय आर्कबिशप (कैथोलिक) के साथ भारत में नारी-शिक्षा आरंभ करने के लिए एक संस्था कायम करने के सिलसिले में पत्र-व्यवहार किया था।'[4]

दुर्भाग्य से **हरकारू** ने जिस आशावादिता का इजहार किया कि टाऊन हॉल की

मीटिंग यह सिद्ध करेगी कि 'द्वारकानाथ के नेक काम उनके बाद भी जिन्दा रहेंगे,' वह सत्य नहीं साबित हुई। मीटिंग में जो सार्वजनिक उत्साह प्रदर्शित किया गया था, वह जल्द ही भाप की तरह उड़ गया, प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की सहायता के लिए, ताकि वे लंदन में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें, इंडाउमेन्ट फंड कायम करने के सारे प्रस्ताव कागज पर ही लिखे रह गये। द्वारकानाथ का स्मारक उसी तरह से अजन्मा रह गया, जिस तरह ग्यारह साल पहले की मीटिंग में प्रस्तावित राममोहन राय का स्मारक।

अगर राममोहन राय की स्मृति में एक स्मारक के निर्माण में कलकत्ते की असमर्थता का कारण, कम से कम आंशिक रूप से, यह कहा जा सकता है कि द्वारकानाथ ने इस प्रस्ताव पर अमल कराने के लिए आवश्यक प्रयत्न नहीं किया, तो प्रस्तावित द्वारकानाथ इंडाउमेन्ट फंड की असफलता का कारण स्वयं उनके परिवार की उदासीनता को बताया जा सकता है। यह कम महत्व की बात नहीं है कि टाऊन हॉल की शोक सभा के सविस्तार प्रकाशित विवरणों में स्वर्गीय द्वारकानाथ के पुत्रों, देवेन्द्रनाथ या गिरीन्द्रनाथ (किशोर नगेन्द्रनाथ शायद उस समय तक विदेश में ही थे) की उपस्थिति का कोई हवाला नहीं मिलता। दिसम्बर 1846 में जब द्वारकानाथ की स्मृति में इंडाउमेन्ट फंड स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया गया था, उस समय तक स्वर्गीय द्वारकानाथ का व्यापारिक साम्राज्य ज्यों का त्यों अखण्ड कायम था। यह तो एक साल बाद की घटना है जब सुप्रसिद्ध और एक समय अजेय लगने वाली कार, टैगोर एंड कंपनी को अपना कारोबार बंद कर देना पड़ा और उसके कुछ दिन बाद ही यूनियन बैंक को भी।

1847 के व्यापारिक संकट में परिवार के अपार आर्थिक साधन बरबाद हो गये। इस तबाही, या कहें उसकी संभावना का एक सीमा तक द्वारकानाथ को भी पूर्वानुमान था। वे स्वयं एक आर्थिक संकट की समाप्ति पर पुनर्विकास की लहर पर चढ़ कर ऊंचे उठे थे, इसलिए भली-भांति जानते थे कि व्यापारिक समृद्धि कर्ज और लेन-देन के जिस आधार पर टिकी होती है, वह कितना भुरभुरा है। वे यह भी जानते थे कि अगर ऐसा संकट आया तो उनके बेटे उसका निवारण कर पाना तो दूर उसका सामना करने में भी असमर्थ थे। इसलिए उन्होंने एक ट्रस्ट और अपनी वसीयत के द्वारा इस बात की पूरी व्यवस्था कर दी थी कि ऐसे संकट के बावजूद उनके बेटे और उनके परिवार आवश्यक सुख-सुविधा का जीवन बिताते रह सकें। उनकी इस दूरदर्शिता के कारण उनका परिवार, जो यद्यपि बड़ी तेजी से बढ़ गया था (क्योंकि महर्षि अपने समकालीन लेव तॉलस्तोय की तरह उतने ही बहुप्रज थे जितने कि ईश्वर भक्त), अगले सौ साल तक उतना ही ऊंचा जीवन-स्तर कायम रख सका। इसलिए यह परिवार इस अवधि में अगर चाहता तो परिवार की समृद्धि के निर्माता की स्मृति को कायम रखने के उस निर्णय को कार्यान्वित कर सकता था, जो नगर ने लिया था। लेकिन परिवार के लोग कार, टैगोर एण्ड कं० के हठात

दिवाला निकल जाने से उत्पन्न संकट से इतने घबरा गये थे कि उनके आगे तत्काल की जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए इस बरबादी में से जो भी बचा सकें, उसे बचा लेने की जरूरत के अलावा और कुछ सोचने का समय नहीं था। इसके अलावा उनका ज्येष्ट पुत्र आध्यात्मिक चिंतन, धार्मिक प्रचार और परिवार की बची-खुची सम्पत्ति को सुरक्षित करने के काम में इतना व्यस्त था कि उस सम्पत्ति का निर्माण करने वाले की स्मृति भी एक प्रकार से भार बन गई थी। द्वारकानाथ को एक दुनियादार, फजूलखर्च और मृत्योपरान्त एक असफल व्यक्ति समझा जाने लगा और इसलिए उनकी स्मृति को भुला देना ही बेहतर था।

बहुत बड़े-बड़े कर्ज चुकाये जाने थे, इसलिए बेलगछिया का वह सुंदर भवन, उसके शानदार बाग और पार्कों समेत पाइकपारा राज को बेच दिया गया और, उसकी अधिकांश मूल्यवान चीजें, कला-चित्र, कला-प्रतिमाएं, तथा अन्य कला-वस्तुएं बर्दवान के महाराजा को बेच दी गई। महर्षि इस ओर से पूरी तरह उदासीन थे। सौभाग्य से उनका अपना प्रपौत्र क्षितीन्द्रनाथ, और गिरीन्द्रनाथ के दोनों कलाकार प्रपौत्र अवनींद्रनाथ और गगनेन्द्रनाथ उदासीन नहीं थे और अगर द्वारकानाथ के व्यक्तित्व और जीवन से संबंधित दिलचस्पी की कुछ वस्तुएं सुरक्षित बच गई हैं, तो यह उनके कारण है जिन्होंने उनको सहेजकर रखा और बाद में उनको कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल और रवीन्द्र भारती म्यूजियम को और शांति निकेतन के रवीन्द्र सदन को भेंट कर दिया।

अपने पिता की स्मृति के प्रति महर्षि की उदासीनता इसलिए और भी आश्चर्यजनक लगती है, क्योंकि राममोहन राय के हृदय में, जिनसे महर्षि ने अपनी मुख्य धार्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी, द्वारकानाथ के प्रति गहरा स्नेह और आदर का भाव था। कैप्टन नार्मन मेकलॉयड को, जो भारत आ रहे थे, 15 मई 1831 की तारीख में लंदन में दिए परिचय-पत्र में राममोहन राय ने 'मेरे अत्यंत प्रिय मित्र द्वारकानाथ ठाकुर' के रूप में उनका हवाला दिया था।

कवि रवीन्द्रनाथ अपने पिता के अपरिग्रही और निरंकुश व्यक्तित्व की छत्रछाया में बड़े हुए थे, जिनके अनेक निषेधात्मक दृष्टिकोण उन्होंने सहज अपना लिए थे और जिनसे बाद में उन्हें 'बहुमुखी चेतना' का जीनियस बनने से पहले अपने आप को मुक्त करना पड़ा था। लेकिन द्वारकानाथ की स्मृति के प्रति अपने पिता की उदासीनता उन्होंने, लगता है कि और भी अधिक प्रतिशोधी भावना से अपना ली थी। देवेन्द्रनाथ तो यदा-कदा अपने पिता का आदरसूचक शब्दों में जिक्र कर भी लेते थे, लेकिन रवीन्द्रनाथ ने अपने विपुल लेखन या वार्तालाप में शायद एक बार भी अपने दादा का जिक्र नहीं किया। ऐसा लगता है कि उनके पिता में जो मात्र उदासीनता थी, उसने रवीन्द्रनाथ के हृदय में विद्वेष या वैर-भाव का रूप ले लिया था। ऐसा क्यों हुआ, यह समझ में नहीं आता। रवीन्द्रनाथ इतने कट्टर ब्रह्मो नहीं थे कि वे उन लोगों को जो, द्वारकानाथ की तरह, हिन्दू

उपासना की रूढ़ परंपराओं में विश्वास करते थे, नफरत की निगाह से देखते। उनका उपन्यास **गोर** तथा अन्य अनेक कृतियां उनकी बौद्धिक उदारता का प्रमाण हैं। वे एक अपरिग्रही भी नहीं थे और दुनियादारी की प्रवृत्तियों को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखते थे। अपने मन की वर्जनाओं के बावजूद, वे पूर्ण आसक्ति से भरपूर जीवन में विश्वास करते थे। फिर भी क्यों वे अपने दादा को समझने और उनके प्रशंसक बनने में असमर्थ रहे, जिनकी बदौलत ही उन्हें न केवल अपने अस्तित्व की भौतिक सुविधाएं उपलब्ध थीं, बल्कि बहुत कुछ अपनी बहुमुखी योग्यता, स्वस्थ जीवन-प्रेम, संगीत, कला, थियेटर के प्रति गहरा अनुराग, अपनी व्यापक जीवन-दृष्टि, अपनी सार्वभौमिक चेतना और यहां तक कि अपनी विदेश-यात्राओं का शौक भी अपने दादा से प्राप्त हुआ था? यह एक ऐसी पहेली है, जिसे बूझ पाना प्रस्तुत लेखक के बस में नहीं है, यद्यपि उसके मन में जरा भी संशय नहीं है कि रवीन्द्रनाथ ने अगर अपने दादा के जीवन और कार्यों, उनकी उदार प्रवृत्तियों और मानवोपकारी कार्यों का अध्ययन करने का आवश्यक प्रयत्न किया होता तो वे उन्हें न केवल समझने लगते बल्कि उनके प्रशंसक भी बन जाते।

द्वारकानाथ की कब्र

एक अर्थ में द्वारकानाथ का जीवन इतिहास की महान विडम्बनाओं में से एक है। प्रस्तुत लेखक जब 1976 की गरमियों में इंगलैंड गया, तो उसने ब्रिस्टल में राममोहन राय की समाधि के दर्शन करने के बाद जो पहला कार्य किया, वह था लंदन में द्वारकानाथ की कब्र तलाश करना। प्रो० ब्लेयर बी. क्लिंग, जो उस समय लंदन में थे और जिन्होंने केन्सल ग्रीन के कब्रगाह में उनकी कब्र पहले ही ढूंढ निकाली थी, मेरे साथ गये और उन्होंने मुझे वह कब्र दिखायी, जो कब्रगाह के फाटक के ऐन सामने, अ-समर्पित भूमि में थी। कब्र को उजाड़ और जर्जर हालत देख कर मुझे गहरा आघात लगा। उस भव्य स्मारक को देखने के बाद, जिसका द्वारकानाथ ने राममोहन राय की कब्र पर निर्माण करवाया था, जो एक बड़ी संख्या में दर्शकों को आकर्षित करता है, उनकी अपनी गुमनाम, फूहड़ और लापरवाही से रखी गई, यद्यपि अभी तक साबित कब्र को देख कर गहरा दुख हुआ। बिल्कुल जैसे किसी गरीब-गुरबा की कब्र हो। जबकि पड़ोस की कब्रों पर स्वजनों और परिजनों के प्रेम का प्रमाण देने वाले हार्दिक स्नेह से ओत-प्रोत शब्दों में अभिलेख खुदे हुए थे, इस कब्र पर केवल इतना ही अंकित था : 'डी.टैगोर, कलकत्ता, 1846.'

कब्र के चारों और झाड़-झंखाड़ों का एक जंगल-सा उगा हुआ था, जैसे मानो कोई भी वहां कभी न आया हो। मैं अपने साथ फूलों का एक गमला ले गया था, जो मैंने कब्र के पायते रख दिया। कब्र का नंबर नोट करके मैं अंदर रजिस्ट्री दफ्तर में यह पूछने के लिए गया कि कब्र के पत्थर की समुचित देखभाल पर कितना खर्च आयेगा। मुझे बताया गया कि इस पर 5.40 पौण्ड सालाना खर्च आयेगा। यह रकम

फौरन चुका कर और रसीद ले कर मैं भारतीय हाई कमीशन गया और वहां रसीद जमा करके मैंने उप-उच्चायुक्त से कहा कि मैं हर साल इतनी ही रकम भारतीय हाई कमीशन को भेजता रहूंगा, ताकि वह कब्रगाह के अधिकारियों को भेज दी जाय। उस समय के उप-उच्चायुक्त नटवर-सिंह, इतिहास के विद्यार्थी होने के कारण जानते थे कि आधुनिक भारत के इतिहास में द्वारकानाथ टैगोर की भूमिका एक अग्रदूत की भूमिका रही है। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि इस उल्लेखनीय भारतीय की कब्र की समुचित देख-भाल की जायगी, और इसका पूरा दायित्व अब से भारतीय हाई कमीशन का होगा। बाद में उन्होंने मुझे सूचित किया कि हाई कमीशन ने कब्रगाह के अधिकारियों के पास कब्र की अगले पच्चीस साल, अर्थात् इस सदी के अंत तक समुचित देखभाल और मरम्मत के लिए एक मुश्त पेशगी रकम जमा कर दी है। इस आश्वासन के लिए मैं उनका आभारी हूं।

रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में सुरक्षित इस कब्र और उसके पत्थर का पूर्वकालीन इतिहास यहां पर उल्लेखनीय है। सबसे पहले वहां गनेन्द्रनाथ टैगोर के नाम लिखा एक पत्र है, जिस पर लंदन, 17 मई, 1862 की तारीख है, जिसे मनोमोहन घोष ने (परिवार के एक मित्र जो सत्येन्द्रनाथ टैगोर के साथ इंगलैंड गये थे और उनकी तरह ही आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठे थे, किन्तु अनुत्तीर्ण रहे। भारत लौटने पर कलकत्ता हाई कोर्ट में प्रथम भारतीय बेरिस्टर के रूप में उनका नामांकन किया गया)। केन्सल ग्रीन के कब्र गाह की यात्रा का जिक्र करते हुए लिखा था :

'इस स्थान का नाम सुन कर ही तुम्हारा हृदय उस महान व्यक्ति के प्रति, जो 'यहां चिरनिद्रा में सो रहा है' एक विषादपूर्ण श्रद्धा से भर जायेगा। ...कब्र की सूरत देख कर, यद्यपि इसने उस दिवंगत व्यक्ति के प्रति जो इसके नीचे बंद है, हमारे अंदर श्रद्धा की भावना जगा दी, लेकिन साथ ही हमें अत्यंत व्याकुल भी कर दिया क्योंकि हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि हमने घर पर जो वर्णन सुना था और यहां पर जो देखा था, उनमें कोई संगति कैसे बिठायें। हम दोनों (संकेत सत्येन्द्रनाथ की ओर है) यह देख कर क्षोभ और घृणा से भर गये कि इस मामले में जिनका हाथ था, उन्होंने कितनी धोखाधड़ी से काम लिया था। हमने सुना था कि वहां एक सुंदर और शानदार कब्र थी, जिस पर खुदा अभिलेख बंगाली भाषा में था, लेकिन हमने देखा कि यह कोरी मनगढ़ंत कल्पना थी और सरासर झूठ था। कब्र का पत्थर, पत्थर का टुकड़ा मात्र है (संगमरमर का नहीं), जो लंबाई में करीब तीन हाथ लंबा, जिस पर निम्न शब्दों के अलावा और कोई अभिलेख नहीं है:

डी.टी.
द्वारकानाथ टैगोर
ऑफ केलकट्टा
एब्तिट : 1स्ट ऑगस्ट, 1846

'केवल इतने ही शब्द फूहड़ ढंग से इस पत्थर पर खुदे हुए थे, जिसके चारों ओर लोहे की एक सांकल है और चार सरू के पेड़ हैं, जो अब प्राय: सूख चुके हैं। अगल-बगल की कब्रों पर हमने अनेक बढ़िया पत्थर और सुंदर स्मारक देखे, लेकिन हमारे मन में उठा यह विचार हमें लगातार कचोटता रहा कि वह महान व्यक्ति जिसकी मिसाल का अनुकरण करके हम इंगलैंड आये थे, और इस यात्रा के लिए केवल जिसके ही हम आभारी थे, वह तो एक सबसे मामूली कब्र में दफ्न था, जबकि वह लोग जो उसके मुसाहिब और कृपापात्र थे, वे संगमरमर की सुंदर कब्रों में लेटे थे, जिन पर शानदार अभिलेख खुदे थे। मुझे बताया गया था कि तुम्हारे चाचा (महर्षि)को इस कब्र के पत्थर के लिए हजारों रुपये चुकाने पड़े थे, मुझे पता चला है कि इस पर 2 पौण्ड या 20 रु० से ज्यादा खर्च नहीं हुए। संक्षेप में इस देश में यह सबसे भद्दा और बदसूरत कब्र का पत्थर है जो हमने देखा है। अब सवाल उठता है: उस रकम का क्या हुआ? मिस्टर प्रेट (एक अंग्रेज मित्र) और ज्ञानेन्द्र मोहन (पथुरिया घाट शाखा के एक चचेरे भाई, जो 1862 में बैरिस्टर बनने वाले सबसे पहले भारतीय थे, लेकिन उन्होंने इंगलैंड में ही प्रैक्टिस की और पहले भारतीय थे, जिन्हें एक ब्रिटिश यूनिवर्सिटी में हिन्दू कानून और बंगाली भाषा का प्रोफेसर नियुक्त किया गया) की राय है कि इस मामले की जांच की जानी चाहिए और यह रकम वापस पाने के लिए उचित उपाय करने चाहिए। क्या आप यह सब बातें हमारे चचा साहब को बतायेंगे और मेरा सादा अभिवादन देकर उनसे कहेंगे कि विश्वासघात के इस मामले से मुझे सख्त नफरत हो गई है...

'इस पत्र के अंदर मैं सरु के वृक्ष की एक टहनी रख रहा हूं, जो मैं तुम्हारे दादा की कब्र से लाया हूं। मेहरबानी करके इसको परिवार के सभी लोगों को दिखाना। संभव है कि मैं अगली डाक में तुम्हारे आदरणीय चाचा जी के नाम भी एक पत्र भेजूंगा, लेकिन इस बीच उनसे पूछ कर हमें तुरंत सूचित करना कि क्या वे अपने पिता की कब्र के पत्थर को बदलवाना और उस पर एक उपयुक्त अभिलेख खुदवाना पसंद करेंगे और इसके लिए वे कितनी रकम खर्च करना चाहेंगे। अगर वे जल्द ही इसका निर्णय करके हमें जुलाई के मध्य तक सूचित कर दें तो हम पहली अगस्त तक कब्र का नया पत्थर लगवा सकते हैं, जो उनके पिता की पुण्य तिथि है। ज्ञानेन्द्र मोहन का कहना है कि उस दिन तुम्हारे दादा के मित्रों की, जो इस समय लंदन में हैं, केन्सल ग्रीन में एक मीटिंग बुलाकर उनके सामने ही नये पत्थर को स्थापित करना उचित होगा। मेरा ख्याल है कि तुम्हारे चाचा जी द्वारा बंगाली भाषा में लिखा अभिलेख खुदवाना सर्वथा उपयुक्त रहेगा...'

इस जरूरी अपील के जवाब में क्या कदम उठाया गया, इसका कोई लिखित उल्लेख नहीं मिलता – कम से कम प्रस्तुत लेखक की जानकारी में तो नहीं।

कब्र के इतिहास का अगल पृष्ठ ब्रॉडले, ब्रोकेनहर्स्ट, हन्ट्स के मेजर हरबर्ट डब्ल्यू. डेंट का है, जो उन्होंने सर जोतून्द्र मोहन टैगोर (!)को 25 जनवरी (1906 ?)

को लिखा था। जतीन्द्र मोहन टैगोर परिवार की पथुरिया घाट वाली शाखा के थे और महर्षि देवेन्द्रनाथ के चचेरे भाई लगते थे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें महाराजा और फिर सर के खिताब दिये थे, और 1906 के जमाने में वे लंदन के इंडिया ऑफिस के सरकारी हलकों में सबसे अधिक प्रमुख टैगोर थे। मेजर डेंट को शायद वहां से ही उनका नाम और पता मिला होगा। मूल पत्र का अनुवाद इस प्रकार है:

प्रिय महोदय,

मेरे पास 'द्वारकानाथ टैगोर' की संगमरमर में उकेरी एक आवक्ष प्रतिमा है, जिसे मूर्तिकार एच. वीक्स ने बनाया था।

यह मुझे मेरी विरासत में प्राप्त हुई है, मेरे दादा के भाई चीन के मिस्टर लैन्सलॉट डेंट की जानिब से, जो मिस्टर डी. टैगोर के मित्र थे।

आपके परिवार का अगर कोई सदस्य इस आवक्ष मूर्ति को लेना चाहें, तो मैं उन्हें बड़ी खुशी से इसे भेज दूंगा।

कहीं पर यह जिक्र पढ़कर कि मि. डी. टैगोर केन्सल ग्रीन की कब्रगाह में दफ्न हैं, मैंने वहां के सुपरिन्टेन्डेन्ट से पत्र द्वारा उनकी कब्र की वर्तमान अवस्था के बारे में पूछा। उनका उत्तर मैं इस पत्र के साथ नत्थी कर रहा हूं। आपका परिवार निस्संदेह जानना चाहेगा कि कब्र को उचित अवस्था में लाने के लिए क्या कुछ मरम्मत जरूरी है।

'मैं तीन पत्र साथ में नत्थी कर रहा हूं

'1. एक डी. टैगोर का पत्र मेरे चाचा एम. डेंट के नाम,

2. दूसरा मि. एल. डेंट का पत्र मि० डी. टैगोर के नाम,

3. तीसरा मूर्तिकार मि० वीक्स का पत्र आवक्ष प्रतिमा का पार्सल बांधने के सिलसिले में मि० विलियम डेंट के नाम!

साथ में संगमरमर की आवक्ष प्रतिमा के दो फोटो चित्र और 1846 के टाइम्स अखबार और कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की तालिका से लिए मि० डी. टैगोर के जीवन संबंधी 2 विवरण भी नत्थी कर रहा हूं।

टाइम्स अखबार में प्रकाशित मृत्यु-संवाद में महारानी विक्टोरिया द्वारा भेंट किए गये जिस स्वर्ण-पदक का उल्लेख है, निस्संदेह आवक्ष-प्रतिमा में उसको ही दिखाया गया है।

आपका भवदीय
हरबर्ट डब्ल्यू. डेंट
मेजर, फौज, अवकाश-प्राप्त

जतीन्द्र मोहन टैगोर ने अवश्य ही यह पत्र गगनेन्द्रनाथ टैगोर (कलाकार और गिरीन्द्रनाथ टैगोर के पोते) को भेज दिया होगा, जिन्होंने द्वारकानाथ के पत्रों तथा अन्य ऐसी निशानियों को सुरक्षित करने का भरसक प्रयत्न किया, जो बिल्कुल खो

या नष्ट नहीं हो गई थीं। डेंट के पत्र के साथ नत्थी पत्रों में एक पत्र केन्सल ग्रीन के कब्रगाह के सुपरिन्टेन्डेन्ट, टी.बर्गेस का पत्र भी था, जिन्होंने सूचित किया था कि 'कब्र नं० 6247 "टैगोर" बहुत बुरी दशा में है। अगल-बगल में लगे ग्रेनाइट के खम्भे जमीन में नीचे धंस गये हैं और लोहे की तमाम सांकलें टूट कर अपने सॉकिटों से निकल गई हैं और जंक ने उन्हें खा लिया है। इस सारी कब्र की अच्छी तरह सफाई करने, पत्थर पर खुदे अभिलेख के अक्षरों पर काला पेन्ट लगाने, खम्भों को खड़ा करने और लोहे की सांकलों को फिर से लगाने, उनके जंक उतारने और उन पर दो बार रंग करने में चार पौण्ड पन्द्रह शिलिंग का खर्च आयेगा। इससे सब चीजें ठीक अवस्था में हो जायेंगी।'

सहृदय गगनेन्द्रनाथ ने निश्चय ही यह रकम तुरंत भेज दी होगी, क्योंकि 17 अप्रैल, 1906 के पत्र में मि० बर्गेस ने उसकी प्राप्ति का उल्लेख करते हुए आश्वासन दिया कि आवश्यक मरम्मत करवा दी जाएगी।

रिकार्ड में एक और पत्र एन.सी. सेन का है, (शायद प्रसिद्ध ब्रह्मो नेता केशवचन्द्र सेन के पुत्र निर्मल चन्द्र सेन) जो 10 मार्च 1927 को 4 ओकवुड कोर्ट, केन्सिंगटन से रथीन्द्रनाथ टैगोर (कवि रवीन्द्रनाथ के पुत्र और वारिस) को भेजा गया था। इसमें उन्होंने लिखा :

'...एक जरूरी मामले में मैं तुम्हारी सलाह और मदद चाहता हूं। कुछ दिन पहले मैंने केन्सल ग्रीन के कब्रगाह के अधिकारियों से द्वारकानाथ टैगोर की कब्र की मौजूदा हालत के बारे में पूछा था और उसका मुझे जो उत्तर प्राप्त हुआ वह यहां पर उद्धृत कर रहा हूं। सुपरीन्टेन्डेन्ट ने लिखा है कि, 'यह स्मारक खुरदरे और भूरे रंग के ग्रेनाईट पत्थर का है, जो बेहद गंदा है। उसके गिर्द चार खंभे आज भी गड़े हुए हैं, और आरंभ में उनमें कुछ सांकलें लगी थीं, लेकिन अब वे सब जंक से जर्जर होकर नष्ट हो गई हैं। कई साल पहले मैंने लंदन आने वाले तीन प्रमुख भारतीयों को इसकी मरम्मत पर आने वाले संभावित खर्च की रकम बतायी थी और उन्हें कब्र दिखाने के लिए भी ले गया था लेकिन तब से उन्होंने कोई खोज-खबर नहीं ली। (आश्चर्य है कि ये तीन 'प्रमुख भारतीय' कौन थे)। स्मारक को मरम्मत की सख्त जरूरत नहीं है। बाकी खर्च का तखमीना इस प्रकार है :

'बड़े ग्रेनाईट स्मारक और उसकी बगलों की मुकम्मल सफाई का खर्च	**4.15.0**
छै हिस्सों की मरम्मत और सफाई	**2.5.0**
...और अक्षरों को पुनः काला रंगने का खर्च	**.20.0**
	पौ० 7.12.0

'आपकी चेक मिलने पर मैं स्वयं अपनी देख-रेख में सब ठीक करवा दूंगा। अगर आप इधर आयें तो मुझे सूचित कर दें और मैं आपको ऑफिस में ही मिलूंगा और आपके साथ चलूंगा।'

'इससे अब आपको कब्र की वर्तमान अवस्था का अनुमान हो गया होगा और इसका भी कि किस किस्म की मरम्मत की जरूरत है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस स्मारक की मरम्मत की जाय और इसे पुनः ठीक अवस्था में लाया जाय। यह रकम ज्यादा नहीं है और आवश्यक मरम्मत और स्मारक की शक्ल में आवश्यक सुधार करने के लिए 10 पौण्ड या 15 पौण्ड जमा कर लेना कठिन नहीं होना चाहिए। जो रक़म बच जाय, वह सुपरिन्टेडेन्ट को आगे भी कब्र की सुरक्षा और मरम्मत के लिए दी जा सकती है। क्या आप कृपा करके अपने पिता और परिवार के सदस्यों से परामर्श करके मुझे तुरंत सूचित करेंगे कि इस बारे में क्या कुछ किया जा सकता है...'

रथीन्द्रनाथ ने अपने पिता से परामर्श किया या नहीं और उन्होंने एन.सी. सेन के पत्र का क्या उत्तर दिया, इसका कोई विवरण रिकार्ड में नहीं मिलता, लेकिन एन.सी. सेन के पत्र के हाशिये पर रथीन्द्रनाथ के हाथ से लिखा हुआ है : 'ड्राफ्ट के जरिए 7 पौण्ड 12 शिलिंग भेज दिये।' तारीख 25.4.27 है। सन् 1927 और 1976 के बीच, जब प्रस्तुत लेखक कब्र का दर्शन करने के लिए गया था, क्या किसी और ने भी इस मामले में दिलचस्पी ली थी, यह जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। रवीन्द्रनाथ टैगोर तीसरी बार सन् 1912 में इंगलैण्ड गये थे और फिर **गीतांजलि** के प्रकाशन और नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद तो अनेक बार गये। उस समय तक वे विश्व-विख्यात हो चुके थे और उनकी पुस्तकों की रॉयल्टी, कम से कम कुछ वर्षों तक तो, काफी अधिक होती थी, और उनके प्रशंसकों की संख्या बहुत बड़ी थी। ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता कि वे कभी कब्र देखने गये हों या उसकी मरम्मत में उन्होंने कोई दिलचस्पी दिखाई हो। अगर उन्होंने दिलचस्पी ली होती तो उनकी कब्र पर भी उतनी ही भव्य और दर्शनीय समाधि का निर्माण किया जा सकता था, जितनी भव्य और दर्शनीय समाधि का निर्माण द्वारकानाथ ने राममोहन राय की कब्र पर करवाया था।

इसके विपरीत यह स्मरण करके हृदय कृतज्ञता से गद्‌गद् हो जाता है कि मेजर एच.डब्ल्यू. डेन्ट जैसे एक अजनबी ने स्वयं अपनी ओर से कब्र की हालत के बारे में पूछताछ करके परिवार के पास आवश्यक कार्रवाई के लिए सुपरिन्टेन्डेन्ट की रिपोर्ट भेजी। इक्कीस साल के बाद एन.सी. सेन ने भी, जो द्वारकानाथ के दूर के भी रिश्तेदार नहीं थे और जिन्होंने उनको कभी देखा भी नहीं था, यही किया।

मेजर डेन्ट ने मूर्तिकार वीक्स द्वारा निर्मित द्वारकानाथ की संगमरमर की आवक्ष प्रतिमा का जिक्र किया था, जो उन्हें द्वारकानाथ के प्रिय मित्र, अपने 'बड़े चाचा' चीन के लेन्सलॉट डेन्ट से विरासत में प्राप्त हुई थी। यह निश्चय ही उस मूल आवक्ष-प्रतिमा की प्रतिकृति होगी, जो द्वारकानाथ ने 1842 में अपनी प्रथम इंगलैण्ड-यात्रा के दौरान बनवायी थी और बाद में भारत को भेज दी गई थी और जो इस समय कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी के द्वारमंडप में देखी जा सकती है। लगता है कि लेन्सलॉट डेन्ट ने स्वयं अपने संग्रह के लिए उसी कलाकार से इस

प्रतिमा की एक प्रतिकृति का आर्डर किया होगा। उनके पोते मेजर डेन्ट का यह प्रस्ताव की वे टैगोर परिवार के किसी भी सदस्य को यह आवक्ष-प्रतिमा दे सकते हैं, क्या स्वीकार किया गया था और क्या उनसे आवक्ष-प्रतिमा प्राप्त कर ली गई थी, और अगर ऐसा है तो इस समय वह प्रतिमा कहां रखी है, इसका पता करना जरूरी है।

प्रस्तुत लेखक सूचना के लिए प्रोफेसर अमलेन्दु बोस का आभारी है। जिस समय प्रतिभाशाली बंगाली कवियत्री-बहने तोरू दत्त और अरू दत्त अपने पिता के साथ लंदन में कलकत्ता की सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व जस्टिस और द्वारकानाथ के व्यक्तिगत मित्र सर ऐडवर्ड रेयन से मिलने गयीं तो उन्होंने उनके द्वारमंडप में 'संगमरमर की बनी द्वारकानाथ की एक सुंदर आवक्ष-प्रतिमा' रखी देखी। '(**लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ तोरू दत्त** से उद्धृत : हरिहर दास, इम्फ्रे मिल्फोर्ड, ओयूपी, 1921) यह कहना कठिन है कि यह प्रतिकृति वही थी, जिसका जिक्र मेजर डेन्ट ने किया था और जिसे बाद में उनसे सर ऐडवर्ड रेयान ने प्राप्त कर लिया था या कि उन्होंने भी चीन के लेन्सलॉट की तरह अपने मित्र की स्मृति में अपने लिए प्रतिमा की अलग से एक प्रतिकृति बनवा ली थी। प्रस्तुत लेखक को यह भी ज्ञात नहीं हो सका कि सर ऐडवर्ड वाली प्रतिकृति इस समय कहां है और किसके कब्जे में है।

नोट्स

[1] अजित कुमार चक्रवर्ती : **महर्षि देवेन्द्र ठाकुर** (बंगाली जीवनी), जिज्ञासा, कलकत्ता, 1971.

[2] मां जब तक जीवित थीं, देवेन्द्रनाथ का उनसे अधिक लगाव नहीं दीखता था। उनकी आत्मकथा में अपनी मां का स्मरण उन स्नेहपूर्ण और भावभीने शब्दों में नहीं मिलता, जैसा कि दादी अलकासुंदरी का। इसके अलावा, उनकी मां दिगम्बरी इतनी कट्टर वैष्णव थीं कि **शालिग्राम** की पूजा में अपना सारा दिन व्यतीत कर देती थीं और अपने पति के स्पर्श मात्र को कलुषित करने वाला समझती थीं। फिर भी अपने पुत्र के सपने में उन्होंने शालिग्राम का परित्याग करने के लिए पुत्र को आशीर्वाद दिया था। क्या मृत्यु ने उनको कट्टर ब्रह्मो के रूप में बदल दिया था? हालांकि महर्षि अपनी मां के आशीर्वाद पर बहुत प्रसन्न थे, लेकिन उन्होंने इस वैषम्य का कारण नहीं बताया। वे विश्वास करना चाहते थे और उन्होंने विश्वास किया, इसका और कोई कारण नहीं हो सकता था।

[3] सम्पत्ति अभी तक ज्यों की त्यों अखंड थी। आर्थिक संकट, जिसका उस समय तक पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता था, एक साल बाद आया।

[4] बंगाल हरकारू, दिसंबर, 4, 1846.

[5] ब्लेयर बी. क्लिंग ने अपनी पुस्तक **पार्टनर इन एम्पायर** में कार, टैगोर एण्ड कम्पनी,

यूनियन बैंक तथा द्वारकानाथ के अन्य व्यावसायिक कारोबर के उत्थान और पतन का पूरा ब्यौरा दिया है।

जुलाई-दिसंबर 1970 के **बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट** में उद्धृत। पत्र की मूल प्रति लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में है।

द्वारकानाथ के चित्र

द्वारकानाथ को चित्र बनवाने का कितना शौक था, यह सभी जानते हैं। किशोरी चन्द्र मित्रा ने उस चित्र का उल्लेख किया है जो उन्होंने कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर राबर्ट कटलर फर्गुसन का बनवाया था, जिनसे उन्होंने आरंभिक कानूनी शिक्षा ली थी। मित्रा के अनुसार यह चित्र द्वारकानाथ के कलकत्ता के मकान की गैलरी में टंगा रहता था। अब वह कहां पर है, इसकी प्रस्तुत लेखक को कोई सूचना नहीं है।

साथ ही यह भी नहीं मालूम कि उन्होंने भारत में अपने किसी अन्य मित्र या स्वयं अपना कोई चित्र किसी कलाकार से बनवाया था या नहीं। यह कि उन्होंने तकिये के सहारे लेटी एक भारतीय सुंदरी का चित्र बनवाया था, इसका उल्लेख एक जर्मन यात्री, कैप्टन लियोपोल्ड ऑर्लिच ने किया था, जो 1843 में उनके बेलगाछिया के ग्रीष्म-भवन गया था।

जब वे 1842 में इंगलैण्ड गये, तो उन्होंने एक प्रसिद्ध कलाकार एफ. आर. से को उनका एक आदमकद तैल-चित्र बनाने का और मूर्तिकार वीक्स को संगमरमर में उनकी आवक्ष-प्रतिमा तराशने के लिए नियुक्त किया – ये दोनों कार्य उन्होंने कलकत्ता के नागरिकों के आग्रह पर करवाये थे। उनका तैल-चित्र इस समय कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में टंगा हुआ है और आवक्ष-प्रतिमा कलकत्ता की बेल्वेडियर स्थित नेशनल लाइब्रेरी के द्वारमंडप में देखी जा सकती है। तैल-चित्र सबसे पहले जून 1843 में रॉयल अकादमी में प्रदर्शित किया गया था, इसके पूर्व कि वह कलकत्ता के टाऊन हॉल को भेजा जाता, जहां उसे एच.ई.ए. कॉटन ने उसे देखा था और बाद में जिसका वर्णन **कलकत्ता ओल्ड एण्ड न्यू** में किया। कॉटन के अनुसार जब यह चित्र सबसे पहले लंदन में प्रदर्शित किया गया, उस समय कैनवस की पीठ पर एक 'कलाकारों के रंग तैयार करने वाले कारखाने का एक विज्ञापन' चिपका हुआ था, जिसमें बड़े अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में इन रंगों के आश्चर्यजनक रूप से चमकीले प्रभाव की तारीफ की गई थी, क्योंकि इन्हें एक नये माध्यम में तैयार किया गया था। 'लेकिन जब 1901 में कारपोरेशन ने टाऊन हॉल में

टंगे चित्रों के पुनरुद्धार का कार्य मि. अलैक्जैन्डर स्कॉट को सौंपा गया तो पता चला कि द्वारकानाथ का चित्र सबसे बुरी अवस्था में था। रंग वार्निश में घुलमिल गये थे और उन्हें स्पर्श करने में अत्यंत सतर्कता और सावधानी की जरूरत थी। मरम्मत के परिणामस्वरूप द्वारकानाथ का चेहरा और सुंदर काश्मीरी शाल तो अपने मूल रंग में आ गये, और हुक्का तथा अन्य अतिरिक्त वस्तुएं भी उस प्रमुख स्थिति में ले आयी गयीं, जो चित्रकार को अभीष्ट थी।

लगभग उसी समय जब द्वारकानाथ ने एफ.आर. से को कलकत्ते के टाऊन हॉल के लिए अपना चित्र बनाने का काम सौंपा था, उन्होंने एक और प्रसिद्ध कलाकार, सर मार्टिन आर्चर शी को भी, जो रॉयल अकादमी के अध्यक्ष थे, संभवतः अपने बेलगछिया वाले ग्रीष्म-भदन में अपने निजी संग्रह के लिए, या किसी को भेंट करने के लिए, अपना आदमकद तेल चित्र बनाने का काम सौंपा था। रवीन्द्र सदन में सुरक्षित द्वारकानाथ के कतरन-रजिस्टर में इन दोनों कलाकारों के स्टूडियो में जाकर चित्र बनवाने के बैठने के बारे में उनके अपने हाथ की लिखी सूचनाएं दर्ज हैं। लंदन से प्रकाशित 4 अक्तूबर 1842 के **मंथली टाइम्स** में खबर छपी : 'सर मार्टिन शी एक आदम-कद चित्र बना रहे हैं, और मिस्टर से भी इस प्रमुख हिन्दू की अनुकृति तैयार कर रहे हैं।' जहां तक प्रस्तुत लेखक की जानकारी है, सर मार्टिन शी द्वारा बनाया चित्र कभी भारत तक नहीं पहुंचा। यह संभव है कि द्वारकानाथ ने व्यक्तिगत रूप से वह चित्र महारानी विक्टोरिया को भेंट कर दिया हो और वह उनके किसी महल में टंगा हो। यह अनुमान अमितेन्द्रनाथ टैगोर का है, जो कलाकार अवनीन्द्रनाथ टैगोर के पोते हैं। या संभव है कि द्वारकानाथ ने वह चित्र किसी अन्य घनिष्ठ मित्र को भेंट कर दिया हो, जिनकी संख्या भी काफी थी।

परिवार के एक और वंशज, सुभो टैगोर के पास मूर्तिकार एच.वीक्स द्वारा पानी के रंगों में बनाया द्वारकानाथ का वह चित्र है, जिसमें उनके साथ उनका भानजा चंदर मोहन चटर्जी भी है, और जो विक्स ने एस.एस. **रेन्बो** जहाज से इंग्लिश चैनल पार करते समय बनाया था। उस पर 9 जून 1842 की तारीख है। वीक्स ने, जो शायद उनके हम-सफर थे, पानी के रंगों में 'डोवर कासल' का भी, जिस रूप में वह स्टीमर से नजर आता था, चित्र बनाया था। ये दोनों पानी के रंगों में बने चित्र सुभो टैगोर के पास हैं।[4]

रवीन्द्र सदन में द्वारकानाथ का एक लघु चित्र भी है, जो किसी जी.आर.वार्ड नाम के कलाकार का बनाया है। यह चित्र रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपनी एक लंदन यात्रा में संयोग से उस समय मिला था, जब वे एक कलाकृतियों के विक्रेता की दुकान के सामने से गुजर रहे थे और उन्होंने तस्वीर के नीचे लिखी सूचना को पढ़ा, जिसमें लिखा था : 'एक भारतीय राजकुमार का चित्र।' अपने परदादे की आकृति और पोशाक को पहचान कर उन्होंने वह चित्र खरीद लिया। लगता है कि यह एफ.आर. से के चित्र की अनुकृति है (लघु आकार में), और संभव है कि यह या तो वही चित्र है

या उससे मिलता-जुलता चित्र है, जिसका उल्लेख नवीनचन्द्र (द्वारकानाथ के भानजे, जो उनकी दूसरी इंगलैंड यात्रा में उनके साथ थे) ने अपने ममेरे भाई गिरीन्द्रनाथ को लिखे अपने 23 अगस्त 1845 के पत्र में किया था। 'मैं जल्द ही तुम्हें बाबू का एक चित्र भेजूंगा, जो प्रसिद्ध कलाकार मिस्टर से के उस चित्र की नकल है, जो तुम्हारे यहां टाऊन हॉल में लगा है। यह चित्र वैसे आकार में उससे छोटा है।' नवीनचन्द्र ने इस बात का जिक्र नहीं किया था कि वह नकल किस कलाकार ने तैयार की थी और न उन्होंने फिर कभी इस बात का ही जिक्र किया कि उन्होंने वह चित्र भारत भेज दिया था, यद्यपि वे उसके बाद करीब एक साल तक इंगलैंड में रहे थे। इसलिए यह निश्चित नहीं है कि वह चित्र भारत आया था और अगर आया था तो इस समय कहां है। संभव है कि यह वही प्रतिकृति है जो रवीन्द्रनाथ ने बाद में इंगलैंड में दुकान से खरीदी थी, अगर कलाकार ने एक से अधिक प्रतिकृतियां तैयार करके बेचने के लिए दुकान पर नहीं रखी थीं, जिसकी संभावना बहुत कम है।

ग्यारहवें परिच्छेद में पहले एक आदमकद तेल-चित्र का उल्लेख किया गया था, जिसे बनाने के लिए द्वारकानाथ ने फ्रांसीसी कलाकार बारों द श्वीतेर को 1845-46 की अपनी दूसरी पेरिस यात्रा के दौरान नियुक्त किया था और जो उनकी मृत्यु के बाद ही पूरा हो सका था और कई वर्षों बाद भारत पहुंचा था। द्वारकानाथ की एक वंशज, मदाम कृष्णा रिबो के अनुसार मूल चित्र इस समय उनके पास उनके पेरिस वाले घर में है। उन्होंने यह चित्र 39 ड्यूक स्ट्रीट, सेन्ट जेम्स, लंदन के प्रसिद्ध कला-विक्रेता गाइल्स आयर के यहां से 1978 में खरीदा था। कृष्णा रिबो ने लिखा है कि उनकी मां जब 1979 की गरमियों में उनके घर पेरिस आयी थीं, तो उन्होंने चित्र देखते ही पहचान लिया कि वह जोरासेन्को के घर के संगमरमर के फर्श वाले उस विशाल ड्राइंग रूम में लगा हुआ था, जो मेरे दादा सुधीन्द्रनाथ टैगोर (द्वारकानाथ टैगोर के परपोते) के पास था।

मां के अनुसार, एक दुर्घटना के परिणाम स्वरूप चित्र का एक कोना खराब हो गया था, और परिवार के एक कलाकार से उसकी मरम्मत करने को कहा गया था। आर्थिक कठिनाइयों के कारण मरम्मत का पारिश्रमिक नहीं चुकाया जा सका। और यह चित्र अवनीन्द्रनाथ के परिवार के पास ही रखा रहा, और (फिर कृष्णा रिबो के अनुसार) अंत में यह चित्र प्रद्योत टैगोर के घर पहुंच गया (नतुन बाजार में टैगोर कासल)। सुभो टैगोर ने अपने एक लेख 'दी हाऊस ऑफ टैगोरर्स' में इस चित्र का फोटो शामिल किया था, जो 29 सितंबर, 1846 को ओरियन्ट वीकली के दसवें वार्षिक पूजा नम्बर में प्रकाशित हुआ था। लेकिन इसके बाद यह चित्र किस तरह और कब भारत से बाहर गया और इंगलैण्ड पहुंचा, इस बारे में किसी को कुछ पता नहीं है... संयोग से मैंने जब यह चित्र खरीदा, उससे पहले ही इसकी सफाई और मरम्मत की जा चुकी थी। लेकिन मेरे पास इसका पुनरुद्धार होने से पहले का एक फोटो भी है। गाइल्स आयर के अनुसार और वह जो भी इस तेल-चित्र के बारे में

और जानकारी प्राप्त कर सके, उसके अनुसार यह कई सालों से इंगलैंड में था।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर के नाती सोभनलाल गांगुली को याद है कि उनके कलाकार नाना ने श्वीतेर के मूल आदम-कद तेल-चित्र की हू-ब-हू प्रतिकृति बनायी थी। इस बात की पुष्टि कलाकार के पोते अमितेन्द्रनाथ टैगोर ने भी की है, जिन्होंने ओकलैंड विश्वविद्यालय से (जहां वे पढ़ाते हैं) लिखा है : 'मेरे दादा के पास द्वारकानाथ के बैठे हुए मुद्रा में खींचे हुए चित्र की प्रति उस समय खराब हो गई थी, जब हम गुप्ता-निवास छोड़ कर जा रहे थे (कलकत्ता की एक उपनगरी में स्थित यह वह घर था जहां जोरासेन्को के वंशानुगत भवन के अपने भाग से निकल कर परिवार जा बसा था)। मेरे पिता ने यह चित्र स्वर्गीय क्षेमेन्द्रनाथ टैगोर को दे दिया– जब हम लोग जोरासेन्को में 5, द्वारकानाथ टैगोर लेन में रहते थे, उस समय मेरे दादा द्वारा बनायी द्वारकानाथ टैगोर के चित्र की प्रतिकृति दूसरी मंजिल के हाल में टंगी रहती थी और मूल चित्र तीसरी मंजिल के हॉल में, जहां गगनेन्द्रनाथ का परिवार रहता था। जब हम लोगों ने जोरासेन्को छोड़ा, उस समय तीसरी मंजिल का चित्र राजा पी.एन. टैगोर को बेच दिया गया, साथ में नगेन्द्रनाथ टैगोर का तैल-चित्र भी।... बाद में उनके (पी.एन. टैगोर के) बेटे ने यह चित्र एक मिस्टर तालुकदार को बेच दिया (जिनका देहान्त हो चुका है), जिन्होंने उसे फिर लन्दन के एक कला-व्यापारी को बेच दिया।'

ऐसा लगेगा कि सुनी-सुनायी बातों पर आधारित अधिकाश पारिवारिक कथाओं की तरह, इसमें भी कुछ गड़डमड्ड हो गया है और विसंगति आ गई है। देवेन्द्रनाथ टैगोर के नाम भेजे अपने पत्र में बारों द श्वीतेर ने (ग्यारहवें परिच्छेद के नोट नं० 7 में उद्धृत) इस बात का जिक्र किया था कि उन्होंने मूल चित्र की एक प्रतिकृति भी बनायी थी, जिसे उन्होंने परिवार के लिए भेजने का प्रस्ताव किया था। अगर यह चित्र भेजा गया था तो एक ही कलाकार द्वारा बनाये द्वारकानाथ के दो चित्रों का दो भिन्न स्थानों पर पाये जाने में जो विसंगति नजर आती है, उसका स्पष्टीकरण हो जाता है। संदीप टैगोर के अनुसार (जो आजकल जापान के ओसाका विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे हैं) उनके दादा राजा पी.एन. टैगोर ने जो चित्र खरीदा था और जो टैगोर भवन में टंगा रहता था, वह उनके परिवार ने बाद में रवीन्द्र भारती म्यूजियम को भेंट कर दिया था और संभवतः यह वही चित्र है जिसका पुनरुद्धार कलाकार परेश नाथ सेन ने किया था। यह चित्र मूल चित्र की प्रतिकृति हो सकता है। मूल चित्र, जो, कहा जाता है कि, महाराजा प्रद्योतकुमार टैगोर ने खरीदा था और जो टैगोर कॉसल में रखा गया था, संभवतः वही था जो बाद में लंदन के एक कला-व्यापारी के पास पहुंच गया, और जिससे कृष्णा रिबो ने वह चित्र खरीदा था।

संभवतः जो चित्र जोरासेन्को के मुख्य घर के उस भाग में टंगा था, जो कृष्णा रिबो के पास था, उसका ही अतना विशद् वर्णन क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के एक नाती

अमृत मोयी मुकर्जी ने **पौष** 1305 वि.सं. के **समकालीन** में प्रकाशित अपने लेख में किया था : 'बचपन से ही हम लोग दूसरी मंजिल के ड्राईंग रूम के हॉल की दीवार पर टंगे द्वारकानाथ के एक विशाल चित्र को देखने के आदी हो गये थे। हम उसे इतनी बार देखते थे कि आज भी अगर मैं अपनी आंखें बंद कर लूं तो उसे स्पष्ट देख सकता हूं। एक मध्यम कद के आदमी, उनके बबरी (घुंघराले) बालों पर रखा **समला** (एक प्रकार की पगड़ी), बदन पर कढ़ाई किया मखमली **जन्बा** और उस पर लपेटा एक कढ़ाई किया हुआ काश्मीरी शॉल। उनकी उंगलियां एक औरत की उंगलियों की तरह पतली थीं—जबकि इसके विपरीत मूछें मरोड़दार थीं। एक सुंदर नक्काशी किया हुआ **अलबोला** (फर्शी हुक्का) था और एक ओर संगमरमर की मेज पर रखे पुस्तकों के ढेर के साथ रखा कलमदान।

इन चार, एफ.आर. से, सर मार्टिन आर्चर (अप्राप्त), बारों द श्वीतेर और कोंत द ओर्स के बनाये चित्रों और एच. वीक्स की बनायी संगमरमर की एक आवक्ष-प्रतिमा और पानी के रंगों में बनाये एक चित्र के अलावा 'फेलिक्स सिवेश्चियन फई द कोशे के मित्र, द्वारकानाथ टैगोर' का बिना हस्ताक्षर और बिना तारीख का एक पानी के रंगों का चित्र और साथ ही द्वारकानाथ टैगोर और फई द कोंशे का कलम और स्याही से बनाया एक रेखा-चित्र या कार्टून भी, जिसके नीचे फ्रेंच भाषा में लिखा है, 'मार्च 1846, पेरिस, फई द कोंशे, मेरा मित्र द्वारकानाथ टैगोर, कलकत्ता,' उपलब्ध हैं, जिन्हें एम. आईगरशिमत और कृष्णा रिबो के सौजन्य से इस पुस्तक में प्रकाशित किया जा रहा है।

1842 में अपनी इंगलैंड यात्रा के दौरान द्वारकानाथ ने महारानी विक्टोरिया और उनके पति से आग्रह किया था कि वे कलकत्ते के लोगों को भेंट करने के लिए अपने आदमकद चित्र बनवायें और अपनी दूसरी यात्रा के दौरान, जब वे कार्क गये तो उन्होंने प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त और समाज सुधारक, फादर मैथ्यूज को अपना चित्र बनवाने के लिए राजी किया और इसके लिए एक प्रसिद्ध आयरिश कलाकार को नियुक्त किया। ब्रिटिश महारानी और उनके पति का चित्र इस समय विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में टंगा है और फादर मैथ्यूज के चित्र का क्या हुआ, इसका पता प्रस्तुत लेखक को नहीं लग सका। द्वारकानाथ अपने समय में एक अत्यंत आकर्षक, आश्चर्यजनक रूप से विख्यात हस्ती थे और यह असंभव नहीं है कि उनके और भी अनेक चित्र बनाये गये हों। इसकी पड़ताल करने और उनको ढूंढ निकालने की जरूरत है।

बहरहाल, अपने पूर्वज के चित्रों में-कृष्णा रिबो की दिलचस्पी के कारण, हमें सेंन्ट जैम्स, लंदन के आयर एण्ड हॉब हाऊस लिमिटेड के सौजन्य से द्वारकानाथ के चित्रों और प्रतिमाओं का लंदन में जब-जब प्रदर्शन हुआ, उसकी सूची प्राप्त हुई है :

1. बारों द श्वीतेर कृत तेल-चित्र रायल अकादमी, लंदन में प्रदर्शित, 1848, नं० 222 (संग्रह: आजकल मदाम जे. रिबो के पास)

2. एच. वीक्स कृत संगमरमर की आवक्ष प्रतिमा रॉयल अकादमी, लंदन में प्रदर्शित, 1843, नं० 1467.
3. जे.ई. जोन्स कृत संगमरमर की आवक्ष-प्रतिमा रॉयल अकादमी, लंदन में प्रदर्शित, 1846, नं० 1458.
4. डब्ल्यू. बारक्ले द्वारा पानी के रंगों में बनाया चित्र आर.एस.बी.ए. में प्रदार्शित, 1848, नं० 652.
5. कोंत द ओर्स द्वारा पानी के रंगों में बनाया चित्र 1952 तक कोलनाधी के पास
6. एफ.आर. से कृत तेल-चित्र रॉयल अकादमी लंदन में प्रदर्शित, नं० 289.
7. सी.बी. बर्च कृत आवक्ष-प्रतिमा रॉयल अकादमी, लंदन में प्रदर्शित, 1856, नं० 1299, 'जी.एम. टैगोर, कलकत्ता' के नाम से। (आयर एण्ड हॉब हाऊस लि० के पास कोई विवरण या सूचना आर्चर शी द्वारा बनाये द्वारकानाथ के चित्र के बारे में नहीं है।)

लेकिन जो एक समय था और अब जिसका अता-पता तक नहीं मिलता, वह था द्वारकानाथ का चित्र, जो एक शोकिया कलाकार ने बनाया था, जिसके पीछे एक प्रेम-कहानी जुड़ी हुई थी। फैनी स्मिथ एक सुंदर और आकर्षक नवयुवती थी जो द्वारकानाथ के सबसे छोटे बेटे नगेन्द्र से, जिसे वे शिक्षा के लिए अपने साथ दूसरी यात्रा पर इंगलैण्ड ले गये थे, प्रेम करती थी। बेटे से मोहब्बत करने के साथ-साथ वह द्वारकानाथ की भव्य आकृति और उनकी शानदार पोशाक से भी बहुत प्रभावित था और उसने 1846 के आरंभ में उनका एक चित्र बनाया और नगेन्द्र को भेंट कर दिया। उसने नगेन्द्र को लिखे पत्रों में उस चित्र का कई बार जिक्र किया है। आधी शताब्दी तक इस चित्र के बारे में कहीं कोई चर्चा नहीं सुनी गई। फिर अचानक एक दिन कलाकार अवनीन्द्रनाथ टैगोर को अपने पुराने अंग्रेज कलाकार गुरू लीविस पामर का लंदन से 18 फरवरी 1897 को लिखा एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने एक फ्रांसिसी या फैनी स्मिथ नामक बुजुर्ग महिला के पत्र से, जो स्वयं और जिसका परिवार 1846 में नगेन्द्र के निकट मित्रों में से थे, कुछ उद्धारण भेजे। मिस्टर पामर ने लिखा : 'इस महिला ने (जो केवल शौकिया चित्रकार है) मित्रता की खातिर द्वारकानाथ टैगोर का एक चित्र बनाया था, उनके बेटे नगेन्द्रनाथ के लिए, जिन्हें नहीं मालूम कि इस चित्र का क्या हुआ, लेकिन वह इस महिला के पिता के घर में एक लंबे अरसे तक टंगा रहा। —महिला ने आपके दादा (नगेन्द्रनाथ) के साथ मित्रता का पूरा ब्यौरा लिख कर मुझे भेजा है, जिनका वर्णन उसने इस प्रकार किया है : 'मैं केवल यही चाहती हूं कि मैं उनके पोते की खातिर बयान कर सकूं कि उनके दादा अपनी जवानी में कितने खूबसूरत थे। वे विलक्षण रूप से चतुर थे और हम दोनों मेरे पिता के बाग में बैठकर एक साथ शेक्सपियर, बायरन तथा अन्य दूसरे कवियों

को पढ़ते थे। उन्होंने उनकी कई कविताओं का संस्कृत में (तात्पर्य बंगाली से है क्योंकि नगेन्द्र को संस्कृत नहीं आती थी) अनुवाद किया था। बोलचाल में वे अत्यंत शालीन और शांत थे, उनका रंग कुछ गोरा या जैतूनी था और आंखें तो बेमिसाल खूबसूरत थीं। यह एक बीते जमाने की मोहब्बत की कहानी है, लेकिन वे बहुत कम उम्र के नौजवन थे, विशिष्ट रूप से सुंदर और प्रतिभाशाली, और मैं अत्यंत सुंदर और आकर्षक लड़की थी और हम चढ़ती जवानी के उस आरंभिक काल के पुर जोश रोमांस की समस्त भावना से एक-दूसरे को प्यार करते थे, यह जानते हुए भी कि इस प्यार का एक दुःखद वियोग के अलावा और कोई नतीजा नहीं निकलेगा। जब जुदाई का वक्त आया, उन्होंने आग्रह किया कि मैं उनके अनेक कीमती उपहारों को स्वीकार कर लूं, लेकिन मैंने केवल वह शाल ही लिया जो वे स्वयं औढ़ते थे, और हमने कड़वे आंसू बहाते हुए एक-दूसरे से विदाई ली, और आज भी, हालांकि मैंने एक सुखी पत्नी और मां का जीवन बिताया है और मेरे बाल सफेद हो चुके हैं, मेरी आंखों में आंसू छलछला आते हैं, जब कभी मुझे बच्चों जैसे उस पवित्र और अबोध प्यार का ख्याल आता है। मैंने सुना था कि उनकी मृत्यु हो गई है, नहीं तो मैं शादी न करती...'[6]

बाद में, फैनी का अबनीन्द्रनाथ टैगोर से कुछ समय तक सीधा पत्र-व्यवहार होता रहा और उन्होंने उनको **आयरिश पोयम्स** की एक प्रति भेजी, जिसकी कविताएं 'हाथ से चित्रित' की गयी थीं। अमितेन्द्रनाथ को संदेह है कि उनके दादा को रवीन्द्र नाथ टैगोर की प्रसिद्ध कविता 'नदी' को चित्रित करने का विचार शायद इससे ही प्राप्त हुआ होगा, 'लेकिन यह केवल मेरा अनुमान ही है,' उन्होंने लिखा है।

नोट्स

[1] संस्मरण, पृष्ठ 8.

[2] **ट्रेवल्स इन इंडिया**, लांगमैन, ब्राऊन, ग्रीन एण्ड लांगमैन, 1845.

[3] डब्ल्यू न्यू मैन एण्ड कं०, कलकत्ता, 1907.

[4] जिन्होंने प्रतिकृति तैयार करने के लिए मूल चित्र देने की कृपा की।

[5] जिन्होंने नगेन्द्रनाथ का (जो द्वारकानाथ के सबसे छोटे पुत्र थे और जो उनकी दूसरी यात्रा में उनके साथ इंगलैंड गये थे) चित्र बनाया था। यह चित्र इस समय कहां है, इसकी पड़ताल जरूरी है।

[6] पत्र की मूल प्रति इस समय रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में है।

संदर्भिका

परिचायक

अपने जीवन-काल में कम से कम अपने जीवन के अंतिम पच्चीस वर्षों के दौरान द्वारकानाथ अपने समकालीन भारतीयों में एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके बारे में सबसे अधिक चर्चा होती थी और सबसे ज्यादा लिखा गया था, भारत में भी और विदेशों में भी। किन्तु फिर भी उनके घटनापूर्ण जीवन और बहु-क्षेत्रीय कार्यकलापों के बावजूद कोई भी प्रामाणिक दस्तावेजी समाग्री सुरक्षित नहीं बची। इस विसंगति को देखते हुए, द्वारकानाथ के परपोते क्षितीन्द्रनाथ टैगोर के इस आरोप में, जो वैसे तो अविश्वसनीय लगता है, कुछ सचाई नजर आने लगती है कि उनके चाचा कवि रवीन्द्रनाथ ने जान-बूझ कर सारे दस्तावेज और कागज-पत्र नष्ट करवा दिये थे।

जो थोड़ी-बहुत सामग्री बचा ली गई और उपलब्ध है, उसका मुख्य श्रेय स्वयं क्षितीन्द्रनाथ को है, जिन्होंने उसको सहेज कर रखा और बाद में कलकत्ता के पैतृक भवन में स्थित रवीन्द्र भारतीय म्यूजियम को भेंट कर दिया। कुछ और दस्तावेज और स्मृति-चिन्ह, जिन्हें द्वारकानाथ के एक और पोते, गनेन्द्रनाथ ने सहेज कर रखा था, आजकल शांतिनिकेतन में रवीन्द्र सदन के अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। कलकत्ता टाऊन हॉल के लिए बनाया एफ.आर. से का प्रसिद्ध चित्र इस समय विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में है, साथ में महारानी विक्टोरिया और प्रिंस अलबर्ट के लघु-चित्र और उनके द्वारा व्यक्तिगत रूप से द्वारकानाथ को भेंट किए हुए स्वर्ण-पदक भी वहीं हैं। मूर्तिकार वीक्स द्वारा कलकत्ते की जनता के लिए बनायी संगमरमर की आवक्ष-प्रतिमा नेशनल लाइब्रेरी के द्वार-मंडप को सुशोभित कर रही है।

उस जमाने का विख्यात बेलगछिया वाला ग्रीष्म-निवास, जहां पर द्वारकानाथ अपनी मशहूर दावतों का आयोजन किया करते थे, वह एक प्रकार से आजकल बंद पड़ा है और एक वीरान मकबरा बना हुआ है। उसमें संग्रहीत कला-भंडार की अधिकांश वस्तुएं द्वारकानाथ के वारिसों ने नीलाम कर दीं या बेच दीं, क्योंकि

उन्हें कर्ज चुकाने के लिए नकद पैसों की जरूरत थी और उन्हें परिवार की स्मरणीय वस्तुओं को सहेज कर रखने की जरा भी चिन्ता न थी। 5, द्वारकानाथ लेन का उतना ही प्रसिद्ध बैठकखाना, जिसका वे अपनी शहर की रिहायश के लिए इस्तेमाल करते थे और जो बाद में कलाकार-बन्धुओं गगनेन्द्रनाथ और अबीन्द्रनाथ का निवास-स्थान था और जिसने अपने यहां बंगाल की कला का पुनर्जागरण होते देखा था और उसका पोषण किया था, बाद में कवि रवीन्द्रनाथ की स्मृति में एक मामूली और भौंडी इमारत बनाने की खातिर तोड़ कर जमींदोज कर दिया गया।

द्वारकानाथ के जीवन का सबसे पहला सिलसिलेवार विवरण किशोरीचन्द्र मित्रा ने **मेमॉयर ऑफ द्वारकानाथ टैगोर** नाम से 1870 में प्रकाशित किया। चूंकि मूल रूप में यह एक सार्वजनिक भाषण के रूप में प्रस्तुत किया गया था, इसलिए इसमें जीवनी-संबंधी रूपरेखा अनिवार्यतः सरसरे ढंग की ही है। बाद में कल्याण कुमार दास गुप्ता के विद्वतापूर्ण परिश्रम के फलस्वरूप उसके बंगाली संस्करण में नोट्स के रूप में काफी-कुछ पूरक सामग्री जोड़ दी गई। मूल अंग्रेजी संस्करण के बाद ही उससे भी अधिक सरसरे ढंग का **मेमॉयर** जेम्स फरेल ने 1892 में प्रकाशित किया। क्षितीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा बंगाली भाषा में लिखित उनकी जीवनी, **द्वारकानाथ ठाकुरेर जीवनी**, यद्यपि बहुत देर से 1969 में प्रकाशित हुई, लेकिन वह आरंभ में 1901 में लिखी गई थी, किन्तु अधूरी छोड़ दी गई थी। यद्यपि कुछ अर्थों में यह अधिक ब्यौरेवार है, लेकिन समग्र रूप से देखें तो उतनी भी संतोषजनक नहीं है, जितनी किशोरी चन्द्र मित्रा की पुस्तक। क्षितीन्द्रनाथ के नाती अमृतमोयी मुकर्जी की बंगाली पत्रिका **समकालीन** में प्रकाशित लेखमाला में दी गई उनके जीवन-वृत्त संबंधी आनुषंगिक सूचनाएं अधिक रोचक और उपयोगी सामग्री प्रदान करती हैं।

द्वारकानाथ के जीवन-काल में प्रकाशित उनके जीवन-वृत्त संबंधी रूपरेखाओं मे सबसे प्रसिद्ध वह है जो किसी अज्ञातनामा लेखक ने फिशर्स कोलेनियल मैगजीन में 1842 में छापी थी। 3 अगस्त 1846 के लंदन **टाइम्स** में पूरे एक कॉलम की जो निधन-सूचना प्रकाशित हुई थी, उसमें भी उनके जीवन-वृत्त की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। लेकिन द्वारकानाथ के जीवन और कार्य के बारे में अब तक जो सबसे मुकम्मल और सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक छपी है, वह है इलीनोयस के विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रोफेसर ब्लेयर बी. क्लिंग की अभी हाल में लिखी कृति **पार्टनर इन ऐम्पायर**, जिसे 1976 में यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस ने छापा है। अन्य जीवनियों से विपरीत, वह पूर्ण रूप से प्रलेखित है और उसमें पूरी और व्यापक संदर्भिका दी गई है, विशेष कर द्वारकानाथ के व्यापारिक और औद्योगिक कारोबार और उद्यमों के बारे में। प्रोफेसर क्लिंग ने, जो एक पेशेवर इतिहासकार के नाते पूर्वी भारत के आर्थिक विकास के इतिहास में

दिलचस्पी रखते हैं, इसमें मुख्यतः उस विशाल व्यापारिक साम्राज्य के उत्थान, विकास और पतन का खाका खींचने की कोशिश की है जिसका अनेक बाधाओं के बावजूद द्वारकानाथ ने निर्माण किया था। जो लोग द्वारकानाथ के जीवन के इस पक्ष में विशेष रूप से दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें प्रामाणिक विवरण की जानकारी के लिए प्रो० क्लिंग की यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

मैंने यद्यपि इस पक्ष की उपेक्षा नहीं की और न उसको टालने की कोशिश की है, लेकिन मेरी दिलचस्पी मुख्य रूप से उनके मानव-स्वभाव और मानवोचित उदार-हृदय आचरण और व्यवहार की परिरेखा में अधिक थी, उस बहुमुखी प्रतिभा के मनुष्य में जो खुलेआम एक दुनियादार व्यक्ति था, किन्तु फिर भी जो नैतिक अंतर्दृष्टि और संवेदना के महान व्यक्तियों की प्रशंसा और स्नेह का पात्र था, और जिसने अपने देशवासियों को सिर्फ यह करके ही नहीं दिखा दिया कि विदेशी शासकों और शोषकों को उन्हीं की चाल से किस तरह परास्त किया जा सकता है, बल्कि जिसने राष्ट्रीय एकता और नागरिक उत्तरदायित्व की आधार-शिला भी रखी थी। वे अपनी विरासत के रूप में धार्मिक, नैतिक, सामाजिक सुधार के उस समय के सबसे महान आंदोलन का एक संस्थापक दे गये और अपने देश की परवर्ती पीढ़ियों को कालिदास के बाद का सबसे महान कवि और साहित्यिक जीनियस। किस मनुष्य ने इससे अधिक महान विरासत पीछे छोड़ी है?

आगे पुस्तकों की जो संदर्भिका दी गई है और जिन पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य हवालों का पाठ के साथ लगे नोट्स के अंदर उल्लेख है, वे सब उस सामग्री तक सीमित है, जिनका अध्ययन लेखक स्वयं कर सका है। इस सामग्री में सबसे महत्वपूर्ण और कीमती तो वे तत्सामयिक पत्रिकाएं और दैनिक अखबार थे, जो भारत और इंगलैंड में तब प्रकाशित होते थे, जिनको देखने-पढ़ने की सुविधा लेखक को इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी (ब्रिटिश म्यूजियम से संबद्ध) के सौजन्य से प्राप्त हुई थी। इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में भारत-संबंधी सबसे अधिक और अच्छी संदर्भ-सामग्री उपलब्ध है, पुस्तकों और दस्तावेजों के रूप में भी, जो ब्लैकफ्रायर्स रोड पर स्थित उसकी लाइब्रेरी एण्ड रिकार्ड्स में रखे गये हैं और उसके समाचारपत्र विभाग में, जो टेम्स नदी के दूसरे किनारे पर स्थित अलडविच के बुश हाऊस में है। ब्रिटिश लाइब्रेरी का समाचारपत्र विभाग लंदन की उपनगरी कॉलिण्डेल में हैं। एडिनबरा की नेशनल लाइब्रेरी और उसी शहर की टाऊन कौंसिल के पास 1842 में द्वारकानाथ की एडिनबरा यात्रा के प्रामाणिक विवरण सुरक्षित हैं। बेल्वेडियर, कलकत्ता में स्थित नेशनल लाइब्रेरी के अलावा, जिसके पास सम-सामयिक पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का भारत में सबसे बड़ा संग्रह उपलब्ध है, अन्य दूसरे मूल्यवान और प्रामाणिक संदर्भ-स्रोत हैं—कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, जोरासेन्को (कलकत्ता) में स्थिति रवीन्द्र भारती म्यूजियम, और शांतिनिकेतन का रवीन्द्र सदन। इन स्थानों पर उपलब्ध दस्तावेजों

और अन्य सामग्री को क्रमानुसार उनके संग्राहध्यक्षों के सौजन्य से निम्न सूची में शामिल किया गया है।

दस्तावेज और स्मृति-चिन्ह

विक्टोरिया मेमोरियल हॉल में उपलब्ध। निदेशक के सौजन्य से प्राप्त सूची :

1. **तेल चित्र** : द्वारकानाथ टैगोर, चित्रकार—एफ.आर. से, 1843 (सी.195).
2. **दस्तावेज** :
   1. द्वारकानाथ टैगोर के नाम 9 अक्तूबर, 1842 को लिखा लेडी विलयम बेंन्टिंक का पत्र, जिसमें सामाजिक सुधार के क्षेत्र में की गई राममोहन राय और द्वारकानाथ की सेवाओं की सराहना की गई है (डी. 31).
   2. विन्डसर कासल से द्वारकानाथ टैगोर के नाम 3 अगस्त, 1844 को लिखा चार्ल्स मरे का पत्र, जिसमें उन्होंने सूचित किया कि महारानी विक्टोरिया ने उनके निजी संग्रह के लिए अपना और प्रिंस अलबर्ट का एक लघु-चित्र बनाने का आदेश कर दिया है और उनके आग्रह पर महारानी और उनके पति के जो चित्र पेन्ट किए गये थे, वे भारत के लिए जहाज द्वारा भेज दिये गये हैं (डी. 34).
3. **स्वर्ण पदक** :
   1. स्वर्ण-पदक जो ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों ने द्वारकानाथ टैगोर को 1842 में भेंट किया था (आर. 1415).
   2. स्वर्ण-पदक जो महारानी विक्टोरिया ने द्वारकानाथ टैगोर को भेंट किया था (आर. 1416).

दस्तावेज और स्मृति-चिन्ह

जोरासेन्को, कलकत्ता स्थित रवीन्द्र भारती म्यूजियम में उपलब्ध। संग्राहध्यक्ष के सौजन्य से प्राप्त सूची :

1. द्वारकानाथ का तेल-चित्र, चित्रकार, बारों द श्वीतेर, पेरिस, 1847.

2. द्वारकानाथ पेरिस में–चित्रकार, एक फ्रांसीसी चित्रकार।
3. एडिनबरा की नागरिकता का चार्टर, अगस्त 1842.
4. महारानी विक्टोरिया की ओर से ड्यूक ऑफ नार्फोक द्वारा द्वारकानाथ को प्रदान किया गया कुल-चिन्ह।
5. कलकत्ते के नागरिकों की ओर से टाऊन हॉल में 6.1.1842 को पहली विदेश यात्रा के अवसर पर द्वारकानाथ को दिया गया मानपत्र।
6. द्वारकानाथ को एडिनबरा की एबॉरिजीनल इमेन्सीपेशन और एबॉरिजीनल प्रोटेक्शन सोसाइटी की ओर से 8.9.1842 को दिया गया मानपत्र।
7. सिम्रेगिडीयन वाई. वेन्नी (सोसाइटी फॉर दी प्रिजरवेशन ऑफ वेल्श कल्चर) का द्वारकानाथ के सम्मान में स्वागत-भाषण, 1842.
8. द्वारकानाथ की टोपी टांगने की धानी।
9. फलदान जिस पर द्वारकानाथ का व्यक्तिगत गुम्फाक्षर खुदा हुआ है।
10. द्वारकानाथ का मूल 'टिकट-चिन्ह'।
11. हितेन्द्रनाथ टैगोर द्वारा नकल की हुई द्वारकानाथ की 'डायरी ऑफ लेटर्स' की दो जिल्दें।
12. पुराने प्रेस-संवादों के उद्धरण।
13. अल्फ्रेड ब्रेम लिखित (1900) इंडिया जनरल प्रेस नेवीगेशन कं० लि० की रिपोर्ट !
14. बारों द श्वीतेर द्वारा देवेन्द्रनाथ टैगोर को द्वारकानाथ के तेल-चित्र के बारे में लिखा पत्र।
15. नगेन्द्रनाथ मुखर्जी द्वारा क्षितीन्द्रनाथ टैगोर को द्वारकानाथ संबंधी प्रचलित अफवाहों के बारे में लिखा पत्र।
16. द्वारकानाथ की सामाजिक और आर्थिक सरगर्मियों के बरे में सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं से संकलित उद्धरण।
17. 1842 में इंगलैण्ड यात्रा पर जाने से पूर्व द्वारकानाथ को सम्मानित करने के लिए कलकत्ते के नागरिकों द्वारा टाऊन हॉल में एक सार्वजनिक सभा बुलाने के प्रार्थना-पत्र।
18. द्वारकानाथ को अर्पित की गई श्रद्धांजलियां।
19. द्वारकानाथ द्वारा इन श्रद्धांजलियों का उत्तर।
20. हाऊस ऑफ कामंस में भारतीयों की ओर से भारत में यूरोपीय उपनिवेशन के विरूद्ध प्रार्थना-पत्र।

21. 1835 के **कलकत्ता मंथली जनरल** में प्रकाशित लार्ड विलियम बेन्टिंक को मान-पत्र भेंट करने के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बुलाई भारतीय नागरिकों की मीटिंग की कार्रवाई के ब्यौरे से उद्धरण (द्वारकानाथ टैगोर का भाषण)।
22. **1835 के कलकत्ता मंथली जनरल** में प्रकाशित प्रेस-नियमों के बारे में द्वारकानाथ के विचारों का उद्धरण।
23. 'ऑवर फेमिली कारेस्पांडेन्स–1835-1837' शीर्षक से टाइप की हुई प्रतियों की सजिल्द प्रति।
24. गिरीन्द्रनाथ टैगोर के नाम नवीनचन्द्र मुकर्जी के पत्र।
25. द्वारकानाथ टैगोर को लिखे गये 15 पत्रों की मूल प्रतियां, नौ बंगाली में और छै अंग्रेजी में।
26. द्वारकानाथ टैगोर द्वारा प्रसन्नकुमार टैगोर और मिस्टर गैरो के नाम लिखे गये दो पत्रों की मूल प्रतियां।
27. द्वारकानाथ संबंधी दस्तावेजों की प्रोफेसर ब्लेयर बी. क्लिंग द्वारा खींची 35 एम.एम. की पट्टी।

चुनिन्दा दस्तावेज

रवीन्द्र सदन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन में उपलब्ध। संग्रहाध्यक्ष के सौजन्य से प्राप्त सूची :

1. खैराती कार्यों के लिए विलियम प्रिन्सेप तथा अन्य को द्वारकानाथ द्वारा अमानत के रूप में 100,000/- रु० का दान-पत्र। 28 जून, 1839.
2. हस्तान्तरण का दस्तावेज : द्वारकानाथ द्वारा प्रसन्नकुमार टैगोर तथा अन्य को, 20 अगस्त, 1840.
3. द्वारकानाथ टैगोर और प्रसन्नकुमार टैगोर के बीच हुआ करारनामा, 20 अगस्त, 1840.
4. द्वारकानाथ से 1 वर्ष के लिए प्रसन्नकुमार टैगोर, रमानाथ टैगोर और चन्द्रमोहन चटर्जी द्वारा पट्टेपर लेने का करारनामा, 19 अगस्त 1840.
5. द्वारकानाथ का अंतिम वसीयतनामा और इच्छापत्र, 17 अगस्त, 1843.
6. टैगोर जमींदारियों के बंगाली भाषा में लिखे दस्तावेज, जिन पर द्वारकानाथ के हस्ताक्षर हैं।

7. स्वर्गीय बाबू द्वारकानाथ टैगोर की जमींदारियों पर बकाया कर्जों की सूची।
8. द्वारकानाथ टैगोर की जमींदारियों का मुख्तारनामा, 10 अगस्त, 1863.
9. गरीब अंधों के लिए द्वारकानाथ टैगोर फंड के ट्रस्टी जनों की अंतरिम नियुक्ति।
10. ऑवर फेमिली करेस्पॉन्डेन्स' (सजिल्द प्रति), गनेन्द्रनाथ टैगोर द्वारा संकलित, कलकत्ता, 1905। कुछ पत्रों की मूल प्रतियों के अलावा, बाकी टाइप की हुई प्रतियां हैं, जिनमें टंकन की गलतियों की भरमार है।
11. द्वारकानाथ टैगोर के सबसे छोटे पुत्र नगेन्द्रनाथ की डायरी, जो उनकी अंतिम यात्रा पर उनके साथ इंगलैण्ड गये थे।
12. युवा नगेन्द्रनाथ को लिखे फैनी स्मिथ के चंद पत्र।
13. अबनीन्द्रनाथ टैगोर के नाम सी. लीविस पामर का फैनी द्वारा बनाये द्वारकानाथ टैगोर के चित्र (अब खो गया है?) के संबंध में पत्र।
14. 'द्वारकानाथ ठाकुरेर ट्रस्ट फंड हिसाबेर खाता' (बंगाली भाषा में)।

पुस्तकें और पत्रिकाएं

अहमद ए.एफ. सलाहुद्दीन : **सोशल आइडियाज एण्ड सोशल चैन्ज इन इंडिया,** 1818-1835, लीडेन, 1965.

एण्ड्रयू यूल कम्पनी लिमिटेड, 1863-1963 : एण्ड्रयू यूल कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता, 1963.

बागल, जोगेशचन्द्र : 'अर्ली ईयर्स ऑफ द कलकत्ता मेडिकल कालेज', **मॉडर्न रिव्यू,** सितम्बर, 1947.

बागल, जोगेशचन्द्र : 'माइल स्टोन्स टू ऑवर फ्रीडम स्ट्रगल', **मौडर्न रिव्यू,** सितम्बर, 1953.

बागल, जोगेशचन्द्र : **उनाविंश शतब्दीर बांग्ला (बंगाली),** रंजन पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, 1963.

बन्दोपाध्याय, ब्रजेन्द्रनाथ: संवाद पत्रे शेकालेर कथा, 1818-1840 (बंगाली) साहित्य परिषद्, कलकत्ता, वि०सं० 1356.

बंन्दोपाध्याय, बजेन्द्रनाथ: 'द्वारकानाथ ठाकुर सम्पर्के कायेक्ती कथा' (बंगाली), **तत्वबोधिनी पत्रिका,** 1853 शक

बनर्जी' हिरण्मय: **दी हाउस ऑफ द टैगोर्स,** रवीन्द्र भारती यूनीवर्सिटी, कलकत्ता, 1968.

बनर्जी, श्रीनाथ: दी लाइफ ऑफ द्वारकानाथ टैगोर, (न्यूजमैन एण्ड कम्पनी की अनुमति से कॉटन के **कलकत्ता ओल्ड एण्ड न्यू** से लेकर और कुछ संशोधन-परिवर्धन करके पुर्नप्रकाशन) लेखक द्वारा प्रकाशित, 1974.

बनर्जी, ताराशंकर: 'द्वारकानाथ टैगोर – दी साल्ट दीवाने।' **कलकत्ता रिव्यू,** नवम्बर 1963.

बसु, दिलीप: 'दी बनिया एण्ड दी ब्रिटिश इन कलकत्ता, 1800-1850' **बंगाल पास्ट एण्ड प्रजेन्ट,** दिसम्बर, 1973.

बसु, नगेन्द्रनाथ एण्ड मुस्तफा व्योमकेश: **बंगेर जातीय इतिहास** (बंगाल) जिल्द III.

बसु, नगेन्द्रनाथ: **विश्वकोश** (बंगाली), कलकत्ता, वि०सं० 1305.

बेल, हाईस्लॉप: **ब्रिटिश फोक्स एण्ड ब्रिटिश इण्डिया फिफ्टी ईयर्स अगो: जोसेफ पीज एण्ड दी कन्टेम्पोरेरीज।** लन्दन एन०डी०

भट्टाचार्य, जोगेन्द्रनाथ: **हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स।** थैकर, स्पिंक एण्ड कं०, कलकत्ता, 1896.

बिब्लियोथीक नेशनेल, पेरिस (रवीन्द्रनाथ टैगोर की जन्म शताब्दी के उपलक्ष में, 1961 में आयोजित प्रदर्शनी के अवसर पर प्रकाशित बुलेटिन), जिसमें द्वारकानाथ के जीवन का एक संक्षिप्त विवरण और उनकी पेरिस यात्रा के बारे में उनके मित्र कोंत फई द कोशे के कुछ संस्मरण और साथ ही उनके बनाये दो रेखा-चित्र हैं।

बोस, अमलेन्दु: ए नोट ऑन द्वारकानाथ टैगोर, **विश्व भारती क्वार्टरली,** जिल्द 31, नं० 3, 1965-66.

बोस, राज नरायन: **शेकल ओ एकल** (बंगाली), कलकत्ता, 1874 बंगीय साहित्य परिषद संस्करण, कलकत्ता, वि०सं० 1358.

बोस, शिवचन्दर: **दी हिन्दूज एज दे आर,** कलकत्ता, 1881.

ब्राउन, एस०एस०: **होम लेटर्स रिटेन फ्राम इंडिया बिटवीन 1828 एण्ड 1841.** लंदन, 1875.

बकलैण्ड, सी०ई०: **डिक्शनरी ऑफ इण्डियन बायोग्राफी,** लंदन, 1906.

केपर, जॉन: **दी थ्री प्रेसिडेन्सीज ऑफ इंडिया,** लंदन, 1853.

चक्रवर्ती, अजित कुमार: **महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (बंगाली),** जिज्ञासा, कलकत्ता, 1971.

चक्रवर्ती, सतीशचन्द्र: द्वारकानाथ ठाकुर विषय-सम्पत्ति (बंगाली) **तत्वबोधिनी-**

पत्रिका, 1848 शक.

चन्द्र, आर और मजूमदार, जे०के०: **सेलेक्शन फ्राम ऑफिशियल लेटर्स एण्ड डॉक्यूमेन्ट्स रिलेटिंग टू दी लाइफ ऑफ राजा राममोहन राय,** जिल्द 1, 1791-1830. कलकत्ता, 1938.

चट्टोपाध्याय, गौतम: सं० **अवेकनिंग इन बंगाल इन अर्ली नाइन्टीन्थ सेंचुरी,** जिल्द 1, कलकत्ता, 1963.

चट्टोपाध्याय, खोन्द्रनाथ: **रवीन्द्र कथा** (बंगाली), कलकत्ता, वि०सं० 1348.

चौधरी, के०एन: सं० **दी इकनॉमिक डेवेलपमेन्ट ऑफ इण्डिया अण्डर दी ईस्ट इंडिया कंपनी,** 1814-1858, केम्ब्रिज, 1971.

चौधरी, नीरद सी०: **स्कॉलर एक्सट्राऑर्डिनरी – दी लाइफ ऑफ प्रोफेसर दी–राइट ऑनरेबल फ्रेडेरिक मेक्स मूलर,** पी०सी० ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1974.

कॉलेट, सोफिया डॉब्सन: **दी लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ राजा राममोहन राय,** तीसरा संस्करण, डी०के० विश्वास और पी०सी० गांगुली द्वारा सम्पादित और साधारण ब्रह्मोसमाज, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, 1962.

कॉटन, एच०ई०ए०: **कलकत्ता ओल्ड एण्ड न्यू,** डब्ल्यू न्यू मैन एण्ड कं०, कलकत्ता, 1907.

दास, हरिहर: 'दी अर्ली इण्डियन विजिटर्स टू इंगलैंड', **कलकत्ता रिव्यू,** अक्तूबर, 1924.

दास, सत्यजीत: **सं० सेलेकशन्स फ्राम दी इंडियन जर्नल्स,** 2 भाग, कलकत्ता, 1959.

दास गुप्ता, ए०सी०: **दी डेज ऑफ जॉन कम्पनी: सेलेक्शंस फ्राम कलकत्ता गजट,** 1824-1832, कलकत्ता 1959.

दास गुप्ता, एच०एन०: **दी इण्डियन स्टेज,** 4 भाग, कलकत्ता, 1931-46.

दास गुप्ता, कल्यान कुमार: 'द्वारकानाथ टैगोर: नाइन्टीन्थ सेन्चुरी पायोनीयर' **इन्डो-एशियन कल्चर,** जुलाई, 1971.

दे, पूर्णचन्द्र: 'द्वारकानाथ ठाकुरेर पत्रे' (बंगाली). **तत्वबोधिनी पत्रिका**. 1852 शक।

दे, सुशील कुमार: **हिस्ट्री ऑफ दी बंगाली लिटरेचर इन दी नाइन्टीन्थ सेन्चुरी।** दूसरा संस्करण, कलकत्ता 1961.

डिमॉक, एडवर्ड, सी० जूनियर: 'डॉक्ट्रिन एण्ड प्रेक्टिस अमन्ग दी वेश्नवाज ऑफ बंगाल, मिल्टन सिंगर के०कृष्ण: **मिथ, राइट्स एण्ड एटीट्यूडस** के संस्करण में। होनोलूलू, 1966.

डिक्स, जे: **पेन एण्ड इन्क स्केचेज ऑफ एमीनेन्ट लिटरेरी परसांनेजेज**। लन्दन, एन०डी०

दत्त, नृपेन्द्र कुमार: **ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंडिया**। दूसरा भाग, कलकत्ता, 1965.

ईडन, ऐमिली: **लैटर्स फ्राम इंडिया**। दो भाग। रिचर्ड बेन्टले एण्ड सन, लंदन, 1872.

फरेल, जैम्स डब्ल्यू: **दी टैगोर फैमिली: ए मेमॉयर,** दूसरा संस्करण। थैकर, स्पिंक एंड कं०, कलकत्ता 1892.

घोष, विनय: **बंगलार सामाजिक इतिहास धारा: 1800-1900** (बंगाली). कलकत्ता, 1968.

घोष, विनय: सं० **सामाजिक पत्रे बंगला समाजचित्र** (बंगाली), भाग 1-4, कलकत्ता 1962-66.

घोष, मन्मथ नाथ: 'फ्रंडस एण्ड फॉलोअर्स ऑफ राम मोहन राय'। सतीशचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित, **फादर ऑफ मॉडर्न इण्डिया,** कमेमोरेशन वाल्यूम, 1933 में, कलकत्ता, 1935.

गुप्त, अमिताभ: 'द्वारकानाथेर समाधि' (बंगाली), **देश,** साहित्यसखा, 1364 वि०सं०। गुप्त, अतुलचन्द्र: सं० स्टडीज इन बंगाल रिनेसा नेशनल कौंसिल ऑफ एजूकेशन, जादवपुर, कलकत्ता, 1958.

हेबर, आर.: **नैरेटिव ऑफ ए जरनी थ्रु दी अपर प्राविन्सेज ऑफ इंडिया**। तीन भाग, लंदन, 1828.

हेन्डरसन, एच०बी०: **दी बंगाली,** दो भाग, कलकत्ता 1829, 1836.

ह्यूम, जैम्स: **लेटर्स टू फ्रण्ड्स बाई ऐन आइडलर**। जून 1842 से मई 1843 तक, कलकत्ता, 1843। जून 1843 से मई 1844 तक, कलकत्ता 1844.

हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ दी यूनीवर्सिटी ऑफ कलकत्ता–1857–1956, यूनीवर्सिटी आफ कलकत्ता, 1951.

हन्ट, जेम्स डी०: **गांधी इन लंदन**। प्रमिला एण्ड कं०, नई दिल्ली, 1978.

जेक्वीमांत, विकटर; **लेटर्स फ्राम इण्डिया,** 1829–1832, लंदन, 1936.

जान्सन, जार्ज डब्ल्यू.: **दी स्ट्रेन्जर इन इंडिया,** 2 भाग, लंदन, 1843.

केशवन, बी०एस०: **इण्डियाज नेशनल लाइब्रेरी,** कलकत्ता, 1961.

किलंग, ब्लेयर बी०: 'दी ऑरिजिन ऑफ दी मेनेजिंग एजेन्सी इन इंडिया' **जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी,** भाग 1, नं० 66.

किलंग , ब्लेयर बी०: **पार्टनर इन ऐम्पायर: द्वारकानाथ टेगोर एण्ड दी एज ऑफ इेन्टरप्राइज इन ईस्टर्न इंण्डिया**। यूनीवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1976.

कॉफ, डेविडः **ब्रिटिश ओरियन्टलिज्म एण्ड दी बंगाल रिनेसां।** बर्कले, 1969.

कोटनाला, एम०सी०: **राजा राममोहन राय एण्ड इंडियन अवेकनिंग,** गीतांजलि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975.

कुमार, ज्ञानेन्द्रनाथः सं० **वंशमरिचय** (बंगाली) भाग-5, कलकत्ता, वि०सं० 1332.

मजूमदार, जे०के०: **राजा राममोहन राय एण्ड प्रोग्रेसिव मूवमेन्ट्स इन इंडिया,** कलकत्ता, 1941.

मजूमदार, आर०सी०: सं० **हिस्ट्री ऑफ बंगाल,** भाग-1, हिन्दू पीरियड, यूनीवर्सिटी ऑफ ढाका, 1943.

मजूमदार, आर०सी०: **हिस्ट्री ऑफ ऐशियन्ट बंगाल।** जी भारद्वाज एण्ड कं०, कलकत्ता, 1971.

मजूमदार, आर०सी०: **गिलम्पसेज ऑफ बंगाल इन दी नाइन्टीन्थ सेन्चुरी,** फर्मा के०एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1960.

मार्टिन, मान्टगोमरीः **हिस्ट्री ऑफ दी ब्रिटिश कॉलोनीज,** 5 भागों में, 1834-35, कॉचरेन एण्ड मैक्क्रोन।

मेहरोत्रा, एस०आर०: **दी इमर्जेन्स ऑफ दी इंडियन नेशनल कांग्रेस,** विकास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1971.

मित्रा, अशोकः **कलकत्ता इंण्डियाज सिटी,** कलकत्ता, 1963.

मित्रा, किशोरी चन्द्रः **मेमॉयर ऑफ द्वारकानाथ टैगोर,** थैकर, स्पिंक एण्ड कं०, कलकत्ता, 1870.

मित्रा, किशोरी चन्द्रः **द्वारकानाथ ठाकुर** (द्विजेन्द्र लाल नाथ का बंगाली अनुवाद) कल्यान कुमार दास गुप्त द्वारा सम्पादित। संबोधी, कलकत्ता, 1962.

मित्रा, प्यारे चन्द (टेकचन्द ठाकुर): **अलालेर घरेर दुलाल** (बंगाली)। कलकत्ता 1858, बंगीय साहित्य परिषद संस्करण, वि०सं० 1347.

मुकर्जी, अमृतमोयः द्वारकानाथ पर **समकालीन** में प्रकाशित लेख (बंगाली) वि०सं० 1369-1373.

मुकर्जी, नीलमणिः **ए बंगाली जमींदार-जयकृष्ण मुकर्जी ऑफ उत्तरपारा एण्ड हिज टाइम्स,** 1808-1888, फर्मा के०एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1975.

मुकर्जी, प्रभातकुमारः **रवीन्द्र जीवनी** 4 भागों में। विश्व भारती, कलकत्ता।

मुखर्जी, एस०एन०: **कलकत्ताः मिथ एण्ड हिस्ट्री,** सुवर्णरेखा, कलकत्ता, 1977.

मूलर, एफ मैक्सः **बायोग्राफिकल एसेज,** लंदन, 1884.

मूलर, एफ०मैक्सः **ऑल्ड लैंग साईने,** लांगमैन, ग्रीन एण्ड कंपनी, लंदन, 1899.

मूलर, एफ०मैक्स (श्रीमती) सं०: **लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ दी राइट ऑनरेबल फ्रेडरिक मैक्स मूलर,** भाग 1, लांगमैन, ग्रीन एण्ड कंपनी, लंदन, 1902.

नन्दा, बी०आर०: **गोखले, गांधी एण्ड दी नेहरूजः स्टडीज इन इण्डियन नेशलिज्म**, एलेन एण्ड अन्विन, लंदन, 1974.

नटराजन, एस०: **ए हिस्ट्री ऑफ दी प्रेस इन इंडिया,** एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1962.

ओर्लिक, केप्टन लियोपोल्ड वॉन: 'ट्रेवेल्स इन इंडिया', 2 भागों में। लांगमैन, ब्राउन ग्रीन एण्ड लांगमैन, लंदन, 1845.

पार्क्स, फैनी: **वान्डरिन्गस ऑफ ए पिलग्रिम इन सर्च ऑफ दी पिक्चरेक्स डयूरिंग फोर एन्ड टवेन्टी ईयर्स इन दी ईस्ट** दो भागों में। लंदन, पेल्हम रिकार्डसन, 1850.

राबर्ट्स, एम्मा: **सीन्स एण्ड कैरेक्टरस्टिक्स ऑफ हिन्दोस्तान विद स्कैचेज ऑफ एंग्लो-इण्डियन सोसाइटी।** 3 भागों में। लंदन, 1835.

राय, प्रफुल्ल चन्द्र: **लाइफ एण्ड एक्सपीरियन्सेज ऑफ ए बंगाली केमिस्ट,** 2 भागों में। कलकत्ता, 1932 और 1935.

दी इंगलिश वर्क्स ऑफ राजा राममोहन राय, 6 भागों में। सं० कालिदास नाग और दिव ज्योति बर्मन, कलकत्ता, 1945-51.

रंगता, राधेश्याम: **दी राइज ऑफ बिजिनेस कारपोरेशन इन इंडिया, 1851-1900.** केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस।

सरकार, जदुनाथ: सं० **दी हिस्ट्री ऑफ बंगाल,** भाग 2, मुस्लिम पीरियड। नया संस्करण, अकादेमिका एशियाटिका, पटना, 1973.

शास्त्री, शिवनाथ: **राम तनु लाहिरी, ब्राह्मन एण्ड रिफार्मर,** सं० रोपर लेथब्रिज, लंदन, 1907.

सेन, अमित: **नोट्स ऑन दी बंगाल रिनेसां,** कलकत्ता, 1946.

सेन, दिनेश चन्द्र: **हिस्ट्री ऑफ दी बंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर,** कलकत्ता, 1954.

सेन, प्रशान्त कुमार: **बायोग्राफी ऑफ ए न्यू फेथ,** थैकर, स्पिंक एण्ड कं०, कलकत्ता, 1950.

सिन्हा, मिहर: **'द्वारकानाथ टैगोर, दी प्रिंस ऑफ इंडियन रिनेसां' क्वेस्ट्इट,** अप्रैल, 1964.

सिन्हा, नरेन्द्र कृष्ण: **दी हिस्ट्री ऑफ बंगालः 1757-1905,** दी यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1967.

सिन्हा, निर्मल: सं० **फ्रीडम मूवमेन्ट इन बंगाल, 1818-1904 हू' इज हू.** कलकत्ता, 1968.

सिन्हा, एन०सी०: **स्टीडीज इन इंडो-ब्रिटिश इकॉनमी हन्ड्रेड ईयर्स अगो,** कलकत्ता, 1946.

सिन्हा, प्रदीपः **नाइन्टीन्थ सेन्चुरी बंगालः आस्पेक्टस ऑफ सोशल हिस्ट्री,** कलकत्ता, 1965.

स्पीयर, पी०: **दी नवाबस,** लंदन, 1932.

स्टॉक्वेलर, जे०एच०: **मेमॉयर्स ऑफ ए जर्नलिस्ट,** टाइम्स ऑफ इण्डिया, बम्बई, और फ्लीट स्ट्रीट, लंदन, 1873.

टैगोर, देवेन्द्रनाथ महर्षि, **दी ऑटोबायोग्राफी ऑफः** अंग्रेजी अनुवाद, सत्येन्द्रनाथ टैगोर और इंदिरा देवी द्वारा, कलकत्ता, 1909.

टैगोर, रथीन्द्रनाथः **ऑन दी एजेज ऑफ टाइम,** ओरियन्ट लांगमैन्स, कलकत्ता, 1958.

टैगोर, सत्येन्द्र नाथ: 'लेटर्स', इंदिरा देवी द्वारा सम्पादित, **कलकत्ता रिव्यू,** 1924 (भाग XII)

ठाकुर अबनीन्द्रनाथः **अपन कथा** (बंगाली) प्रथम बार वि०सं० 1353 में प्रकाशित। सिगनेट प्रेस, कलकत्ता। कवर डिजाइन और टेलपीसेज सत्यजीत रे द्वारा।

ठाकुर, देवेन्द्रनाथः **आत्म जीवनी** (बंगाली) सं० सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, विश्व-भारती, कलकत्ता, 1962.

ठाकुर, क्षितीन्द्रनाथः 'द्वारकानाथ ठाकुरेर ओ मेडिकल कालेज' (बंगाली), **तत्वबोधिनी पत्रिका,** 1854 शक।

ठाकुर, क्षितीन्द्रनाथः **द्वारकानाथ ठाकुरेर जीवनी** (बंगाली) रवीन्द्र भारती यूनीवर्सिटी, कलकत्ता, वि०सं० 1376.

ठाकुर, रवीन्द्रनाथः **यूरोप पूवासीर पत्र** (बंगाली), कलकत्ता, वि०सं० 1288, **रवीन्द्र रचनावली,** भाग-1, विश्व भारती, कलकत्ता, वि०सं० 1346.

ठाकुर, रवीन्द्रनाथः **यूरोप जात्रेर डायरी** (बंगाली), दो भागों में, वि०सं० 1298 तथा 1300, **रवीन्द्र रचनावली,** भाग-1, विश्व भारती, कलकत्ता, वि०सं० 1346.

ठाकुर, सत्येन्द्रनाथः **अमार बाल्यकथा ओ बम्बई प्रवास** (बंगाली), इंडियन पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, 1915.

ठाकुर, सोमेन्द्रनाथः **भारतेर शिल्पविप्लव ओ राममोहन** (बंगाली)। रूपा एण्ड कं०, कलकत्ता, वि०सं० 1370.

थाम्सन, जार्जः **एड्रेसेज डिलीवर्ड ऐट मीटिंग्स ऑफ दी नेटिव कम्यूनिटी ऐट कलकत्ता एण्ड इट अदर आकिजन्स,** कलकत्ता, 1843.

थार्नर, डेनियलः **इन्वेस्टमेन्ट इन एम्पायर,** फिलाडेल्फिया, 1950.

त्रिपाठी, अमलेशः **ट्रेड एण्ड फाइनेन्स इन दी बंगाल प्रेसिडेन्सी, 1793-1833.** उद्भट सागर, पूर्णचन्द्र देः 'महारानी विकटोरिया ओ प्रिंस द्वारकानाथ', (बंगाली) **मासिक बासुमती,** फाल्गुन, वि०सं० 1336.